व्यापारिक सन्नियम : सिद्धान्त एवं व्यवहार

लेखक
डॉ० बी० एम० भदादा
जी० एन० जाखोटिया

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रस्तावना

राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी अपनी स्थापना के 17 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 1986 को 18 वें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि मे विश्व साहित्य के विभिन्न विषयों के उत्कृष्ट ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद तथा विश्वविद्यालय के शैक्षणिक स्तर के मौलिक ग्रथो को हिन्दी में प्रकाशित कर अकादमी ने हिन्दी-जगत् के शिक्षको, छात्रों एव अन्य पाठकों की सेवा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी में शिक्षण के मार्ग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हिन्दी मे ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के अनुकूल हों। विश्वविद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्रंथ, जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड़ में अपना समुचित स्थान नही पा सकते हों और ऐसे ग्रथ भी जो अंग्रेजी की प्रतियोगिता के सामने टिक नहीं पाते हों, अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान-विज्ञान के हर विषय में उन दुर्लभ मानक ग्रंथों को प्रकाशित करती रही है और करेगी जिनको पाकर हिन्दी के पाठक लाभान्वित ही नहीं गौरवान्वित भी हो सकें। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि अकादमी ने 325 से भी अधिक ऐसे दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया है जिनमे से एकाधिक केन्द्र, राज्यों के बोर्डों एव अन्य संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं तथा अनेक विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा अनुशसित।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को अपने स्थापना काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होता रहा है तथा राजस्थान सरकार ने इसके पल्लवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अतः अकादमी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में उक्त सरकारों की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'व्यापारिक सन्नियम : सिद्धान्त एवं व्यवहार' भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातक कक्षाओं के लिए निर्धारित व्यापारिक सन्नियम के पाठ्यक्रम एवं अध्यापन कार्यक्रम को ध्यान में रखकर लिखी गयी है। यह पुस्तक विशेष रूप से राजस्थान के विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले व्यापारिक सन्नियम विषय पर पूरी सामग्री को न केवल एक जगह प्रदान करती है वरन् अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों, मूल अधिनियमों और उच्च न्यायालयो द्वारा दिये गए निर्णयों पर आधारित होने से विषय का विवेचन और निर्वचन उसके सही आयामों में प्रस्तुत करती है ताकि विधि व्यवहार में रुचि रखने वालों को अधुनातन ज्ञान उपलब्ध हो सके।

अकादमी इस पुस्तक के लेखक डॉ. बी. एम. मदादा एवं श्री जी. एन. जागोटिया के प्रति आभारी है। इसके विषय सम्पादक डॉ. आर. वी उपाध्याय, जयपुर एवं भाषा सम्पादक डॉ. रमाशंकर जेतली, जयपुर को भी प्रदत्त सहयोग हेतु धन्यवाद देते हैं।

रणजीतसिंह कूमट
शिक्षा सचिव, राजस्थान सरकार एवं
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

डॉ. राघव प्रकाश
निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्राक्कथन

प्रस्तुत कृति भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातक कक्षाओं के लिए निर्धारित व्यापारिक सन्नियम के पाठ्यक्रम एवं अध्यापन कार्यक्रम को ध्यान में रख कर लिखी गयी है। यह पुस्तक विशेष रूप से *राजस्थान के विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले* व्यापारिक सन्नियम विषय पर पूरी सामग्री को न केवल एक जगह प्रदान करती है वरन् अनेक प्रमाणिक ग्रन्थों, मूल अधिनियमों और उच्च न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों पर आधारित होने से विषय का विवेचन और निर्वचन उसके सही आयामों में प्रस्तुत करती है ताकि विधि व्यवहार में रुचि रखने वालों को अधुनातन ज्ञान उपलब्ध हो सके।

विद्यार्थियों के लिए व्यापारिक सन्नियम विषय अधिक रुचिकर हो सके तथा उन्हें कानूनी बारिकियाँ आसानी से समझ में आ सके इसके लिए पुस्तक के विषय और भाषा की सरलता, रोचकता और उपयुक्तता बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है। पारिभाषिक शब्दावली के अंग्रेजी पर्याय भी इस विचार से दिये गये हैं कि व्यापारिक सन्नियम के क्षेत्र में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली के ज्ञान से विद्यार्थी वंचित न रहें और आवश्यकता पड़ने पर इस विषय से सम्बन्धित अंग्रेजी शब्दों का अभिप्राय समझ सके। *प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में अन्तर्वस्तु के प्रमुख बिन्दुओं का उल्लेख इसलिए किया गया* है कि विद्यार्थी अध्याय में उतरने के पूर्व ही उसमे प्रस्तुत विषय सामग्री का अनुमान लगा सकें। विषय सामग्री को सुगम बनाने की दृष्टि से प्रत्येक अध्याय में आवश्यकतानुसार उदाहरण प्रत्येक इकाई के अन्त में महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्नों के सुझावात्मक हल और अभ्यासार्थ प्रश्न भी दिये गये हैं।

पाण्डुलिपि सुधार हेतु अनेक मित्रों ओर से समय-समय पर सुझाव मिले हैं। इस दृष्टि से विशेष रूप से श्री मदनमोहन भट्टड़, व्याख्याता सोमानी कॉलिज, जोधपुर का सहयोग स्मरणीय है। भविष्य में भी मित्रों व पाठकों से अमूल्य सुझाव आते रहेंगे ऐसी हमें आशा है। पुस्तक में सुधारात्मक सुझावों का सदैव स्वागत किया जायेगा।

अन्त में हम राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने न केवल इस पुस्तक के प्रकाशन की जिम्मेदारी ली है वरन् लेखकों का उत्साह भी बढ़ाया है।

डॉ. बी. एम. भवावा
जी. एन. जाखोटिया

विषय-सूची

1

व्यापारिक सन्नियम का परिचय
(Introduction of Commercial Law)

विषय-सामग्री—व्यापारिक सन्नियम का अर्थ, क्षेत्र या विषय-वस्तु, आधारभूत परिभाषाएँ एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण अभ्यास के लिए प्रश्न ।

व्यापारिक सन्नियम का अर्थ
(Meaning of Mercantile Law)

व्यापारिक सन्नियम का आशय उन सभी वैधानिक नियमों एवं अधिनियमों से है, जिनके द्वारा व्यवसाय में होने वाले लेन-देनों को नियमित एवं नियन्त्रित किया जाता है ।

प्रो. एम. सी. शुक्ला के अनुसार, "व्यापारिक सन्नियम राजनियम की वह शाखा कही जा सकती है जो व्यापारिक सम्पत्ति के विषय में व्यापारिक व्यवहारों से उत्पन्न व्यापारिक व्यक्तियों के अधिकारो एवं दायित्व का वर्णन करती है ।"[1]

इस प्रकार व्यापारिक सन्नियम से आशय ऐसे सन्नियम से है जो सामान्य व्यापारिक *क्रियाओं जैसे क्रय-विक्रय, बीमा, बैंक आदि पर लागू होते हैं । व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों* के सौदों के सम्बन्ध में इन नियमों के द्वारा वैधानिक अधिकारों एवं दायित्वों को निश्चित किया जाता है ।

व्यापारिक सन्नियम का क्षेत्र या विषय-वस्तु
(Scope or Subject Matter of Commercial Law)

निम्नलिखित अधिनियमों को व्यापारिक सन्नियम में सम्मिलित किया जाता है—

(1) अनुबन्ध-अधिनियम (Contract Act)
(2) वस्तु-विक्रय अधिनियम (Sale of Goods Act)
(3) साझेदारी अधिनियम (Partnership Act)
(4) बेचनी लिखत अधिनियम (Negotiable Instrument Act)
(5) कम्पनी अधिनियम (Company Law)
(6) बैंकिंग अधिनियम (Banking Companies Act)

1. "Mercantile law may be defined as that branch of law which deals with the rights and obligations of mercantile persons arising out of mercantile transactions is respect of mercantile property." —Prof. M.C. Shukla

(7) बीमा अधिनियम (Insurance Act)
(8) वाहक एवं वस्तु-परिवहन अधिनियम (Carriers and Carriage of Goods Act)
(9) पेटेन्ट व कापीराइट अधिनियम (Patent and Copy Right Act)
(10) दिवाला अधिनियम (Insolvency Act)
(11) पंच निर्णय अधिनियम (Arbitration Act)
(12) औद्योगिक प्रतिभूति अधिनियम (Industrial securities Act)

व्यापारिक सन्नियम के स्रोत
(Sources of Mercantile Law)

इसके प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं :—

(1) इंगलिश कॉमन ला (English Common Law)—भारतीय व्यापारिक सन्नियम का प्रमुख स्रोत इगलिश कॉमन ला है जो इंगलैण्ड का सबसे अधिक प्राचीन राजनियम है। जहाँ किन्ही विषयो के सम्बन्ध मे कोई अधिनियम नही है, अथवा जहाँ वे अस्पष्ट एव भ्रमात्मक होते हैं वहाँ भारतीय न्यायालय में अंग्रेजी अधिनियमों एव निर्णयो को आधार माना जाता है।

(2) भारतीय रीति रिवाज (Indian Customs and Usages)—समय-समय पर भारत मे अनेकों प्रथाएँ व रीतियाँ प्रचलित रही हैं। रीति-रिवाज समाज में इतनी जड़े जमा लेते है कि वे कभी-कभी अधिनियमो से भी ज्यादा महत्त्व रखते हैं। भारत में जितने भी अधिनियम बनाये गये है उन सबमे भारतीय रीति-रिवाजो को प्रमुख स्थान दिया गया है।

(3) न्यायिक निर्णय (Judicial Decisions)—ये नियम न्याय की प्राप्ति के लिए बनाये गये और सामान्यतया उन मामलो पर बनाये गये जिन पर किसी भी प्रकार के रीति-रिवाजो का अभाव था। पुराने मुकदमों के निर्णय के आधार पर नये मुकदमों का निर्णय किया जाता है। इससे समानता तथा एकरूपता निर्णयों में बनी रहती है तथा सद्भाव, समानता और न्याय के सिद्धान्तों का पालन होता है।

(4) भारतीय विधान संविधि (Statutes of the Indian Legislation)—हमारे देश की संसद्, राज्यसभा तथा विधानसभाएँ प्रतिवर्ष कुछ न कुछ अधिनियम पारित करती ही रहती है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 का परिचय
(Introduction of Indian Contract Act, 1872)

"भारतीय अनुबन्ध अधिनियम" भारतीय संसद् द्वारा सन् 1872 मे सुस्थापित किया गया था। यह 1 सितम्बर, 1872 से कार्यान्वित हुआ और जम्मू तथा काश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत मे लागू होता है। मूल भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में कुल 266 धाराएँ थी जो निम्नलिखित प्रकार से विभाजित थीं :—

अनुबन्ध के सामान्य सिद्धान्त—	1 से 75 तक की धारायें
वस्तु-विक्रय अनुबन्ध-सम्बन्धी नियम	76 से 123 ,, ,,

क्षति-पूर्ति तथा गारन्टी अनुबन्ध	124 से 147 तक की धारायें
निक्षेप के अनुबन्ध	148 से 181 ,, ,,
एजेन्सी के अनुबन्ध	182 से 238 ,, ,,
साझेदारी अनुबन्ध	239 से 266 ,, ,,

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 में से कुछ धाराएँ निरस्त करके अन्य दो अधिनियम और बना दिये गये है। इस प्रकार वर्तमान में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. अनुबन्ध के सामान्य सिद्धान्त	धारा 1 से 75 तक
2. विशिष्ट अनुबन्ध	धारा 124 से 238 तक

आधारभूत परिभाषाएँ
(Fundamental Definitions)

(1) प्रस्ताव (Proposal)—[धारा 2 (a)]—जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से किसी कार्य को करने अथवा न करने के विषय में अपनी इच्छा इस उद्देश्य से व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में प्राप्त हो, तो कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के समक्ष प्रस्ताव रखा है।[1]"

(2) वचन (Promise)—[धारा 2 (b)]—जब वह व्यक्ति जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता है, उस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे देता है, तब यह कहा जाता है कि प्रस्ताव "स्वीकृत हो गया। जब प्रस्ताव की स्वीकृति दे दी जाती है तो यह वचन बन जाता है।[2]"

(3) वचनदाता और वचन गृहीता (Promisor and Promisee) [धारा 1 (c)]—"जो व्यक्ति प्रस्ताव रखता है उसे प्रस्तावक या वचनदाता कहते हैं और प्रस्ताव स्वीकार करने वाले को "वचन गृहीता" कहते हैं।[3]"

(4) प्रतिफल (Consideration) धारा 2 (d) —"जब वचनदाता की इच्छा पर, वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने—

(i) कुछ कार्य किया है या उसके करने से विरत रहा है, अथवा

(ii) कुछ कार्य करता है या उसके करने से विरत रहता है अथवा

---

1. When one Person Signifies to another his willingness to do or to abstain from doing anything, with a view to obtaining the assent of that other to such act or abstinence, he is said to make a proposal." [Sec 2 (a)]

2. "When the person to whom the proposal is made signifies his assent there to the proposal is said to be accepted A Proposal when accepted, becomes a promise." [Sec. 2 (b)]

3. The person making the proposal is called the "Promisor" and the person accepting the proposal is called the "Promisee." [Sec. 2 (c)]

(iii) कुछ कार्य करने या विरत रहने का वचन देता है— तो ऐसा कार्य या विरति या वचन, उस वचन का "प्रतिफल" कहलाता है।[1]

(5) करार (Agreement) [धारा 2 (e)]—"प्रत्येक वचन तथा वचनों का प्रत्येक समूह, जो एक दूसरे का प्रतिफल हो, करार कहा जाता है।"[2]

(6) पारस्परिक वचन (Reciprocal Promise) [धारा 2 (f)]—"ऐसे वचन जो एक-दूसरे के प्रतिफल या आंशिक प्रतिफल होते हैं, पारस्परिक वचन कहलाते है।"[3]

(7) शून्य करार (Void Agreement) [धारा 2 (g)]—"एक करार जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही है, शून्य करार कहलाता है।"[4]

(8) अनुबन्ध (Contract) [धारा 2 (h)]—राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करार अनुबन्ध कहलाता है।"[5]

(9) शून्यकरणीय अनुबन्ध (Voidable Contract) [धारा 2 (i)]—"कोई करार जो केवल एक या अधिक पक्षकारो की इच्छा पर प्रवर्तनीय है लेकिन दूसरे पक्षकार या पक्षकारो की इच्छा पर प्रवर्तनीय नही है, शून्यकरणीय अनुबन्ध कहलाता है।"[6]

(10) व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contract) [धारा 2 (j)]—"एक अनुबन्ध जो कि राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हो वह शून्य हो जाता है फिर वह प्रवर्तनीय नही रह जाता।"[7]

वैध अनुबन्ध के अनिवार्य तत्त्व
(Essentials of a valid contract)

अनुबन्ध की परिभाषा (Definitions and meaning of contract)—अनुबन्ध का सही आशय समझने के लिए इसकी परिभाषाओ को दो शीर्षकों मे वर्णित किया जा सकता है—

(अ) न्यायाधीशों द्वारा।

(ब) अनुबन्ध अधिनियम द्वारा।

---

1. "When at the desire of the promisor, the promisee or any other person has done or abstained from doing or does or abstains from doing or promises to do or to abstain from doing some thing, such act or abstinence or promise is called a consideration for the promise." [Sec 2 (d)]
2. "Every Promise and every set of Promises, Forming the consideration for each other is an agreement." [Sec. 2 (e)]
3. "Promises which from the consideration or part of the consideration for each other are called reciprocal Promises." [Sec. 2 (f)]
4. "An Agreement not enforceable by law is said to be void." [Sec 2 (g)]
5. "An agreement enforceable by law is a contract." [Sec. 2 (h)]
6. "An Agreement which is enforceable by law at the option of one or more of the parties there to but not at the option of the other or others is a voidable contract" [Sec. 2 (i)]
7. "An contract, which ceases to be enforceable by law becomes void when if ceases to be enforceable." [Sec. 2 (j)]

(अ) न्यायाधीशों द्वारा

न्यायाधीश सालमण्ड के अनुसार, "अनुबन्ध एक करार है जो पक्षकारों के मध्य दायित्व उत्पन्न करता है तथा उनकी व्याख्या करता है।"[1]

सालमण्ड द्वारा दी गइ परिभाषा में निम्नलिखित प्रमुख तत्त्व हैं—

(1) अनुबन्ध एक करार होता है।

(2) अनुबन्ध में एक से अधिक पक्षकार का होना आवश्यक है।

(3) उन पक्षकारों के मध्य ऐसा करार दायित्व उत्पन्न करता है।

(4) उन पक्षकारों के मध्य उत्पन्न दायित्वों की ऐसा करार व्याख्या करता है।

सर विलियम एन्सन के अनुसार, "*अनुबन्ध दो या दो से अधिक पक्षकारों के बीच हुआ एक ऐसा करार है जो कि राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है तथा जिसके द्वारा एक या अधिक पक्षकार दूसरे पक्षकार या पक्षकारों के विरुद्ध कुछ अधिकार किसी काम को करने या न करने के लिए प्राप्त कर लेते है।*"[2]

इस परिभाषा में निम्नलिखित प्रमुख बातें हैं—

(1) अनुबन्ध एक करार है।

(2) दो या दो से अधिक पक्षकारो का होना।

(3) किसी भी पक्षकार द्वारा त्रुटि किये जाने की दशा में वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है।

(4) पक्षकार एक दूसरे के प्रति कुछ अधिकार प्राप्त करते है।

(5) किसी कार्य को करने या न करने के सम्बन्ध में ये अधिकार प्राप्त किये जाते है।

(ब) अनुबन्ध अधिनियम द्वारा

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2 (H) के अनुसार "अनुबन्ध एक ऐसा करार है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय है।"[3]

इस परिभाषा के अनुसार अनुबन्ध होने के लिए दो तत्वों का होना आवश्यक है।

(1) पक्षकारों के बीच करार,

(2) करार का राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होना।

राजनियम द्वारा करार के प्रवर्तनीय होने के लिए किन-किन बातों का होना आवश्यक है इसके लिए भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 का अध्ययन करना आवश्यक है जो इस प्रकार है—

'सब करार अनुबन्ध है यदि वे उन पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किये जाते है, जिनमें अनुबन्ध करने की क्षमता है, जो वैधानिक प्रतिफल के लिए तथा वैधानिक उद्देश्य से किये जाते है तथा इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य घोषित नहीं हैं। इसके

---

1. "A contract is an agreement creating and defining obligations between the parties." Salmond

2. "A contract is an agreement enforceable at law made between two or more persons, by which right are acquired by one or more of act or forbearance on the part of the other or others." Sir William Anson

3. "An agreement enforceable by Law is a contract." [Sec. 2 (h)]

अतिरिक्त यदि भारत में प्रचलित किसी विशेष राजनियम द्वारा यह अनिवार्य हो तो करार लिखित हो अथवा साक्षी द्वारा प्रमाणित हो अथवा रजिस्टर्ड हो।"[1]

वैध अनुबन्ध के अनिवार्य तत्व या लक्षण
(Essentials of valid contract)

वैध अनुबन्ध के लिए निम्नलिखित आवश्यक लक्षणों का होना आवश्यक है—

(1) पक्षकारों की अनेकता (Pluarality of parties)—एक वैध अनुबन्ध में कम से कम दो पक्षकारों का होना इसलिए आवश्यक है कि एक पक्षकार अपने आप से कोई प्रस्ताव नही कर सकता है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने ही अधिकारों के लिए अपने आपको उत्तरदायी नही ठहरा सकता है।

(2) करार (Agreement)—*किसी भी अनुबन्ध के निर्माण के लिए करार* आवश्यक है। एक पक्षकार द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाना चाहिये और दूसरे पक्षकार द्वारा स्वीकृति प्रदान की जानी चाहिये तभी अनुबन्ध पूरा होगा, वरना नहीं।

उदाहरण—संजय ने विजय को 100 क्विटल चावल 300 रुपये प्रति क्विटल के भाव से बेचने का प्रस्ताव रखा और विजय ने इसे स्वीकार कर लिया तो यह संजय एवं विजय के बीच वैध करार है।

वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण या तत्व—
1. एक से अधिक पक्षकार।
2. करार।
3. करार का वैधानिक रूप से लागू होना
4 पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा।
5. पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता।
6 पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति।
7. वैधानिक प्रतिफल।
8. स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित न हो।
9 यदि आवश्यक हो तो करार लिखित या प्रमाणित या रजिस्टर्ड होना चाहिये।

(3) करार का वैधानिक रूप से लागू होना (Enforceable by law)—वैध अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि करार ऐसा होना चाहिये कि वह दोनों पक्षकारों पर वैधानिक रूप से लागू हो यदि *ऐसा नही है तो वह वैध अनुबन्ध नही होगा।*

(4) पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा (Intention to create legal relations)—करार तभी अनुबन्ध होगा जब पक्षकारो के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा हो। **डारलिम्पल बनाम डारलिम्पल** (Darlymple vs Darlymple) के मामले में लार्ड स्टोवेल (lord stowell) ने लिखा है कि "अनुबन्ध अवकाश के क्षणों का खेल नही होना चाहिये और न यह केवल आनन्द की

---

1. ' All agreement are contracts if they are made by the free consent of the parties competent to contract, for a Lawful consideration and with a Lawful object, and are not here by expressly declared to be void.

Nothing here in contained shall affect any Law inforce in India and not here by expressly repeated by which any contract is refused to be made in writing or in the presence of witnesses, or any Law relating to registration of documents." *Section is, The Indian contract Act 1872*

वस्तु होना चाहिये । जिनके परिणामों को पक्षकारों द्वारा कभी गम्भीरता से न लिया गया हो ।"[1]

उदाहरण—अंशुल ने भारत को अपने यहाँ रात्रि भोजन पर आमन्त्रित किया किया जिसे भारत ने स्वीकार भी कर लिया । कुछ कारणो से भारत, अंशुल के यहाँ भोजन पर नही पहुँच सका तो अंशुल अपने मित्र भारत के विरुद्ध वैधानिक रूप से करार को लागू नही कर सकता ।

(5) पक्षकारों की अनुबन्ध क्षमता (Contractual capacity of parties)—अनुबन्ध करने वाले पक्षकारों मे अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार केवल निम्नलिखित व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य हैं—

(i) वयस्क व्यक्ति,
(ii) जो व्यक्ति स्वस्थ-मस्तिष्क का है,
(iii) राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नही है जैसे—राष्ट्रपति, राज्यपाल, दिवालिया, राजदूत आदि ।(ये व्यक्ति अनुबन्ध नही कर सकते ।)

(6) पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति (Free consent of the parties)—करार को वैध अनुबन्ध बनाने के लिए आवश्यक है कि उसके पक्षकारो की सहमति स्वतन्त्र हो । यदि निम्नलिखित तत्त्वों मे से किसी के कारण सहमति प्रदान नही की गई है तो उसे स्वतन्त्र सहमति कहेगें—

(i) उत्पीड़न, या (धारा 15)
(ii) अनुचित प्रभाव, या (धारा 16)
(iii) कपट, या (धारा 17)
(iv) अन्यथा कथन, या (धारा 18)
(v) गलती । (धाराएं 20 से 22 तक)

(7) वैधानिक प्रतिफल (Lawful Consideration)—बिना प्रतिफल के अनुबन्ध शून्य होता है अतः जब दो या दो से अधिक व्यक्ति अनुबन्ध करते हैं तो उनका कोई न कोई प्रतिफल अवश्य होता है । यह आवश्यक नही है कि प्रतिफल नकद हो या वस्तु के रूप में हो ।

(8) वैधानिक उद्देश्य (Lawful Object)—अनुबन्ध की वैधता के लिए करार के उद्देश्य का भी वैध होना आवश्यक है ।

निम्नलिखित परिस्थितियों को छोड़ कर अन्य दशाओ में प्रतिफल वैध माना जाता है :—

(i) वह राजनियम द्वारा वर्जित हो, या
(ii) वह कपटमय हो, या
(iii) उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचती हो, या

---

1. "Contracts must not be sports of an idle hour mere matters of pleasantry and badinage, never intended by the parties to have any serious effect whatsoever." Lord Stowell.

(iv) यदि अनुमति दे दी जाए तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर दे, या

(v) न्यायालय उसे अनैतिक अथवा लोकनीति के विरुद्ध समझता हो।

(9) स्पष्टत: शून्य घोषित न हो (Agreement must not be expressly declared void)—करार उन करारो मे से नहीं होना चाहिए जिन्हें स्पष्ट रूप से अधिनियम द्वारा शून्य घोषित कर दिया है। निम्नलिखित करारों को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य करार घोषित कर दिया गया है :—

(i) अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये करार (धारा 11)

(ii) जब करार के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में करार के दोनों पक्षकार गलती पर हो (धारा 20)

(iii) विदेशी राजनियम के सम्बन्ध में गलती के आधार पर हुए करार पूर्णत: शून्य होते हैं (धारा 21)

(iv) अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के करार (धारा 23)

(v) आंशिक अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल वाले करार (धारा 24)

(vi) बिना प्रतिफल के करार (धारा 25)

(vii) अवयस्क के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के विवाह मे रुकावट डालने वाले करार (धारा 26)

(viii) व्यापार में रुकावट डालने वाले करार (धारा 27)

(ix) वैधानिक कार्यवाही मे रुकावट डालने वाले करार (धारा 28)

(x) अनिश्चित अर्थ वाले करार (धारा 29)

(xi) बाजी के रूप मे किए गए करार (धारा 30)

(xii) असम्भव घटना पर आधारित करार (धारा 32)

(xiii) असम्भव कार्यों के करार [धारा 56 (1)]।

(10) यदि आवश्यक हो तो करार लिखित या प्रमाणित या रजिस्टर्ड होने चाहिए (Agreement should be in writing, attested or registered if so required by Law)—यदि किसी सम्बन्धित अधिनियम द्वारा ऐसा करना अनिवार्य कर दिया गया है तो अनुबन्ध लिखित, या साक्षी द्वारा प्रमाणित अथवा रजिस्टर्ड होना चाहिए अन्यथा वह शून्य माना जायेगा। निम्नलिखित अनुबन्धों का लिखित होना आवश्यक है :—

(i) बीमा अनुबन्ध।

(ii) अवधि-वर्जित ऋण के भुगतान का समझौता।

(iii) विनिमय साध्य विलेख (चैक, प्रतिज्ञा-पत्र, हुण्डी आदि)।

(iv) तीन वर्ष से अधिक अवधि के लिए किये गये पट्टे के समझौते।

(v) पंच-निर्णय का समझौता।

स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित अनुबन्ध लिखित व पंजीकृत होने चाहिये। इसी प्रकार 100 या 100 रु. से अधिक मूल्य की स्थायी सम्पत्ति के हस्तांतरण के लिए सम्पत्ति हस्तातरण अधिनियम के अनुसार अनुबन्ध का लिखित, साक्षी द्वारा प्रमाणित तथा रजिस्टर्ड होना आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनुबन्ध क्या है ? एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

   What is a contract ? Explain in brief, the essentials of a valid contract.

   (जोधपुर वि. वि. 1977)

2. "अनुबन्ध वह करार है जिसे राजनियम द्वारा प्रवर्तित करवाया जा सकता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए तथा वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों का वर्णन कीजिए।

   "Contract is an agreement enforceable at law." Discuss the statement and describe the essentials of a valid contract.

   (जोधपुर वि. वि. 1985)

2

करार
(Agreement)

विषय-सामग्री—करार की परिभाषा, आवश्यक तत्त्व, "समस्त अनुबन्ध करार होते है, परन्तु सब करार अनुबन्ध नही होते", करारो के प्रकार, अभ्यास के लिए प्रश्न।

करार की परिभाषा

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (e) के अनुसार "प्रत्येक वचन एवं वचनो का समूह जिसमें वचन एक दूसरे के लिए प्रतिफल है, करार कहलाता है।"[1]

न्यायाधीश चेटी (Chatty) के अनुसार "एक विधिवत् स्वीकृत प्रस्ताव करार का निर्माण करता है।"

पोलक के अनुसार, "करार किसी एक अथवा अधिक पक्षकारो के द्वारा दूसरे पक्षकार अथवा पक्षकारो के लिए किये जाने वाले किसी कार्य को ध्यान मे रखता है।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी वचन अथवा वचनों के परिणामस्वरूप करार का जन्म होता है। जब एक पक्षकार प्रस्ताव करता है और दूसरा पक्षकार उसे स्वीकार कर लेता है तो वह करार है।

उदाहरण—नरेश राकेश के समक्ष अपना घोड़ा 1000 रु. मे बेचने का प्रस्ताव रखता है और राकेश उसको स्वीकार कर लेता है तो यहाँ यह कहा जायेगा कि नरेश व राकेश के बीच करार हुआ है।

करार के आवश्यक तत्त्व

करार के निम्नलिखित आवश्यक तत्त्व होते है :

(1) करार में दो पक्षकारो का होना आवश्यक है अर्थात् एक प्रस्तावक तथा दूसरा स्वीकर्ता।

(2) प्रस्ताव की स्वीकृति पर ही करार पूरा होता है।

(3) वचनों का एक-दूसरे का प्रतिफल होना भी करार के लिए आवश्यक है, किन्तु,

---

1. Every Promise and every set of Promises, forming the consideration for each other, is an agreement." [Sec. 2 (e), The Indian Contract act 1872]

2. "An other duly accepted constitutes an agreement. —Pollock

समस्त अनुबन्ध करार होते हैं, किन्तु सब करार अनुबन्ध नही होते[1]

या

अनुबन्ध और करार में अन्तर

"समस्त अनुबन्ध करार हैं, किन्तु सब करार अनुबन्ध नही होते"

इस कथन की व्याख्या करने के पूर्व इसको निम्नलिखित दो भागो में विभाजित किया जा सकता है—

(1) समस्त अनुबन्ध करार है। (All contracts are agreements)

(2) समस्त करार अनुबन्ध नही है (All agreements are not contracts)

(1) समस्त अनुबन्ध करार है

समस्त अनुबन्ध करार है इसको समझने के पूर्व करार व अनुबन्ध को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम मे दी गयी परिभाषाओं को समझना आवश्यक है जो निम्न प्रकार हैं :—

करार से आशय (Meaning of agreement)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (e) के अनुसार, "प्रत्येक वचन एव वचनों का समूह जिसमें वचन एक-दूसरे के लिए प्रतिफल है करार कहलाता है।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी वचन अथवा वचनों के परिणामस्वरूप करार का जन्म होता है। जब एक पक्षकार प्रस्ताव करता है और दूसरा पक्षकार उसे स्वीकार कर लेता है तो वह करार है।

अनुबन्ध से आशय (Meaning of Contract)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (h) के अनुसार, "करार जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है अनुबन्ध कहलाता है।"[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि केवल वही करार अनुबन्ध होता है जिसको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सके। करार को राजनियम द्वारा तभी प्रवर्तनीय कराया जा सकता है जबकि उसमे निम्नलिखित तत्त्व विद्यमान हों :—

(1) करार

(2) करार का वैधानिक रूप से लागू होना।

(3) पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा।

(4) पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति।

(5) पक्षकारों मे अनुबन्ध करने की क्षमता।

(6) वैध प्रतिफल एवं उद्देश्य।

(7) करार इस अधिनियम द्वारा शून्य घोषित न हो।

(8) यदि आवश्यक हो तो करार लिखित, प्रमाणित व रजिस्टर्ड हो।

---

1. "All contract are agreements, but all agreements are not contract."
2. Every Promise and every set of Promises forming the consideration for each other, is an agreement." [Sec, 2 (e)]
3. "An agreement enforceable by Law is a Contract."

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुबन्ध के लिए करार आवश्यक है अर्थात् बिना करार के अनुबन्ध हो ही नही सकता। इसलिए करार को अनुबन्ध की आधारशिला माना जाता है जैसे—जहाँ धुँआ होगा वहाँ आग अवश्य ही होगी क्योंकि बिना आग के धुँआ का जन्म नही हो सकता। इसी प्रकार जहाँ अनुबन्ध होगा वहाँ करार अवश्य ही होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि सभी अनुबन्ध करार होते है।

(2) समस्त करार अनुबन्ध नहीं होते

करार का क्षेत्र अनुबन्ध की तुलना मे अधिक विस्तृत है। अत केवल वे करार अनुबन्ध बन सकते है जिनको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकें। जिन करारो को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है वे केवल करार ही बने रहते हैं, अनुबन्ध का रूप नही ले सकते। ये करार निम्नलिखित प्रकार के हो सकते है :—

(i) सामाजिक करार (Social agreements)—कुछ सामाजिक करार ऐसे होते है जिनको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता।

उदाहरण—अकबर ने एन्थोनी को अपने यहाँ रात्रि भोजन का निमन्त्रण दिया जिसको एन्थोनी ने स्वीकार कर लिया। एन्थोनी जरूरी कार्य होने के कारण अकबर के यहाँ देरी से पहुँचता है और उसको भोजन नही मिलता है। यह सामाजिक करार होने के कारण एन्थोनी असुविधा व कष्ट के लिए अकबर से क्षतिपूर्ति वसूल करने का अधिकारी नही है।

कुछ सामाजिक करार ऐसे होते है जिनका उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होता है। अगर ऐसा है तो ऐसे करार वैध होने के कारण अनुबन्ध बनते है। जैसे सन्तान को गोद लेने के करार, विवाह के करार आदि।

(ii) पारिवारिक करार (Family agreements)—पारिवारिक करार में कुछ ऐसे भी करार होते है जिनको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही करवाया जा सकता।

उदाहरण—*श्रीमती बालफोर बनाम बालफोर का मामला काफी महत्त्वपूर्ण है।* इंगलैण्ड के श्री बालफोर लंका मे कार्य करते थे। वे छुट्टियो में अपनी पत्नी को लेने इंगलैण्ड गये। पत्नी के अस्वस्थ होने के कारण वे उसे साथ नही ला सके। अतः वे 30 पौण्ड प्रतिमाह उसके पास इगलैण्ड भेजने का वायदा करके लंका लौट आये। लंका आने के बाद वायदे की रकम न भेज सके। रकम न प्राप्त होने पर श्रीमती बालफोर ने अपने पति पर मुकदमा कर दिया। न्यायाधीश लॉर्ड एटकिन्स ने निर्णय देते हुए कहा कि इस करार द्वारा वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न नही हुआ है। अतः यह करार राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है।

यदि किसी पारिवारिक करार मे पक्षकारों का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना रहा है तो ऐसी स्थिति मे वह करार वैध होने के कारण अनुबन्ध कहलायेगा जैसे पारिवारिक सम्पत्ति के बँटवारे का करार परिवार के सभी सदस्य करते है तो इस करार को वैध करार कहा जायेगा तथा राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होगा।

(iii) राजनीतिक करार (Political agreement)—राजनीतिक करार करने का उद्देश्य पक्षकारों में वैधानिक सम्बन्ध उत्पन्न करना नहीं होता है, अतः ये करार अनुबन्ध नहीं हो सकते।

उदाहरण—अकबर जो एक दल का मुख्य मन्त्री है उसने अन्य दल के एक विधायक को अपने दल में आने को कहा और यह भी कहा कि यदि वह विरोधी दल को छोड़ कर उनके दल में आ जायेगा तो उसे मंत्री बना दिया जायेगा। अमर ने दल तो बदल दिया किन्तु उसे मंत्री नही बनाया यहाँ अमर न्यायालय में क्षतिपूर्ति का दावा नही कर सकता है।

(iv) अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखने वाले पक्षकारों द्वारा किये गये करार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार निम्न व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नही रखते हैं :—

(क) अवयस्क (Minor)

(ख) अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति (Persons of unsound mind)

(ग) अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित व्यक्ति (Persons declared to be disqualified to contract)

अतः ऐसे व्यक्तियों द्वारा किये गये करार केवल मात्र करार होने के कारण अनुबन्ध नहीं बन सकते हैं।

(v) स्वतन्त्र सहमति के अभाव में किये गये करार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 14 के अनुसार सहमति स्वतन्त्र मानी जाती है यदि वह निम्न में से किसी भी कारण से प्रभावित नही है—

(क) उत्पीड़न (Coercion)	(धारा 15)
(ख) अनुचित प्रभाव (undue influence)	(धारा 16)
(ग) कपट (Fraud)	(धारा 17)
(घ) अन्यथा कथन (Misrepresentation)	(धारा 18)
(ङ) गलती (Mistake)	(धारा 20 से 22 तक)

स्वतन्त्र सहमति के अभाव में करार तो है, लेकिन राजनियम द्वारा प्रवर्तित नहीं होने के कारण अनुबन्ध नही हो सकता।

(iv) बिना प्रतिफल के करार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के प्रारम्भ में ही बताया गया है "कोई भी करार जो बिना प्रतिफल के है शून्य होता है।" (An agreement without consideration is void) धारा 25 के कुछ अपवादों को छोड़कर साधारणतः बिना प्रतिफल के करार केवल मात्र करार ही रहते है, अनुबन्ध नही रह पाते।

(vii) अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल के करार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार निम्नलिखित दशाओं में एक करार का प्रतिफल व उद्देश्य अवैधानिक माना जाता है।

(क) यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है ।

(ख) उद्देश्य और प्रतिफल ऐसा है कि यदि इसकी अनुमति दे दी जाये तो यह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा ।

(ग) प्रतिफल एवं उद्देश्य कपटपूर्ण है ।

(घ) यदि उससे किसी व्यक्ति अथवा सम्पत्ति को हानि पहुँचती हो ।

(ङ) न्यायालय उसे अनैतिक समझता है ।

(च) न्यायालय उसे लोक-नीति के विरुद्ध समझता हो ।

ऐसे करार भी अनुबन्ध का रूप नही ले सकते । इन्हे राजनियम के द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता, अतः ये सभी करार शून्य होते हैं ।

(viii) स्पष्ट रूप से शून्य घोषित करार—अनुबन्ध अधिनियम में निम्नलिखित करार स्पष्ट रूप से शून्य घोषित किए गए हैं .—

(क) अयोग्य पक्षकारो द्वारा किये गये करार ।	11
(ख) करार के आवश्यक तथ्य के विषय मे गलती ।	20
(ग) करार जिनका उद्देश्य अथवा प्रतिफल अवैधानिक है ।	23
(घ) आंशिक अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के करार	24
(ङ) बिना प्रतिफल वाले करार ।	25
(च) विवाह मे रुकावट डालने वाले करार ।	26
(छ) व्यापार में रुकावट डालने वाले करार ।	27
(ज) वैधानिक कार्यवाही मे रुकावट डालने वाले करार ।	128
(झ) अनिश्चित अर्थ वाले करार ।	29
(ण) बाजी लगाने के करार ।	30
(य) असम्भव कार्य करने के करार ।	56

ये करार मात्र करार ही रहते है, अनुबन्ध का रूप नहीं ले सकते ।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि केवल वे करार ही अनुबन्ध बनते हैं, जिन करारों मे वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्व पाये जाते है । अतः सभी अनुबन्ध करार होते हैं किन्तु सभी करार अनुबन्ध नही होते हैं ।

अनुबन्ध और करार में अन्तर

अन्तर का आधार	अनुबन्ध	करार
1 परिभाषा	भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (h) के अनुसार "अनुबन्ध एक ऐसा करार है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है ।	भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (e) के अनुसार "प्रत्येक वचन एव वचनों" का समूह जिसमें वचन एक दूसरे के लिए प्रतिफल है, करार कहलाता है ।"

अन्तर का आधार	अनुबन्ध	करार
2. क्षेत्र	इसका क्षेत्र करार की तुलना में सीमित होता है क्योंकि सभी करार अनुबन्ध का रूप नहीं ले सकते।	इसका क्षेत्र अनुबन्ध की तुलना में अधिक व्यापक है क्योंकि जो करार अनुबन्ध का रूप नहीं ले सकते, वे करार तो बने ही रहते हैं।
3. प्रकृति	अनुबन्ध की प्रकृति वैधानिक होती है।	इसकी प्रकृति वैधानिक तथा अवैधानिक दोनों ही प्रकार की हो सकती है।
4. सम्बन्ध	सभी अनुबन्ध करार होते हैं क्योंकि अनुबन्ध की उत्पत्ति करार से ही होती है।	सभी करार अनुबन्ध नहीं होते हैं क्योंकि करार की उत्पत्ति अनुबन्ध से नहीं होती।
5. प्रवर्तनीय	राजनियम द्वारा अनुबन्ध प्रवर्तनीय होता है।	राजनियम द्वारा करार प्रवर्तनीय हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है।
6. वैधानिक आवश्यकताएँ	वैध अनुबन्ध के लिए निम्नलिखित तत्त्वों का होना आवश्यक है :— (i) करार (ii) करार का वैधानिक रूप से लागू होना (iii) पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा (iv) पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता (v) पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति (vi) वैध प्रतिफल एवं उद्देश्य (vii) करार इस अधिनियम द्वारा शून्य घोषित न हो	करार के लिए केवल प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति ही आवश्यक है।

अन्तर का आधार	अनुबन्ध	करार
	(viii) यदि आवश्यक हो तो करार लिखित, प्रमाणित व रजिस्टर्ड हो ।	
7. दायित्व	दोनों पक्षकारों के अनुबन्ध के अन्तर्गत कुछ वैधानिक दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें पूरा करना आवश्यक है ।	जब तक करार वैध नहीं हो जाता तब तक उससे किसी पक्षकार पर दायित्व उत्पन्न नहीं होता ।

करार के प्रकार (Kinds of agreement)—करार कई प्रकार के होते हैं किन्तु अध्ययन की दृष्टि से इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(1) निष्पादन के आधार पर
(2) करार करने के ढ़ग के आधार पर
(3) वैधानिकता के आधार पर

(I) निष्पादन के आधार पर

करारों को निष्पादन के आधार पर दो भागो में विभाजित किया जा सकता है ।

(1) एक पक्षीय करार (Unilateral agreement)— वे करार जिनमें केवल किसी एक पक्षकार को ही अपने वचन का निष्पादन करना शेष है और दूसरे पक्षकार ने अपने वचन का निष्पादन कर दिया है तो ऐसा करार एक-पक्षीय करार कहलाता है ।

उदाहरण—जानी जनार्दन को 50 बोरे चावल 1 माह के लिए उधार बेचता है और चावल की सुपुर्दगी करार करते समय ही कर देता है ऐसी दशा में एक पक्षकार (जानी) अपने वचन का पालन कर देता है । अब केवल जनार्दन को अपने वचन का पालन करना रह जाता है ।

(2) द्वि-पक्षीय करार (Bilateral agreement)—द्वि-पक्षीय करार में दोनों ही पक्षकारों को अपने-अपने वचन का पालन करना शेष रहता है और वह प्रत्येक पक्षकार का वचन कहा जाता है ।

उदाहरण—जानी 50 बोरे चावल जनार्दन को बेचने का करार करता है । करार के अनुसार जानी चावल की सुपुर्दगी जनार्दन को एक माह के बाद करेगा और जनार्दन सुपुर्दगी के समय जानी को चावल के मूल्य का भुगतान करेगा । ऐसी दशा मे दोनों ही पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचनो का निष्पादन करना शेष है । और प्रत्येक पक्षकार का वचन दूसरे पक्षकार के वचन का प्रतिफल है ।

II करार करने के ढंग के आधार पर विभाजन

करार करने के ढंग के आधार पर करारों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(1) अभिव्यक्त करार (Express agreement) वे करार अभिव्यक्त करार होते हैं जो पक्षकारों द्वारा लिखित या मौखिक रूप से शब्दो के उच्चारण द्वारा किये जाते हैं ।

उदाहरण—प्रमित दिलीप से कहता है कि मैं तुम्हें अपनी गाय 400 रुपये में बेचना चाहता हूँ। दिलीप कहता है कि मैं खरीदने को तैयार हूँ प्रस्ताव एवं स्वीकृति दोनों ही यहाँ पर स्पष्ट है। यह अभिव्यक्त करार है।

(2) गर्भित करार (Implied agreement)—गर्भित करार उस करार को कहते हैं जिसमें पक्षकार कोई भी बात लिखकर या बोलकर साफ-साफ प्रकट नहीं करते बल्कि करार की बातें प्रस्तावक के विचार, कार्य करने के ढंग-व्यापारिक रीति-रिवाज तथा वर्तमान दशा को देखकर करार का होना समझना पड़ता है।

यदि विजय, जय के घोड़े को 500 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव करे तो जय इस प्रस्ताव की स्वीकृति अपने घोड़े को विजय के पास बिना कुछ कहे या लिखे हुए, केवल भेजकर भी दे सकता है इस तरह की स्वीकृति गर्भित स्वीकृति मानी जाती है।

III वैधानिकता के आधार

वैधानिकता के आधार पर करार निम्न प्रकार के हो सकते हैं :—

(1) वैध करार या अनुबन्ध (Valid agreement or Contract)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (i) के अनुसार, "जो करार राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है अनुबन्ध कहलाता है।" इस प्रकार जिस किसी करार को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करवाया जा सकता है वह वैध अनुबन्ध कहलाता है।

(2) शून्य करार या शून्य अनुबन्ध (Void agreement or Contract)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 के अनुसार, "वह करार जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है शून्य करार कहलाता है।" ऐसे करार का कोई वैधानिक अस्तित्व नहीं होता है फलतः इसे किसी भी प्रकार राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करवाने का अधिकार नहीं होता।

शून्य करार तथा शून्य अनुबन्ध में अन्तर

(i) प्रारम्भ से ही शून्य करार शून्य होते हैं इसके विपरीत शून्य अनुबन्ध प्रारम्भ में तो वैध होते हैं, परन्तु परिस्थितियों के कारण अनुबन्ध पूरा करना असम्भव हो जाता है और प्रवर्तित करने से राजनियम द्वारा रोक दिया जाता है।

(ii) अनुबन्ध का निर्माण शून्य करार में होता ही नहीं है इसके विपरीत शून्य अनुबन्ध की दशा में पहले अनुबन्ध का निर्माण अवश्य होता है तथा बाद में वह अनुबन्ध शून्य होता है।

अनुबन्ध अधिनियम मे निम्नलिखित करार स्पष्ट रूप से शून्य घोषित कर दिये गये हैं :—

(iii) शून्यकरणीय अनुबन्ध (Voidable Contracts)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (i) के अनुसार, "जब कोई करार एक पक्षकार या एक से अधिक पक्षकारों की इच्छा पर राजनियम द्वारा प्रवर्तित हो पर दूसरे पक्षकार अथवा पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय नहीं हो तो इसे शून्यकरणीय अनुबन्ध कहते है।"[1]

---

1. An agreement which is enforcealble by Laws at the option of one or more Parties there to, but not at the option of the other or others, is a voidabale contracts" [Sec. 2 (i)]

निम्नलिखित परिस्थितियों में से किसी एक परिस्थिति के अनुबन्ध को शून्यकरणीय ठहराने के लिये निम्न का होना आवश्यक है :—

(i) उत्पीड़न अथवा
(ii) अनुचित प्रभाव अथवा
(iii) कपट अथवा
(iv) अन्यथा कथन।

उदाहरण—अमरसिंह पूनमसिंह को पिस्तौल दिखाकर मार डालने की धमकी देता है और पूनमसिंह का मकान बहुत कम मूल्य पर खरीदने का अनुबन्ध कर लेता है तो ऐसी स्थिति में यह अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार पूनमसिंह की इच्छा पर शून्यकरणीय है, क्योंकि पूनमसिंह के साथ उत्पीड़न का प्रयोग किया गया है।

शून्यकरणीय अनुबन्ध का प्रभाव

(1) पीड़ित पक्षकार को ऐसे करार भंग करने का अधिकार होता है। पीड़ित पक्षकार को लाभ उठाने या न उठाने का उसे विकल्प होता है।

(2) दोषी पक्षकार से अनुबन्ध रद्द करने से होने से होने वाली क्षति-पूर्ति पीड़ित पक्षकार करवा सकता है।

(3) यदि किसी पक्षकार ने शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत कोई वादा प्राप्त किया है तो उसे दूसरे पक्षकार को वापस लौटाना पड़ेगा।

(4) तीसरे पक्षकार को शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत क्रय की गई वस्तुओं पर अच्छा स्वामित्व प्राप्त होता है और वह क्रय किये माल को वापस देने के लिए बाध्य नहीं होता है।

शून्य और शून्यकरणीय करारों या अनुबन्धों में अन्तर

(Distinction between Void and Voidable Contract)

अन्तर का आधार	शून्य करार या अनुबन्ध	शून्यकरणीय करार या अनुबन्ध
1. परिभाषा	भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (g) के अनुसार "वह करार जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है शून्य करार कहलाता है।	भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (j) के अनुसार, "एक अनुबन्ध जिसका राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होना बन्द हो जाता है उस समय वह शून्य हो जाता है जिस समय वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हो पाता।
2. वैधता की अवधि	शून्य करार आरम्भ से अन्त तक शून्य रहता है।	शून्यकरणीय अनुबन्ध प्रारम्भ से वैधानिक होता है जब तक पीड़ित पक्ष इसे शून्य नहीं कर देता है।

अन्तर का आधार	शून्य करार या अनुबन्ध	शून्यकरणीय करार या अनुबन्ध
3. आधार	अनुबन्ध अधिनियम में निम्नलिखित करार स्पष्ट रूप से शून्य घोषित कर दिये हैं— (क) अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये करार। (ख) करार के आवश्यक तथ्य के विषय में गलती। (ग) करार जिनका उद्देश्य अथवा प्रतिफल अवैधानिक है। (घ) आंशिक अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के करार। (ङ) बिना प्रतिफल वाले करार। (च) विवाह में रुकावट डालने वाले करार। (छ) व्यापार में रुकावट डालने वाले करार। (ज) वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले करार। (झ) अनिश्चित अर्थ वाले करार। (ञ) बाजी लगाने वाले करार। (प) असम्भव कार्य करने वाले करार।	शून्यकरणीय अनुबन्ध तब कहलाता है जबकि निम्नलिखित में से एक परिस्थिति उसमें अवश्य विद्यमान हो। (i) उत्पीड़न अथवा (ii) अनुचित प्रभाव अथवा। (iii) कपट अथवा (iv) अन्यथा कथन।
4. पक्षों की इच्छा	शून्य अनुबन्ध दोनों पक्षकारों में से किसी की भी इच्छा पर राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होते।	यदि पीड़ित पक्षकार चाहे तो शून्यकरणीय अनुबन्ध को वैध अनुबन्ध का रूप दे सकता है।
5. क्षतिपूर्ति का अधिकार	किसी भी पक्षकार को शून्य अनुबन्ध के अन्तर्गत क्षति-पूर्ति की माग करने का अधिकार नहीं होता है।	पीड़ित पक्षकार को शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है यदि वह अनुबन्ध को रद्द करता है।

अन्तर का आधार	शून्य करार या अनुबन्ध	शून्य करणीय करार याअनुबन्ध
6. मान्यता	शून्य अनुबन्ध को न्यायालय द्वारा मान्यता नही मिलती है ।	पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर राजनियम द्वारा इसमें मान्यता प्राप्त की जा सकती है ।
7. अधिकार का हस्तांतरण	तीसरे पक्षकार को शून्य अनुवन्ध की दशा मे अच्छा अधिकार प्राप्त नही होता है ।	तीसरे पक्षकार को शून्य-करणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अच्छा अधिकार मिल जाता है । यदि उसने मूल्य चुका कर वस्तु को सद्भावना से प्राप्त किया है ।
8. स्वरूप	एक शून्य अनुबन्ध सदैव शून्य अनुबन्ध बना रहता है इसका स्वरूप कभी नही बदलता ।	शून्यकरणीय अनुबन्ध वैध तथा शून्य दोनों में से किसी भी प्रकार के अनुबन्ध का रूप ले सकता है । अर्थात् इसका स्वरूप बदल सकता है ।

(4) **अवैध करार (Illegal agreements)**—कुछ करार अनैतिक होने के कारण अवैध माने जाते हैं । भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार कोई करार तभी अवैधानिक होता है जबकि—

(1) यदि वह करार राजनियम द्वारा वर्जित है अथवा

(2) वह करार ऐसा है कि यदि इसकी अनुमति दे दी जाये तो यह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा अथवा

(3) यदि वह करार कपटपूर्ण है अथवा

(4) यदि उस करार से किसी व्यक्ति अथवा सम्पत्ति को हानि पहुँचती है अथवा

(5) वह करार अनैतिक है अथवा

(6) वह करार लोकनीति के विरुद्ध है ।

इस प्रकार उपरोक्त प्रकार का कोई भी करार अवैध होता है ।

यदि अवैध करार का एक भाग तो वैध होता है लेकिन दूसरा भाग अवैध होता है तो ऐसी स्थिति मे दो भागों को अलग-अलग किया जा सकता है । करार का अवैध भाग शून्य मान लिया जाता है और वैध भाग को राजनियम द्वारा प्रवर्तित करवाया जा सकता है ।

यदि अवैध करार का विभाजन नही किया जा सकता है तो सम्पूर्ण करार अप्रवर्तनीय होता है । एक अवैध करार के सम्बन्ध में यदि मूल व्यवहार अवैध है तो समानान्तर व्यवहार भी अप्रवर्तनीय होगा ।

उदाहरण—(i) मोलाबक्ष बनाम गुलिया का मामला महत्त्वपूर्ण है । एक औरत ने तांगा इस आधार पर किराऐ पर लिया कि तांगे वाला रोज शाम को उस स्त्री को पार्क में ले जायेगा और थोड़े समय पश्चात् उसे वापस भी लायेगा और प्रत्येक तीन माह बाद

किराया दे दिया जायेगा। वास्तव में वह स्त्री एक वैश्या थी और लोगों को आकर्षित करने के लिए सदैव बाग में जाती थी। तीन माह के बाद उस स्त्री ने तांगे वाले को भाड़ा देने से मना कर दिया। न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया गया। निर्णय दिया गया कि उसका *तांगा अनैतिक कार्य के लिए प्रस्तुत किया गया अतः उसे धनराशि प्राप्त करने का अधिकार नहीं है।*

(ii) सुनील ने अनिल को जयपुर से जोधपुर कपड़े की 400 गांठे पहुंचाने के लिए (10 रुपये प्रति गांठ के हिसाब से) करार किया। सुनील जानता है कि इनमें 100 गांठें तस्करी द्वारा लाई हुई हैं। उन गांठों को जोधपुर पहुंचाने पर यदि सुनील पारिश्रमिक का भुगतान नही करता तो केवल 300 गांठो के पारिश्रमिक 3000 रुपये के लिए ही वाद राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय है।

शून्य और अवैध करार में अन्तर

अन्तर का आधार	शून्य करार	अवैध करार
1. क्षेत्र	सभी शून्य करार अवैध नही होते क्योंकि शून्य करारो का क्षेत्र अवैध करारो की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है।	सभी अवैध करार शून्य होते है।
2. परिणाम	पक्षकारो को शून्य करार करने पर कोई दण्ड नही मिलता है।	पक्षकारो को अवैध करारो के अवैध कार्यों के लिए दण्ड मिल सकता है।
3. प्रभाव	सभी शून्य करार आरम्भ से ही शून्य हों यह आवश्यक नही हैं।	अवैध करार प्रारम्भ से ही शून्य होते है।
4. कारण	शून्य करार होने के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे प्रतिफल का अभाव, अनुबन्ध के पक्षकारो में अनुबन्ध करने की अयोग्यता आदि।	अवैध करार तभी होता है। जबकि करार का उद्देश्य तथा प्रतिफल अवैधानिक हो।
5. समानान्तर व्यवहार	समानान्तर व्यवहारों पर कोई प्रभाव नही पड़ता है अर्थात् वे राजनियम द्वारा प्रवर्तित हो सकते है।	समानान्तर व्यवहारो का अवैध करारों पर प्रभाव पड़ता है। समानान्तर व्यवहारों को राजनियम द्वारा प्रवर्तित नही कराया जा सकता है।

(5) अप्रवर्तनीय करार (unenforceable agreement)—अप्रवर्तनीय करार एक ऐसा करार है जो कि इस दृष्टिकोण से वैधानिक है कि उसके अन्तर्गत अधिकार एवं दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं और जिन्हें राजनियम मान्यता देता है, किन्तु वे कुछ तकनीकी

दोषों के कारण न्यायालय मे प्रवर्तनीय नही हो सकते। जैसे लिमिटेशन अधिनियम के अधीन अवधि व्यतीत हो जाना, रजिस्ट्री न होना आदि।

कुछ दशाओ मे राजनियम उन दोषों को दूर करने की आज्ञा प्रदान करता है और यदि इस प्रकार के दोष दूर कर दिये जाते हैं तो अनुबन्ध प्रवर्तनीय हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "समस्त अनुबन्ध करार होते हैं, किन्तु समस्त करार अनुबन्ध नही होते।" कथन की व्याख्या कीजिये।

   "All contract are agreement but all agreements are not contract."

   (राज. वि. वि. 1981, उदयपुर वि. वि. 1981, जोधपुर वि. वि. 1979)

2. निम्न में अन्तर स्पष्ट कीजिये—

   (i) शून्य अनुबन्ध तथा शून्य करार।

   (ii) शून्य करार तथा शून्यकरणीय करार।

   (iii) शून्य करार तथा अवैध करार।

   (जोधपुर वि. वि. 1984)

□□□

3

करार-प्रस्ताव तथा स्वीकृति

(Proposal or offer and Acceptance)

विशेष सामग्री—प्रस्ताव की परिभाषा, प्रस्ताव के लक्षण या वैधानिक नियम, प्रस्ताव की स्वीकृति सम्बन्धी नियम, अभ्यास के लिए प्रश्न।

प्रस्ताव की परिभाषा

(Definition of a Proposal)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (A) के अनुसार "जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से किसी कार्य को करने अथवा न करने के विषय में अपना विचार इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा न करने के विषय मे प्राप्त हो, तो यह कहा जाता है कि पहले व्यक्ति ने दूसरे के सामने प्रस्ताव रखा।"[1]

चेट्टी (Chetty) के अनुसार, "प्रस्ताव किसी कार्य को करने या न करने का वचन है।"

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (c) के अनुसार "जो व्यक्ति प्रस्ताव रखता है उसे प्रस्तावक या वचनदाता कहते हैं और जिस व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता है उसे प्रस्तावगृहीता या वचनगृहीता कहते है।"[2]

प्रस्ताव के लक्षण या प्रस्ताव के सम्बन्ध में वैधानिक नियम

(Characterstics or elements of proposal or Legal Rules)

प्रस्ताव के निम्न लक्षण हैं :

(1) **दो पक्षकारों का होना—(Theremust be two parties)**–प्रस्ताव के लिए कम से कम दो पक्षकारो का होना आवश्यक है। **फौकनर बनाम लोवे (Faulkener V/s Lowe)** के विवाद में न्यायाधीश ने कहा था कि "कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों के सम्बन्ध में

प्रस्ताव के लक्षण या वैधानिक नियम
1. दो पक्षकारों का होना
2. प्रस्ताव किसी कार्य को करने के सम्बन्ध में हो सकता है।
3. प्रस्ताव किसी कार्य को न करने के सम्बन्ध मे हो सकता है।
4. प्रस्ताव का उद्देश्य स्वीकृति प्राप्त करना होता है।

1 When one Person signifies to another his willingness to do or to abstain from doing any thing with a view to obtaining the assent of that to such act or abstinence, the is said to made a proposal [sec. 2 (a)]

2. "The person making the proposal is colled the "promis,, or,, and the person accepting the proposal is called the promisee" [sec, 2(c)]

अपने ही प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता है" (No man can in his own right, be under an obligation to himself")

अतः प्रस्ताव के लिए दो पक्षकारों का होना नितान्त आवश्यक है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (c) के अनुसार "जो व्यक्ति प्रस्ताव रखता है उसे प्रस्तावक या वचनदाता कहते हैं और जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया जाता है उसे वचनगृहीता कहा जाता है।"

(2) प्रस्ताव किसी कार्य को करने के सम्बन्ध में हो सकता है (It may be to do any thing)—

5. प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिये ।
6. प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिये ।
7. प्रस्ताव का संसूचन होना आवश्यक है।
8. प्रस्ताव अभिव्यक्त या गर्भित हो सकता है।
9. प्रस्ताव सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है।
10. प्रस्ताव विनय के रूप में हो, आज्ञा के रूप में नहीं।
11. प्रस्ताव के साथ प्रस्ताव की विशेष शर्तों का संसूचन भी आवश्यक है।
12. प्रस्ताव "प्रस्ताव करने की इच्छा" मात्र न हो।
14. प्रस्ताव "प्रस्ताव का निमन्त्रण" मात्र न हो।

प्रस्ताव में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी कार्य को करने का प्रस्ताव कर सकता है।

उदाहरण—मनोहर अपना मकान हरमोहन को 1000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है यहां मनोहर किसी कार्य को करने का प्रस्ताव करता है।

(3) प्रस्ताव किसी कार्य को न करने के सम्बन्ध में हो सकता है (It may be to abstain from doing any thing)— प्रस्ताव किसी कार्य को नहीं करने के सम्बन्ध में भी हो सकता है।

उदाहरण—रमेश, महेश से कहता है कि यदि तुम यह दुकान न लो तो मैं तुम्हें 200 रुपये देने को तैयार हूं। यहां रमेश ने महेश के सम्मुख कोई कार्य न करने की इच्छा प्रकट की है।

(4) प्रस्तावक का उद्देश्य स्वीकृति प्राप्त करना होना चाहिए—प्रस्तावक को दूसरे पक्षकार की स्वीकृति पाने के उद्देश्य से अपनी इच्छा प्रकट करनी चाहिये। यदि प्रस्ताव दूसरे पक्षकार की स्वीकृति प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं किया जाता है तो वह प्रस्ताव नहीं है।

(5) प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिये—प्रस्ताव ऐसा होना चाहिये जो दोनों पक्षकारों के बीच वैधानिक सम्बन्ध उत्पन्न करे। यदि प्रस्ताव ऐसा है कि उससे पक्षकारों के मध्य किसी प्रकार का वैधानिक सम्बन्ध उत्पन्न नहीं होता है, तब ऐसा प्रस्ताव वैध अनुबन्ध का निर्माण नहीं कर सकता है।

उदाहरण—सुनील, सुशील को सिनेमा दिखाने का प्रस्ताव करता है और सुशील उसको स्वीकार कर लेता है यहाँ सुनील और सुशील में वैधानिक दायित्व की उत्पत्ति न होने के कारण वैध अनुबन्ध का निर्माण नहीं होता।

(6) प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिये—प्रस्ताव की सभी शर्तें स्पष्ट एवं निश्चित होनी चाहियें। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में लिखा है कि यदि अनुबन्ध का अर्थ स्पष्ट नही है अथवा अर्थ निश्चित करना सम्भव नही है, तो ऐसा अनुबन्ध शून्य होता है। अनिश्चित प्रस्ताव को राजनियम के अनुसार प्रस्ताव नहीं माना जाता है।

उदाहरण—*जानी, जनार्दन से कहता है कि मैं आपका घोड़ा 500-700 रुपये में* खरीदने को तैयार हूँ। प्रस्ताव की शर्तें यहाँ स्पष्ट नहीं होने के कारण जनार्दन की स्वीकृति प्रस्ताव को वैध अनुबन्ध में प्रवर्तित नही करेगी।

(7) प्रस्ताव का संसूचन होना आवश्यक है (Communication of the proposal) उस व्यक्ति तक प्रस्ताव अवश्य पहुँच जाना चाहिये जिसके प्रति वह किया गया है। प्रस्ताव की जानकारी के बिना जब कोई व्यक्ति स्वीकृति दे देता है, तो उसे स्वीकृति नही माना जाता। यह नियम चाहे प्रस्ताव सामान्य हो या विशिष्ट दोनो पर ही समान रूप से लागू होता है।

उदाहरण—लालमन शुक्ल बनाम गौरीदत्त का मामला महत्वपूर्ण है। लालमन शुक्ल गौरीदत्त के मुनीम थे। दुर्भाग्यवश गौरीदत्त का भतीजा कहीं गायब हो गया। गौरीदत्त ने लालमन शुक्ल को उस लड़के की खोज मे हरिद्वार भेजा। किराये व अन्य खर्च के लिए उन्हें रुपया दे दिया गया इसके बाद गौरीदत्त ने इश्तिहार तथा पर्चे द्वारा विज्ञापन करवाया जो उसके भतीजे को ढूँढकर लायेगा उसे 501 रु. के इनाम की घोषणा की। इस इनाम की घोषणा की जानकारी होने से पूर्व ही उसने बच्चे को खोज कर गौरीदत्त को सौंप दिया। बाद में लालमन को इनाम की घोषणा की जानकारी मिली तो उसने गौरीदत्त से इनाम मांगा। मना करने पर उसने गौरीदत्त के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर दिया।

न्यायाधीश बनर्जी ने निर्णय दिया कि लालमन इनाम के अधिकारी नही हैं क्योंकि लालमन को प्रस्ताव की जानकारी नही थी अतः वह उसको स्वीकार नहीं कर सकता है।

(8) प्रस्ताव अभिव्यक्त या गर्भित हो सकता है (Proposal can be express or Implied)—जब प्रस्ताव लिखित या मौखिक रूप मे शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है तो उसे अभिव्यक्त प्रस्ताव कहा जाता है। जब प्रस्तावक की इच्छा उसके व्यवहार या परिस्थितियों द्वारा समझी जाये, तो ऐसा प्रस्ताव गर्भित प्रस्ताव कहा जाता है। इस प्रकार प्रस्ताव अभिव्यक्त हो सकता अथवा गर्भित भी हो सकता है।

उदाहरण—(1) महेश अपनी गाय रमेश को 1000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करे तो इसे अभिव्यक्त प्रस्ताव कहा जायेगा।

(2) हरि रेल्वे स्टेशन से शास्त्रीनगर जाना चाहता है। हरि उस मार्ग की किसी सिटी बस को रोकने के लिए हाथ का इशारा करता है तो इसे गर्भित प्रस्ताव कहा जायेगा।

(9) प्रस्ताव सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है (Proposal may be general or specific)—जब कोई प्रस्ताव किसी विशेष व्यक्ति या किन्ही विशिष्ट व्यक्तियों के

लिए ही किया जाता है तो वह प्रस्ताव विशिष्ट प्रस्ताव कहा जाता है। इसके विपरीत सामान्य प्रस्ताव किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को न किया जाकर सामान्य जनता या व्यक्तियों के अनिश्चित समूह के सामने रखा जाता है। यह सामान्य प्रस्ताव कहलाता है।

उदाहरण—कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी (Carlill V/s Carbolic Smoke Ball Co.)—का मामला महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में प्रतिवादी कम्पनी ने यह विज्ञापन किया कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो इस कम्पनी द्वारा निर्मित दवा "स्मोक बाल" का प्रयोग उनके आदेशों के अनुसार करेगा और इसके उपरान्त भी इन्फ्लूएन्जा या जुकाम का शिकार होगा तो कम्पनी उस व्यक्ति को 100 पौण्ड इनाम देगी। श्रीमती कार्लिल ने विज्ञापन के आधार पर, एक स्मोक बॉल खरीदा और उसका प्रयोग आदेशों के अनुसार किया परन्तु फिर भी इन्फ्लूएंजा से पीडित हो गई। इस पर श्रीमती कार्लिल ने कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी पर इनाम पाने के लिए वाद प्रस्तुत किया।

न्यायाधीश हाकिन्स (Hawkins) ने निर्णय दिया कि कम्पनी द्वारा किया गया विज्ञापन सामान्य प्रस्ताव था और उसे कोई भी व्यक्ति या व्यक्तिगण उसे स्वीकार कर सकते थे। श्रीमती कार्लिल ने प्रस्ताव में दी गई शर्तों का पालन किया प्रस्ताव को *स्वीकार किया और इस प्रकार कम्पनी व कार्लिल के बीच अनुबन्ध का निर्माण* हुआ। श्रीमती कार्लिल 100 पौण्ड पाने की अधिकारिणी हैं।

(10) प्रस्ताव विनय के रूप में हो, आज्ञा के रूप में नहीं (Proposal should be in the shape of a request and not an order)—प्रस्ताव आज्ञा के रूप मे न होकर विनय के रूप में होना चाहिए। प्रस्तावक प्रस्ताव को अस्वीकार करने की कोई शर्त निश्चित नही कर सकता है।

उदाहरण—रहीम अपने दोस्त करीम को लिखता है कि "मैं अपना मकान 20,000 रु. मे बेचने को तैयार हूँ। यदि तुम्हारी ओर से मंगलवार तक कोई उत्तर नही मिला तो मैं यह समझूंगा कि तुमने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। "यहाँ करीम द्वारा प्रस्ताव का उत्तर नही भेजने से रहीम और करीम के बीच किसी भी प्रकार का अनुबन्ध उत्पन्न नही होता है।

(11) प्रस्ताव के साथ प्रस्ताव की विशेष शर्तों का संसूचन भी आवश्यक है (The special terms of proposal must be communicated)—प्रस्तावक द्वारा प्रस्ताव की विशेष शर्तें प्रस्ताव के साथ बताना आवश्यक है। यदि प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद प्रस्ताव की शर्तों की जानकारी होती है तो स्वीकर्ता पर ये शर्तें लागू नही होंगी।

उदाहरण—गोविन्द और रेखा विवाह के बाद हनीमून मनाने काश्मीर गये। होटल के मालिक ने कमरा देते समय किसी प्रकार की शर्त नही रखी और किसी प्रकार की शर्त काउन्टर पर भी नही टंगी हुई थी। कमरे में प्रवेश करते ही वे दोनो कमरे मे लिखी इस शर्त को पढते है कि "ग्राहक का माल खो जाने पर होटल के मालिक की कोई जिम्मेदारी नही होगी।" गोविन्द का कमरे मे से कुछ सामान खो जाता है। प्रस्ताव की शर्त का संसूचन प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद हुआ है। अतः न्यायालय होटल मालिक को माल खो जाने का जिम्मेदार ठहरायेगा।

(12) प्रस्ताव "प्रस्ताव करने की इच्छा" मात्र न हो (Proposal should not be mere 'Intention to proposal')— प्रस्ताव करने की इच्छा की घोषणा करना, वास्तव में प्रस्ताव नहीं है। अतः ऐसी घोषणा की स्वीकृति भी करार का रूप धारण नहीं कर सकती।

इस सिद्धान्त को हैरिस बनाम निकरसन के विवाद में स्वीकार किया गया है। इस मामले में प्रतिवादी ने कुछ वस्तुएँ लन्दन से दूर एक निश्चित स्थान पर नीलाम द्वारा विक्रय करने का विज्ञापन किया। विज्ञापन के आधार पर वादी लन्दन से उस निश्चित स्थान पर पहुँचा और वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि वह नीलाम रद्द कर दिया गया है। वादी ने प्रतिवादी पर करार भंग करने के लिए वाद चलाया।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रतिवादी ने विज्ञापन के द्वारा केवल प्रस्ताव करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी अतः ऐसी घोषणा की स्वीकृति करार को जन्म नहीं दे सकती है।

इसी प्रकार दो व्यक्तियों के दौरान वार्तालाप में यदि एक व्यक्ति अपनी किसी इच्छा को प्रकट करता है तो वह इच्छा प्रस्ताव नहीं हो सकती।

(13) प्रस्ताव "प्रस्ताव का मात्र निमन्त्रण" न हो (Proposal should not be a mere Invitation to offer)—प्रस्ताव और प्रस्ताव के निमन्त्रण में अन्तर होता है। प्रस्ताव को स्वयं प्रस्तावक करता है, जबकि प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रस्ताव करने के लिए प्रेरित करता है।

प्रस्ताव तथा प्रस्ताव करने के निमन्त्रण में अन्तर

क्र. सं.	अन्तर का आधार	प्रस्ताव	प्रस्ताव करने का निमन्त्रण
1.	उद्देश्य	प्रस्ताव पक्षकार को उत्तरदायी बनाने के उद्देश्य से किया जाता है।	इसका उद्देश्य पक्षकार को उत्तरदायी बनाना नहीं होता है।
2.	करार	इसमें करार की क्षमता होती है।	इसमें करार की क्षमता नहीं होती है।
3.	स्वरूप	प्रारम्भिक बातचीत के रूप में नहीं होता है।	यह प्रारम्भिक बातचीत के रूप में होता है।
4.	स्वीकृति-योग्यता	इसमें स्वीकृति-योग्यता होती है।	इसमें स्वीकृति-योग्यता नहीं होती है।
5.	स्वीकृति का प्रभाव	प्रस्ताव की स्वीकृति से पक्षकारों के मध्य दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं।	इसमें स्वीकृति से मध्य दायित्व उत्पन्न नहीं होते हैं।

विभिन्न महत्त्वपूर्ण मामलों के आधार पर यह निश्चय किया जा चुका है कि निम्नलिखित प्रस्ताव नहीं है, बल्कि प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है।

(i) टेण्डर के लिए विज्ञापन—वस्तुएँ खरीदने या बेचने के लिए या किसी कार्य को पूरा करने के लिए टेण्डर मांगना तो टेण्डर मांगने वाले पक्षकार की ओर से कोई प्रस्ताव नही होता बल्कि विक्रेताओं, क्रेताओं और ठेकेदारों को प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण मात्र है।

उदाहरण—सन्त कुमार अपनी कार नीलाम द्वारा बेचने का एक विज्ञापन राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित करवाता है। इसे प्रस्ताव नही बल्कि प्रस्ताव का निमन्त्रण कहा जायेगा।

(ii) बीमा के प्रस्ताव—बीमा कम्पनी द्वारा दिये गये प्रस्ताव-पत्र वास्तव में बीमा कराने वाले व्यक्ति को प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण है, जिसको बीमा कम्पनी स्वीकार करने या न करने के लिए स्वतन्त्र है।

उदाहरण—लोकेश ने अपनी मोटर का बीमा बीमा कम्पनी से करवाया और कम्पनी द्वारा दिये गये बीमा फॉर्म पर मोटर सम्बन्धी विवरण भर कर दे दिये। कम्पनी द्वारा पॉलिसी भी निर्गमित कर दी गई। किन्तु लोकेश ने पहली किस्त प्रीमियम भी नही दी। कम्पनी द्वारा लोकेश से प्रीमियम दिलाने के लिए वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुबन्ध तब पूरा होता जब लोकेश द्वारा प्रीमियम दे दिया गया होता और कम्पनी उसे स्वीकार कर लेती।

***(iii) सूची-पत्र**—मूल्य सूचियाँ या अन्य सूचियाँ* छपवाना और वस्तु के ऊपर मूल्य चिपकाकर दुकानो पर टाँगना या खिड़कियों में सजाना तो राजनियमानुसार यह नहीं माना जाता है कि वह उन वस्तुओं को बेचने का प्रस्ताव है वह तो क्रेता के लिए प्रस्ताव करने का मात्र निमन्त्रण है।

उदाहरण—राणा ने राका की दुकान पर एक वस्तु देखी जिस पर 15 रुपये लिखे हुए थे। राणा, राका को 15 रुपये देता है और वह वस्तु देने के लिए कहता है। राका कहता है कि वह वस्तु विक्रय के लिए नही है। राका इस वस्तु को 15 रुपये में बेचने के लिए बाध्य नहीं है इसका कारण यह है कि वस्तु पर लिखा हुआ केवल प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है। राणा की ओर से वह प्रस्ताव है जिसको राका स्वीकार भी कर सकता है और नही भी।

(iv) पूछताछ का उत्तर—वस्तु के मूल्य के सम्बन्ध में पूछताछ का उत्तर देने से ही उन मूल्यों पर बेचने का प्रस्ताव नही होता है। क्योंकि यह भी प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है वास्तव में प्रस्ताव नही है।

उदाहरण—**हार्वे बनाम फेसी** का विवाद महत्त्वपूर्ण है। हार्वे ने फेसी से तार द्वारा पूछा "क्या तुम मुझे व्हाईट-एकर बेचोगे ? न्यूनतम मूल्य बतलाओ।" फेसी ने तार द्वारा केवल व्हाट-एकर का न्यूनतम मूल्य 900 पौण्ड बताया फिर हार्वे ने तार द्वारा उत्तर दिया कि मैं 900 पौण्ड मूल्य पर खरीदने को तैयार हूँ अपने अधिकार पत्र भेजो। हार्वे

द्वारा उत्तर न दिये जाने पर फेसी ने अनुबन्ध-भंग के लिए वाद प्रस्तुत किया। फेसी ने हार्वे के केवल एक प्रश्न का उत्तर दिया था तथा बेचने के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि फेसी द्वारा दिया गया उत्तर पूछताछ के रूप में ही था यह प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण मात्र था।

(v) कम्पनी का प्रविवरण—जब कोई कम्पनी अपना प्रविवरण प्रकाशित करती है, तब वह उसके द्वारा अपने अंशों को निश्चित मूल्य पर बेचने का प्रस्ताव नहीं करती है बल्कि वह तो जनता को निमन्त्रित करती है। यदि वह प्रविवरण के आधार पर कम्पनी से प्रभावित हो तो वह कम्पनी के अंशों को क्रय करने के लिए कम्पनी के पास प्रस्ताव भेजे। कम्पनी अंशों के आवंटन द्वारा इसको स्वीकार भी कर सकती है और नही भी।

(vi) सस्ती चीजें बेचने का विज्ञापन—कोई व्यवसायी यदि अपनी वस्तुओं को सस्ती दर पर बेचने की घोषणा करता है तो इसे भी प्रस्ताव न मानकर प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण माना जाता है।

(vii) रेलवे की समय-सारणी—रेलवे की समय-सारणी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए जनता को प्रस्ताव नहीं है, वरन् प्रस्ताव करने का निमन्त्रण है।

प्रस्ताव की स्वीकृति सम्बन्धी नियम (Acceptance of proposal)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (B) के अनुसार—जब वह व्यक्ति जिसके सामने प्रस्ताव किया गया है उस पर अपनी सहमति दे देता है, तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है।[1]

प्रस्ताव जब स्वीकृत हो जाता है, तो वचन बन जाता है।

इस परिभाषा से निम्नलिखित दो बातें स्पष्ट होती हैं :—

(1) जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है केवल वही व्यक्ति स्वीकृति दे सकता है, अन्य कोई व्यक्ति नहीं।

(2) प्रस्ताव की स्वीकृति हो जाने पर ही वचन बन पाता है अतः एक अनुबन्ध के लिए स्वीकृति अति आवश्यक है।

स्वीकृति सम्बन्धी नियम
(Legal Rules as to Acceptance)

(1) प्रस्ताव की स्वीकृति—उसी व्यक्ति द्वारा हो सकती है जिसको प्रस्ताव किया गया है। (Proposal be accepted by the person to whom it is made)—प्रस्ताव को केवल वही व्यक्ति स्वीकार कर सकता है जिसके सम्मुख प्रस्ताव किया गया है। किन्तु सामान्य प्रस्ताव कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता है।

---

1. When the person to whom the Proposal is made Signifies his assent there to, the proposal is said to be accepted. A proposal when accepted becomes a promise." [Sec. 2 (b)]

उदाहरण—बोल्टन बनाम जोन्स (Boulton V/s Jones) का मामला उल्लेखनीय है। एक व्यापारी ने अपना व्यापार अपने मैनेजर बोल्टन को बेच दिया इसकी सूचना अपने ग्राहकों को नही दी। व्यापार बेचा उसी दिन शाम को एक ग्राहक जोन्स ने जो कि पहले ही से मूल व्यापारी से व्यापार करता था, कुछ वस्तुएँ खरीदने के लिए व्यापार के पूर्व मूल स्वामी के व्यक्तिगत नाम से एक आर्डर भेजा। व्यापार के नये स्वामी बोल्टन ने आदेश का पालन करते हुये माल भेज दिया और इस बात को स्पष्ट कही कि व्यापार का स्वामित्व बदल गया है। यहाँ इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया कि व्यापार का स्वामित्व बदल गया है। यहाँ प्रस्ताव पुराने स्वामी के सम्मुख रखा गया था बोल्टन के सामने नही अत. न्यायालय ने निर्णय दिया कि बोल्टन को जोन्स से मूल्य वसूल करने का का अधिकार नही है।

(2) स्वीकृति पूर्ण एवं शर्त-रहित होनी चाहिए—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 7 (1) के अनुसार स्वीकृति पूर्ण तथा शर्त रहित होनी चाहिये। स्वीकृति प्रस्ताव की शर्तों के अनुसार होनी चाहिये क्योंकि प्रस्ताव से स्वीकृति भिन्न होने पर स्वीकृति एक विपरीत प्रस्ताव बन जाती है और उसकी स्वीकृति उस समय तक नही मानी जाती है, जब तक मूल प्रस्तावक द्वारा वह स्वीकृत न हो जाय।

स्वीकृति सम्बन्धी नियम

1. प्रस्ताव की स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा हो सकती है जिसको प्रस्ताव किया गया है।
2. स्वीकृति पूर्ण एवं शर्त-रहित होनी चाहिये।
3. स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा निश्चित किये ढंग से होनी चाहिये।
4. स्वीकृति अभिव्यक्त अथवा गर्भित हो सकती है।
5. स्वीकृति निर्धारित अवधि मे होनी चाहिये।
6. प्रस्ताव जाने बिना स्वीकृति देना व्यर्थ है।
7. स्वीकृति का संसूचन होना चाहिये।
8. प्रस्ताव की शर्तों का निष्पादन करके स्वीकृति।
9. प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त या प्रतिसंहरण होने से पहले होनी चाहिये।
10. एक बार अस्वीकृत प्रस्ताव पुनः प्रस्तुत किये जाने पर ही स्वीकारा जा सकता है।
11. मौन रहना स्वीकृति का लक्षण नहीं है।
12. स्वीकृति का संसूचन अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही होना चाहिये।
13. वचन पूरा करने के उद्देश्य से स्वीकृति दी जानी चाहिये।

उदाहरण—इस सम्बन्ध में जॉर्डन बनाम नार्टन का मामला महत्वपूर्ण है। नार्टन ने जॉर्डन की घोड़ी निश्चित मूल्य पर तथा इस शर्त पर खरीद ली कि वह जोतने पर ठीक व शान्त स्वभाव की होगी। जॉर्डन ने निश्चित मूल्य को स्वीकार कर लिया किन्तु घोड़ी जोतने पर ठीक और शान्त स्वभाव की होने की शर्त के बदले उसने यह आश्वासन दिया कि घोड़ी स्वस्थ है तथा दुहरे साज के साथ जोती जाने पर शान्त रहती है। निर्णय दिया गया कि जॉर्डन की स्वीकृति मान्य नहीं है क्योंकि जॉर्डन ने नार्टन के प्रस्ताव के बदले एक दूसरा ही नया प्रस्ताव नार्टन के सामने रख दिया।

(3) स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा निश्चित किये ढंग से होनी चाहिये—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 7 (2) के अनुसार स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा नियत ढंग से

होनी चाहिये यदि प्रस्तावक द्वारा ऐसा कोई ढंग नियत किया गया है। उदाहरण के लिए यदि प्रस्तावक तार द्वारा स्वीकृति चाहता है तो स्वीकृति तार से ही होनी चाहिये।

यदि प्रस्तावक ने स्वीकृति का कोई ढंग नियत नहीं किया है तो स्वीकृति उचित ढंग से होनी चाहिये। जैसे साधारणतः तार का उत्तर तार द्वारा व पत्रों का उत्तर पत्रों द्वारा उचित ढंग माना जाता है।

(4) स्वीकृति अभिव्यक्त अथवा गर्भित हो सकती है—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 9 के अनुसार मौखिक अथवा लिखित शब्दों द्वारा स्वीकृति ही अभिव्यक्त स्वीकृति कहलाती है जब शब्दों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से स्वीकृति प्रदान की जाती है या जब वह किन्हीं कार्यों तथा परिस्थितियों में प्रमाणित हो सकती है तो यह गर्भित स्वीकृति कहलाती है।

(5) स्वीकृति निर्धारित अवधि में होनी चाहिये—प्रस्ताव करते समय कभी-कभी प्रस्तावक एक अवधि निश्चित कर देता है जिसके अन्दर स्वीकृति हो जाना आवश्यक है। यदि स्वीकृति के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है तो उचित अवधि में स्वीकृति हो जानी चाहिये। *उचित अवधि प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर करती है। उदाहरण*—राणा ने राका के पास पत्र लिखकर प्रस्ताव किया कि "मैं आपकी गाय 1000 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव करता हूँ। आपका स्वीकृति पत्र 15 दिनों के अन्तर्गत नहीं आया तो प्रस्ताव का अन्त समझा जायेगा। राका 25 दिन बाद स्वीकृति भेजता है। स्वीकृति निर्धारित समय के बाद दी गयी है अतः राणा व राका में कोई अनुबन्ध नहीं होता है।

(6) प्रस्ताव जाने बिना स्वीकृति देना व्यर्थ है—यदि कोई कार्य प्रस्ताव को जाने बिना किया गया है तो वह अनुबन्ध के खण्डन की स्थिति में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता इसका आधार यह माना जाता है कि जिसे प्रस्ताव की जानकारी ही नहीं है वह उसकी स्वीकृति देने का भी अधिकारी नहीं है। इस सम्बन्ध में लालमन बनाम गौरीदत्त का मामला उल्लेखनीय है। लालमन ने बच्चा खोज कर लाने का कार्य घोषणा की जानकारी के अभाव में किया अतः प्रस्ताव जाने बिना उसकी स्वीकृति नहीं हो सकती।

(7) स्वीकृति का संसूचन होना चाहिये—प्रस्ताव की ही तरह स्वीकृति का संसूचन भी आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति केवल अपने मस्तिष्क में यह निश्चित कर लेता है कि मुझे प्रस्ताव स्वीकार करना है तो यह स्वीकृति नहीं मानी जाती है, जब तक कि वह इसको अपने शब्दों या आचरण द्वारा व्यक्त न करें।

उदाहरण—ब्रागडन बनाम मैट्रोपोलिटन रेलवे कम्पनी (Brogden V/s Metropolitan Railway Co.) इस मामले के रेलवे कम्पनी के मैनेजर के पास कोयले की पूर्ति के सम्बन्ध मे एक ड्राफ्ट एग्रीमेण्ट उसकी स्वीकृति के लिए भेजा। मैनेजर ने इस पर स्वीकृति लिखकर मेज की दराज में रख दिया ताकि उसको कम्पनी के वकील से अनुबन्ध के रूप में तैयार कराकर पूर्ति करने वालों के पास भिजवा दें। परन्तु वह ड्राफ्ट को भेजना भूल गया।

अतः न्यायालय ने निर्णय दिया यह केवल मानसिक स्वीकृति थी इससे अनुबन्ध का निर्माण नहीं होता है।

(8) प्रस्ताव की शर्तों का निष्पादन करके स्वीकृति—प्रस्ताव की शर्तों का निष्पादन करके दी गयी स्वीकृति वैध स्वीकृति मानी जाती है इस सम्बन्ध में श्रीमती कार्लिल

बनाम कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी का मामला महत्वपूर्ण है इस मामले में श्रीमती कार्लिल ने कम्पनी की दवा का प्रयोग प्रस्ताव में दिये गये नियमों का पालन करके प्रस्ताव की स्वीकृति दी थी। इसे न्यायालय ने वैध स्वीकृति माना था।

इसी प्रकार खोई हुई वस्तु का पता लगाने के लिए इनाम देने का प्रस्ताव रखा जाता है तो उस वस्तु को खोजना प्रारम्भ करना ही प्रस्ताव की स्वीकृति है।

(9) प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त या प्रतिसंहरण होने से पहले होनी चाहिये— प्रस्ताव का अन्त होने या वापस लेने के बाद की गई स्वीकृति कोई वैध अनुबन्ध उत्पन्न नहीं करती क्योंकि जब प्रस्ताव का अस्तित्व नहीं है तो उसकी स्वीकृति नहीं हो सकती। अतः स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त होने के पूर्व ही होनी चाहिये।

(10) एक बार अस्वीकृति प्रस्ताव पुनः प्रस्तुत किये जाने पर ही स्वीकारा जा सकता है—कोई प्रस्ताव यदि अस्वीकार कर दिया जाता है तो बाद में उस समय तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक पुनः प्रस्तुत न किया गया हो।

उदाहरण—श्याम, राम को अपना घोड़ा 1000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है। राम उस घोड़े को 800 रुपये में खरीदने की स्वीकृति देता है। राम की यह स्वीकृति एक प्रति प्रस्ताव है अतः मूल प्रस्ताव अस्वीकृत माना जायेगा। कुछ समय के बाद राम 1000 रुपये में ही खरीदने की स्वीकृति प्रदान करता है राम की बाद वाली स्वीकृति महत्वहीन है क्योंकि जब तक श्याम पुनः प्रस्ताव न करे राम स्वीकृति नहीं दे सकता।

(11) मौन रहना स्वीकृति का लक्षण नहीं है – प्रस्तावक द्वारा स्वीकृति की विधि अवश्य निश्चित की जा सकती है किन्तु मौन रहने को स्वीकृति नहीं माना जा सकता।

उदाहरण—रमेश, मेहरा को एक पत्र द्वारा अपना स्कूटर 5000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है और साथ में यह भी लिख दिया कि यदि मुझे 15 दिन में उत्तर न मिला तो मैं समझूँगा कि आप स्कूटर खरीदने को तैयार हैं। मेहरा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। यहाँ रमेश एवं मेहरा के बीच कोई अनुबन्ध नहीं बन सकता है।

(12) स्वीकृति का संसूचन अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही होना चाहिये—उस व्यक्ति द्वारा स्वीकृति की सूचना भेजी जानी चाहिये जिसे स्वीकृति देने का अधिकार हो। यदि स्वीकृति की सूचना कोई ऐसा व्यक्ति दे देता है जिसे ऐसी सूचना देने का अधिकार नहीं है, तो वह स्वीकृति प्रभावशाली नहीं होती है।

उदाहरण—पॉवेल बनाम ली (Pawell vs. lee)—के विवाद में वादी पॉवेल एक स्कूल के प्रधानाध्यापक पद के उम्मीदवार थे। स्कूल की प्रबन्ध समिति ने एक प्रस्ताव पास करके उनकी नियुक्ति की, किन्तु पॉवेल को इस प्रस्ताव की कोई सूचना नहीं दी गई। प्रबन्ध समिति के एक सदस्य ने यह सूचना पॉवेल के पास पहुँचा दी। बाद में प्रबन्ध समिति ने पॉवेल की नियुक्ति के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। वादी ने न्यायालय में अनुबन्ध भंग करने का वाद प्रस्तुत कर दिया। निर्णय दिया गया कि पॉवेल को अपनी नियुक्ति की सूचना अधिकृत व्यक्ति से प्राप्त नहीं हुई थी अतः उसे वाद प्रस्तुत करने का कोई अधिकार नहीं है।

(13) वचन पूरा करने के उद्देश्य से स्वीकृति दी जानी चाहिये—यदि वचन को पूरा न करने के उद्देश्य से स्वीकृति दी गयी है तो वह वैध स्वीकृति नहीं कहलायेगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रस्ताव की परिभाषा दीजिये और इसके लक्षण बतलाइये। प्रस्ताव सम्बन्धी सामान्य नियम क्या है ?

   Define a proposal and give its characteristics ? What are the general rules regarding a proposal.

2. स्वीकृति से आपका क्या आशय है ? प्रस्ताव की स्वीकृति के सम्बन्ध में साधारण नियम क्या हैं ?

   What do you mean by "Acceptance" ? What are the general rules regarding acceptance of an offer ?

3. प्रस्ताव एवं स्वीकृति शब्दों को परिभाषित कीजिये। वैध प्रस्ताव सम्बन्धी नियमों की उदाहरण सहित विवेचना कीजिये।

   Define the terms "Proposal and Acceptance" Explain with illustration the rules regarding a valid proposal.

   (जोधपुर वि वि. 1981)

4. अन्तर बताइये—

   (क) "प्रस्ताव तथा प्रस्ताव करने का इरादा"।

   (ख) "प्रस्ताव तथा प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण"।

   Distinguish between—

   (a) Proposal and intention to propose.

   (b) Proposal and invitation to a proposal.

□□□

4

प्रस्ताव तथा स्वीकृति का संसूचन तथा प्रतिसंहरण

(Communication and Revocation of Proposal and acceptance)

विषय-सामग्री—प्रस्ताव का संसूचन, स्वीकृति का संसूचन, स्वीकृति के संसूचन के सामान्य नियम, प्रस्ताव का प्रतिसंहरण, प्रस्ताव के प्रतिसंहरण की विधियाँ, स्वीकृति का प्रतिसंहरण, अभ्यास के लिए प्रश्न।

प्रस्ताव का संसूचन (Communication of Proposal)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4 के अनुसार, "प्रस्ताव का संसूचन उस समय पूरा हो जाता है जब वह उस व्यक्ति की जानकारी में आ जाये जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है। "The communication of a Proposal is complete, when it comes to the knowledge of the person to whom it is made." Sec 4

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्ताव का संसूचन उस समय पूरा होता है जब प्रस्ताव की जानकारी उस व्यक्ति को हो जाय जिसको प्रस्ताव किया जाता है।

उदाहरण—जॉनी ने जनार्दन को अपना मकान 2,000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव पत्र द्वारा किया। जिस समय जॉनी का पत्र जनार्दन को मिल जायेगा तब प्रस्ताव का संसूचन पूरा माना जायेगा।

स्वीकृति का संसूचन (Communication of Acceptance)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4 के अनुसार स्वीकृति के संसूचन सम्बन्धी नियम इस प्रकार दिये हैं :—

(i) प्रस्तावक के विरुद्ध संसूचन (Communication against proposer)—प्रस्ताव के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन उस समय पूरा माना जायेगा जबकि स्वीकर्ता ने स्वीकृति को प्रेषित कर दिया है जिससे फिर उसे वापस लेना उसकी शक्ति के बाहर हो जाय।

(ii) स्वीकर्ता के विरुद्ध संसूचन (Communication against Acceptor)—स्वीकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन उस समय पूरा माना जायेगा जबकि स्वीकृति प्रस्तावक की जानकारी में आ जाती है।

स्वीकृति का संसूचन स्वीकर्ता के विरुद्ध पूरा हो जाने पर ही अनुबन्ध पूरा उतरेगा इसके पूर्व नहीं।

उदाहरण—यदि रमेश महेश के प्रस्ताव को पत्र द्वारा स्वीकार करता है तो स्वीकृति का संसूचन महेश के विरुद्ध अर्थात् रमेश के पक्ष में उस समय पूरा हो जाता है जब उसे वह स्वीकृति-पत्र को डाक मे डाल दें।

रमेश के विरुद्ध अर्थात् महेश के पक्ष में उस समय पूरा होगा जब रमेश द्वारा भेजा गया स्वीकृति-पत्र महेश की जानकारी में आ जायेगा।

स्वीकृति के संसूचन के सामान्य सिद्धान्त

स्वीकृति के संसूचन के सामान्य सिद्धान्त

1. स्वीकृति का स्थान एवं समय।
2. स्वीकृति पत्र का देर से मिलना।
3. गलत पता लिखने की दशा में
4. *एजेन्ट की दशा में स्वीकृति का संसूचन।*
5. टेलीफोन पर स्वीकृति का संसूचन।
6. टेलेक्स पर स्वीकृति का संसूचन।

(1) स्वीकृति का स्थान व समय—स्वीकृति के स्थान के सम्बन्ध में सामान्य नियम यह है कि यदि एक ही स्थान पर प्रस्ताव रखा गया है और वहीं उसकी स्वीकृति प्रदान की गई है तो अनुबन्ध का स्थान भी वही होगा। यदि प्रस्ताव व स्वीकृति डाक द्वारा हुई है तो जिस स्थान पर स्वीकृति पत्र डाक में डाला गया वह स्थान अनुबन्ध का स्थान होगा।

जिस समय डाक में स्वीकृति-पत्र डाला जावेगा वह समय अनुबन्ध होने का समय है।

(2) स्वीकृति-पत्र का देर से मिलना—यदि प्रस्तावक को स्वीकृति-पत्र देर से मिलता है तो भी वह उस स्वीकृति से बाध्य किया जायेगा अगर स्वीकर्ता ने पत्र पर पता सही एवं उचित ढंग से लिखा है।

उदाहरण—हेन्थार्न बनाम फ्रेजर का मामला महत्त्वपूर्ण है। हेन्थार्न ने फ्रेजर कम्पनी के शेयर खरीदने के लिए आवेदन पत्र भेजा फ्रेजर कम्पनी ने डाक द्वारा आवेदन-पत्र हेन्थार्न के पास भेज दिया जो हेन्थार्न फ्रेजर कम्पनी का अंशधारी था।

(3) गलत पता लिखने की दशा में—यदि स्वीकर्ता ने स्वीकृति-पत्र को गलत पते पर भेज दिया जैसे पाटन के स्थान पर पटना, अहमद नगर के स्थान पर अहमदाबाद, फालना के स्थान पर पालना। जिसमें प्रस्तावक को स्वीकृति पत्र न मिले तो प्रस्तावक इस प्रकार की स्वीकृति से बाध्य नहीं होगा।

यदि स्वयं प्रस्तावक ने ही अपना पता गलत लिखकर भेजा है और स्वीकर्ता वही पता स्वीकृति पत्र पर लिखता है और वह पत्र प्रस्तावक को नहीं मिलता है तो प्रस्तावक स्वीकर्ता को अपनी स्वीकृति से बाध्य कर सकेगा।

(4) एजेन्ट की दशा में स्वीकृति का संसूचन—किसी एजेन्ट ने यदि प्रस्ताव प्रस्तुत किया है तो स्वीकर्ता अपनी स्वीकृति भी उसी एजेन्ट को दे सकता है। एजेन्ट के स्वामी को ही स्वीकृति का संसूचन किया जाय यह आवश्यक नहीं है।

(5) टेलीफोन पर स्वीकृति का संसूचन—टेलीफोन के द्वारा किये गये अनुबन्ध ठीक उस ही प्रकार होते हैं जैसे कि आमने-सामने जब दो पक्षकार अनुबन्ध करते हैं। टेलीफोन

पर तो अनुबन्ध उसी समय हुआ माना जाता है जब प्रस्तावक ने उसे ठीक प्रकार से सुन लिया है और समझ लिया है।

ऐसे अनुबन्ध के स्थान के सम्बन्ध में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया है कि अनुबन्ध का स्थान वह होगा जहाँ स्वीकृति सुनी गई है, जहाँ स्वीकृति दी गयी वह नहीं।

उदाहरण—लोकेश ने कलकत्ता से टेलीफोन द्वारा मद्रास में हरीश को प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे हरीश ने स्वीकार कर लिया जिसे लोकेश ने स्पष्ट रूप से सुन लिया। स्वीकृति कलकत्ता में प्राप्त हुई है अतः अनुबन्ध का स्थान कलकत्ता होगा, मद्रास नहीं, जहाँ स्वीकृति दी गयी है।

(6) टैलेक्स पर स्वीकृति का संसूचन—टैलेक्स (Telex) पर किये गये प्रस्ताव की स्वीकृति का संसूचन उस समय पूरा हुआ माना जाता है जबकि वह टैलेक्स पर आ जाती है।

उदाहरण—जयपुर से महेश ने टैलेक्स के द्वारा बम्बई के रमेश को प्रस्ताव भेजा और प्रत्युत्तर में टैलेक्स द्वारा ही बम्बई से स्वीकृति दे दी गई। अनुबन्ध का स्थान जयपुर माना गया।

प्रस्ताव का प्रतिसंहरण
(Revocation of Proposal)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, "प्रस्ताव का प्रतिसंहरण प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन पूरा होने के पहले किसी भी समय प्रस्ताव का प्रति-संहरण किया जा सकता है, परन्तु इसके बाद में नहीं।"

उदाहरण—लोकेश ने अपनी मोटर साइकिल हरीश को बेचने का "प्रस्ताव पत्र द्वारा किया। हरीश ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया हरीश द्वारा स्वीकृति-पत्र डाक में डालने से पहले किसी भी समय लोकेश प्रस्ताव का प्रतिसंहरण कर सकता है किन्तु ज्यों ही हरीश स्वीकृति का पत्र डाक में डालता है लोकेश का प्रस्ताव प्रतिसंहरण करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

प्रस्ताव के प्रतिसंहरण की विधियाँ
(Methods of Revocation)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 6 में प्रस्ताव के प्रतिसंहरण की विधियाँ बतलाई गयी है जो इस प्रकार है—

(1) प्रतिसंहरण की सूचना देकर—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार "प्रस्ताव का प्रतिसंहरण प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन पूरा होने के पहले किसी भी समय किया जा सकता है परन्तु इसके बाद नहीं।" प्रस्तावक स्वयं अथवा अपने अधिकृत एजेन्ट द्वारा प्रतिसंहरण की सूचना पत्र, तार, टेलीफोन द्वारा अथवा अन्य किसी उचित तरीके से दे सकता है।

(2) निश्चित अवधि के समाप्त होने पर—यदि प्रस्ताव में स्वीकृति के लिए कोई समय या अवधि दी गई है तो उस अवधि के अन्दर ही प्रस्ताव की स्वीकृति वैध मानी जायेगी। ऐसा न होने पर बाद में उस प्रस्ताव की वैध स्वीकृति नहीं हो सकती।

उदाहरण—राजेश बजरंग को अपना घोड़ा बेचने का पत्र द्वारा प्रस्ताव करता है जिसमें यह भी लिखता है कि यदि वह खरीदना चाहे तो एक नवम्बर तक अपनी स्वीकृति भेज दे। बजरंग एक नवम्बर तक अपनी स्वीकृति नही भेजता है तो ऐसी स्थिति में प्रस्ताव अपने आप समाप्त हो गया है।

(3) यदि अवधि न दी गयी हो तो एक उचित समय के भीतर स्वीकृति हो जानी चाहिये—'उचित अवधि' क्या है इसे निश्चित करते समय व्यवहार की प्रकृति उसकी शर्तें और उस विवाद से सम्बन्धित सभी परिस्थितियों पर विचार करना अनिवार्य होगा। उदाहरण के लिए पके हुए फलों की बिक्री के लिए कुछ घण्टे उचित अवधि माने जा सकते है जबकि एक मकान की बिक्री के लिए कुछ हफ्तों की अवधि उचित समझी जा सकती है।

प्रस्ताव के प्रतिसंहरण की विधियाँ

1. सूचना देकर।
2. निश्चित अवधि के समाप्त होने पर।
3. यदि अवधि न दी गयी हो तो एक उचित समय के भीतर स्वीकृति हो जानी चाहिये।
4. स्वीकर्ता द्वारा प्रस्ताव की शर्त को पूरा न करने पर।
5. प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने की दशा मे।
6. स्वीकर्ता की मृत्यु अथवा उसके पागल होने की दशा में।
7. प्रति प्रस्ताव करने पर।

(4) स्वीकर्ता द्वारा प्रस्ताव की शर्त को पूरा न करने पर—यदि प्रस्तावक के आदेशानुसार स्वीकर्ता को स्वीकृति देने से पहले किसी विशेष शर्त को पूरा करना है और वह उस शर्त को पूरा नही करता है तो स्वीकृति वैध नही होती और प्रस्ताव प्रतिसंहृत समझा जायेगा।

उदाहरण—राजा राका को यह प्रस्ताव करता है कि यदि वह उसका मकान 50,000 रुपये मे खरीदना चाहता है तो वह 5,000 रुपये पेशगी भेज दे। राका ने मकान खरीदने की स्वीकृति तो भेज दी लेकिन 5,000 रुपये अग्रिम नही भेजे तो यह स्वीकृति शून्य है और मकान बेचने के प्रस्ताव की भी समाप्ति हो जायेगी।

(5) प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने की दशा में—प्रस्तावक की मृत्यु या पागल हो जाने की दशा में प्रस्ताव का अन्त हो जाता है और उसकी वैध स्वीकृति नही हो सकती। यदि प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने के पूर्व प्रस्ताव स्वीकर्ता द्वारा स्वीकृत हो चुका है तो वैध स्वीकृति होगी।

(6) स्वीकर्त्ता की मृत्यु अथवा उसके पागल होने की दशा में—प्रस्ताव जिस व्यक्ति के सम्मुख रखा गया है स्वीकृति प्रदान करने के पूर्व ही यदि उसकी मृत्यु हो जाती है या वह पागल हो जाता है तो प्रस्ताव प्रतिसंहृत माना जाता है। इसके विपरीत वह स्वीकृति वैध होती है यदि स्वीकृति प्रदान करने के पश्चात् उसकी मृत्यु होती है अथवा वह पागल हो जाता है।

(7) प्रति प्रस्ताव करने पर—विपरीत प्रस्ताव के आ जाने से भी मूल प्रस्ताव का अन्त हो जाता है।

उदाहरण—विष्णु, रवीन्द्र को अपनी गाय 1,000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव

करता है रवीन्द्र 800 रुपये में खरीदने की स्वीकृति देता है। यह स्वीकृति नहीं मानी जायेगी अतः प्रस्ताव का अन्त हो जायेगा।

स्वीकृति का प्रतिसंहरण
(Revocation of Acceptance)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार "स्वीकृति का प्रतिसंहरण स्वीकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन पूरा होने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु बाद में नहीं।"

उदाहरण—अमर अपना घोडा बेचने का प्रस्ताव पत्र द्वारा अकबर के पास भेजता है। अकबर पत्र द्वारा अमर के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। अकबर अपनी स्वीकृति का प्रतिसंहरण तार द्वारा अमर के पास स्वीकृति पत्र पहुँचने से पहले कर सकता है, बाद मे नहीं। यदि अकबर का तार अमर के पास स्वीकृति-पत्र पहुँचने के बाद पहुँचता है तो प्रतिसंहरण वैध नहीं माना जायेगा।

यदि प्रतिसंहरण का तार और स्वीकृति-पत्र दोनों एक साथ ही पहुँचते हैं तो सामान्य व्यक्ति सामान्यतः पत्र की अपेक्षा तार को पहले पढ़ता है अत. स्वीकृति का खण्डन माना जावेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'प्रस्ताव', 'स्वीकृति' तथा प्रस्ताव एवं स्वीकृति के प्रतिसंहरण का संसूचन कब पूरा होता है ? उपयुक्त उदाहरण देकर समझाइये।
   When is the communication of 'Proposal', 'Acceptance' and Revocation of proposal and acceptance complete ? Explain with suitable examples.
   (जोधपुर वि. वि. 1983)

2. प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संसूचन कब पूर्ण होता है ? किन परिस्थितियों मे प्रस्ताव तथा स्वीकृत का प्रतिसंहरण किया जा सकता है ?
   When the communication of offer and acceptance is complete ? Under what circumstances offer and acceptance can be revoked ?
   (राज. वि. वि. 1982)

5

पक्षकारों की अनुबन्ध क्षमता
(Contractual Capacity of the Parties)

विषय-सामग्री—अनुबन्ध करने की क्षमता का आशय, अवयस्क द्वारा किये गये अनुबन्ध के सम्बन्ध मे नियम, अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति सिद्ध करने का भार, राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति, अभ्यास के लिए प्रश्न।

अनुबन्ध करने की क्षमता का आशय
(Meaning of Contractual Capacity)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, "प्रत्येक ऐसा व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता रखता है जो सम्बन्धित विधान के अनुसार वयस्क है और जो स्वस्थ मस्तिष्क का है तथा उस पर लागू होने वाले किसी राजनियम के अनुसार अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नही किया गया है।"[1]

विश्लेषण—इस धारा का स्पष्ट विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि निम्नलिखित व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखते :—

(i) अवयस्क।

(ii) अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति।

(iii) जो किसी राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य हैं।

सामान्यत: राजनियम द्वारा यह माना जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य है। यदि कोई व्यक्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य होने के आधार पर अनुबन्ध के दायित्वों से मुक्ति का दावा करता है तो उसी को यह प्रमाणित करना होगा कि वह अनुबन्ध करने के अयोग्य है।

I. अवयस्क द्वारा किये गये अनुबन्ध
(Minor's Contract)

अवयस्क से आशय

भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 की धारा 3 के अनुसार भारत में वे सभी व्यक्ति जो 18 वर्ष के हो चुके हैं, वयस्क माने जाते है। जिसने अपनी उम्र के 18 वर्ष पूरे नहीं कर लिये हैं, किसी भी दशा में वह व्यक्ति वयस्क नहीं माना जा सकता है।

---

1. "Every Person is competent to contract who is of the age of majority according to the Law to which he is subject and who is of sound mind and is not disqualified from contracting by any law to which he is subject." (Sec. 11)

किन्तु निम्नलिखित दो परिस्थितियों में 21 वर्ष की आयु का व्यक्ति ही वयस्क माना जायेगा—

(1) यदि न्यायालय ने किसी अवयस्क के लिए अथवा उसकी सम्पत्ति के लिए अथवा दोनो के लिए कोई सरक्षक नियुक्त किया है, अथवा

जिसकी सम्पत्ति 18 वर्ष के होने के पहले कोर्ट ऑफ वार्ड्स की (Court of wards) देखभाल मे है ।

इस प्रकार सामान्यत. जिस व्यक्ति ने अपनी आयु के 18 वर्ष पूरे नही किये है वह अवयस्क माना जाता है । यदि किसी व्यक्ति की आवश्यकता-काल मे उसकी तथा उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए न्यायालय ने कोई सरक्षक नियुक्त किया है या कोर्ट ऑफ वार्ड्स की देखभाल मे है तो वह तब तक अवयस्क माना जायेगा, जब तक कि वह 21 वर्ष पूरे नही कर लेता है ।

अवयस्क द्वारा किये गये अनुबन्ध के सम्बन्ध में नियम

(1) अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः शून्य है (A Contract with Minor is absolutely void)—एक अवयस्क अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य है अत अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध प्रारम्भ से ही शून्य होता है । प्रिवी कौसिल ने भारत में अवयस्क के साथ किये गये अनुबन्ध को शून्य घोषित किया है, किन्तु मद्रास उच्च न्यायालय के अनुसार यदि अवयस्क को किसी अनुबन्ध से लाभ प्राप्त होता है तो अवयस्क उसको प्रवर्तनीय करा सकता है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः शून्य है, परन्तु यदि अवयस्क को अनुबन्ध से लाभ होता है तो वह अवयस्क की इच्छा पर प्रवर्तनीय होता है ।

अवयस्क द्वारा किये गये अनुबन्ध के सम्बन्ध मे नियम

1. अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः शून्य है ।
2. वयस्कता पर अनुबन्ध का पुष्टिकरण नही ।
3. अवयस्क अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सम्पत्ति की जमानत पर ऋण ले सकता है ।
4. अवयस्क के साथ अवरोध का सिद्धान्त ।
5. अवयस्क द्वारा अपने लाभ के लिए अनुबन्ध करना ।
6. अवयस्क एवं पुनः लौटाने का सिद्धान्त ।
7. अवयस्क एजेन्ट बनाया जा सकता है ।
8. अवयस्क दिवालिया घोषित नही किया जा सकता ।
9. अवयस्क अंशधारी बन सकता है ।

उदाहरण—मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास का मामला महत्त्वपूर्ण है । इस मामले ने भारतीय राजनियम के क्षेत्र मे बड़ी क्रान्ति पैदा कर दी है । क्योंकि इस मुकदमे के फैसले के पहले भारतीय न्यायालयों का मत था कि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध शून्य करणीय है, शून्य नही । धर्मोदास एक अवयस्क व्यक्ति था उसने अपनी सम्पत्ति को मोहरी बीबी के पति ब्रह्मदत्त के पास बन्धक रखकर 20,000 रु. का ऋण लेने का करार किया । जिसमे से ऋणदाता ने अवयस्क को

8,000 र. का भुगतान कर दिया था। धर्मोदास से यह भी लिखवा लिया गया कि वह वयस्क हो चुका है। कुछ दिनों बाद धर्मोदास स्वय ने कलकत्ता कोर्ट में वाद प्रस्तुत किया कि बन्धक लिखने के समय वह अवयस्क था अतः इस अनुबन्ध को शून्य घोषित कर दिया जाये।

प्रतिवादी ब्रह्मोदत्त ने अपने बचाव में यह कहा कि वादी की प्रार्थना को तब तक स्वीकार न किया जाय जब तक कि उसके द्वारा लिये गये रुपये वापस न हो जाएँ। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने धर्मोदास के पक्ष मे निर्णय दिया।

प्रतिवादी ने प्रिवी कौंसिल में अपील की। जब अपील चल रही थी तो ब्रह्मोदत्त की मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी मोहरी बीबी ने अपील मे कार्यवाही की इसलिए यह मामला मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया कि अवयस्क के साथ किया गया करार शून्य होता है शून्यकरणीय नही अतः धर्मोदास 8,000 रुपये नही लौटायेगा।

10. अवयस्क तथा बेचनी लिखत अधिनियम।
11. अवयस्क के माता-पिता का दायित्व।
12. अपराध के लिए उत्तरदायी।
13. वस्तु विक्रय अधिनियम और अवयस्क।
14 अवयस्क प्रतिभू के प्रति दायी नही।
15. अवयस्क एक साझेदार के रूप मे।
16 नौकरी का करार।
17. अवयस्क का संरक्षक अनुबन्ध कर सकता है।
18. वयस्क तथा अवयस्क द्वारा सम्मिलित अनुबन्ध।
19. सम्पत्ति विभाजन।
20. समझौता।

(2) वयस्कता पर अनुबन्ध की संपुष्टि नहीं (No Possibility of Ratif cation)—एक अवयस्क ने अपनी अवयस्कता के समय जो अनुबन्ध किया है वयस्क होने पर उसकी संपुष्टि नही की जा सकती, क्योकि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध प्रारम्भ से ही शून्य होता है और शून्य अनुबन्ध की संपुष्टि नहीं की जा सकती।

उदाहरण—मोहन एक अवयस्क है। वह सोहन से 5,000 रुपये उधार लेता है। मोहन, सोहन को प्रतिज्ञा-पत्र लिख देता है। वयस्क होने पर पुराने प्रतिज्ञा-पत्र के बदले नया प्रतिज्ञा-पत्र लिख देता है। नये प्रतिज्ञा-पत्र के लिए कोई अलग से प्रतिफल नही दिया गया है। ऐसी स्थिति में सोहन,मोहन को धनराशि के भुगतान के लिए बाध्य नही कर सकता, क्योंकि यह केवल पुराने ऋण की मात्र संपुष्टि है जो शून्य है।

(3) अवयस्क अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सम्पत्ति की जमानत पर ऋण ले सकता है—यदि अवयस्क अपनी जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी सम्पत्ति की जमानत पर ऋण लेता है तो उसको वैधानिक दृष्टि से मान्य माना जाता है। एक अवयस्क अपनी तथा अपने ऊपर आश्रित व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुबन्ध कर सकता है। इसके लिए अवयस्क व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नही होता है केवल उसकी सम्पत्ति ही दायी होगी यदि उसके पास कोई सम्पत्ति नही है तो व्यापारी उन वस्तुओं का मूल्य नही पा सकता।

आवश्यक आवश्यकताओं की वस्तुएँ अवयस्क के रहन-सहन के स्तर, सामाजिक स्थिति एव प्रतिष्ठा के आधार पर निर्भर करती हैं। साधारण नागरिक के लिए सादा कपड़े, सादा भोजन, मकान का किराया, दवायें, मृतक संस्कार का खर्च आदि जीवन की आवश्यकताएँ मानी जाती हैं।

अत. जीवन की आवश्यकतायें वे ही हो सकती है जिनके बिना अवयस्क का जीवन निर्वाह करना कठिन हो। शृंगार व सजावट की वस्तुएँ जीवन की आवश्यकताएँ नही मानी जा सकती अत. इनके भुगतान के लिए अवयस्क को वाध्य नही किया जा सकता।

(4) अवयस्क के साथ विबन्धन का सिद्धान्त (Minor and Doctrine of estoppel)—यदि कोई अवयस्क कपट या अन्यथा कथन करके अपने आपको वयस्क वताता है जिसके फलस्वरूप वह अन्य पक्षकार को अपने साथ अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित कर लेता है तो ऐसी स्थिति मे अवयस्क को अनुवन्ध निष्पादन के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है।

मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष के मामले में धर्मोदास ने अपनी आयु गलत वतलाकर अनुवन्ध किया था लेकिन निर्णय धर्मोदास के पक्ष मे दिया गया था।

इसी प्रकार सादिक अली खां बनाम जय किशोर (Sadic Ali Khan vs Jai Kishore) के मामले मे अवयस्क को कपटपूर्ण अन्यथा कथन करने पर भी न्यायालय ने दायित्व से मुक्त कर दिया।

(5) अवयस्क द्वारा अपने लाभ के लिए अनुबन्ध करना—राजनियम अवयस्क को लाभ प्राप्त करने के अयोग्य नही मानता है। यद्यपि ऐसे किसी अनुबन्ध को अवयस्क के विरुद्ध लागू नही किया जा सकता फिर भी भारतीय अनुबन्ध अधिनियम अवयस्क को वचनगृहीता होने से नही रोकता। अवयस्क के लाभ हेतु लिया गया वन्धक जिसकी रकम अवयस्क ने दी है, अवयस्क द्वारा या उसकी ओर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा लागू किया जा सकता है। इसी प्रकार अवयस्क के लाभ के लिए लिया गया प्रतिज्ञा-पत्र भी मान्य होता है।

(6) अवयस्क एवं पुन. लौटाने का सिद्धान्त (Minor and Doctrine of restitution)—यदि किसी अवयस्क ने किसी अनुवन्ध के अधीन कोई लाभ प्राप्त कर लिया है तो वह उसे लौटाने को बाध्य नही है। यदि अवयस्क ने धोखे से कोई वस्तु किसी से प्राप्त की है और प्राप्त वस्तु उसके पास है तो विभिन्न न्यायालय इस बात के पक्ष मे है कि न्याय-सिद्धान्त के आधार पर अवयस्क को उस वस्तु को लौटाने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

(7) अवयस्क एजेन्ट बनाया जा सकता है—अवयस्क को एजेन्ट बनाया जा सकता है। वह एजेन्ट के रूप में कार्य कर सकता है पर उसके प्रत्येक कार्य के लिए स्वामी ही उत्तरदायी होगा। अवयस्क एजेन्ट के रूप मे तीसरे पक्षकार से अनुबन्ध करता है तो ऐसे अनुबन्ध को वैध माना जाता है इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक अवयस्क एजेन्ट अपने कार्यो से नियोक्ता को अन्य पक्षकारो के प्रति उत्तरदायी करता है किन्तु वह स्वयं नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता।

(8) अवयस्क दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता—इसका आधार यह है कि अवयस्क अनुबन्ध करने के योग्य नही होता है इसलिए वह देनदारी के लिए दायी नही बनाया जा सकता है। जीवन की आवश्यकताओं के मूल्य के लिए भी वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नही होता है उसकी सम्पत्ति ही उत्तरदायी हो सकती है। अतः अवयस्क को भारतीय राजनियम के अनुसार दिवालिया घोषित नही किया जा सकता है।

(9) अवयस्क अंशधारी बन सकता है—यदि कम्पनी के अन्तर्नियम अवयस्क व्यक्ति को अंशधारी बनने से रोक नही लगाते हैं तो अवयस्क उस कम्पनी का अंशधारी बन सकता है। अवयस्क अशों पर शेष याचना के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नही हो सकता है जबकि वह कम्पनी के समापन पर सम्पत्ति के आधिक्य में हिस्सा पाने का अधिकारी है।

(10) अवयस्क तथा बेचनो लिखत अधिनियम—एक अवयस्क चैक, बिल, हुण्डी व प्रतिज्ञा-पत्र लिख सकता है, उसका हस्तान्तरण कर सकता है, तथा बेचान कर सकता है, किन्तु ऐसे विलेखों के अप्रतिष्ठित होने पर उसका कोई व्यक्तिगत दायित्व नही होगा। हाँ, प्रपत्र के अन्य समस्त पक्षकार अवश्य दायी होंगे।

(11) अवयस्क के माता-पिता का दायित्व—अवयस्क के माता-पिता अवयस्क के साथ किये गये किसी भी अनुबन्ध के लिए उत्तरदायी नही होंगे चाहे अवयस्क ने जीवन की आवश्यकताओं के लिए अनुबन्ध किया है। माता-पिता अपने आपको नैतिक रूप से जिम्मेदार मानकर उसके दायित्वों को स्वीकार कर सकते हैं किन्तु उनका यह नैतिक दायित्व कानूनी दायित्व नही बन सकता। यदि अवयस्क ने अपने माता-पिता के एजेन्ट के रूप में अनुबन्ध किया है तो उसके लिए माता-पिता का दायित्व माना जायेगा।

(12) अपराध के लिए उत्तरदायी (Liable for Torts)—यदि किसी अवयस्क ने दण्डनीय अपराध किया हो जिससे किसी व्यक्ति के शरीर अथवा उसकी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचा है तो इसके लिए अवयस्क उत्तरदायी माना जायेगा। यदि अवयस्क को ऐसे अपराधों से मुक्त कर दिया जाये तो अवयस्को मे अपराध-प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ जायेगी।

(13) वस्तु-विक्रय अधिनियम और अवयस्क—अवयस्क को वस्तु-विक्रय अधिनियम में भी सुरक्षा प्रदान की गई है अतः एक अवयस्क माल खरीदने या बेचने के अनुबन्ध में उत्तरदायी नहीं होता है। जीवन की आवश्यक वस्तुओं के मूल्य के लिए भी अवयस्क की सम्पत्ति ही उत्तरदायी होती है।

(14) अवयस्क प्रतिभू के प्रति दायी नहीं—जब कोई व्यक्ति किसी अवयस्क को गारन्टी देता है और अवयस्क द्वारा वचन पूरा न करने पर गारन्टी देने वाले को उस वचन को पूरा करना पड़ता है यद्यपि उस ऋण का भुगतान किया जाना अवयस्क के लिए अनिवार्य नहीं होता है। क्योंकि अवयस्क तो अनुबन्ध करने योग्य नही है।

(15) अवयस्क एक साझेदार के रूप में—समस्त साझेदारों की सहमति से अवयस्क को फर्म के लिए साझेदार के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है। अवयस्क फर्म के

कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता है। अवयस्क साझेदारी को फर्म के दिवालिया घोषित किये जाने पर भी दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता। एक अवयस्क लाभ भागी साझेदार का दायित्व उसके द्वारा फर्म में लगाई गई पूंजी तक ही सीमित होता है। अवयस्क साझेदार को फर्म की पुस्तकें व हिसाब-किताब की पुस्तकें देखने का अधिकार होता है। अवयस्क साझेदार की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह वयस्क होने पर भविष्य में साझेदार रहे या नहीं।

(16) नौकरी के करार—एक अवयस्क के साथ नौकरी का किया गया करार भी शून्य होता है अपने संरक्षक या माता-पिता के माध्यम से अवयस्क नौकरी का करार कर सकते है ऐसा अनुबन्ध प्रवर्तित करवाया जा सकता है, यदि उस अनुबन्ध में प्रतिफल विद्यमान हो।

(17) अवयस्क का संरक्षक अनुबन्ध कर सकता है—अवयस्क के संरक्षक के साथ किया गया अनुबन्ध वैध होता है। अवयस्क के संरक्षक द्वारा किया गया अनुबन्ध अवयस्क द्वारा तथा अवयस्क के विरुद्ध प्रवर्तित करवाया जा सकता है यदि निम्नलिखित तीन शर्तों को ऐसा संरक्षक पूरा करता है—

(i) संरक्षक उस अनुबन्ध को करने के योग्य हो।

(ii) ऐसा अनुबन्ध अवयस्क के लाभ के लिए किया गया हो।

(iii) यदि वह अपनी शक्तियों के अन्तर्गत अनुबन्ध करता है।

इसके सम्बन्ध मे निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण अपवाद भी हैं :—

(i) बिना न्यायालय की अनुमति प्राप्त किये एक संरक्षक अवयस्क के लिए अचल सम्पत्ति विक्रय नहीं कर सकता है।

(ii) यदि अवयस्क के संरक्षक माता-पिता उसकी नौकरी के लिए अनुबन्ध करते है तो ऐसा अनुबन्ध प्रतिफल के अभाव मे मान्य नहीं होगा।

राजरानी बनाम प्रेम अदीब का मामला उल्लेखनीय है। इस मामले में प्रेम अदीब ने राजरानी (जो अवयस्क थी) के पिता के साथ राजरानी को 9,500 रु. वार्षिक वेतन पर अभिनेत्री की भूमिका के रूप मे नियुक्त करने का अनुबन्ध किया। एक माह बाद राजरानी को नौकरी से हटा दिया। बाद मे प्रेम अदीब ने यह भूमिका किसी अन्य कलाकार को दे दी। राजरानी ने प्रेम अदीब पर अनुबन्ध-भंग का वाद प्रस्तुत कर दिया बम्बई न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह अनुबन्ध राजरानी के साथ किया गया माना जाय तो यह शून्य है, क्योंकि राजरानी अवयस्क है और यदि यह अनुबन्ध संरक्षक के माध्यम से किया गया माना जाय तो प्रतिफल के अभाव में शून्य है।

(18) वयस्क तथा अवयस्क द्वारा सम्मिलित अनुबन्ध—किसी अवयस्क ने यदि वयस्क के साथ सम्मिलित रूप मे कोई अनुबन्ध तीसरे पक्षकार के साथ किया है तो वह अनुबन्ध अवयस्क पर लागू नहीं होगा। वयस्क ही पूर्णतः उत्तरदायी होगा।

(19) सम्पत्ति विभाजन—अपने पिता की सम्पत्ति के विभाजन के सम्बन्ध मे यदि कोई अवयस्क करार करता है तो ऐसा करार भी शून्य होता है।

(20) समझौता—यदि अवयस्क के साथ किसी विवाद के उत्पन्न होने के बाद समझौता करने का करार किया जाता है तो ऐसा करार भी शून्य होता है।

II. अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति
(Persons of Unsound Mind)
(धाराएं 11 एवं 12)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 12 के अनुसार, "ऐसा कोई भी व्यक्ति अनुबन्ध करने के लिए स्वस्थ मस्तिष्क का कहा जाता है जो अनुबन्ध करते समय अनुबन्ध को समझने की क्षमता रखता हो और जो यह भी समझने की क्षमता रखता हो कि उसके हितों पर उस अनुबन्ध का क्या प्रभाव होगा।

व्याख्या—स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति वह होता है—

(i) जो अनुबन्ध करने के समय अनुबन्ध को समझने की क्षमता रखता हो, तथा

(ii) जो यह भी समझने की क्षमता रखता हो कि उस अनुबन्ध का उसके हितो पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

उपरोक्त दोनो शर्तों को जो व्यक्ति अनुबन्ध करते समय पूरा करते है वे अधिनियम के अनुसार स्वस्थ मस्तिष्क वाले माने जाते हैं।

अनुबन्ध का पक्षकार कभी-कभी तो स्वस्थ मस्तिष्क का रहता हैं तथा कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है।

इसके लिए निम्नलिखित नियम लागू होते हैं—

(1) सामान्यत: अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति—एक व्यक्ति जो सामान्यतया अस्वस्थ मस्तिष्क का है, किन्तु कभी-कभी उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो जाता है तो ऐसा व्यक्ति उस समय अनुबन्ध कर सकता है जबकि वह स्वस्थ मस्तिष्क का है।

उदाहरण—एक पागल व्यक्ति है, किन्तु कभी-कभी उसका मस्तिष्क ठीक हो जाता है। वह उस समय अनुबंध कर सकता है, जब उसका मस्तिष्क स्वस्थ है।

(2) कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति—एक व्यक्ति जो सामान्यतया स्वस्थ मस्तिष्क का है, *किन्तु कभी-कभी अस्वस्थ मस्तिष्क* का हो जाता है, वह उस समय अनुबन्ध करने की क्षमता नही रखता जिस समय उसका मस्तिष्क अस्वस्थ हो जाता है।

उदाहरण—एक स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति है, जो इतनी शराब पिये हुए है कि वह अपनी सुध-बुध खो चुका है। ऐसे समय में वह अनुबन्ध नहीं कर सकता, जब वह नशे में है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनुबन्ध करते समय प्रत्येक पक्षकार को स्वस्थ मस्तिष्क का होना आवश्यक है। अनुबन्ध के पूर्व या अनुबन्ध करने के बाद उसकी मानसिक स्थिति कैसी रही इस बात से कोई मतलब नहीं है। अनुबन्ध करते समय यदि उसकी मानसिक स्थिति ठीक है तो अनुबन्ध वैध होगा।

सामान्यतया निम्नलिखित प्रकार के व्यक्तियों को अस्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है—

(1) पैदायशी जड़बुद्धि या मूढ़ व्यक्ति (Idiot)—जन्म-जात जड़बुद्धि व्यक्ति वह होता है जो जन्म से ही मूढ़ होता है ऐसा व्यक्ति किसी भी क्षण स्वस्थ मस्तिष्क का नहीं होता और इसकी मूर्खता का कोई इलाज भी नहीं हो सकता। जन्मजात मूढ़ के साथ किये गये अनुबन्ध पूर्ण रूप से शून्य होते हैं। वे जीवन की आवश्यकताओं के लिए अनुबन्ध कर सकते हैं। किन्तु उस समय उनकी सम्पत्ति उत्तरदायी होगी वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होंगे।

(2) पागल (Lunatic)—पागल वह व्यक्ति होता है जो जन्म से पागल नहीं है, किन्तु किसी कारण जैसे रोग, चिन्ता, कष्ट आदि कारणों से दिमाग का सन्तुलन खो चुका है। पागल उस समय अनुबन्ध कर सकता है, जब उसका मस्तिष्क ठीक हो।

सामान्यतया पागल व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता है, जब उसका मस्तिष्क स्वस्थ होता है तब यदि वह अनुबन्ध करता है तो ऐसा अनुबन्ध वैध होगा। जीवन की आवश्यकताएँ प्रदान करने पर उनका मूल्य पागल की सम्पत्ति से वसूल किया जा सकता है।

(3) शराबी या प्रलापी (Drunkard of Delirious Person)—नशे में या प्रमाद की अवस्था मे किये गये अनुबन्ध शून्य होते हैं। जिस समय इनका मस्तिष्क स्वस्थ होता है इनके द्वारा अनुबन्ध किया जा सकता है जो वैध होता हैं। मदिरापान के आधार पर अनुबन्ध इसलिए शून्य माना जाता है क्योंकि शराबी का मस्तिष्क सहमति-योग्य नहीं रहता। पागलपन मनुष्य के दुर्भाग्य की बात है किन्तु शराबीपन उसके दोषों का परिणाम है।

सिद्ध करने का भार (Burden of Proof)—जो व्यक्ति साधारणतया स्वस्थ मस्तिष्क के है वे अनुबन्ध करते समय भी स्वस्थ मस्तिष्क के थे, ऐसी मान्यता राजनियम की है। किन्तु कभी-कभी वे अस्वस्थ मस्तिष्क के हो जाते है। वह व्यक्ति अनुबन्ध से मुक्त होना चाहता है तो यह सिद्ध करने का भार उसी पर होता है कि वह अनुबन्ध करते समय अस्वस्थ मस्तिष्क का था।

(2) सामान्यतया अस्वस्थ व्यक्ति *अनुबन्ध के समय भी अस्वस्थ था ऐसी मान्यता* राजनियम की है। तो सिद्ध करने का भार दूसरे पक्ष पर होता है कि वह अनुबन्ध करते समय स्वस्थ मस्तिष्क का था।

(3) राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति (Persons Disqualified by Laws)—निम्नलिखित व्यक्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित किये गये हैं :—

(i) विदेशी शत्रु (Alien enemy)—भारत के साथ यदि किसी दूसरे देश की लडाई है तब वह देश विदेशी शत्रु कहा जायेगा। विदेशी शत्रु भारत के किसी नागरिक के साथ अनुबन्ध करने के योग्य नहीं माना जाता है। यदि कोई अनुबन्ध पहले किया जा चुका है तब युद्ध छिड़ जाने पर वह अनुबन्ध स्थगित कर दिया जायेगा। अनुबन्ध यदि देश के हितों के विरुद्ध हो तो उसे रद्द भी किया जा सकता है।

(ii) विदेशी शासक, राजदूत तथा उनके प्रतिनिधि (Foreign Sovereigns, Ambassadors and their representatives)—साधारणतया ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध हमारे न्यायालयों में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता अतः यदि ये किसी भारतीय

नागरिक से अनुबन्ध कर लें तो उस अनुबन्ध को भारतीय नागरिक इनके विरुद्ध प्रवर्तनीय नहीं करा सकता।

ये चाहें तो अनुबन्ध कर सकते हैं और इन अनुबन्धों को हमारे न्यायालय द्वारा प्रचलित करा सकते हैं। इनके विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने के लिए केन्द्रीय सरकार की आज्ञा प्राप्त करनी होती है जिसे विशेष दशाओं में ही स्वीकार किया जाता है।

(iii) विवाहित स्त्रियाँ (Married Women)—अनुबन्ध करने के सम्बन्ध मे भारत में स्त्रियों तथा पुरुषों को समान महत्त्व दिया गया है। विवाहित स्त्रियाँ केवल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति "स्त्री धन" के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र रूप से अनुबन्ध करने की क्षमता रखती हैं, किन्तु ये अपने अनुबन्ध से केवल अपने स्त्री-धन को ही उत्तरदायी ठहरा सकती हैं पति की सम्पति को नहीं। एक विवाहित स्त्री जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए अपने पति की साख को गिरवी रखने का अधिकार रखती है, अगर उसका पति उसके लिए ऐसी व्यवस्था नहीं करता।

अपनी इच्छा से यदि कोई स्त्री अपने पति से अलग हो जाती है और उसका आश्रम छोड़ देती है तो ऐसी स्थिति में चाहे वे जीवन की आवश्यकताओं के लिए ही क्यों न हों, उसका पति उत्तरदायी नहीं होता।

(iv) अपराधी (Convicts)—कोई अपराधी वैध अनुबन्ध नहीं कर सकता है यदि वह सजा पाने के पूर्व कोई अनुबन्ध कर चुका है तो उस अनुबन्ध को पूरा करने के लिए वह प्रबन्धक नियुक्त कर सकता है या उसको स्थगित कर सकता है और जब वह बाद में छूटता है तब उसे पूरा कर सकता है। जिस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड दिया गया है वह सजा सुनाने के बाद अनुबन्ध नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट है कि कैदी या अपराधी का अनुबन्ध करने का अधिकार सिर्फ कुछ साल के लिए स्थगित हो जाता है और मुक्त होने पर पुनः प्राप्त हो जाता है।

(v) दिवालिया (Insolvent)—न्यायालय द्वारा घोषित दिवालिया व्यक्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य माना जाता है। लेकिन जैसे ही न्यायालय उसको दिवालियेपन से मुक्त कर देता है वह फिर से अनुबन्ध करने के योग्य हो जाता है।

(vi) बैरिस्टर एवं चिकित्सक (Barrister and Doctors)—इलाहाबाद हाई कोर्ट ने निहालचन्द बनाम दिलावर खाँ (Nihal Chand V/s Dilawar Khan) के मामले में यह निर्णय देते हुये कहा है कि भारतीय बैरिस्टर उच्च न्यायालय के वकील के रूप मे अपना नाम दर्ज करा कर अपने मुवक्किलों के साथ अनुबन्ध कर सकते हैं और फीस के लिए उन पर वाद भी चला सकते हैं।

आज प्रत्येक डाक्टर (उन्हें छोड़ कर जिन पर सरकार द्वारा या उनके नियुक्तकर्त्ता की ओर से कोई रोक है) अपनी फीस व दवाईयों के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(vii) निगमित संस्थाएँ (Incorporated Bodies of Corporations or companies)—निगमित संस्थाएँ कृत्रिम व्यक्ति हैं जिनका निर्माण कानून द्वारा होता है अतः ये स्वयं अनुबन्ध नहीं कर सकती है, क्योंकि इनका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं होता। किन्तु ये संस्थाएँ अपने प्रतिनिधियों के द्वारा सब प्रकार के अनुबन्ध कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त कम्पनी एक नागरिक नहीं होती है। अतः शादी करने का अनुबन्ध भी नहीं कर सकती है।

(8) भारत के राष्ट्रपति (President of India)—भारत के राष्ट्रपति की हमारे देश के संविधान में सर्वोपरि स्थिति होने के कारण उन पर किसी भी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है और किसी न्यायालय मे उनको बुलाया नहीं जा सकता है। सभी न्यायाधीशो की नियुक्ति भारत मे राष्ट्रपति ही करते हैं।

(9) क्लब (Clubs)—असंस्थापित क्लब व सोसाइटीज का कोई वैधानिक अस्तित्व न होने के कारण वे अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "अनुबन्ध करने की क्षमता" से आप क्या समझते हैं ? राजनियम द्वारा कौन से व्यक्ति अनुबन्ध के योग्य माने जाते है ?

   What do you mean by compentancy to contract ? Who are the persons considered competent by law to enter into a contract ?

   (उदयपुर वि. वि 1981 राज. वि. वि. 1977)

2. अवयस्क के अनुबन्धों से सम्बन्धित भारतीय राजनियम की विवेचना कीजिये।

   Discuss the law relating to Minor's contracts according to Indian Law.

   (राज. वि. वि. 1982)
   (जोधपुर वि. वि. 1982)
   (सुखाड़िया वि. वि. 1985)

3. अनुबन्ध करने की क्षमता से आप क्या समझते हैं ? इस सम्बन्ध में अवयस्क की स्थिति को स्पष्ट कीजिये।

   What do you understand by competency to contract ? Discuss the position of a minor in this connection.

   (राज. वि. वि. 1979)

□ □ □

6
स्वतन्त्र सहमति
(Free Consent)

विषय-सामग्री —सहमति से आशय, स्वतन्त्र सहमति से आशय, उत्पीड़न का आशय, उत्पीड़न के लक्षण, उत्पीडन सिद्ध करने का भार, पर्दानशीन स्त्रियाँ, उत्पीडन तथा अनुचित प्रभाव मे अन्तर। कपट का आशय, विशेषताएँ, मौन द्वारा कपट, कपट के स्वरूप, प्रभाव, अन्यथा कथन का आशय, प्रभाव, कपट एव मिथ्या वर्णन में अन्तर। गलती की परिभाषा, प्रकार, गलती के प्रभाव, अभ्यास के लिए प्रश्न।

सहमति से आशय
(Meaning of Consent)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, "दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सहमति उसी समय की जाती है जब वे एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते है।"[1]

इस प्रकार सहमति के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हो सकते हैं :—

(1) सहमति के लिए कम से कम दो पक्षकार होते हैं।

(2) किसी एक ही बात के सम्बन्ध मे **रैफिल्स बनाम विचिलहौस** (Rafiles V/s Wichilhaus) का मामला महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में मोहन ने 125 गाँठे रूई खरीदने का अनुबन्ध राम से किया जो कि "पीयरलेस" (Peerless) नाम के जहाज द्वारा बम्बई से आना था। इस नाम के दो जहाज—एक अक्टूम्बर में तथा दूसरा दिसम्बर में आने वाले थे। मोहन का आशय उस जहाज से था जो अक्टूम्बर मे आने वाला था और राम का आशय दिसम्बर में आने वाले जहाज से था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि इन दोनों पक्षकारो में कोई अनुबन्ध ही नहीं हुआ क्योंकि मोहन व राम एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत नही हुए।

स्वतन्त्र सहमति से आशय
(Meaning of free Consent)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, "सहमति स्वतन्त्र मानी जाती है यदि वह निम्न में से किसी भी कारण से प्रभावित नही हैं।"

(1) उत्पीड़न (धारा 15) अथवा (Coercion)
(2) अनुचित प्रभाव (धारा 16) अथवा (Undue Influence)
(3) कपट (धारा 17) अथवा (Fraud)

---

1. "Two or more Persons are said to can sent when they agree upon the same thing in the same sense". (Sec. 13)

(4) अन्यथा कथन (धारा 18) अथवा (Misrepresentation)

(5) गलती (धारा 20, 21 तथा 22) (Mistake)

वैधता का प्रभाव—स्वतन्त्र सहमति के अभाव में जिस पक्षकार की सहमति स्वतन्त्र नहीं रही थी उसकी इच्छा पर अनुबन्ध शून्यकरणीय होता है। सहमति के अभाव में समझौता शून्य होता है। गलती के आधार पर हुआ अनुबन्ध पूर्णतया शून्य होता है।

1. उत्पीड़न या दबाव या जबर्दस्ती (Coercion) (धारा 15)

उत्पीड़न से आशय—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, "एक पक्षकार द्वारा किसी दूसरे पक्षकार के लिये करार करने के उद्देश्य से कोई ऐसा कार्य करना अथवा करने की धमकी देना जो भारतीय दंड-विधान द्वारा वर्जित है अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए किसी की सम्पत्ति को अवैध रूप से रोकना अथवा रोकने की धमकी देना उत्पीड़न है।"[1]

उत्पीड़न के लक्षण

उत्पीड़न के लक्षण—

1. भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित कार्य को करना।
2. भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित कार्य को करने की धमकी देना।
3. दूसरे पक्षकार के साथ ऐसा कार्य करने या धमकी देने का उद्देश्य करार करना होना चाहिये।
4. उत्पीडन का प्रयोग।
5. स्वयं पक्षकार के विरुद्ध या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध उत्पीड़न का प्रयोग किया जा सकता है।
6. उत्पीड़न का स्थान
7. वैधानिक धमकी

(1) भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal code)—द्वारा वर्जित कार्य को करना करार करने के उद्देश्य से कोई एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के साथ ऐसा कार्य करता है जो भारतीय दण्ड-विधान द्वारा वर्जित है जैसे किसी व्यक्ति को पीटना, मारना, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बाधा पहुँचाना आदि।

उदाहरण—सुरेश राकेश की पिटाई करके उससे उसकी मोटर साईकिल 1000 रुपये में खरीदने के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करवा लेता है। राकेश की इच्छा पर यह अनुबन्ध शून्यकरणीय है।

रंगनायकम्मा बनाम अलवर सेट्टी (Ranganaykamma V/s Alwar setti) के मामले मे एक औरत के पति की मृत्यु के बाद उसके सम्बन्धियों ने यह धमकी दी कि जब तक वह एक विशेष लड़के को गोद नहीं ले लेगी उसके पति के मृत शरीर को दाह-क्रिया के लिए नहीं ले जाने दिया जायेगा। विधवा ने उस लड़के को गोद ले लिया। भारतीय दण्ड-विधान की धारा 296 के अनुसार किसी मृतक के शरीर को दाह-क्रिया के लिये ले जाने से रोकना उत्पीड़न है अतः न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह करार शून्य है।

---

1. "Coercion" is the committing, or threatening to commit any act forbidden by Indian penal code or the unlawful detaining, or threatening to detain, any Property, to the Prejudice of any person whatever, with the intention of Causing any person to enter into an agreement. (Sec. 15)

(2) भारतीय दण्ड-विधान द्वारा वर्जित किसी कार्य को करने की धमकी देना—यदि कोई व्यक्ति भारतीय दण्ड-विधान द्वारा वर्जित किसी कार्य को करने की धमकी देता है तो भी उत्पीड़न माना जाता है। पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर ऐसा करार शून्य होता है।

भारतीय दण्ड-विधान में आत्म-हत्या के प्रयास को अपराध माना है किन्तु आत्म-हत्या के लिए दण्ड का प्रावधान नहीं है किन्तु मद्रास उच्च न्यायालय ने आत्म-हत्या की धमकी को उत्पीड़न माना है।

उदाहरण—अम्मी राजू बनाम सोशम्मा (Ammirazu V/s Seshamma) के मामले में एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री तथा बच्चे को आत्म-हत्या की धमकी देकर उनकी सम्पत्ति के सम्बन्ध में मुक्ति विलेख (Release deed) लिखवा लिया। हाई कोर्ट ने निर्णय दिया कि इस मुक्ति पत्र के लिखवाने में उत्पीड़न का प्रयोग किया गया था। अतः यह अनुबन्ध शून्य है।

(3) दूसरे पक्षकार के साथ ऐसा कार्य करने या धमकी देने का उद्देश्य करार करना होना चाहिये—यदि उत्पीड़न का प्रयोग करने के फलस्वरूप ही करार किया गया हो तो इस अधिनियम के अन्तर्गत उत्पीड़न नहीं कहा जायेगा।

उदाहरण—राम ने श्याम को पिस्तौल दिखाकर एक अनुबन्ध कर हस्ताक्षर करने के लिये प्रेरित किया। यह उत्पीड़न द्वारा प्रभावित अनुबन्ध है।

नरेश ने मनोज से अपने अपमान का बदला लेने के लिये उसे पीटने की धमकी दी है। इसको उत्पीड़न नहीं माना जा सकता क्योंकि इसका उद्देश्य करार करना नहीं है, अपितु अपमान का बदला लेना है।

(4) उत्पीड़न का प्रयोग—उत्पीड़न का प्रयोग किसी तीसरे पक्षकार द्वारा भी हो सकता है अतः यह आवश्यक नहीं है कि उत्पीड़न का प्रयोग अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरुद्ध करे।

उदाहरण—राजेश ने कमलेश का मकान खरीदने के लिए अपने एजेन्ट मुकेश को उसके पास भेजा है। राजेश मुकेश से कहता है कि कमलेश को मारने पीटने की धमकी देकर मकान के प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करवा लें। मुकेश कमलेश को मारने-पीटने की धमकी देकर कमलेश से हस्ताक्षर करवा लेता है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ उत्पीड़न का प्रयोग राजेश के एजेन्ट मुकेश ने किया है। अतः यह अनुबन्ध उत्पीड़न से प्रभावित माना जायेगा।

(5) स्वयं पक्षकार के विरुद्ध या अन्य व्यक्ति के विरुद्ध उत्पीड़न का प्रयोग किया जा सकता है—उत्पीड़न अनुबन्ध के पक्षकार के विरुद्ध ही किया जाय यह आवश्यक नहीं है। उत्पीड़न का प्रयोग किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध भी किया जा सकता है।

उदाहरण—नरेन्द्र वीरेन्द्र के पुत्र का अपहरण करके कहता है कि यदि वह अपना मकान 20,000 रुपये में बेचने के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर नहीं करेगा तो वह उसके पुत्र को जान से मार डालेगा। मकान का अनुबन्ध उत्पीड़न के आधार पर हुआ है और इस उत्पीड़न का प्रयोग उसके पुत्र के विरुद्ध हुआ।

(6) उत्पीड़न का स्थान—भारतीय अधिनियम में यह स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि "यह महत्त्वहीन है कि जिस स्थान पर उत्पीड़न का प्रयोग किया गया है वहाँ भारतीय दण्ड-विधान प्रचलित है या नहीं।"

(7) वैधानिक धमकी—वैधानिक धमकी को उत्पीड़न नही माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति वैधानिक रूप से सम्पत्ति को रोक लेता है तो उसे उत्पीड़न नहीं माना जा सकता। जैसे—महाजन द्वारा ऋणी को वैधानिक ढंग से धमकी देना उत्पीड़न नही है।

उत्पीड़न सिद्ध करने का भार (Burden of Proof)—यह सिद्ध करने का भार कि सहमति उत्पीड़न द्वारा प्रभावित है, पीड़ित पक्षकार पर होगा।

उत्पीड़न के प्रभाव या परिणाम
(Effect of Coercion)

> **उत्पीड़न के प्रभाव—**
> 1. पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर करार व्यर्थ होना है।
> 2. पीड़ित पक्षकार की क्षति-पूर्ति।

(1) पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर करार शून्यकरणीय होता है—जिस व्यक्ति के विरुद्ध उत्पीड़न का प्रयोग किया गया है उसकी इच्छा पर शून्यकरणीय होता है। पीड़ित पक्षकार चाहे तो उस अनुबन्ध का पालन कर सकता है। दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध के पालन के लिए बाध्य कर सकता है।

(2) पीड़ित पक्षकार को क्षति-पूर्ति—अनुबन्ध के पक्षकारो ने कोई धनराशि या वस्तु दी है अथवा प्राप्त की है तो अनुबन्ध शून्य घोषित होने पर उन्हे वस्तु या धनराशि एक दूसरे को लौटानी पड़ेगी।

2. अनुचित प्रभाव (Undue Influence) (धारा 16)

अनुचित प्रभाव की परिभाषा—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16 के अनुसार, "कोई अनुबन्ध उस समय" अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित कहा जाता है, जब पक्षकारो के बीच ऐसे सम्बन्ध है कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभ वित करने की स्थिति मे है और वह दूसरे पर अनुचित लाभ पाने की इच्छा से उस स्थिति को प्रयोग मे भी ला सकता है।"[1]

अनुचित प्रभाव के लक्षण

> **अनुचित प्रभाव के लक्षण—**
> 1. पक्षकारों मे सम्बन्धो की विद्यमानता—
> (i) जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार पर अधिकार रहता हो।
> (ii) विश्वास पर आश्रित सम्बन्ध।
> (iii) मानसिक दशा ठीक न हो।
> 2. आपसी सम्बन्धो का अनुचित लाभ प्राप्त करने मे प्रयोग।
> 3. वास्तव मे अनुचित लाभ उठाया गया हो।

(1) पक्षकारों में सम्बन्धों की विद्यमानता—अनुबन्धों के दोनो पक्षकारों के बीच ऐसे सम्बन्ध विद्यमान हो कि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हो। इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति निम्नलिखित दशाओं मे कही ज ती है :—

(i) जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार पर अधिकार रखता हो जैसे जमींदार तथा किसान, पिता और पुत्र,

1. "A contract is said to be induced by "Under influence" where the relations subsisting between the parties are such that one of the parties is in a position to dominate the will of the other and uses that position to obtain an unfair advantage over the other. (Sec. 16)

ऋणदाता तथा परेशान ऋणी, पति तथा पत्नी, संरक्षक तथा संरक्षित, आयकर अधिकारी तथा करदाता, पुलिस अधिकारी तथा अभियुक्त आदि।

(ii) विश्वासाश्रित सम्बन्ध (Fiduciary relation)—यह तब हो पाता है जब पक्षकारों में विश्वासाश्रित सम्बन्ध विद्यमान हो जैसे वकील एवं मुवक्किल, ट्रस्टी व लाभ पाने वाला, गुरु व शिष्य आदि।

(iii) मानसिक दशा ठीक न हो—जब कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति से अनुबन्ध करता है जिसकी मानसिक शक्ति किसी रोग या अस्थायी रूप से क्षीण हो। जैसे अधिक आयु, बीमारी अथवा मानसिक कष्ट से प्रभावित है।

उदाहरण—(i) कृष्ण अपने लड़के गोपाल को 1000 रुपये देकर 2000 रुपये का हुंडनोट लिखवाता है तो कृष्ण अपने पिता होने के प्रभाव का अनुचित लाभ उठाता है।

(ii) एक वकील अपने मुवक्किल से कहता है कि यदि तुम मुझे 10,000 रुपये नहीं दोगे तो मैं तुम्हारा मुकदमा बिगाड़ दूंगा तो इसे अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित माना जायेगा।

(iii) एक मामले में एक वयोवृद्ध महिला ने अपनी समस्त सम्पत्ति अपने धर्म गुरु को हस्तान्तरित केवल इस दृष्टिकोण से कर दी कि उसकी आत्मा को परलोक में शान्ति मिलेगी तथा उस दान का लाभ प्राप्त होगा। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित था।

(iv) मनोज एक दुर्बल रोगी है उसका आनन्द डाक्टर है। यदि आनन्द, मनोज से कहे कि अगर तुम मुझे 2000 रुपये दो तो मैं तुम्हें तुरन्त स्वस्थ कर दूंगा। यहाँ आनन्द ने अनुचित प्रभाव का प्रयोग किया है।

(2) आपसी सम्बन्धों का अनुचित लाभ प्राप्त करने में प्रयोग—आपसी सम्बन्धों का प्रयोग दूसरे पर अनुचित लाभ कमाने के लिए करना उचित नहीं। यदि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने के लिए अपनी स्थिति का प्रयोग नहीं करता है तो वह अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित नहीं माना जायेगा।

(3) वास्तव में अनुचित लाभ उठाया गया हो—एक पक्षकार से दूसरे ने वास्तव में यदि अनुचित लाभ प्राप्त कर लिया है तभी अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित माना जायेगा।

अनुचित प्रभाव का प्रभाव

अनुचित प्रभाव का प्रभाव—
1. पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर शून्यकरणीय।
2. पूर्ण अनुबन्ध को न्यायालय द्वारा रद्द करना।
3. न्यायालय द्वारा उचित शर्तों पर अनुबन्ध निरस्त करना।

(1) पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर शून्यकरणीय—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 (अ) के अनुसार जब किसी करार की सहमति अनुचित प्रभाव द्वारा प्राप्त की गई है तो जिसकी सहमति इस प्रकार प्राप्त की गई है, उस पक्षकार की इच्छा पर शून्यकरणीय है। पीड़ित पक्षकार ऐसे अनुबन्ध को पूर्ण रूप से

निरस्त करवा सकता है अथवा वह अनुबन्ध के निष्पादन के लिए दूसरे पक्षकार को बाध्य कर सकता है। अथवा—

(2) पूर्ण अनुबन्ध को न्यायालय द्वारा रद्द करना—यदि अनुचित प्रभाव सिद्ध हो जाता है तो न्यायालय ऐसे अनुबन्ध को रद्द करने की आज्ञा दे सकता है। अथवा—

(3) न्यायालय द्वारा उचित शर्तों पर अनुबन्ध निरस्त करना—अनुचित प्रभाव से प्रेरित अनुबन्ध के अन्तर्गत पीड़ित पक्षकार ने कोई लाभ प्राप्त किया है तो न्यायालय ऐसे अनुबन्ध को उचित शर्तों पर रद्द कर सकता है।।

उदाहरण—राम श्याम को 1000 रुपये उधार देता है और श्याम पर अनुचित प्रभाव द्वारा 1500 रुपये का एक प्रतिज्ञा पत्र 15 प्रतिशत की दर से लिखवा लेता है। ऐसी दशा में न्यायालय 1000 रुपये तथा उचित ब्याज के भुगतान का आदेश श्याम को दे सकता है।

अनुचित प्रभाव सिद्ध करने का भार—अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित नहीं है यह सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जो दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में है।

पर्दानशीन स्त्रियाँ (Pardanashin Women)—एक पर्दानशील स्त्री वह है जो देश की परम्परा के अनुसार अथवा अपनी जाति के रीति-रिवाज के अनुसार एकान्त में रहती है, अन्य व्यक्तियों के सामने नहीं आती। ऐसी स्त्रियों को विश्व का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है और इसलिए राजनियम द्वारा उन्हें विशेष रक्षा प्रदान की गई है।

पर्दानशीन औरत के साथ अनुबन्ध करते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये क्योंकि इस तरह के अनुबन्ध में वाद चलने पर पक्षकार को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि :—

(1) अनुबन्ध की शर्तें उचित एवं न्यायपूर्ण हैं।
(2) पर्दानशीन स्त्री को अनुबन्ध की सब बातें बतला दी गयी थी।
(3) उसने अनुबन्ध की सब शर्तों को भली प्रकार वास्तव में समझ लिया था।
(4) अनुबन्ध के सम्बन्ध में उसकी सहमति स्वतन्त्र थी और उसने अनुबन्ध के अपने हितों पर पड़ने वाले प्रभाव को अच्छी तरह समझ लिया था।

कोई स्त्री जो कि अपने आपको पर्दानशीन कहती है उसको यह सिद्ध करना होगा कि वह पूर्ण रूप से पर्दानशीन है, यह सिद्ध करने का भार दूसरे पक्षकार पर होता है कि अनुबन्ध करते समय अनुचित प्रभाव का प्रयोग नहीं किया था और ऐसी स्त्री ने अपनी सहमति स्वतन्त्र रूप से दी थी।

उत्पीड़न तथा अनुचित प्रभाव में अन्तर
(Difference between Coercion & undue Influence)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	उत्पीड़न	अनुचित प्रभाव
1.	परिभाषा	भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, "जब एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को करार करने के उद्देश्य से कोई ऐसा कार्य करता है अथवा करने की धमकी देता है जो भारतीय दण्ड-विधान द्वारा वर्जित है अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए किसी की सम्पत्ति को अवैध रूप से रोकता है अथवा रोकने की धमकी देता है, वह उत्पीड़न है।"	भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16 के अनुसार "कोई अनुबन्ध उस समय अनुचित प्रभाव" द्वारा प्रेरित कहा जाता है जब पक्षकारों के बीच ऐसे सम्बन्ध हैं कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में है और वह दूसरे पर अनुचित लाभ पाने की इच्छा से उस स्थिति को प्रयोग में भी लाये।"
2.	प्रयोग का ढंग	उत्पीड़न में एक पक्षकार की ओर से दूसरे पक्षकार के विरुद्ध शारीरिक बल का प्रयोग करके अथवा शारीरिक बल की धमकी का प्रयोग करके सहमति प्राप्त की जाती है।	अनुचित प्रभाव में नैतिक दबाव द्वारा सहमति प्राप्त की जाती है।
3.	पक्षकार	उत्पीड़न वचनगृहीता अथवा किसी भी अन्य पक्ष के विरुद्ध प्रयोग में लाया जा सकता है।	अनुचित प्रभाव वचनगृहीता द्वारा वचनदाता पर ही डाला जाना चाहिये।
4.	इच्छा को प्रभावित करने की क्षमता	उत्पीड़न में पक्षकार एक-दूसरे की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हों यह आवश्यक नहीं है।	अनुचित प्रभाव का प्रयोग तभी होता है जबकि पक्षकारो में से कोई एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है।
5.	प्रभाव	उत्पीड़न द्वारा प्रेरित अनुबन्ध वचनदाता की इच्छा पर शून्य करणीय है।	वचनदाता की इच्छा पर शून्य करणीय होता है किन्तु, न्यायालय उचित समझे तो ऐसे अनुबन्ध को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से निरस्त कर सकता है।
6.	सम्बन्ध	उत्पीड़न में यह आवश्यक नहीं है कि पक्षकारों के मध्य पहले से कोई निश्चित सम्बन्ध हो।	अनुचित प्रभाव में पक्षकारो मे मध्य पहले से निश्चित सम्बन्ध अवश्य होता है।
7.	स्वभाव	उत्पीड़न हिंसक या भयकर प्रकृति का है।	अनुचित प्रभाव चालाकी तथा सूक्ष्म प्रकृति का है।

(3) कपट(Fraud) (धारा 17) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 17 के अनुसार जब अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा अथवा उसकी उपेक्षा से अथवा उसके एजेन्ट द्वारा दूसरे पक्षकार या उसके एजेन्ट को धोखा देने की इच्छा से या उसको अनुबन्ध के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से निम्नलिखित में से कोई भी कार्य किया जाता है तो उसे कपट कहते हैं .—

(1) किसी असत्य बात को जान-बूझकर सत्य बनाना ।

(2) किसी बात को ऐसे व्यक्ति द्वारा क्रियात्मक रूप से छिपाना जिसका उसे निश्चित ज्ञान या विश्वास है ।

(3) पूरा न करने के विचार से दिया गया कोई वचन ।

(4) कोई भी ऐसा कार्य जो कि दूसरे पक्षकार को धोखा देने के लिए है ।

(5) कोई भी ऐसा कार्य या भूल जिसको राजनियम विशेष तौर पर कपट पूर्ण मानता है ।

(6) उपरोक्त बातों के अलावा कभी-कभी मौन रहना भी कपट माना जाता है ।[1]

कपट के लक्षण
(Elements of fraud)

(1) कपट का कार्य अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा या उसके एजेन्ट द्वारा किया जाना चाहिये— यह आवश्यक है कि अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा या उसकी सहमति से या उसके एजेन्ट द्वारा कपट का कार्य किया जाना चाहिये । यदि कपट किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो उसे कपट नहीं कहा जा सकता है ।

रीसी टिवर सिल्वर माईनिंग कम्पनी बनाम स्मिथ (Reese Tiver silver mining Co. V s Smith) के विवाद में न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि यदि किसी कम्पनी के संचालक एक प्रविवरण प्रकाशित करते हैं जिसमें कुछ गलत बातें लिखकर या झूठी सूचनाएँ देकर किसी व्यक्ति को अंश खरीदने के लिए प्रेरित करते है तो यह माना जायगा कि उस व्यक्ति के साथ कपट किया गया, क्योंकि सचालक प्रविवरण प्रकाशित करने के लिए कम्पनी के एजेन्ट हैं ।

---

1. " Fraud Means and in cluds any of the following acts Committed by a Party to contract or with his connivance or by his agent which intent to deceive another Party thero to or his agent or to Induce him to enter in to the Contract—

(i) The suggestion as a fact, of that which is not true by one who does not believe it to be true,

(ii) The active concealment of a fact by one having knowledge or belief ot the fact,

(iii) a Promise made without any intention of performing it,

(iv) any other act filled to deceive,

(v) any such act or omission as the law specially de cleres or be fraudulent."

[Indian contract Act Sec. 17]

(2) कपट का कार्य धोखा देने के अभिप्राय से हो—कपट का कार्य दूसरे पक्षकार को धोखा देने के उद्देश्य से किया जाना चाहिये। यही नहीं यह भी आवश्यक है कि दूसरे पक्षकार को वास्तव में धोखा हो जाये। यदि दूसरे पक्षकार को धोखा नहीं हुआ है तो उसे कोई वैधानिक आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं है।

(3) कपट का उद्देश्य अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करना हो—यदि पक्षकार द्वारा कपट इस उद्देश्य से किया गया हो कि दूसरा पक्षकार इस आधार पर अनुबन्ध कर ले।

(4) असत्य बात को जानबूझ कर सत्य बताना—यदि कोई व्यक्ति या उसका एजेन्ट किसी असत्य बात को जान बूझ कर सत्य बतलाता है, तथा वह उसकी सत्यता पर विश्वास भी नहीं करता है तब यह कपट कहा जायेगा।

उदाहरण—राम श्याम से कहता है कि उसका कपड़ा शुद्ध ऊन का है जबकि राम जानता है कि ऐसा कथन असत्य है। यह अनुबन्ध श्याम की इच्छा पर शून्य करणीय है, क्योंकि श्याम के साथ कपट किया गया है।

कपट के लक्षण

1. कपट का कार्य अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा या उसके ऐजेन्ट द्वारा किया जाए।
2. कपट धोखा देने के अभिप्राय से हो।
3. कपट का उद्देश्य अनुबन्ध करने के लिये प्रेरित करना हो।
4. असत्य बात जानबूझ कर सत्य बताई गई हो।
5. कपट में कपटकर्ता को सही स्थिति की जानकारी हो।
6. पूरा न करने के अभिप्राय से दिया गया कोई वचन।
7. कोई भी अन्य कार्य जो धोखा देने के उद्देश्य से हो, कपट है।
8. जिसको राजनियम विशेष रूप से कपट पूर्ण घोषित करता है, वह कपट है।
9. मौन द्वारा कपट।

(5) कपट में कपटकर्ता को सही स्थिति की जानकारी होनी चाहिये—कपटकर्ता को सही स्थिति की जानकारी हो तभी कपट कहलायेगा। अगर कपटकर्ता को जानकारी नहीं है, वही कहता है, तो वह कपट नहीं माना जायेगा।

(6) पूरा न करने के अभिप्राय से दिया गया कोई वचन—किसी अनुबन्ध को पूरा न करने के विचार से जब एक पक्षकार कोई वचन देता है तो ऐसा पूरा न करने के उद्देश्य से दिया गया वचन कपट माना जाता है।

(7) कोई अन्य कार्य जो कि धोखा देने के उद्देश्य से किया जाये—ऐसे सभी कार्य कपट के अन्तर्गत सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य धोखा देना हो।

(8) कोई ऐसा कार्यामूल जिसको राजनियम विशेष रूप से कपट पूर्ण घोषित करता है—कोई भी कार्य या भूल जिसे राजनियम द्वारा विशेष रूप से कपटपूर्ण घोषित कर दिया गया है तो वह भी कपट ही माना जायेगा।

(9) मौन द्वारा कपट—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार साधारणतः मौन कपट नहीं होता भले ही उसमें किसी व्यक्ति की अनुबन्ध करने की इच्छा पर प्रभाव पड़े।

उदाहरण—आकाश नीलाम द्वारा विकास को अपना घोड़ा बेचता है। आकाश जानता है कि वह घोड़ा अस्वस्थ है फिर भी विकास को घोड़े की अस्वस्थता के बारे में कुछ नही कहता आकाश का मौन यहाँ कपट नही है।

किन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों मे मौन रहना कपट समझा जाता है :—

(1) जहाँ परिस्थिति ऐसी है कि मौन रहने वाले व्यक्ति को बोलना उसका वैधानिक कर्तव्य है।

समस्त सद्भावना वाले अनुबन्धों मे ऐसी ही परिस्थितियाँ मानी जाती हैं जिनमें अनुबन्ध की महत्त्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध मे मौन रहना कपट माना जाता है। ऐसे सद्भावना वाले अनुबन्ध निम्नलिखित हैं :—

(1) बीमा अनुबन्ध (Contract of Insurance)—सभी प्रकार के बीमे के अनुबन्धों मे बीमा कराने वाले का यह कर्तव्य है कि वह बीमा करने वाले को वे सब बातें बतला दे जो अनुबन्ध करने के निर्णय पर अथवा प्रीमियम निश्चित करने पर प्रभाव डाल सकती हो।

उदाहरण—हेमकान्त जो कि तपेदिक का मरीज है, जीवन बीमा निगम से अपने को पूर्ण स्वस्थ बतलाकर जीवन बीमा करा लेता है। यहाँ पर हेमकान्त ने कपट किया है।

(2) कम्पनी के शेयर खरीदने से सम्बन्धित अनुबन्ध (Contract to Purchase Shares of a company)—कम्पनी के सचालकों का यह वैधानिक कर्तव्य है कि वे प्रविवरण मे उन सब बातों को अवश्य प्रकट कर दें जो अश खरीदने वालों के निर्णय पर प्रभाव डाल सकती है।

(3) साझेदारी के अनुबन्ध (Partnership Contract)—प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह उन समस्त बातो को जो उसे ज्ञात हैं जिनसे दूसरे साझेदार के किसी निर्णय पर प्रभाव पड़ेगा तो समस्त बातें दूसरे साझेदार को बता दें।

(4) गारन्टी के अनुबन्ध (Contract of Gurantee)—ऋणदाता का कर्तव्य है कि वह प्रतिभू को ऋणी से सम्बन्धित वे समस्त बातें बता दे जिनकी उसे जानकारी है जो गारन्टी करने के निर्णय पर प्रभाव डाल सकती हों।

उदाहरण—जगमोहन जानता है कि मुरली मोहन की आर्थिक स्थिति बहुत सोचनीय है और वह कुछ दिनो में दिवालिया हो जायेगा किन्तु, फिर भी वह मुरली मोहन से कहता है, बालकृष्ण के द्वारा गारन्टी दिये जाने पर मैं कर्ज देने के लिए तैयार हूँ। बालकृष्ण गारन्टी दे देता है। यह अनुबन्ध कपट से प्रभावित कहा जायेगा क्योकि जगमोहन का कर्तव्य था कि वह बालकृष्ण को मुरली मोहन की आर्थिक स्थिति के बारे में आवश्यक जानकारी करा दे।

(5) भूमि क्रय-विक्रय सम्बन्धी अनुबन्ध (Contract for Sale and Purchase of Land)—विक्रेता का यह कर्तव्य होता है कि वह भूमि के अधिकार मे विद्यमान अपने उन सम्पूर्ण दोषो को क्रेता को स्पष्ट रूप से बतला दे जिनका उसे ज्ञान है और जो क्रेता के निर्णय को प्रभावित कर सकते हैं।

(6) पारिवारिक समझौते (Family Agreement)—जब किन्ही पारिवारिक विवादों का निपटारा किया जाय तो सभी वातें सद्भावनापूर्ण रूप से स्पष्ट करना प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है।

उदाहरण—यदि कुछ भाई परिवार की सम्पत्ति का बंटवारा करते है, और उनमें से एक जानता है कि कुछ निश्चित जमीनें अन्य जमीनों से अधिक मूल्यवान् हैं और यह तथ्य अन्य भाईयों को प्रकट नहीं करता तो अनुबन्ध निरस्त किया जा सकता है।

(7) विश्वासाश्रित सम्बन्ध वाले अनुबन्ध--यदि कोई अनुबन्ध ऐसे दो पक्षकारों में हो रहा है जिनका आपस मे विश्वासाश्रित सम्बन्ध है जैसे पिता-पुत्र, डॉक्टर-मरीज, वकील-मुवक्किल, अध्यापक-विद्यार्थी, धार्मिक गुरु-शिष्य। इनके साथ अनुबन्ध में सभी वातों को स्पष्ट बतला देना चाहिए।

उदाहरण—हरी अपनी गाय को जो कि अस्वस्थ है अपनी पुत्री योगिता को वेचता है। गाय की अस्वस्थता के बारे मे कुछ भी नही वताता है कुछ दिनो वाद योगिता को गाय की बीमारी का पता चलता है। हरी ने उसे गाय की बीमारी के बारे में कुछ भी नही वताया था जवकि यह वताना उसका कर्तव्य था क्योंकि पिता-पुत्री के बीच विश्वासाश्रित सम्बन्ध है।

(8) विवाह के अनुबन्ध—विवाह के अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों का कर्तव्य है कि वे एक-दूसरे को सभी आवश्यक बातें वतला दे अन्यथा अनुबन्ध को निरस्त करने का अधिकार दूसरे पक्षकार को है।

उदाहरण के लिए—ट्रान्सफर ऑफ प्रापर्टी एक्ट के अनुसार अपने ऋणदाताओ को धोखा देने के उद्देश्य से सम्पत्ति का कोई हस्तान्तरण कपटपूर्ण घोषित है।

मौन रहने का उद्देश्य धोखा देना है अथवा
जहां मौन स्वयं बोलने के बराबर है—

यदि परिस्थितियाँ ऐसी है जिसमें मौन रहना स्वयं वोलने के बराबर है तो ऐसा मौन भी कपट माना जायेगा।

उदाहरण—(i) एक अभिनेत्री हार खरीदने के लिए जौहरी की दुकान पर जाती है उसने एक हार पसन्द किया जिसे वह शुद्ध मोतियों का समझती है, जबकि वास्तव में हार शुद्ध मोतियों का नहीं है इस बात को जौहरी भी जानता है किन्तु, कुछ नही कहता है। अभिनेत्री हार खरीद लेती है, यहाँ जौहरी का बोलना कर्तव्य नही था अभिनेत्री को स्वयं जाच-पड़ताल तथा पूछताछ कर लेनी चाहिए थी। अतः अभिनेत्री अनुबन्ध को कपट के आधार पर निरस्त नही करा सकती है।

(ii) श्याम राम से कहता है यदि आप इसे अस्वीकार नही करते है तो मैं यह समझूंगा कि घोड़ा स्वस्थ है। "यहाँ राम का मौन रहना बोलने के बराबर है।

कपट के स्वरूप
(Types of the Fraud)

कपट के अग्रलिखित तीन स्वरूप होते है :—

(1) सक्रिय छुपाव द्वारा कपट (Fraud by active concealment)—यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे आवश्यक तथ्य को जान बुझकर छुपाता है जिसको बताना उसका कर्तव्य है तथा जो अनुबन्ध के लिए महत्त्वपूर्ण है तो वह कपट का दोषी होगा।

कपट के स्वरूप
1. सक्रिय छुपाव द्वारा कपट।
2. प्रदर्शन द्वारा कपट।
3. मौन द्वारा कपट।

उदाहरण—किसी सम्पत्ति का विक्रेता जिसकी सम्पत्ति गिरवी रखी हुई है यदि क्रेता से यह बात जान बूझकर छुपाता है तो इसे कपट माना जायेगा। स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय के सम्बन्ध में विक्रेता का दायित्व है कि विक्रय की जाने वाली सम्पत्ति के समस्त प्रभारों से क्रेता को जानकारी करा दे।

2. सुझाव द्वारा कपट (Fraud by Suggestion)—यदि किसी अनुबन्ध का कोई एक पक्षकार किसी ऐसी बात को सत्य बताकर प्रदर्शित करता है जो सत्य नहीं है और उसकी सच्चाई में विश्वास भी नहीं करता है तो इस प्रकार का कपट सुझाव द्वारा कपट कहलाता है।

उदाहरण—आनन्द ने धर्मदास से कहा कि उसके पीपे में शुद्ध भैंस का घी है, जबकि आनन्द जानता है कि यह शुद्ध भैंस का घी नहीं है। आनन्द के इस प्रकार के सुझाव पर धर्मदास यह घी खरीदने के लिए सहमत हो जाता है। कपट होने के कारण यह करार धर्मदास की इच्छा पर शून्यकरणीय है।

(3) मौन द्वारा कपट—मौन द्वारा कपट का तीसरा स्वरूप है। इसके बारे में ऊपर बताया जा चुका है।

कपट के प्रभाव
(Effect of Fraud)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत कपट द्वारा प्रचलित अनुबन्ध में पीड़ित पक्षकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं :—

(1) पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध शून्यकरणीय है—कपट द्वारा जिस व्यक्ति की सहमति प्राप्त की गयी है अनुबन्ध उसकी इच्छा पर शून्यकरणीय होता है। किन्तु यदि उसकी सहमति मौन कपट द्वारा ली गयी है तो वह अनुबन्ध को निरस्त नहीं करा सकता क्योंकि उसके पास ऐसे साधन थे कि साधारण प्रयास से ही सत्य का पता लगाया जा सकता था।

कपट के प्रभाव
1. पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध शून्यकरणीय है।
2. अभिपुष्टि की माँग।
3 क्षतिपूर्ति पीड़ित पक्षकार प्राप्त कर सकता है।
4. प्रतिस्थापन की माँग।

(2) अभिपुष्टि की माँग—यदि पीड़ित पक्षकार चाहे तो वह अनुबन्ध की अभिपुष्टि कर सकता है और उन सब शर्तों को पूरा करने के लिए दूसरे पक्षकार को बाध्य कर सकता है।

(3) क्षतिपूर्ति पीड़ित पक्षकार प्राप्त कर सकता है—पीड़ित पक्षकार को यदि कपटपूर्ण सुझाव के द्वारा कोई क्षति होती है तो वह दोषी पक्षकार से उसकी पूर्ति करा सकता है।

(4) प्रतिस्थापन की मांग—पीड़ित पक्षकार ने यदि अनुबन्ध को निरस्त कर दिया है तो वह प्रतिस्थापन की मांग कर सकता है उसका अर्थ है कि यदि कोई धन अथवा सम्पत्ति दूसरे पक्षकार को दी या हस्तान्तरित की गई हो तो वह उसको वापस प्राप्त कर सकता है।

अन्यथा कथन
(Misrepresentation)
(धारा 18)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, अन्यथा कथन निम्न रूपों में किया जा सकता है :—

अन्यथा कथन
1. विध्यात्मक कथन द्वारा।
2. कर्तव्य-भंग द्वारा।
3. अज्ञानता वश।

(1) विध्यात्मक कथन द्वारा (Positive Assertion)—किसी ऐसी बात का विध्यात्मक कथन जो सत्य नहीं है यद्यपि कहने वाला उसके सत्य होने का विश्वास रखता है, अन्यथा कथन कहलाता है। यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य बात है कि कहने वाले के पास इस प्रकार विश्वास करने के लिए कोई उचित आधार नहीं था।

उदाहरण—मोहन, सोहन से कहता है कि मेरी इस जमीन में 500 मन गेहूँ पैदा होता है। ऐसा कहने पर सोहन भूमि को खरीद लेता है। बाद में मालूम होता है कि उस जमीन में केवल 400 मन गेहूँ पैदा होता है। यदि ऐसा विश्वास करने के लिए मोहन के पास कोई उचित आधार नहीं था तो यह माना जायेगा कि मोहन द्वारा अन्यथा कथन किया गया है और अनुबन्ध शून्यकरणीय माना जायेगा किन्तु यदि मोहन के पास इस प्रकार कहने के लिए उचित आधार होता तो यह पारस्परिक गलती मानी जाती।

(2) कर्तव्य-भंग द्वारा (By Breach of Duty)—अधिनियम की धारा 18 (2) के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपना कर्तव्य-भग करता है जिसके परिणामस्वरूप कर्तव्य-भंग करने वाले को लाभ होता है और दूसरे पक्षकार को हानि होती है तो ऐसा कर्तव्य-भंग अन्यथा कथन कहलाता है। निम्नलिखित विशेष परिस्थितियों मे अनुबन्ध के एक पक्षकार का दूसरे पक्षकार के प्रति वैधानिक कर्तव्य है कि वह अपनी समस्त जानकारी को दूसरे पक्षकार के सामने प्रकट कर दे।

(i) सभी पूर्ण सद्भावना के अनुबन्धों में।
(ii) अनुबन्धों में जिनका आपस में विश्वासाश्रित सम्बन्ध है।
(iii) स्थायी सम्पत्ति के विक्रय अनुबन्ध आदि में।

यदि यह कर्तव्य भग धोखा देने के उद्देश्य से न हो तो अन्यथा कथन कहलायेगा।

(3) अज्ञानवश अन्यथा कथन द्वारा गलती (Causing mistake by Innocent misrepresentation)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 (3) के अनुसार जब करार किसी एक पक्षकार को करार की विषय-वस्तु के बारे में गलती करने के लिए प्रेरित करता है चाहे यह अज्ञानवश ही क्यों न किया जाय।

उदाहरण—योगेन्द्र महेन्द्र से कहता है कि मेरा मकान दोष-मुक्त है। इस कथन के आधार पर महेन्द्र मकान खरीद लेता है। योगेन्द्र नहीं जानता था कि उसके मकान में दरार थी जिससे मकान में रहना खतरनाक है। जब महेन्द्र को इस दोष का पता लगता है, तो महेन्द्र अन्यथा कथन के आधार पर अनुबन्ध को शून्य समझ सकता है यदि मकान की नींव में दरार न होकर खिड़कियाँ टूटी थी तो अनुबन्ध शून्यकरणीय न होता क्योंकि खिड़की ऐसा तथ्य नहीं है जो कि अनुबन्ध की विषय-वस्तु को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करें।

अन्यथा कथन का प्रभाव
(Effect of Misrepresentation)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 के अनुसार जिस पक्ष के प्रति अन्यथा कथन का प्रयोग किया गया है उसके निम्नलिखित अधिकार हैं :—

अन्यथा कथन के प्रभाव
1. पीडित पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध शून्यकरणीय है।
2. अनुबन्ध निरस्त करना।
3. अनुबन्ध की अभिपुष्टि।
4 पीड़ित पक्ष प्रतिस्थापन की मांग कर सकता है।

(1) पीड़ित पक्ष की इच्छा पर अनुबन्ध शून्यकरणीय है—अन्यथा कथन के आधार पर किया गया अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर शून्यकरणीय होता है।

(2) अनुबन्ध निरस्त करना—पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त करा सकता है जब तक कि स्थिति इस प्रकार की न हो कि वह साधारण प्रयास से सच्ची बात का पता लगा सकता था।

(3) अनुबन्ध की अभिपुष्टि—पीड़ित पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध की अभिपुष्टि कर सकता है और अनुबन्ध की बातों को पूरा करने के लिए मुकदमा भी कर सकता है।

(4) पीड़ित पक्ष प्रतिस्थापन की मांग कर सकता है—पीडित पक्षकार ने यदि अनुबन्ध को निरस्त कर दिया है तो वह प्रतिस्थापन की मांग कर सकता है किन्तु क्षति के लिए मुकदमा नहीं कर सकता।

कपट और अन्यथा कथन में अन्तर
(Difference between Fraud and Misrepresentation)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	कपट	अन्यथा कथन
1.	उद्देश्य	कपट में असत्य वचन या अन्य किसी कार्य का उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना होता है।	अन्यथा कथन का उद्देश्य धोखा देना नहीं होता है।
2.	अधिकार	कपट से अनुबन्ध में पीड़ित पक्षकार पुनः स्थापना करने के अतिरिक्त अपनी हानि की पूर्ति के लिए भी माँग कर सकता है।	पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को शून्यकरणीय मान सकता है किन्तु क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।
3.	वैधता	कपट की दशा में अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा के बिना कभी भी वैध नहीं हो सकता।	यदि पीड़ित पक्षकार उचित समय में अनुबंध के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करे तो अनुबन्ध वैध हो जाता है।
4.	धाराएँ	कपट का वर्णन धारा 17 में दिया गया है।	अन्यथा कथन का धारा 18 में वर्णन किया गया है।
5.	जाँच के साधन	मौन द्वारा कपट की दशा को छोड़ कर अन्य प्रकार के कपट में दोषी पक्षकार यह नहीं कह सकता कि वादी को सच्चाई का पता लगाने के साधन उपलब्ध थे *या वह सामान्य* परिश्रम द्वारा सत्य का पता लगा सकता था।	दोषी पक्षकार यह कह सकता है कि दूसरा पक्षकार साधारण प्रयत्न से सत्य का पता लगा सकता था।

गलती या भूल
(Mistake)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार "जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अनुबन्ध के किसी महत्त्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में गलती पर हैं तो ऐसी स्थिति में सहमति स्वतन्त्र नहीं की जा सकती और अनुबन्ध शून्य होता है।"[1]

1 "Where both the Parties to an agreement are under a mistake as to matter of Fact essential to the agreement is void" (Sec. 20)

अधिनियम की धारा 20 के क्रियाशील होने के लिए निम्न तीन बातों का होना आवश्यक है :—

(1) अनुबन्ध के दोनों पक्षकार गलती पर हों।
(2) ऐसी गलती तथ्य के सम्बन्ध में होनी चाहिए।
(3) करार के लिए यह तथ्य आवश्यक हो।

उदाहरण—गौरव, कुमार से कुछ माल बेचने के लिए अनुबन्ध करता है और कहता है कि मैं उम्मीद करता हूँ कि मेरा माल इंगलैण्ड से बम्बई के लिए चल चुका है। परन्तु बाद मे पता लगा कि अनुबन्ध करने के एक दिन पहले ही जहाज माल सहित समुद्र में डूब गया था। दोनों ही पक्षकार गलती पर हैं। अतः अनुबन्ध शून्य है।

गलती या भूलों के प्रकार
(Types of Mistakes)

साधारण गलती दो प्रकार की हो सकती है—

(1) तथ्य सम्बन्धी गलती।
(2) राजनियम सम्बन्धी गलती।

(1) तथ्य सम्बन्धी गलती (Mistake as to Matter of Fact)

जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अनुबन्ध की विषय-वस्तु का अस्तित्व मानते हैं जिसका अस्तित्व वास्तव में अनुबन्ध करते समय नहीं था तो अनुबन्ध शून्य होता है।

तथ्य सम्बन्धी गलती निम्नलिखित रूप मे हो सकती है—

(i) विषय-वस्तु के अस्तित्व के सम्बन्ध में गलती—जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार करार की विषय-वस्तु के अस्तित्व के बारे में गलती पर हों तो ऐसी स्थिति में अनुबन्ध शून्य होते हैं। क्योंकि जिस वस्तु का अस्तित्व नही था उसके सम्बन्ध मे अनुबन्ध कैसे हो सकता है।

उदाहरण—रमेश, महेश से उसकी गाय खरीदना स्वीकार करता है। बाद में मालूम होता है कि अनुबन्ध करने के समय गाय मर चुकी थी परन्तु अनुबन्ध के दोनो पक्षकारों को इस बात की जानकारी नही थी अतः करार शून्य है।

(ii) विषय-वस्तु के गुण सम्बन्धी गलती—यदि किसी गलती के कारण विषय-वस्तु जिसके लिए सौदा किया गया है उसमें गुण मौजूद नही हैं तो अनुबन्ध शून्य होता है।

उदाहरण—स्मिथ बनाम ह्यूज (Smith V/s Hughes) का मामला महत्त्वपूर्ण है। ह्यूज का विचार पुराने चावल खरीदने का था लेकिन स्मिथ का अभिप्राय नये चावलो से था। स्मिथ ने नये चावलो का नमूना दिखाया और उनकी किस्म के विषय में कुछ नही कहा। न्यायालय ने ऐसी दशा में अनुबन्ध वैध ठहराया क्योंकि यहाँ गलती पारस्परिक नही थी।

(iii) विषय-वस्तु की पहचान के सम्बन्ध में गलती (Regarding Identity of Subject Matter)—अनुबन्ध के जब दोनो पक्षकार अनुबन्ध की विषय-वस्तु की पहचान के सम्बन्ध मे निश्चित नही है तो ऐसी स्थिति मे अनुबन्ध शून्य होता है।

उदाहरण—रैफिल्स बनाम विचेलहास (Raffles V/s Wichelhaus) का मामला महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में बम्बई से पियरलैस (Pearless) नामक दो जहाज इंगलैण्ड जा रहे थे। क्रेता का आशय एक जहाज से था जबकि विक्रेता का आशय दूसरे जहाज से। न्यायालय में अनुबन्ध की विषय-वस्तु को न पहचानने के कारण अनुबन्ध को शून्य घोषित किया।

(iv) वस्तु के मूल्य के सम्बन्ध में गलती (Regarding Price of Subject Matter) —विषय-वस्तु की कीमत के सम्बन्ध मे वास्तविक गलती हो जाने पर भी अनुबन्ध शून्य होता है।

उदाहरण—वेब्स्टर बनाम सेसिल (Webster V/s Cecil) के विवाद में विक्रेता सम्पत्ति की कीमत 2280 पौण्ड की जगह 1280 पौण्ड लिख गया है, क्रेता ने गलती को जानते हुए भी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अनुबन्ध न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किया गया।

(v) विषय-वस्तु की मात्रा के सम्बन्ध में गलती (Quantity of Subject Matter)—अनुबन्ध के पक्षकार जब अनुबन्ध के विषय-वस्तु की मात्रा भी अलग-अलग समझते हैं तो भी अनुबन्ध शून्य होते है।

उदाहरण— मोहन नामक एक दलाल ने एक ही अनुबन्ध के सम्बन्ध मे क्रय-पत्र तथा विक्रय-पत्र मे अलग-अलग मात्रा लिख दी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि मात्रा सम्बन्धी गलती के कारण अनुबन्ध शून्य है।

(vi) विषय-वस्तु के स्वामित्व सम्बन्धी गलती (Ownership of Subject Matter)—अनुबन्ध के दोनों पक्षकार यदि वस्तु के स्वामित्व के सम्बन्ध में गलती पर हों तो अनुबन्ध शून्य माना जाता है।

उदाहरण—यदि राम एक मकान जिसका वह मालिक नहीं है, श्याम के हाथ बेच रहा है तब यह विक्रय वैधानिक नहीं होगा।

(2) राजनियम के सम्बन्ध में गलती (Mistake as to law) (धारा 21)

(i) देश के सामान्य राजनियम सम्बन्धी गलती—प्रत्येक व्यक्ति अपने देश के राजनियम को जानता है ऐसी उससे आशा की जाती है। अपने देश से आशय उस देश से माना जाता है जहाँ वे पक्षकार अनुबन्ध करते हैं। विदेशी कानून के अलावा किसी भी कानून की गलती आत्म रक्षा का आधार नही बन सकती और भारत में जो नियम प्रचलित हैं, उसकी गलती के कारण अनुबन्ध व्यर्थ नही हो सकता है।

उदाहरण—राम और श्याम एक अनुबन्ध करते हैं जो इस गलत विश्वास पर आधारित है कि एक विशेष ऋण भारतीय लिमिटेशन अधिनियम द्वारा वर्जित है। यह अनुबन्ध शून्य करणीय नही है क्योंकि यहाँ वह राजनियम की भूल से प्रभावित है।

(ii) विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती (Mistake as to Foreign Law)—एक देश के नागरिक से विदेशों के कानून जानने की अपेक्षा नही की जा सकती है अतः विदेशी राजनियम से सम्बन्धित गलती के आधार पर हुआ अनुबन्ध पूर्णतः शून्य होता है।

(iii) व्यक्तिगत अधिकार सम्बन्धी गलती (Mistake as to personal right)—यदि अनुबन्ध किसी व्यक्तिगत अधिकार सम्बन्धी गलती पर आधारित है तो ऐसा अनुबन्ध शून्य होता है। जिन अनुबन्धों में पक्षकार का व्यक्तित्व अधिक महत्त्वपूर्ण है उनमे अन्य कोई व्यक्ति उनके स्थान पर अनुबन्ध नही कर सकता है।

उदाहरण—राम,रहीम से अनुबन्ध करना चाहता है और श्याम को रहीम समझकर उससे अनुबन्ध करता है क्योंकि यहाँ पक्षकारों के पहचान की गलती है अतः अनुबन्ध शून्य है।

गलती के प्रभाव
(Effect of Mistake)

वह पक्षकार जो गलती के कारण अनुबन्ध करता है उसे निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है :—

(1) अपने विरुद्ध चलाये गये मुकदमें से अपनी रक्षा सफलतापूर्वक कर सकता है, अथवा

(2) अनुबन्ध रद्द कर सकता है, अथवा

(3) अनुबन्ध के सम्बन्ध में जो धन उसने दिया है वह उसको वापस ले सकता है।

स्वतन्त्र सहमति के अभाव में अनुबन्ध पर प्रभाव
(Effect of Consent not being Free)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारायें 19, 19A तथा 20 के अनुसार किसी अनुबन्ध के पक्षकारों की सहमति स्वतन्त्र न होने के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं।

स्वतन्त्र सहमति के अभाव में अनुबन्ध पर प्रभाव

1. अनुबन्ध शून्य करणीय होता है।
2. अनुबन्ध की पुष्टि की जा सकती है।
3. क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार।
4. अनुबन्ध को निरस्त किया जाना।
5. करार व्यर्थ होना।

(1) अनुबन्ध शून्य करणीय होता है (धारा 19)—यदि किसी करार में किसी पक्षकार की सहमति उत्पीडन, कपट या अन्यथा कथन द्वारा ली गई है तो करार पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर शून्य करणीय है। यदि अनुबन्ध मौन द्वारा कपट अथवा अन्यथा कथन की दशा में हुआ है तब वह शून्य करणीय नही होगा, जबकि पीड़ित पक्षकार के पास साधारण प्रयत्न से सत्यता की खोज करने के साधन उपलब्ध थे।

(2) अनुबन्ध की अभिपुष्टि की जा सकती है—कपट तथा अन्यथा कथन की स्थिति में यदि पीडित पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध की अभिपुष्टि करके उसको प्रवर्तनीय करा सकता है। (धारा 19)

(3) क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार—पीड़ित पक्षकार को कपट की दशा में क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है। केवल कपट की स्थिति में ही यह अधिकार प्राप्त होता है अन्य दशाओं में नहीं।

(4) अनुबन्ध का निरस्त किया जाना—अनुचित प्रभाव की दशा में अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर शून्य करणीय है इसके अतिरिक्त पीड़ित पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध को पूर्ण रूप से निरस्त करा सकता है, किन्तु यदि पीड़ित पक्षकार ने अनुबन्ध के अधीन कुछ लाभ प्राप्त कर लिया है तो ऐसी स्थिति में अनुबन्ध उन शर्तों पर रद्द किया जा सकता है जो कि न्यायालय की दृष्टि में उचित हों। (धारा 19)

(5) करार शून्य होना—जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर होते हैं, तो वह अनुबन्ध शून्य होता है। (धारा 20)

(6) देश के सामान्य राजनियम से सम्बन्धित गलती करने पर पक्षकारों को अनुबन्ध शून्य करणीय समझने का अधिकार नहीं होता है, परन्तु विदेशी राजनियम के सम्बन्ध मे गलती की दशा में अनुबन्ध शून्य होता है। (धारा 21)

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सहमति की परिभाषा दीजिए। सहमति स्वतन्त्र कब कही जाती है ? अनुबन्ध की वैधता पर इसके प्रभाव की विवेचना कीजिए।

   Define consent, when is consent said to be free ? Discuss its effect on the validity of a contract ?

   (राज. वि. वि 1977, 1981 जोधपुर 1978)

2. किसी ऐसे तथ्य के विषय में चुप रहना जो दूसरे पक्ष की इच्छा को प्रभावित कर सकता है, कपट नहीं होता जब तक कि मामले की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए चुप रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्तव्य है अथवा उसका चुप रहना बोलने के समान है। स्पष्ट कीजिए।

   "Mere silence as to facts likely to affect the willingness of a person to enter into a contract is not fraud, unless the circumstances of the person keeping silence to speak or unless his silence is equivalent to speech." Explain ?

   (राज. वि. वि 1979)

3. कानून के अन्तर्गत "कपट" से आप क्या समझते हैं ? सक्रिय छुपाव व "मौन" में अन्तर स्पष्ट कीजिए। इनमें से प्रत्येक का प्रभाव अनुबन्ध की वैधता पर बतलाइए। उदाहरणों द्वारा व्याख्या कीजिए।

   What amount to fraud in law ? Distinguish between active concealment and mere silence. Discuss the effects of each of them on validity of the contract. Give illustration.

   (राज. वि. वि. 1981 पूरक)

4. निम्नलिखित के अन्तर बताइए—
(क) उत्पीड़न और अनुचित प्रभाव। (जोधपुर वि. वि. 1980, 1982, 1984)
(ख) कपट और अन्यथा कथन। (राज. वि. वि. 1978, 1981)
Distinguish between
(a) Coercion and undue influence
(b) Fraud and Misrepresentation
5. कपट और अन्यथा कथन में क्या अन्तर है ? अनुबन्ध की वैधता पर उनका क्या प्रभाव होता है ?
Distinguish between Fraud and Misrepresentation. What is their effect on the validity of a contract.
6. गलती से आप क्या समझते हैं, अनुबन्ध की वैधता पर गलतियों का क्या प्रभाव पड़ता है ?
What do you mean by mistake ? How does it affect the contract ?
निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(क) स्वतन्त्र सहमति।
(ख) उत्पीड़न। (जोधपुर वि. वि. 1983)
(ग) अनुचित प्रभाव।
(घ) कपट।
(ङ) अन्यथा कथन।
(च) सद्भावना के अनुबन्ध।
Write short note on the following—
(a) Free Consent.
(b) Coercion.
(c) undue influence.
(d) Fraud.
(e) Misrepresentation
(f) Contract of utmost good faith.

□□□

7

न्यायोचित प्रतिफल तथा उद्देश्य

(Lawful Consideration and Object)

विषय-सामग्री—प्रतिफल की परिभाषा, लक्षण, बिना प्रतिफल के करार क्या सदैव शून्य होते है ? अवैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य, अजनबी व्यक्ति अनुबन्ध के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है, अपर्याप्त प्रतिफल, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

प्रतिफल की परिभाषा—सामान्य शब्दों में प्रतिफल का आशय किसी वचन के बदले कुछ प्राप्ति से है। लाभ-हानि, हित-अहित, दायित्व आदि किसी भी रूप में प्रतिफल हो सकता है।

करी बनाम मीसा के मामले में प्रतिफल की निम्न परिभाषा दी गई है, "राज-नियम के विचार में मूल्यवान प्रतिफल जिसमें एक पक्षकार को किसी प्रकार का अधिकार, लाभ या हित प्राप्त होता है, तथा दूसरे पक्षकार को कोई विरति, अहित, हानि या उत्तर-दायित्व को ग्रहण करना या सहन करना हो सकता है।"[1]

ब्लेक स्टोन के अनुसार, "प्रतिफल वह पुरस्कार है जो कि अनुबन्ध करने वाले एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को दिया जाता है।"[2]

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2 (D) के अनुसार, "जब वचन-दाता की इच्छा पर वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने :—

(i) कुछ कार्य किया है या करने से विरत रहा है अथवा

(ii) कुछ कार्य करता है या उसके करने से विरत रहता है अथवा

(iii) कुछ कार्य करने या करने से विरत रहने का वचन देता है तो ऐसा कार्य, विरति या वचन उस वचन का प्रतिफल कहलाता है।"[3]

---

1. "A valuable Consideration in the sense of the any consist either in some right, Interest, Profit or benefit accruing to one party, or some for bearance, detriment loss or responsibility given, suffered or under taken by the other."
   In the English case of currie V/s misa.

2. "*Consideration is the recompense given by the party contracting to the other.*"
   Black Stone

3 "When at the desire of the Promisor, the Promisee or any other person has done [illegible], or promises to do or [illegible] " or Promise is called a [illegible]
   [Sec. 2 (d)]

प्रतिफल के लक्षण या तत्त्व
(Elements of Consideration)

प्रतिफल के निम्नलिखित आवश्यक तत्त्व होते हैं :—

(1) प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर होना चाहिये (Consideration must be at the desire of the Promisor)—हमेशा वचनदाता की इच्छा पर ही प्रतिफल उत्पन्न होना चाहिये। अगर कोई कार्य वचनगृहीता अपनी इच्छा या किसी तीसरे पक्षकार की इच्छा से करता है तब वह वचनदाता के वचन का वैधानिक प्रतिफल नहीं हो सकता है।

दुर्गाप्रसाद बनाम बलदेव (Durga Prasad V/s Baldeo) का मामला इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण है। दुर्गाप्रसाद ने जिलाधीश की प्रार्थना पर एक बाजार का निर्माण कराया। बलदेव ने दुर्गाप्रसाद को वचन दिया कि वह उक्त बाजार मे अपनी एजेन्सी के द्वारा बिक्री पर दुर्गाप्रसाद को कमीशन देगा। न्यायालय ने निर्णय दिया कि दुर्गाप्रसाद ने बाजार जिलाधीश की इच्छा पर बनवाया है अत. दुर्गाप्रसाद कमीशन पाने का अधिकारी नही है।

> प्रतिफल के लक्षण या तत्त्व :—
> 1. प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर हो।
> 2. प्रतिफल वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से हो सकता है।
> 3. प्रतिफल कुछ कार्य करने या न करने के सम्बन्ध मे हो सकता है।
> 4. कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिये।
> 5. प्रतिफल भूत, वर्तमान या भावी हो सकता है।
> 6. प्रतिफल अवैध अनैतिक या लोकनीति के विरुद्ध न हो।
> 7. प्रत्येक अनुबन्ध के लिये अलग प्रतिफल आवश्यक है।

(2) प्रतिफल वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से हो सकता है (Consideration may move from the Promisee or from any other person)—यह आवश्यक नही है कि प्रतिफल वचनगृहीता द्वारा ही दिया जाये वह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी दिया जा सकता है, इसके विपरीत इंगलैण्ड के राजनियम के अनुसार प्रतिफल वचनगृहीता की ओर से ही आ सकता है अन्य पक्षकार की ओर से नहीं।

चिन्नाया बनाम रमैय्या (Chinnaya V/s Ramayya) का मामला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक पिता ने लिखित दान-पत्र द्वारा अपनी समस्त सम्पत्ति अपनी पुत्री रमैय्या के नाम इस शर्त पर कर दी कि रमैय्या उसके भाई चिन्नाया को कुछ निश्चित राशि वार्षिक दिया करेगी। रमैय्या ने इस शर्त को लिखित मे स्वीकार कर लिया। बाद में देना बन्द कर दिया। चिन्नाया द्वारा मुकदमा किया गया। न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि चिन्नाया के अन्य भाई की ओर से अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिफल दिया जा चुका है।

(3) प्रतिफल कुछ कार्य करने या न करने के सम्बन्ध में हो सकता है (Consideration may be to do an act or to abstain from doing)—प्रतिफल की परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रतिफल कुछ कार्य या विरति या वचन हो सकता है।

उदाहरण—(1) रमेश, महेश को अपनी मोटर साईकल 5000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है। महेश इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है और वह भुगतान भी कर देता है तो यह कहा जायेगा कि महेश द्वारा किया गया भुगतान कार्य का प्रतिफल है।

(ii) मोहन, सोहन को 500 रुपये इसलिए देता है कि सोहन, मोहन पर रुपयों के लिए 6 माह तक वाद प्रस्तुत नहीं करेगा, तो यहाँ सोहन को प्राप्त 500 रुपये विरति का ही प्रतिफल है।

(4) कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिये (There must be some consideration)—प्रतिफल की परिभाषा के अनुसार ही कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिये। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के अनुसार प्रतिफल का पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है। हाँ, यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिफल उपयुक्त अथवा पर्याप्त (Adeduate) ही हो।

चिदम्बरा बनाम रेगा के मामले में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश श्री सुब्बाराव ने निर्णय देते हुए कहा है कि प्रतिफल कुछ अवश्य होना चाहिये जिसे केवल पक्षकार ही न माने वरन् राजनियम भी उसे कुछ मूल्य का माने।

उदाहरण—राम अपनी गाय जिसका मूल्य 1000 रुपये है लक्ष्मण को 200 रुपये में बेचने का अनुबन्ध कर लेता है। तो यह अनुबन्ध वैध माना जायेगा क्योंकि राम की अपनी सहमति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है यद्यपि यहाँ अपर्याप्त प्रतिफल है।

(5) प्रतिफल भूत, वर्तमान या भावी हो सकता है (Consideration may past, Present or Future)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (d) की प्रतिफल की परिभाषा का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि प्रतिफल निम्नलिखित तीन प्रकार का हो सकता है :—

(i) भूतकालीन प्रतिफल (Past Consideration)—भूतकाल में किये गये कार्य के बदले यदि कोई वचन दिया जाय तो वह किया गया कार्य भूतकालीन प्रतिफल कहलायेगा।

उदाहरण—नरेश, राकेश से अपना खोया हुआ पुत्र ढूँढ कर लाने को कहता है, राकेश पुत्र को खोज लाता है और नरेश को सुपुर्द कर देता है। बाद में नरेश राकेश को पुत्र को खोजने के कारण 500 रुपये देने का वचन देता है यहाँ नरेश के वचन के लिये भूत प्रतिफल विद्यमान है।

(ii) वर्तमान प्रतिफल (Present Consideration)—जबकि कोई कार्य अथवा विरति अनुबन्ध करने के समय ही की जाती है अथवा वह प्रतिफल जो वचन के साथ ही साथ निष्पादित होता है वर्तमान प्रतिफल कहलाता है।

उदाहरण—गोविन्द अपनी मोटर साईकिल, सन्तोष को 5000 रुपये में बेचने को सहमत हो जाता है। सन्तोष उसी समय गोविन्द को 5000 रुपये दे देता है यहाँ सन्तोष के लिए मोटर साईकिल वर्तमान प्रतिफल है जबकि गोविन्द के लिए 5000 रुपये वर्तमान प्रतिफल हैं।

(iii) भावी प्रतिफल (Future Consideration)—जब कोई व्यक्ति वर्तमान में भविष्य में कोई कार्य करने या कार्य से अलग रहने का वचन देता है, तो ऐसा वचन अनुबन्ध के लिये भावी प्रतिफल कहलाता है।

उदाहरण—अमित दिलीप की लड़की से शादी करने का वचन देता है और दिलीप अमित को इस वचन के लिए 2000 रुपये देने का वचन देता है तो यहाँ प्रत्येक पक्षकार का वचन दूसरे पक्षकार के वचन का भावी प्रतिफल है।

(6) प्रतिफल अवैध अनैतिक या लोक नीति के विरुद्ध नहीं होना चाहिये (Consideration must not be illegal immoral or opposed to Public Policy)— वैध अनुबन्ध के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रतिफल वैध होना चाहिये। करार का प्रतिफल यदि अवैधानिक है या अनैतिक है तो करार शून्य होगा। भारतीय अधिनियम की धारा 23 के अनुसार निम्नलिखित प्रतिफल अवैधानिक माने जाते हैं।

(i) यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है अथवा
(ii) यदि वह इस प्रकार का है कि यदि अनुमति दे दी जाय तो यह किसी राजनियम की व्यवस्था को निष्फल कर देगा अथवा
(iii) प्रतिफल का उद्देश्य कपटपूर्ण है, अथवा
(iv) यदि उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचती है।
(v) न्यायालय उसको अनैतिक अथवा लोक-नीति के विरुद्ध समझता है।

उदाहरण—कालूराम, लालूराम को 1000 रुपये देने का करार करता है, यदि लालूराम भोलेराम की पिटाई कर दे।। इस करार में प्रतिफल अवैधानिक है, अतः शून्य है।

(7) प्रत्येक अनुबन्ध के लिए अलग प्रतिफल आवश्यक है—प्रत्येक अनुबन्ध के लिए अलग प्रतिफल होना चाहिये। एक पक्षकार के साथ यदि दो या अधिक अनुबन्ध किये जायें तो भी प्रत्येक अनुबन्ध के लिए प्रतिफल पृथक्-पृथक् ही होना चाहिये।

बिना प्रतिफल के करार क्या सदैव शून्य होते हैं ?

अथवा

क्या बिना प्रतिफल का अनुबन्ध शून्य होता है ?

(Is a contract without Consideration void ?)

सामान्यतः कोई भी ऐसा करार जो बिना प्रतिफल के है, शून्य माना जाता है। सालमंड तथा विनफील्ड (Salmand and Winfield) के अनुसार, "प्रतिफल के अभाव में दिया गया वचन एक सौदा (bargain) है।" भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के प्रारम्भ से बतलाया है—"कोई भी करार जो बिना प्रतिफल के है शून्य है।" (An agreement without Consideration is void.)

किन्तु धारा 25 के अधीन कुछ *परिस्थितियाँ ऐसी हैं* जिनमें प्रतिफल के बिना भी वैध करार किया जा सकता है ये अपवाद निम्नलिखित हैं :—

(1) स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण वचन (Prómise on account of love and affection)—एक करार बिना प्रतिफल के भी वैध माना जाता है यदि वह लिखित है तथा उसकी रजिस्ट्री की जा चुकी है। वह स्वाभाविक प्रेम व स्नेह के कारण ऐसे पक्षकारों के बीच किया गया है जो कि एक-दूसरे के निकट सम्बन्धी है।

बिना प्रतिफल के अनुबन्ध शून्य होते हैं : *अपवाद* :—
1. स्वाभाविक प्रेम या स्नेह के कारण वचन।
2 स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति।
3. अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का वचन।
4. एजेन्सी के निर्माण का अनुबन्ध।
5. दान एवं भेंट।
6. निःशुल्क निक्षेप।

उदाहरण—(i) गोविन्द अपनी पत्नी सन्तोष को प्रेम वश 5000 रुपये देने का वचन देता है। गोविन्द अपने इस वचन को लिखित रूप में प्रमाणित कर देता है और उसकी रजिस्ट्री करा देता है। यह अनुबन्ध बिना प्रतिफल के भी वैध माना जायेगा।

(ii) राधेश्याम अपने दामाद गोविन्द को स्नेहवश अपनी सम्पत्ति में से 5000 रुपये देने के लिए एक प्रपत्र लिखकर रजिस्टर्ड करवा देता है यह अनुबन्ध वैध है।

(iii) नारायण ने अपनी पत्नी के रात-दिन के झगड़ों से तंग आकर एक करार किया जिसमें पत्नी को अलग से रहने तथा भरण-पोषण की सुविधाओं के लिए प्रतिमाह एक निश्चित धनराशि देने का वचन दे दिया। यह करार लिखित एवं पंजीकृत करवा लिया था तथा उसमें उन दोनों के बीच हुए कुछ झगड़ों तथा विवादों का उल्लेख किया गया था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह करार स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित होकर नहीं किया गया था अतः नारायण की पत्नी इसको न्यायालय से लागू नहीं करवा सकती है।

(iv) विकास अपनी सम्पत्ति में से अपनी रखैल को 10,000 रुपये का वचन देता है। यह अनुबन्ध प्राकृतिक प्यार के परिणामस्वरूप नहीं है, अतः रखैल यह राशि प्राप्त नहीं कर सकती है।

(2) स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति का वचन—यदि ऐसे व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करने का वचन है जिसने पहले ही वचनदाता के लिए स्वेच्छा से कोई कार्य किया है अथवा कोई ऐसा कार्य किया था जिसको करने के लिए स्वयं वचनदाता वैधानिक रूप से बाध्य था—प्रतिफल के बिना भी वैध होता है।

उदाहरण—(i) लोकेश, हरी का रास्ते में गिरा हुआ मनीबेग पाकर हरी को देता है। हरी लोकेश को 100 रुपये देने का वचन देता है। यहाँ हरी ने मनीबेग लौटाने का कार्य स्वेच्छा से किया। यह मान्य अनुबन्ध है।

(ii) मोहन, सोहन की लडकी को मोटर कार दुर्घटना होने से बचा लेता है इस पर सोहन, मोहन को 500 रुपये देने का वचन देता है। यह मान्य अनुबन्ध है।

(iii) धीरज कौर बनाम विक्रमजीत सिंह का मामला इस सम्बन्ध में विशेष महत्वपूर्ण है। इस मामले में धीरज कौर ने अपनी इच्छा से विक्रमजीत की कुछ सेवा की। विक्रमजीत सिंह ने धीरज कौर द्वारा की गई सेवा की क्षतिपूर्ति में कुछ रुपये देने का वचन दिया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह एक वैध अनुबन्ध है।

(3) अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का वचन—यहाँ करार अवधि वर्जित ऋण को पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से भुगतान करने का वचन है तथा लिखित और वचनगृहीता द्वारा अथवा अधिकृत एजेन्ट द्वारा-हस्ताक्षरित है। ऐसे अनुबन्धों में निम्न-लिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिये :—

(i) यह वचन लिखित होना चाहिये तथा ऋणी द्वारा या उसके अधिकृत एजेन्ट द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिये।

(ii) ऐसा अनुबन्ध स्पष्ट होना चाहिये अर्थात् गर्भित अनुबन्धों की मान्यता नहीं होती है।

(iii) ऐसा अनुबन्ध शर्त-सहित तथा शर्त-रहित हो सकता है। शर्त-सहित होने की स्थिति में अनुबन्ध को प्रवर्तित कराने से पूर्व उस शर्त को पूरा करना पड़ता है।

उदाहरण—(i) राम ने श्याम से 10,000 रुपये का ऋण लिया और एक प्रतिज्ञा-पत्र लिख कर श्याम को दे दिया। किन्तु कुछ समय के बाद राम की मृत्यु हो गई। बाद में श्याम ने राम की विधवा स्त्री से उस अवधि-वर्जित ऋण के लिए एक नया प्रतिज्ञा-पत्र अपने नाम से लिखा लिया उसने भी उसका भुगतान करने से इन्कार कर दिया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि राम की पत्नी को कोई प्रतिफल नही मिला अत: भुगतान के लिए बाध्य नहीं है।

(ii) अनुराग ने 5000 रुपये बिहारी से ऋण लिया था जो अवधि वर्जित हो गया है। इसके बावजूद अनुराग उस ऋण को चुका देने की प्रतिज्ञा लिखकर और उस पर हस्ताक्षर कर बिहारी को दे देता है यह वैध अनुबन्ध है।

(4) एजेन्सी के निर्माण का अनुबन्ध—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 185 के अनुसार एजेन्सी के अनुबन्ध के लिए प्रतिफल की आवश्यकता नही है।

(5) दान एवं भेंट—यदि कोई दान दे दिया गया है तो यह बिना प्रतिफल के भी वैध होगा किन्तु दान देने का वचन वैध अनुबन्ध नही होगा ।

उदाहरण—कमल, विमल स्कूल के मैनेजर को 2000 रुपये दान देने का वचन देता है। राजनियम द्वारा यह करार प्रवर्तनीय नहीं है।

(ii) राम ने श्याम को अपना रेडियो दान में दे दिया यह वैध हस्तान्तरण है।

(6) नि:शुल्क निक्षेप—नि:शुल्क निक्षेप मे प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं है अत. नि:शुल्क निक्षेप मे प्रतिफल नही होता। फिर भी निक्षेपगृहीता तथा निक्षेपी को अनुबन्धों को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करवाने का अधिकार होता है।

अवैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य
(Unlawful Considreation and object)

प्रत्येक करार जिसका प्रतिफल अथवा उद्देश्य अवैधानिक हो राजनियम की दृष्टि से शून्य होता है। धारा 23 के अनुसार निम्नलिखित दशाओं को छोड़कर प्रतिफल अथवा उद्देश्य वैध माना जाता है :—

(1) यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित हो (It is Forbidden by Law)—यदि किसी अनुबन्ध का वचन अथवा वचन का प्रतिफल अथवा उद्देश्य किसी राजनियम द्वारा वर्जित है तो वह अवैध होता है और इसलिए अनुबन्ध शून्य होता है।

उदाहरण (i) अजय के 10 वर्षीय पुत्र के विवाह के लिए विजय ने उसे 5,000 रुपये ऋण दिया। बाल विवाह निषेध अधिनियम के अनुसार अवयस्क का विवाह वर्जित है। अत: निर्णय दिया गया कि विजय इस ऋण को अजय से प्राप्त नहीं कर सकता है।

(ii) राकेश और नरेश एक बैंक को लूटने तथा लूट द्वारा प्राप्त धन को बराबर-बराबर आपस मे बाँटने का करार करते हैं। यह कार्य भारतीय दण्ड-विधान द्वारा वर्जित होने के कारण यह करार शून्य है।

(2) यदि अनुबन्ध इस प्रकार का हैं एक अनुमति दे दी जाय तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा। (If it is of such a nature that if permitted it would defeat the provisions of any Law)—यदि किसी अनुबन्ध का प्रतिफल अथवा उद्देश्य ऐसा है कि वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा तो प्रतिफल व उद्देश्य अनुबन्ध अवैधानिक माने जाते है और शून्य होता है।

(i) अजय ने शीला से विवाह किया। अजय के साथ यह करार हुआ कि व सदैव अपनी सास गायत्री के मकान पर ही रहेगा और उसकी पत्नी शीला अपने पति अजय के साथ अन्य स्थान पर नही रहेगी। यह हिन्दू राजनियम की व्यवस्थाओं के विरुद्ध होने के कारण अवैध है।

(3) यदि वह कपटपूर्ण है (If it is fraudulent)—जब किसी अनुबन्ध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को धोखा देना है तो वह अनुबन्ध शून्य होता है।

उदाहरण (i) अमर जो ऋणी है अपने ऋणदाताओं से अपनी सम्पत्ति को बचाने के उद्देश्य से उसका हस्तान्तरण अपनी पत्नी को कर देता है। तो यहाँ अनुबन्ध का उद्देश्य कपटपूर्ण होने के कारण शून्य है।

(ii) राम, श्याम के साथ ऐसी जमीन को बेचने का करार करता है जिसको राम को बेचने का अधिकार नहीं है। करार का उद्देश्य श्याम का धोखा देना होने के कारण शून्य है।

अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य—

1. यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित हो।
2. यदि वह अनुमति मिल जाने पर राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर दे।
3. यदि वह कपटमय है।
4. व्यक्ति या सम्पत्ति को हानि पहुँचती है।
5. न्यायालय यदि उसे अनैतिक समझता है।
6. यह लोक नीति के विरुद्ध हो।

(i) विदेशी शत्रु के साथ व्यापार
(ii) दलाली लेकर विवाह करने का करार।
(iii) अनुचित रूप से मुकदमें बाजी को प्रोत्साहन देने का करार।
(iv) पैतृक अधिकार मे रुकावट डालने वाले करार।
(v) सार्वजनिक पदों की बिक्री
(vi) कर चोरी के लिये करार
(vii) दण्डनीय मामलों को दबाने के करार।
(viii) न्याय सम्बन्धी कार्यवाही में बाधक करार।
(ix) लिमिटेशन अधिनियम की अवधि मे परिवर्तन करने वाले करार।
(x) एकाधिकार निर्माण करने के करार
(xi) वैवाहिक सम्बन्धों में बाधक करार।
(xii) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करने वाले करार।
(xiii) न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त करने के करार।
(xiv) चुनावों को प्रभावित करने वाले करार।

(4) व्यक्ति या सम्पत्ति को हानि पहुँचाना (It involves or implies injury to the person or property of an other)—ऐसा कोई करार जिसका उद्देश्य दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचाना है—शून्य होता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत या सम्पत्ति को हानि पहुँचाना अवैधानिक है।

उदाहरण—(i) अमर अकबर से कहता है कि यदि तुम एन्थोनी के मुकदमे से, जिसमें तुम गवाही दे रहे हो, निश्चित तारीख को अनुपस्थित हो जाओ तो मैं तुम्हें 500 रुपये दूंगा। एन्थोनी के व्यक्तित्व तथा उसकी सम्पत्ति दोनों की हानि होने के कारण यह अनुबन्ध अवैध है।

(ii) आकाश ने विकास के साथ यह अनुबन्ध किया कि वह राकेश के विरुद्ध कोई समाचार प्रकाशित करे। आकाश ने भी वचन दिया कि विकास के विरुद्ध कोई कार्यवाही होने पर आकाश उसकी क्षति-पूर्ति करेगा यहाँ यह करार शून्य है क्योंकि इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति के स्वामित्व को हानि पहुँचाना है।

(5) न्यायालय यदि उसे अनैतिक समझता है (If the court regards it as immoral)—यदि करार का उद्देश्य व्यक्तियों के बीच अनैतिक सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना होता है तो वह अनैतिक कहलाता है। ऐसे करार शून्य होते हैं।

घेरुलाल पारेख बनाम कुमारी माया के मामले में न्यायाधीश सुब्बाराव ने निम्नलिखित करारों को अनैतिक करारों में सम्मिलित किया है—"रखैल रखने के करार, वैश्यालय में अथवा एक वैश्या द्वारा अपने व्यवसाय चलाने के लिए आवश्यक वस्तुओं को किराये पर देने या बेचने के करार, भविष्य में अवैध सहवास के लिए धन देने के लिए करार, तलाक देने के लिए प्रोत्साहित करवाकर उससे शादी करने का करार आदि अनैतिक होने के कारण शून्य है।

नागरातम्बा बनाम कुनुकू रमैय्या के मामले में निर्णय दिया गया था कि भूतकालीन सहवास के लिए धन या सम्पत्ति देने का करार एक अच्छा प्रतिफल है। परन्तु भविष्य में सहवास के लिए भुगतान करने का वचन अप्रवर्तनीय है।

उदाहरण—(i) मनचले ने अपना मकान एक औरत को 1000 रुपये प्रतिमाह किराये पर दिया, यह जानते हुये कि वह औरत वहाँ वैश्यावृत्ति करेगी। इस करार का उद्देश्य अनैतिक होने के कारण शून्य है।

(ii) अमर अपनी पुत्री को पर-पुरुष सहवास के लिए भाड़े पर देने का करार करता है। यह अनैतिक होने के कारण शून्य है।

(iii) अमर ने अकबर व उसकी पत्नि को इसलिए भेंट देने का करार किया कि अकबर, अमर को अपनी पत्नी के साथ सहवास करने देगा। यह करार शून्य है। ऐसे मामलों में सम्पत्ति (भेंट) जिस स्थान पर है वहीं रहेगी अर्थात् यदि वह अकबर या उसकी पत्नी के पास है तो अमर उसको वापस नहीं ले सकता। यदि अमर के पास है तो अकबर उसे प्राप्त नहीं कर सकता है।

(6) यह लोक-नीति के विरुद्ध है (It is opposed to Public-policy)—वे करार जो देश व जनता के साधारण कल्याण के प्रतिकूल है, लोक-नीति के विरुद्ध समझे

जाते हैं। लोक-नीति के सिद्धान्तों के आधार पर तथा विभिन्न न्यायालयों के निर्णयों के आधार पर निम्नलिखित करार लोक-नीति के विरुद्ध माने गये हैं :—

(1) विदेशी शत्रु के साथ व्यापार करना (Trading with the enemy)—विदेशी शत्रु से हमारा आशय ऐसे देश के रहने वाले व्यक्तियों से है जिसका भारत के साथ युद्ध चल रहा हो या युद्ध की घोषणा की जा चुकी हो। भारत सरकार की अनुमति के बिना शत्रु के साथ किया गया करार लोक-नीति के विरुद्ध माना जाता है।

(2) दलाली लेकर विवाह कराने का करार (Marriage brokerage agreement)—ऐसे अनुबन्ध व्यक्तियों में विवाह कराने का प्रतिफल प्राप्त करने के वचन से किये जाते हैं। एक व्यक्ति कुछ धन के बदले दूसरे व्यक्ति के लिए वर या वधु प्राप्त कराने का वचन देता है अतः दलाली लेकर विवाह कराने वाले अनुबन्ध लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण शून्य होते हैं।

उदाहरण—अमित किशोर से कहता है कि यदि वह किसी लड़की से उसकी शादी करवा दे तो वह उसे 1000 रुपये देगा। लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण यह अनुबन्ध शून्य है।

(3) अनुचित रूप से मुकदमेबाजी को प्रोत्साहन देने वाले करार (Agreements for the improper Promotion of Litigation)—इससे सम्बन्धित करारों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है—

(A) भरण-पोषण (Maintenance)—जब कोई व्यक्ति बिना अधिकार के किसी पक्षकार को धन द्वारा या किसी दूसरी तरह से मुकदमा चलाने या मुकदमें की रक्षा के लिए सहायता पहुँचाता है जिसमे उसका कोई हित नही है तो वह मेन्टीनेन्स (Maintenance) का करार कहलाता है।

(B) वादक्रय (Champerty)—वादक्रय के करार में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को मुकदमें के द्वारा पुनः सम्पत्ति प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है और बदले में वाद से प्राप्त सम्पत्ति में कोई हिस्सा लेता है, यह वादक्रय का करार कहलाता है।

इंगलैण्ड में वाद-पोषण तथा वादक्रय दोनों ही प्रकार के करार शून्य माने जाते हैं जबकि भारत मे ऐसे करार उस समय तक शून्य नही माने जायेंगे जब तक कि व्यवहार स्पष्ट रूप से कठोर एवं अनुचित न हों तथा अनुचित उद्देश्य से न किये गये हों।

कुँवर रामलाल बनाम नीलकान्त का मामला महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में वादी ने प्रतिवादी के उन सारे खर्चों का भुगतान करने के लिए करार किया था जो प्रतिवादी की सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए मुकदमा चलाने में खर्च होगें। प्रतिवादी ने इसके बदले मुकदमा जीतने पर जितनी सम्पत्ति मिलेगी उसका कुछ भाग वादी को देने के लिए वचन दिया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि वादी केवल उतना ही धन ब्याज के साथ ले सकता है जो उसने उचित रूप से इस मुकदमें मे खर्च किया है।

(4) पैतृक अधिकार में रुकावट डालने वाले करार (Agreements restraining the parental rights)—अवयस्क बच्चों की देखरेख की जिम्मेवारी साधारणतः पिता की होती है। पिता की अनुपस्थिति में माता संरक्षिका मानी जाती है। यदि कोई ऐसा

अनुबन्ध किया जाता है जिससे माता-पिता का यह अधिकार समाप्त होता है तो वह अनुबन्ध लोक-नीति के विरुद्ध माना जाता है, अतः शून्य है।

उदाहरण – गिन्दु बनाम श्रीमति एनी बेसेन्ट के विवाद में G ने अपने दो अवयस्क बच्चों के सरक्षण का अधिकार A (श्रीमति एनी बेसेन्ट) को सौंप दिया था। तथा G ने इस करार को रद्द न करने का वचन भी दिया। G द्वारा बच्चों को पाने के लिए वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय ने निर्णय दिया कि श्रीमती एनी बेसेन्ट को बच्चे G को लौटाने पड़ेगें।

(5) जन-जीवन के क्षेत्र में अवैध व्यापार (Traffic in Public offices)—जिसका उद्देश्य धन के बदले कोई सरकारी पद या नौकरी दिलाना होता है तो ऐसा करार लोक-नीति के विरुद्ध माना जाता है क्योकि जन-लाभ के लिए कार्यालयों में जहाँ तक हो सके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ही नियुक्त किये जाने चाहिये।

उदाहरण—राम, श्याम को सरकारी नौकरी दिलवाने का वचन देता है। श्याम इस बात के लिए राम को 1000 रुपये देने का वचन देता है। प्रतिफल अवैधानिक होने के कारण यह करार शून्य है।

(6) कर-चोरी के लिए करार (Agreements to defraued Revenue)—कर-चोरी के करार भी लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण शून्य होते हैं।

(7) दण्डनीय मामलों को दबाने के करार (Agreement for s'illing criminal Prosecution)—किसी के दण्डनीय अपराध को छिपाने के लिए किया गया करार शून्य होता है। यदि किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है तो उसे दण्ड अवश्य ही मिलना चाहिये।

उदाहरण—राम, सोहन की हत्या कर देता है और रमेश उसे देख लेता है। राम, रमेश को 1000 रुपये देने का वचन देता है कि वह यह बात किसी को नहीं बतायेगा। दण्डनीय अपराध दबाने का प्रयास किया जा रहा है अतः यह करार लोक-नीति के विरुद्ध होने से शून्य है।

(8) न्याय सम्बन्धी कार्यवाही में बाधक करार (Agreements Interfering with course of Justice)—ऐसे करार जिनका उद्देश्य न्यायाधीशों पर अनुचित प्रभाव डालना हो, लोक नीति के विरुद्ध माने जाते हैं, अतः शून्य हैं।

उदाहरण—लोकेश न्यायालय के न्यायाधीश हरीश को 500 रुपये देने का करार करता है यदि न्यायाधीश उसके पक्ष में निर्णय दे दे। यह करार शून्य है।

(9) परिसीमन अधिनियम की अवधि में परिवर्तन करने वाले करार (Agreement to alter the period in Limitations Act)—वे सभी करार जो परिसीमन अधिनियम द्वारा निर्धारित समय में कमी या वृद्धि करते हैं, शून्य होते हैं।

उदाहरण—रमेश से हरीश 5000 रुपये का ऋण लेता है और प्रतिज्ञा-पत्र लिख-कर रमेश को देता है। प्रतिज्ञा-पत्र में यह बात लिख दी गई कि रमेश ऋण देने की अवधि के तीन वर्ष बाद भी हरीश के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकेगा। परि-सीमन अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि-सीमा में परिवर्तन किये जाने के कारण लोक-नीति के विरुद्ध है, अतः शून्य है।

(10) एकाधिकार निर्माण करने के करार (Agreements creating monoplies)— एकाधिकार उत्पन्न करने वाले करार लोक-नीति के विरुद्ध माने जाते हैं, अतः ऐसे अनुबन्ध शून्य होते हैं।

(11) वैवाहिक सम्बन्धों में बाधक करार (Agreements Interfering with matrial relations)— वैवाहिक सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने वाले सभी समझौते अमान्य होते हैं।

उदाहरण— किसी महिला को इस बात के लिए रुपया उधार देने का समझौता करना कि वह अपने पति को तलाक (divorce) देकर दूसरे व्यक्ति से विवाह कर ले। इससे लोगों को वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ने को प्रोत्साहन मिलता है इसलिए लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण यह अमान्य है।

(12) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करने वाले करार— ऐसा करार जिससे किसी व्यक्ति या समुदाय की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन होता है, लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण शून्य है।

रामा शास्त्रीयर बनाम अम्बेला कोरेन के मामले में ऋणी ने एक बोण्ड में ब्याज देने के बदले बहुत ही कम मजदूरी पर मजदूरी करने का वचन दिया था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह करार वैधानिक ढंग से लागू नहीं कराया जा सकता है।

(13) न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त करने का करार (Agreements to outs the Jurisdiction of Courts)—यदि किसी करार के द्वारा किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र मे कमी आती है तो ऐसी स्थिति में करार लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण शून्य होगा।

(14) चुनाव को प्रभावित करने वाले करार (Agreements to Influence elections)—कोई प्रत्याशी चुनावों को प्रभावित करने के उद्देश्य से मतदाताओं या सम्बन्धित अधिकारी से करार करता है तो ऐसे करार लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण शून्य हैं।

(15) धोखा देने के उद्देश्य से नीलामी में बोली लगाने के करार (Agreements not to bid with a view to deceive)—नीलामी की बिक्री में बोली न बोलने का उद्देश्य किसी पक्षकार को धोखा देना है तो करार शून्य होता है।

अनजबी व्यक्ति अनुबन्ध के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। (Stranger to contract can not sue)—अनुबन्ध में जो व्यक्ति किसी प्रकार का कोई पक्षकार नही है और अनुबन्ध में जिसका कोई सम्बन्ध नही है वह अनुबन्ध के पक्षकारों पर अनुबन्ध को प्रवर्तित करने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। भारतीय तथा अंग्रेजी दोनों ही अधिनियमों के अनुसार अनजबी व्यक्ति अनुबन्ध के लिए तीसरे पक्षकार पर वाद प्रस्तुत नही कर सकता है।

उदाहरण—डीलक्स टायर कम्पनी ने मंगलेश को विक्रय अभिकर्ता नियुक्त किया। मंगलेश अपने कार्यों को प्रतिपादित करवाने के लिए सन्तोष कुमार को अपना उप-प्रतिनिधि नियुक्त करता है। डीलक्स टायर कम्पनी को सन्तोष कुमार के द्वारा मूल्य-सूची से कम माल बेचने पर प्रति इकाई 3 पौण्ड देने का अनुबन्ध किया जाता है। सन्तोष कुमार के द्वारा दो कवर अनुबन्ध की शर्तों के विपरीत विक्रय करने पर डीलक्स टायर कम्पनी ने 10 पौण्ड

के लिए सन्तोष कुमार पर वाद प्रस्तुत किया मंगलेश और सन्तोष कुमार के बीच हुए अनुबन्ध को डीलक्स टायर कम्पनी लागू नहीं करवा सकती है। क्योंकि यह अनुबन्ध के लिये अजनबी व्यक्ति था। यह निर्णय किया गया था।

अपवाद

(1) प्रन्यास में हित रखने वाला व्यक्ति उन सभी अधिकारों को कानूनी रूप से प्रवर्तित करवा सकता है जो उसे प्रन्यास के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं।

(2) जब प्रतिवादी अपने आपको तीसरे पक्षकार का एजेन्ट घोषित करता है।

(3) अवयस्क के अनुबन्धों में प्रावधानों की स्थिति में अवयस्क कभी भी (वयस्क होने के बाद भी) दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध के पालन के लिये बाध्य कर सकता है।

(4) जब तीसरे पक्षकार के हित में कोई प्रभार उत्पन्न किया गया हो तो ऐसे प्रभार में हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा अनुबन्ध को प्रवर्तित करवाया जा सकेगा।

(5) हस्तांकित की स्थिति में अनुबन्ध का हस्तांकनकर्ता उस अनुबन्ध को प्रवर्तित करवा सकता है।

(6) राजकीय प्रापक की स्थिति में दिवालिया व्यक्ति से सम्बन्धित मामलों के लिए तीसरे पक्षकारों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(7) पारिवारिक निपटारे की स्थिति में भी अजनबी का सिद्धान्त लागू नहीं होता।

अपर्याप्त प्रतिफल
(Inadeduate Consideration)

प्रतिफल कितना होना चाहिये ? अधिनियम में कहीं भी इस बात की ओर संकेत *नहीं किया गया है। भारतीय अनुबन्ध* अधिनियम की धारा 25 के नीचे "व्याख्या 2" में बतलाया गया है केवल अपर्याप्त-प्रतिफल होने के आधार पर कोई करार शून्य नहीं होगा यदि वचनदाता ने स्वतन्त्र सहमति प्रदान की है।

उदाहरण—लोकेश ने अपनी गाय 1000 रुपये के मूल्य की 10 रुपये में बेचने का करार किया। साथ ही लोकेश ने इस करार में स्वतन्त्र सहमति भी प्रदान की। अपर्याप्त प्रतिफल होने पर भी यह करार वैध अनुबन्ध है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रतिफल क्या है ? प्रतिफल के आवश्यक तत्वों का उल्लेख कीजिये।
   What is consideration ? Describe the essential elements of consideration.
2. "बिना प्रतिफल के करार शून्य होता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये तथा इसके अपवाद बतलाइये।

"A contract without consideration is void." Comment the statement and give exceptions.

(राज. वि. वि. 1980)

3. "वैध अनुबन्ध के तत्व के रूप में" प्रतिफल की व्याख्या कीजिये। "बिना प्रतिफल के करार शून्य होता है।" इस नियम के अपवाद बतलाइये।
Explain "Consideration" as an element of a valid contract state the exceptions to the rule that an agreement without consideration is void.

(राज वि वि. 1981, जोधपुर वि. वि. 83, गुवाहिया वि. वि. 85)

4 प्रतिफल की परिभाषा दीजिये। किन परिस्थितियों में अनुबन्ध का उद्देश्य अथवा प्रतिफल अवैध माना जाता है? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।
"Define consideration. Under what circumstances the object or consideration of a contract is deemed unlawful? Explain with examples.

(राज. वि. वि. 1978)

5. प्रतिफल को परिभाषित कीजिये। अनुबन्ध की वैधता के लिए क्या प्रतिफल का होना आवश्यक है?
Define consideration. Is the existence of consideration essential for the validity of a contract?

6. "प्रतिफल का पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है, किन्तु उसे वास्तविक अवश्य होना चाहिये।" इस कथन की विवेचना भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के सन्दर्भ में कीजिये।
Consideration need not be adequate but must be real. Comment on this statement with reference to the Indian Contract Act.

7. "अनुबन्ध के लिए अजनबी व्यक्ति वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये तथा इसके सामान्य नियम के अपवाद बताइये।
"A stranger to contract can not sue." Discuss the statement and give exception to this general rule.

□□□

8

स्पष्ट रूप से घोषित शून्य करार

(Agreements expressly declared Void)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित करार स्पष्ट रूप से शून्य घोषित है :—

(i) अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये करार (Agreements made by incompetent parties)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार निम्नलिखित व्यक्तियों को अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित किया गया है।

(1) अवयस्क

(2) अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति

(3) राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित व्यक्ति।

उपरोक्त तीनों प्रकार के पक्षकारों द्वारा यदि अनुबन्ध किया जाता है तो वह करार शून्य होता है।

(ii) करार के आवश्यक तथ्य के विषय में गलती (Agreements based on mistake as to fact)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार, "जब करार के दोनों पक्षकार करार के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर होते हैं तो करार शून्य होता है।"

(iii) विदेशी राजनियम की गलती वाले करार (Agreements on mistake of Foreign Law)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 21 के अनुसार विदेशी राजनियम के सम्बन्ध में गलती के आधार पर हुए करार पूर्णतः शून्य होते हैं।

(iv) करार जिनका प्रतिफल या उद्देश्य अवैधानिक है (Agreements the consideration or object of which is unlawful)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार निम्नलिखित करारों को अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल का माना गया है—

(1) यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित है अथवा

(2) वह इस प्रकार का है कि यदि अनुमति दे दी जाय तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा अथवा

(3) यदि वह कपटपूर्ण है अथवा

(4) यदि उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचती है अथवा

(5) न्यायालय उसे अनैतिक समझता है अथवा

(6) न्यायालय उसे लोक-नीति के विरुद्ध समझता है।

(v) आंशिक रूप से अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल के करार (Agreements with unlawful object and consideration)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 24 का आदेश है कि यदि किसी करार का प्रतिफल या उद्देश्य आंशिक रूप से अवैध है तो भी सम्पूर्ण करार शून्य होगा।

उदाहरण के लिए—श्याम, राम की ओर से नील के वैध व्यवसाय तथा कुछ अन्य वस्तुओं के अवैध व्यवसाय के निरीक्षण का वचन देता है। राम इस कार्य के लिए 10,000 रुपये प्रति वर्ष वचन देता है। श्याम के वचन का उद्देश्य तथा राम का प्रतिफल आंशिक रूप से अवैध है अतः करार शून्य है।

(vi) बिना प्रतिफल वाले करार (Agreements without Consideration)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के अनुसार, बिना प्रतिफल के करार शून्य होते हैं परन्तु धारा 25 में कुछ अपवाद भी दिये है अर्थात् कुछ परिस्थितियों में प्रतिफल के अभाव में भी करार वैध होते है ये अपवाद निम्नलिखित हैं—

(1) स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण वचन।

(2) स्वेच्छा से किये गये कार्य की क्षतिपूर्ति का वचन।

(3) अवधि-वर्जित ऋण के भुगतान का वचन।

(4) एजेन्सी के निर्माण का अनुबन्ध।

(5) निःशुल्क निक्षेप के अनुबन्ध आदि।

(vii) विवाह में रुकावट डालने वाले करार (Agreements in restraint of marriage)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, "प्रत्येक करार जो अवयस्क के अतिरिक्त किसी भी दूसरे व्यक्ति के विवाह मे रुकावट डालता है शून्य है।"[1]

प्रत्येक वयस्क को विवाह करना अथवा विवाहित दशा मे रहना अथवा अपने विवाह के विषय में स्वयं निर्णय करने का मौलिक अधिकार है। अतः इस मौलिक अधिकार पर रोक लगाने के करार शून्य होते हैं।

मुस्लिम कानून के अनुसार एक व्यक्ति एक साथ चार पत्नी रख सकता है तो किसी मुसलमान व्यक्ति से किया गया कोई भी ऐसा करार जिनके अनुसार वह अपनी पहली पत्नी के जीवन काल मे दूसरी शादी नही करेगा शून्य होगा। किन्तु यही करार यदि किसी हिन्दू के साथ किया जाय तो वह वैध करार होगा।

उदाहरण— किसी हिन्दू व्यक्ति से यह करार करना कि वह अपने जीवनकाल में कोई शादी न करेगा शून्य होता है।

(viii) व्यापार में रुकावट डालने वाले करार (Agreement in restraint of trade)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, "प्रत्येक करार

1. "Every agreement in restraint of marriage of any Person, other than a minor ... is void." (Sec. 26)

जिसके द्वारा कोई व्यक्ति को किसी भी प्रकार का "वैध पेशा" व्यापार या व्यवसाय करने से वंचित किया जाता है, उस सीमा तक शून्य है ।[1]

अधिनियम की उपर्युक्त धारा में लिखित वाक्यांश "उस सीमा तक शून्य" का अर्थ समझ लेना आवश्यक है । इसका आशय है कि यदि करार दो भागों में बँटा हो तो उसका वह भाग वैध होगा जो व्यापार मे रुकावट नही डालता । किन्तु यदि करार इस तरह बँटा न हो तो सम्पूर्ण करार शून्य होता है ।

उदाहरण—कमलेश ने अपने व्यवसाय की ख्याति बेचने का करार विमलेश के साथ किया और उस करार में विमलेश ने कमलेश पर एक प्रतिबन्ध लगा दिया कि कमलेश पूरे प्रकार का व्यापार भारत में कही नही करेगा । इस करार के निम्न दो भाग हैं ।

(i) एक ख्याति के विक्रय का तथा

(ii) व्यापार मे रुकावट का

पहला भाग वैध है जबकि दूसरा भाग शून्य है ।

इस धारा के अपवाद

निम्नलिखित दशाओ में व्यापार में रुकावट डालने वाले करार भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत वैध होते है—

(1) जब कोई अपने व्यापार की ख्याति बेचता है—यदि कोई व्यक्ति अपने व्यापार की बिक्री करते समय उसकी ख्याति भी बेच देता है तब क्रेता उस विक्रेता के साथ यह करार कर सकता है कि वह उसी तरह का व्यापार निश्चित सीमाओं के अन्दर उस समय तक नही करेगा जब तक कि ख्याति खरीदने वाला अथवा कोई दूसरा व्यक्ति जिसको उससे ख्याति का अधिकार मिलता है, उसी तरह का व्यापार उन सीमाओ के अन्दर करता रहे यदि न्यायालय की ये सीमाएँ व्यापार की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उचित मालूम होती हैं । (धारा 27 अपवाद)

(2) साझेदारी में आपसी प्रतिबन्ध—साझेदार आपस में यह करार कर सकते हैं कि कोई भी जब तक वह फर्म में साझेदार है, फर्म के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यवसाय नही करेगा ।

(3) साझेदार द्वारा फर्म छोड़ने पर किया गया अनुबन्ध—अगर कोई साझेदार फर्म छोड़ कर जाना चाहता है तो शेष साझेदार उससे यह करार कर सकते हैं कि वह निश्चित स्थानीय सीमाओ के भीतर या एक निश्चित समय के भीतर फर्म के व्यवसाय से मिलता-जुलता कोई व्यवसाय न करेगा यदि ऐसे प्रतिबन्ध उचित हों ।

(4) फर्म के समापन पर करार—साझेदार फर्म समाप्ति पर अथवा टटने की आशंका में ऐसा करार कर सकते हैं कि वे सब साझेदार या कुछ साझेदार एक निश्चित

1. "Every agreement by Which any one is restrainted from exercising a Lawful Profession, trade or business of any kind, is to that extent void."
(Sec. 27)

अवधि तक या निश्चित स्थानीय सीमाओं के अन्दर फर्म के कारोबार से मिलता-जुलता कोई कारोबार नही करेंगे, यदि प्रतिबन्ध उचित हो।

(5) नौकरी के करार—यदि नौकरी करने वाला व्यक्ति अपने नियुक्ति कर्ता से प्रतिज्ञा करे कि वह एक निश्चित समय तक इस काम को छोड़ कर कही दूसरी जगह काम करने नही जायेगा। अथवा उस समय मे अपने मालिक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिद्वन्द्विता न करने का वायदा करे तो ऐसा करार वैध होगा।

(6) व्यापार-संयोजन के करार—ऐसे करार जो कि प्रतियोगिता को सीमित करने के लिए व्यापार संघ के रूप में हों, अवैध नही होंगे।

(7) व्यापारिक एजेन्सी के समझौते द्वारा रोक—किसी व्यापारी को जब किसी उत्पादक द्वारा अपना एजेन्ट नियुक्त कर दिया जाता है तो वह उत्पादक ऐसे एजेन्ट पर यह बन्धन लगा सकता है कि वह एजेन्सी काल में अन्य उत्पादकों का माल नहीं बेचेगा तो ऐसी स्थिति में यह बन्धन वैध होगा।

(ix) वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले करार (Agreements in restraints of legal proceedings)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 28 के अनुसार निम्नलिखित दशाओं में करार को वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाला समझा जाता है—

(1) प्रत्येक करार जिसके द्वारा उसका कोई पक्षकार किसी अनुबन्ध के अधीन अपने अधिकारों को साधारण न्यायालय में वैधानिक कार्यवाही द्वारा लागू कराने में पूर्णतया रोका जाता है अथवा

(2) प्रत्येक ऐसा करार जो उस समय को सीमित करता है जिसके अन्तर्गत अपने अधिकारों को प्रवर्तित करा सकता है, उस सीमा तक शून्य है।

उदाहरण—कमलेश यदि विमलेश के साथ करार करता है कि वह (विमलेश) उस (कमलेश) के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नही करेगा तो यह शून्य करार है।

अपवाद—इस नियम के निम्नलिखित दो अपवाद है :—

(i) भावी विवाद को पंचायत के सुपुर्द करने का करार।

(ii) वर्तमान विवाद को पंचायत के सुपुर्द करने का करार।

(x) अनिश्चित अर्थ वाले करार (Agreements involving uncertainty)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 29 के अनुसार, "वे सब करार जिनका अर्थ निश्चित नहीं है अथवा निश्चित नही किया जा सकता है, शून्य है।"

उदाहरण—राम, सोहन से कहता है कि मैं अपना मकान 4000 से 6000 रुपये के बीच में बेचूंगा। परन्तु इस कथन से यह स्पष्ट नही होता है कि वह कितने में मकान बेचेगा अतः करार मान्य नही है।

(xi) बाजी लगाने के रूप में किये गये अनुबन्ध (Wagering Agreements) बाजी लगाने का करार किसी अनिश्चित घटना के निश्चित हो जाने पर धन अथवा धन के बदले वस्तु देने का वचन है।

उदाहरण—मोहन, सोहन से शर्त लगाता है कि अमुक चुनाव में राम विजयी होगा तो मोहन, सोहन को 500 रुपये देगा अन्यथा सोहन से मोहन 500 रुपये ले लेगा यह बाजी का करार है।

बाजी के करार की विशेषताएं

(1) एक निश्चित रकम या उतने की कोई वस्तु चुकाने का वचन होना चाहिये। अत. घटना का अनिश्चित होना आवश्यक है।

(2) वचन किसी विशेष घटना के घटने या न घटने पर आधारित होना चाहिये। अत. घटना का अनिश्चित होना आवश्यक है।

(3) बाजी के करार में एक पक्षकार को लाभ तथा दूसरे पक्षकार को हानि होती है।

(4) घटना का घटित होना अथवा घटित न होना किसी भी पक्षकार के वश में नही होना चाहिये।

(5) किसी भी एक पक्षकार को घटना की जानकारी होने पर बाजी लगाने का करार नही होता।

(6) बाजी के हारने जीतने के अतिरिक्त घटना मे और कोई हित नही होना चाहिये।

(7) बाजी का करार तब तक पूर्ण नहीं कहा जाता जब तक कि अनिश्चित घटना के विषय मे परिणाम का निर्णय न हो जाये।

(8) बाजी के करार सदैव शून्य नहीं होते है। कुछ इसके अपवाद भी है जैसे-वर्ग पहेली, लॉटरी आदि।

बाजी के करार के प्रभाव

(1) करार शून्य होते हैं—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 30 के अनुसार बाजी लगाने के करार शून्य होने के कारण न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराये जा सकते है।

(2) जीतने वाले पक्षकार द्वारा वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है—बाजी के जीतने वाले पक्षकार द्वारा जीत को पुरस्कार या धन राशि के लिए किसी भी न्यायालय मे वाद प्रस्तुत नही किया जा सकता है।

(3) बाजी के करारो के समान्तर करार वैध माने जाते हैं। जैसे-बाजी के करार के लिए उधार दी गयी राशि।

(4) तीसरे पक्षकार के पास जमा की गई राशि के सम्बन्ध में। यदि बाजी से सम्बन्धित राशि तीसरे पक्षकार के पास जमा करा दी गई है तो बाजी हारने वाला उस तीसरे से वह जमा राशि प्राप्त कर सकता है यदि वह धन राशि तीसरे पक्षकार के पास ही है।

बाजी के करार के समान लगने वाले कुछ करार—अपवाद

(1) घुड़दौड़ (Horse race)—घुड़दौड़ के विजेता को 500 रुपये या इससे अधिक पुरस्कार या देने के लिए चन्दा या दान देना अवैधानिक नही है।

(2) वर्ग पहेली प्रतियोगिता (Crossword competition)—वर्ग पहेली प्रतियोगिता में बाजी का करार नही है। पारितोषिक प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम 1955 ने 1000 रुपये से अधिक की इनामी प्रतियोगिताएँ शून्य होती है।

(3) लॉटरी (Lottery)—लाटरी के करार शून्य होने के साथ-साथ अवैधानिक भी होते हैं। वे ही लॉटरियाँ वैध मानी जाती जाती हैं जो कि सरकार द्वारा अधिकृत हों। भारतीय दण्ड-विधान की धारा 215 (अ) के अनुसार बिना सरकारी आज्ञा के लाटरी का कार्यालय रखता है तो ऐसे व्यक्ति को 6 महीने की जेल की सजा तथा जुर्माना या दोनों ही सजाएँ हो सकती हैं।

(4) बीमें के अनुबन्ध (Contracts of Insurance)—बीमें के पक्षकारों का बीमें की वस्तु में हित होता है इसलिए बीमें का अनुबन्ध बाजी लगाने का अनुबन्ध नही कहलाता है। बाजी करार में इस हित का अभाव होता है। बीमें के वे अनुबन्ध जिनमें बीमा योग्य हित का अभाव होता है—बाजी के अनुबन्धो की श्रेणी में आ जाते हैं।

(5) भावी सौदे (Future transactions)—जब भावी सौदों का निष्पादन एक पक्षकार द्वारा मूल्य का भुगतान करके तथा दूसरे पक्षकार द्वारा माल की सुपुर्दगी लेकर किया जाता है तो ऐसा करार वैध होता है और यह बाजी का करार नही है किन्तु यदि यह सिद्ध कर दिया जाये कि आरम्भ में ही दोनों पक्षकारों का उद्देश्य सौदे को केवल मूल्य के अन्तर पर निवटाने का था तो वह बाजी का करार कहलायेगा और करार शून्य होगा।

(6) तेजी-मंदी के सौदे (Put-option and Call option)—तेजी-मदी *व्यवहार बाजी के व्यवहार नहीं हैं जब तक कि यह स्पष्ट रूप से सिद्ध न कर दिया जाय* कि दोनों ही पक्षकारों का उद्देश्य सुपुर्दगी लेना व देना न था करार वैध है तथा पक्षकारों में बाध्य है।

(7) सट्टे का व्यवहार (Speculative Transactions)—सट्टे के व्यवहारों को बाजी के करार नही मानते हैं। अगर पक्षकारों का उद्देश्य उसके निष्पादन करने का हो तब यह विशुद्ध व्यापारिक अनुबन्ध होगा। अगर पक्षकारों का उद्देश्य उसका निष्पादन करना न होकर केवल भावों के अन्तर से लाभ कमाना हो तो वह बाजी लगाने का अनुबन्ध होगा।

(xii) असम्भव कार्य करने के करार (Agreements to do impossible Acts)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 56 के अनुसार असम्भव कार्य करने के करार शून्य होते हैं।" Agreements to do impossible events or acts are void" section 56. पर ऐसे कार्य के लिए भी जो शुरू में सम्भव हो परन्तु बाद में असम्भव हो जाता है तो वे करार उस समय शून्य हो जाते हैं जिस समय उनके अन्तर्गत किये जाने वाला कार्य असम्भव हो जाता है।

उदाहरण—(i) महेन्द्र योगेन्द्र से यह वादा करता है कि वह जादू से एक *धन का खजाना निकालेगा यह असम्भव कार्य के लिए होने से शून्य है।*

(ii) अमित, विकास से करार करता है कि यदि वह कामिनी से शादी कर लेगा तो वह उसे 1000 रुपये देगा जबकि करार के समय से पूर्व कामिनी मर चुकी है अतः यह करार शून्य है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शून्य करार क्या है ? भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य घोषित करार को संक्षेप में बतलाइये।

   What is a void agreement ? Briefly state the various agreements that are exepressly declared to be void under the Indian Contract Act.

   (राज. वि. वि 1977)

2. भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य घोषित करारों को संक्षेप मे बतलाइये।

   Explain briefly the agreements that have been expressly declared void under the Indian Contract Act.

   (जोधपुर वि. वि. 1981)

3. "व्यापार मे रुकावट डालने वाले करार शून्य होते है।" इस कथन की व्याख्या कीजिये। क्या इस नियम के कोई अपवाद हैं ? यदि है तो उनकी व्याख्या कीजिये।

   "Agreement in restraint to trade are void." Explain this statement. Are there any exception to it ? If so enumerate them.

4. बाजी का करार क्या है ? सट्टे के व्यवहार से यह किस प्रकार भिन्न है ?

   What are wagering agreements ? Distinguish it from speculative transactions

5. बाजी लगाने के करार से आप क्या समझते हैं ? इस की और अच्छे अनुबन्ध (व्यापारिक लेन-देन) की तुलना कीजिये।

   What do you uuderstand by a wagering agreement ? Distinguish it from a good Contract.

6. "व्यापार में रुकावट डालने वाले करार शून्य होते है।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

   "Agreement in restraint of trade are void" Critically examine this statement.

7. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये :—

   Write short notes on

   (1) अनुबन्धों पर युद्ध का प्रभाव
       Effects of war on contracts

   (2) व्यापारिक अशक्यता
       Business in capability ?

(3) निष्पादन का असम्भव हो जाना
Impossibility

(4) तेजी-मन्दी व्यवहार
Teji-mandi Transactions

(5) बीमा, क्षतिपूर्ति और बाजी के अनुबन्धों में अन्तर
Difference between contracts of Insurance, compensations and wages

(6) वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले करार
Agreement in restraint of legal proceeding.

□□□

9

सांयोगिक अनुबन्ध
(Contingent Contracts)

विषय-सामग्री—सांयोगिक अनुबन्ध का आशय, विशेषताएँ, सांयोगिक अनुबन्धों को प्रवर्तनीय कराने के नियम, सांयोगिक एवं बाजी के करारों में अन्तर। अभ्यास के लिए प्रश्न।

सांयोगिक अनुबन्ध का आशय
(Meaning of Contingent Contract)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 31 के अनुसार "सांयोगिक अनुबन्ध का आशय किसी कार्य को करने अथवा न करने के ऐसे अनुबन्ध से है जो किसी ऐसी भावी घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर है जो अनुबन्धों के समपार्श्विक है।"

उदाहरण—(1) राजेश लोकेश से यह प्रतिज्ञा करता है कि यदि उसका (लोकेश) का मकान जल गया तो वह 2000 रुपये देगा यह एक सांयोगिक अनुबन्ध है।

सांयोगिक अनुबन्ध की विशेषताएँ
(Features of a Contingent Contract)

सांयोगिक अनुबन्ध की विशेषताएँ
1. किसी कार्य को करने अथवा न करने का अनुबन्ध।
2. अनुबन्ध का निष्पादन किसी अनिश्चित घटना पर निर्भर हो।
3. घटना अनुबन्ध की सहवर्ती होनी चाहिए।
4. घटना पर किसी एक पक्षकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए।

(1) किसी कार्य को करने अथवा न करने का अनुबन्ध (A Contract to do or not to do something)—सांयोगिक अनुबन्ध में भी अन्य अनुबन्धों की तरह वैध अनुबन्ध के समस्त आवश्यक लक्षण होने चाहिए। सांयोगिक अनुबन्ध का निष्पादन किसी घटना पर आधारित होता है। जबकि सामान्य अनुबन्ध का निष्पादन स्वतन्त्र होता है।

(2) अनुबन्ध का निष्पादन किसी अनिश्चित घटना पर निर्भर हो (Performance of the contract is dependent upon some uncertain event)—सांयोगिक अनुबन्ध :—

(1) किसी घटना के घटने पर निष्पादित हो सकते हैं अथवा

(ii) किसी घटना के न घटने पर निष्पादित हो सकते है।

यदि किसी ग्रनुबन्ध की घटना के घटित होने में किसी प्रकार की ग्रनिश्चितता नही होती है तो वह सांयोगिक ग्रनुबन्ध नही माना जा सकता है। इनको शर्तयुक्त ग्रनुबन्ध भी कहा जाता है।

उदाहरण—नरेश राकेश से कहता है कि ग्रगर एक निश्चित जहाज एक महीने के भीतर इंगलैण्ड से वापस हिन्दुस्तान ग्रा जायेगा तो वह राकेश को 2000 रुपये देगा। यदि जहाज एक महीने के भीतर वापस ग्रा जाता है तब तो नरेश को ग्रनुबन्ध का निष्पादन करना पड़ेगा ग्रौर यदि वह जहाज डूब जाता है तब उसे पूरा करने का प्रश्न ही नही उठता।

(3) घटना ग्रनुबन्ध के सहवर्ती होनी चाहिए (Event should be collated to contract)—जिस घटना के घटित होने ग्रथवा नहीं होने पर अनुबन्ध का निष्पादन निर्भर करता हो तो वह घटना सहवर्ती घटना कहलाती है। घटना ग्रनुबन्ध की सहवर्ती होनी चाहिए स्वय ग्रनुबन्ध का कोई भाग न हो। घटना अनुबन्ध से पूर्ण स्वतन्त्र व उसकी सहवर्ती होनी चाहिए।

उदाहरण—विमलेश, कमलेश से यह कहता है कि वह कमलेश को 1000 रुपये तव देगा जबकि कमलेश उसे ग्रपनी गाय दे। विमलेश द्वारा 1000 रुपये देना कमलेश द्वारा गाय देने पर निर्भर है, परन्तु यह कोई सहवर्ती घटना नही है। यह तो स्वयं अनुबन्ध का ही भाग है। ग्रत: यह अनुवन्ध सायोगिक ग्रनुबन्ध नही है।

(4) घटना पर किसी एक पक्षकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए—सांयोगिक ग्रनुबन्ध में घटना वचनदाता की इच्छा पर निर्भर नही होनी चाहिए। ऐसी घटना स्वत: स्वाभाविक रूप से घटित होनी चाहिए।

उदाहरण—सोम, मंगल से कहता है कि यदि उसकी इच्छा होगी तो वह मंगल को 500 रुपये देगा। ऐसी स्थिति में यह सायोगिक ग्रनुबन्ध नही कहलायेगा।

सांयोगिक ग्रनुबन्धों को प्रवर्तनीय कराने के नियम
(Rules in connection with enforcement of contingent contracts)

भारतीय अनुबन्ध ग्रधिनियम के ग्रनुसार सांयोगिक ग्रनुबन्धों के प्रवर्तनीय कराने के निम्नलिखित प्रमुख नियम हैं :—

(1) ग्रनिश्चित घटना के घटने पर ग्राधारित ग्रनुबन्ध—भारतीय ग्रनुबन्ध ग्रधिनियम की धारा 32 के ग्रनुसार, "किसी कार्य को करने ग्रथवा न करने का सांयोगिक ग्रनुबन्ध उस समय प्रवर्तनीय कराया जा सकता है, जब वह घटना घट जाय और यदि घटना का होना ग्रसम्भव हो जाता है तो ऐसे ग्रनुबन्ध शून्य हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ—वरूण, ग्ररूण के साथ ग्ररुण का घोड़ा खरीदने का अनुबन्ध [illegible] यदि वरूण (वह स्वयं) ग्रजय के बाद तक जीवित रहे। यह अनुबन्ध सांयोगिक [illegible] समय तक प्रवर्तित नही कराया जा सकता जब तक कि ग्रजय की मृत्यु [illegible] मे ही न हो जाये।

(2) **अनिश्चित घटना न होने पर**—धारा 33 के अनुसार, "यदि कोई सांयोगिक अनुबन्ध किसी भावी अनिश्चित घटना के न घटने पर ही प्रवर्तनीय कराना हो तो ऐसा अनुबन्ध उस समय प्रवर्तित कराया जा सकता है, जबकि उस घटना *का होना असम्भव हो* जाता है उससे पहले नहीं।"

उदाहरण - नरेश, राकेश से कहता है कि यदि एक निश्चित जहाज इंगलैण्ड से वापस हिन्दुस्तान आ जायेगा तो वह राकेश को 2000 रुपये देगा। जहाज डूब जाता है। अनुबन्ध जहाज के डूब जाने पर प्रवर्तित कराया जा सकता है।

(3) **अनिश्चित घटना का निश्चित समय में होना**—सांयोगिक अनुबन्ध जो किसी निर्दिष्ट अनिश्चित समय में घटने पर आधारित हो तो वह उस समय प्रवर्तनीय कराया जा सकेगा, जबकि निश्चित समय व्यतीत हो जाय या निश्चित समय के पहले ही ऐसी घटना असम्भव हो जाती है। (धारा 35)

उदाहरण – नरेश, राकेश से कहता है कि यदि एक निश्चित जहाज एक माह के भीतर इंगलैण्ड से वापस हिन्दुस्तान आ जायेगा तो वह राकेश को 2000 रुपये देगा। जहाज के उसी एक माह में लौट आने पर अनुबन्ध लागू कराया जा सकता है परन्तु एक माह के भीतर ही जहाज के डूब जाने पर अनुबन्ध शून्य हो जाता है।

सांयोगिक अनुबन्धों को प्रवर्तनीय कराने के नियम

1. अनिश्चित घटना के घटने पर आधारित अनुबन्ध।
2. अनिश्चित घटना घटित न होने पर।
3. निश्चित घटना का निश्चित समय में होना।
4. निर्दिष्ट अनिश्चित घटना का निश्चित समय में न होना।
5. सांयोगिक अनुबन्ध जो कि किसी असम्भव घटना के होने पर निर्भर है।

(4) **निर्दिष्ट अनिश्चित घटना का निश्चित समय में न होना**—सांयोगिक अनुबन्ध उस समय राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराये जा सकते हैं - जब निश्चित समय समाप्त होने के पहले ही यह निश्चित हो जाता है कि उक्त घटना नहीं होगी। (धारा 35)

उदाहरण—मोहन, सोहन को 1000 रुपये देने का वचन देता है यदि एक निश्चित जहाज एक वर्ष के भीतर नहीं लौटता है अथवा उसी वर्ष के अन्दर जल जाता है तो अनुबन्ध प्रवर्तनीय कराया जा सकता है।

(5) **सांयोगिक अनुबन्ध जो कि किसी असम्भव घटना के होने पर निर्भर है**—किसी असम्भव घटना के घटने पर आधारित सांयोगिक अनुबंध शून्य होते हैं चाहे अनुबन्ध करने के समय पक्षकारों को घटना की असम्भवता ज्ञात हो अथवा न हो। (धारा 36)

उदाहरण—सोम, मंगल को 2000 रुपये देने का करार करता है यदि मंगल सोम की लड़की (शीला) से विवाह कर ले। करार के समय शीला की मृत्यु हो चुकी थी। अतः यह करार शून्य है।

सांयोगिक तथा वाजी के करारों में अन्तर

(Difference between a wager and a contingent contract)

क्र. सं	अन्तर का आधार	सांयोगिक अनुबन्ध	वाजी के करार
1.	हित	इसमें पक्षकार का हित घटना के घटित होने अथवा नहीं होने मे होता है।	इसमें पक्षकारों का हित राशि के जीतने तथा हारने में जितना होता है उतना घटना के घटित होने में नही।
2.	स्वभाव	सभी सांयोगिक अनुबन्ध वाजी के करार नही होते हैं।	वाजी के सभी करार सांयोगिक अनुबन्ध होते है।
3.	वैधानिकता	सांयोगिक अनुबन्ध पूर्णरूप से वैध होते हैं और इनको राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है।	वाजी लगाने के करार केवल करार मात्र होने के कारण शून्य होते है।
4.	वचन देना	सांयोगिक अनुबन्ध में एक पक्षकार द्वारा ही वचन दिया जाता है।	बाजी के करार में दोनों पक्षकार एक-दूसरे को वचन देते है।
5.	निष्पादन	सांयोगिक अनुबन्ध में पक्षकार अपने वचनों का निष्पादन करते हैं यद्यपि वचनों का निष्पादन किसी अनिश्चित भावी घटना पर आधारित होता है।	वाजी के करार मे पक्षकारों का आशय वचनों का निष्पादन नही होता। उनका अभिप्राय तो केवल घटना के परिणाम को जानने का अथवा केवल अन्तर लेन-देन का होता है।
6.	हार-जीत	इसमें दोनों पक्षकारों में किसी की हार-जीत आवश्यक नहीं है।	इसमे दोनों पक्षकारों में से किसी एक पक्षकार की हार अथवा जीत अवश्य होनी चाहिए।
7.	भावी घटना	इसमें भावी घटना सहवर्ती होती है।	इसमें भावी घटना ही करार का निर्णय करने का तत्त्व होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सांयोगिक अनुबन्ध और बाजी लगाने वाले अनुबन्ध की तुलना कीजिए। *सांयोगिक अनुबन्धों के प्रवर्तन से सम्बन्धित नियमों का वर्णन कीजिए।*

   Distinguish between a contingent contract and a wagering contract. Discuss the rules regarding enforcement of contingent contracts.

   (राज. वि. वि. 1982)

2. सांयोगिक अनुबन्ध को परिभाषित व स्पष्ट कीजिए। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में इनके विषय में क्या प्रावधान है ?

   Define and explain contingent contracts. How are they treated in the Indian Contract Act ?

10

अनुबन्ध का निष्पादन
(Performance of Contracts)

अनुबन्ध से सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा दायित्व को पूरा करना निष्पादन कहलाता है। सामान्यतः पक्षकारों का उद्देश्य अनुबन्ध का निष्पादन करना होता है न कि उसका भंग करना।

अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार निष्पादन के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण विषय सम्मिलित हैं :—

(i) निष्पादन के सम्बन्ध में अनुबन्धों के पक्षकारों का दायित्व। (धाराएँ 37–38)
(obligation of parties to contract)

(ii) अनुबन्धों का निष्पादन किसके द्वारा किया जाना चाहिए। (धाराएँ 40 से 45 तक)
(By whom contracts be performed)

(iii) निष्पादन के लिए समय और स्थान। (धाराएँ 46 से 50 तक)
(Time and place for performance)

(iv) पारस्परिक वचनों का निष्पादन। (धाराएँ 51 से 58 तक)
(Performance of reciprocal promises)

(v) भुगतानों का नियोजन। (धाराएँ 59 से 61 तक)
(Appropriation of payments)

इन समस्त पहलुओं का विस्तारपूर्वक विवेचन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है :—

(i) **अनुबन्धों के पक्षकारों का दायित्व (Obligation of parties to contracts)**—अनुबन्ध के पक्षकारों का निष्पादन के सम्बन्ध में यह दायित्व है कि उन्हें अपने-अपने वचनों का वास्तविक निष्पादन करना चाहिए अथवा निष्पादन का प्रस्ताव करना चाहिए परन्तु यदि इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन अथवा किसी दूसरे राजनियम के लागू होने से पक्षकारों को वचनों के निष्पादन से मुक्त कर दिया गया है, तो पक्षकारों को ऐसे निष्पादन की आवश्यकता नहीं रहती। निष्पादन से पहले किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाने पर उसके वचन उसके वैधानिक उत्तराधिकारी को बाध्य हैं, जब तक कि वह अनुबन्ध में कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट नहीं होता।

उदाहरण--(क) मंगल ने सोम को कुछ माल 1000 रुपये में 1 अगस्त को देने का करार किया। अगस्त के पूर्व मंगल की मृत्यु हो जाती है सोम मंगल के वैधानिक उत्तराधिकारियों को अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य कर सकता है।

(ख) सुचित्रा जो एक अच्छी चित्रकार है—सर्वेश को एक निश्चित दिन तक एक चित्र बनाकर देने का वचन देती है परन्तु वचन के पूरा करने के पूर्व ही सुचित्रा की मृत्यु हो जाती है। यहां सर्वेश सुचित्रा के उत्तराधिकारियों को अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।

निष्पादन का प्रस्ताव
(Proposal for performance)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 38 के अनुसार, यदि वचनदाता वचन-गृहीता के सम्मुख निष्पादन का प्रस्ताव करता है और प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ है, तो वचनदाता वचन पूरा न होने के लिए उत्तरदायी नहीं है और वचनदाता के अनुबन्ध के *अन्तर्गत अधिकार भी समाप्त नहीं होते।*

निष्पादन के वैध प्रस्ताव में आवश्यक तत्त्व

निष्पादन के वैध प्रस्ताव में निम्नलिखित तत्त्वों का पाया जाना आवश्यक है—

(1) यह शर्त रहित हो—अनुबन्ध के निष्पादन का प्रस्ताव बिना प्रतिबन्ध के होना चाहिए।

उदाहरण—जैमिनी ऋणी है, जनार्दन ऋणदाता है। जैमिनी ऋण का भुगतान किस्तों में करने का प्रस्ताव करता है और पहली किस्त प्रस्तुत करता है। अनुबन्ध में यदि किस्तों द्वारा भुगतान का उल्लेख नहीं है, तो यह निष्पादन वैध नहीं माना जायेगा।

(2) यह उचित स्थान व समय पर किया गया हो—निष्पादन का प्रस्ताव उचित समय पर किया जाना चाहिए तथा प्रस्ताव का स्थान भी उचित होना चाहिए ताकि वचन-गृहीता माल की उचित प्रकार से जांच-पड़ताल कर सके और प्रस्तुत की गयी वस्तु वही है जिसका अनुबन्ध किया गया है, यह देख सके।

उदाहरण - (क) अरूण ने वरूण से 2000 रुपये दो वर्ष के लिए 6 प्रतिशत ब्याज की दर से उधार लिए। 1 वर्ष के बाद अरूण ब्याज सहित यह राशि वरूण को प्रस्तुत करता है। निष्पादन का प्रस्ताव समय से पूर्व प्रस्तुत किया गया है अत. वरूण स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है।

(ख) रेखा किरायेदार है, सुनील मकान मालिक है। सुनील मेला देखने गया। वहां रेखा भी गयी हुई थी। रेखा मेले में किराया प्रस्तुत करती है। सुनील किराया स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि यह उचित स्थान नहीं है।

(3) सम्पूर्ण निष्पादन—निष्पादन के प्रस्ताव को तभी वैध माना जायेगा जबकि यह सम्पूर्ण अनुबन्ध के निष्पादन का प्रस्ताव हो।

उदाहरण—सुनील ने सुशील को 200 क्विटल चावल बेचने का अनुबन्ध किया तो सुनील के निष्पादन का प्रस्ताव 200 क्विटल चावल के लिए होना चाहिए कम के लिए नहीं। यदि सुनील 100 क्विटल चावल देने का प्रस्ताव करता है तो यह वैध प्रस्ताव नहीं होगा।

(4) वास्तविक वचनगृहीता को प्रस्ताव करना—निष्पादन का प्रस्ताव अनुबन्ध के उचित तथा वास्तविक वचनगृहीता को ही किया जाना चाहिए। यदि वचन गृहीता एक से अधिक है तो संयुक्त वचनगृहीताओं में से किसी एक को निष्पादन का प्रस्ताव किया जा सकता है और उसका वैध प्रभाव होगा।

(5) वचनगृहीता को वस्तु-निरीक्षण का पर्याप्त एवं उचित अवसर—प्रस्ताव वचनगृहीता को कोई वस्तु सुपुर्द करने का है तो ऐसा निष्पादन का प्रस्ताव तभी वैध माना जावेगा जबकि वचनगृहीता को यह देखने का उचित अवसर दिया गया हो कि वह प्रस्तुत की हुई वस्तु वही वस्तु है, जिसको सुपुर्द करने के लिए वचनदाता अपने द्वारा बाध्य है।

(6) धन देने के लिए प्रस्ताव—ऐसा प्रस्ताव भी उचित समय, स्थान तथा उचित तरीके से होना चाहिए। प्रस्ताव पूरी रकम के लिए होना चाहिए तथा भुगतान सरकारी प्रचलित मुद्रा में होना चाहिए किन्तु यदि वह एक बार चैक लेना स्वीकार कर लेता है तो फिर मना नहीं कर सकता है।

(ii) अनुबन्धों का निष्पादन किसके द्वारा किया जाना चाहिए (By whom contracts be performed)—निम्नलिखित पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार को अनुबन्ध के निष्पादन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है :—

(1) वचनदाता (Promisor)—यदि अनुबन्ध की प्रकृति से यह प्रकट होता है कि पक्षकारों का अभिप्राय यह था कि वचन का निष्पादन स्वयं वचनदाता द्वारा होना चाहिए तो ऐसी दशा में वचनदाता को ही वचन के निष्पादन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। किसी अनुबन्ध में यदि वचनदाता की विशेष चतुरता तथा योग्यता अनुबन्ध के आवश्यक तत्व हैं, उन अनुबन्धों के निष्पादन का दायित्व स्वयं वचनदाता पर ही होता है।

उदाहरण—(क) राम, श्याम को 1000 रुपये देने का वचन देता है इस वचन का निष्पादन राम या तो स्वयं कर सकता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिलवाकर कर सकता है। यदि राम की मृत्यु हो जाती है तो उसके उत्तराधिकारियों को वचन का निष्पादन करना होगा।

(ख) कमलेश, विमलेश के लिए एक चित्र बनाने का वचन देता है चित्र बनाने की कला में व्यक्तिगत योग्यता एवं निपुणता की आवश्यकता है। अत. कमलेश को इस वचन का निष्पादन स्वयं ही करना होगा।

(2) एजेन्ट (Agent)—व्यक्तिगत चातुर्य एवं योग्यता की निम्न अनुबन्धों में आवश्यकता नहीं होती है उन्हें वचनदाता चाहे तो अपने एजेन्ट द्वारा भी निष्पादित करवा सकता है।

(3) अन्य व्यक्ति द्वारा निष्पादन—वचनगृहीता जब किसी तीसरे पक्षकार से वचन का निष्पादन स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में इस अनुबन्ध का निष्पादन वचनदाता से नहीं मांग सकता।

(4) संयुक्त वचनदाताओं का दायित्व (Liabilities of joint promisors)—जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर कोई वचन देते हैं तो इसे संयुक्त वचन कहा जाता है। संयुक्त वचनों के निष्पादन से सम्बन्धित निम्नलिखित नियम हैं :—

(क) संयुक्त दायित्वों का विभाजन—जब दो या दो से अधिक व्यक्तियो ने मिलकर वचन दिया है तो जब तक अनुबन्ध से कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट नही होता उन्हें अपने संयुक्त जीवन-काल मे अर्थात् जब तक कि वे सब जीवित हैं उन सबको मिलकर वचन पूरा करना होगा और उनमें से किसी की मृत्यु के बाद उसके प्रतिनिधि को शेष जीवित वचनदाताओं के साथ मिलकर वचन को पूरा करना होगा तथा यदि समस्त वचनदाताओं की मृत्यु हो जाती है तो इन सबके वैधानिक उत्तराधिकारियों को मिलकर संयुक्त रूप से वचन का निष्पादन करना होगा।

(ख) संयुक्त वचनदाताओं में से कोई भी निष्पादन के लिए विवश किया जा सकता है—जब दो या दो से अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से कोई वचन देते हैं तो इसके विपरीत किसी स्पष्ट करार के अभाव में वचनगृहीता को अधिकार होगा कि वह संयुक्त वचनदाताओं में से किसी भी एक को सम्पूर्ण वचन के निष्पादन के लिए विवश कर सकता है।

(ग) प्रत्येक वचनदाता अंशदान के लिए बाध्य कर सकता है—दो अथवा अधिक प्रस्तावकों में से किसी एक ने अनुबन्ध का निष्पादन किया है तो वह अन्य संयुक्त वचनदाताओं से बराबर का अंशदान कर सकता है, जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट नही होता हो।

उदाहरण—अमर, अकबर और अरविन्द जेकी को 3000 रुपये देने का वचन देते हैं। जेकी ने केवल अमर से 3000 रुपये वसूल कर लिए अमर को अकबर तथा अरविन्द से एक-एक हजार प्राप्त करने का अधिकार है। तीनों का बराबर दायित्व होगा क्योकि तीनों ने मिलकर वचन दिया है।

(घ) अंशदान में त्रुटि होने पर हानि का बटवारा—यदि दो या दो से अधिक सह-वचनदाताओं में से कोई एक अपना भाग चुकाने मे त्रुटि करे तो वह क्षति शेष संयुक्त वचनदाताओं मे बराबर-बराबर बाँट दी जायेगी।

उदाहरण—अमर, अकबर और एन्थोनी जेकी को 3000 रुपये देने का वचन देते हैं। अकबर अपने हिस्से की राशि नही दे पाता है। अकबर को 1000 रुपये अमर व एन्थोनी में बराबर बांट दिए जायेंगे और इस प्रकार अमर व एन्थोनी को जेकी को 1500-1500 रुपये देने पड़ेंगे।

(ङ) किसी एक संयुक्त वचनदाता को निष्पादन से मुक्ति—वचनगृहीता ने यदि सयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को निष्पादन से मुक्त कर दिया है तो दूसरे सभी

संयुक्त वचनदाता दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते हैं। अन्य सभी संयुक्त वचनदाताओं को अपना हिस्सा देना पड़ेगा।

उदाहरण—अमर, अकबर और एन्थोनी संयुक्त रूप से जेकी को 3000 रुपये देने का वचन देते हैं। जेकी ने अमर को दायित्व मुक्त कर दिया। जेकी अकबर और एन्थोनी से 1500-1500 रुपये प्राप्त कर सकता है परन्तु अकबर और एन्थोनी प्रत्येक अमर से 500 रुपये ले लेंगे।

(ख) संयुक्त वचनगृहीता के अधिकार—यदि किसी एक व्यक्ति ने दो या अधिक व्यक्तियों को कोई वचन दिया है तो जब यदि अनुबन्ध में कोई विपरीत आशय प्रकट न हो, निष्पादन मांगने का अधिकार समस्त वचनगृहीताओं को संयुक्त रूप से उनके जीवन काल में रहता है यदि उनमें से किसी की भी मृत्यु हो जाए, उसके प्रतिनिधि तथा शेष जीवित वचनगृहीताओं को रहता है।

उदाहरण—जगमोहन ने जनार्दन और जयनाथ को उनसे उधार लिये गये 10,000 रुपये एक निश्चित दिन ब्याज सहित लौटाने का वचन दिया। जनार्दन की मृत्यु हो गयी। जनार्दन का उत्तराधिकारी संयुक्त रूप से ही वचन का निष्पादन जगमोहन से कर सकता है।

(iii) निष्पादन के समय और स्थान (Time and place for performance)—निष्पादन के समय तथा स्थान के सम्बन्ध में अनुबन्ध अधिनियम की धारा 46 से 50 तक लागू होती हैं—

(क) जहाँ अनुबन्ध के अनुसार किसी वचनदाता को अपना वचन वचनगृहीता के आवेदन के बिना करना है तो वचन उचित समय के अन्दर निष्पादित किया जाना चाहिये। उचित समय का निर्धारण मामले की परिस्थितियों पर, व्यापार में प्रचलित रिवाज तथा उन तथ्यों पर जिनका ध्यान पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय था, निर्भर होता है। (धारा 46)

(ख) जिन अनुबन्धों में निष्पादन का समय निश्चित है और वचनदाता को अपना वचन वचनगृहीता के आवेदन बिना ही निष्पादित करना है तो वचनगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि वचन का निष्पादन उस तिथि पर सामान्य व्यापारिक समय में किसी भी समय और उस स्थान पर करे जहाँ वचन का निष्पादन होना चाहिये। (धारा 47)

उदाहरण—रमेश, महेश के गोदाम पर कुछ निश्चित माल 15 जनवरी को देने का वचन देता है। 15 जनवरी को रमेश, महेश के गोदाम पर सामान्य व्यापारिक समय के बाद माल लाता है। गोदाम बन्द हो जाता है। रमेश द्वारा वचन का निष्पादन सामान्य व्यापारिक घण्टों में नहीं करने के कारण वचन का निष्पादन नहीं माना जायेगा।

(ग) जिन अनुबन्धों में निष्पादन का समय निश्चित है और वचन का निष्पादन वचनगृहीता के आवेदन पर ही करना है तो वचनगृहीता को चाहिये कि उचित स्थान तथा समय पर निष्पादन के लिए आवेदन करे। उचित स्थान तथा समय क्या है? यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होता है। (धारा 48)

उदाहरण—जय, विजय को 100 क्विटल चावल एक निश्चित दिन सुपुर्द करने का वचन देता है जय का कर्त्तव्य है कि इस कार्य के लिए विजय से कोई उचित स्थान नियुक्त करने के लिए आवेदन करे और उसी दिन उसी स्थान पर माल सुपुर्द करे।

(घ) जब वचनगृहीता के आवेदन के बिना ही वचन को पूरा करना है और इसे पूरा करने के लिए कोई स्थान नियत नहीं किया है तो वचनदाता को चाहिये कि वचन-गृहीता से कोई उचित स्थान नियुक्त करने के लिए आवेदन करे तथा ऐसे स्थान पर वचन को पूरा करे। (धारा 49)

उदाहरण—विनय कुमार, गौरव को 100 क्विटल चावल एक निश्चित दिन सुपुर्द करने का वचन देता है किन्तु, स्थान निश्चित नहीं किया। विनय कुमार को गौरव से उचित स्थान निश्चित करने के लिए आवेदन करना चाहिये और फिर उसी स्थान पर माल सुपुर्द करना चाहिये।

(ङ) किसी वचन का निष्पादन किसी भी ऐसी रीति से अथवा किसी भी ऐसे समय पर किया जा सकता है जिसके लिए वचनगृहीता आज्ञा देता है अथवा अनुमोदन करता है। *(धारा 50)*

(iv) **पारस्परिक वचनों का निष्पादन** (Performance of reciprocal promises)—पारस्परिक वचनों को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है :—

(1) अनुबन्ध जिनमें पारस्परिक वचनों को एक साथ निष्पादित करना है—दोनों पक्षकारों को ऐसे अनुबन्धों मे अपने-अपने वचनो का निष्पादन एक साथ ही करना होता है। यदि वचनदाता को यह विश्वास है कि वचनगृहीता अपने वचन का निष्पादन कर रहा है तो उसे भी अपने वचन का निष्पादन करना चाहिये।

उदाहरण—अनिल और अशोक यह अनुबन्ध करते हैं कि अनिल अशोक को माल सुपुर्द करेगा जिसका रुपया अशोक सुपुर्दगी पर देगा। अनिल को उस समय तक माल की सुपुर्दगी देने की आवश्यकता नही है जब तक कि अशोक भुगतान करने को तैयार नही। इसी प्रकार अशोक के लिये यह आवश्यक नही है कि वह अनिल के लिये माल का रुपया चुकाये जब तक कि अनिल माल की सुपुर्दगी देने को इच्छुक व तैयार नही हैं।

(2) अनुबन्ध जिनमें शर्त वाले पारस्परिक वचन है—ये ऐसे अनुबन्ध हैं जिनमें एक वचन का निष्पादन दूसरे वचन के निष्पादन हो जाने पर किया जाता है *अन्यथा नहीं* किया जाता। ऐसे वचनों के लिए निम्नलिखित नियम है :—

(क) यदि पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम अनुबन्ध मे निश्चित किया हुआ है तो वे उसी क्रम में पूरे किये जायेंगे और जहाँ यह क्रम निश्चित रूप से स्पष्ट नही है तो वे उस क्रम से पूरे किये जायेंगे जो व्यवहार के स्वभाव के अनुसार आवश्यक हैं। (धारा 52)

उदाहरण—सोम और मंगल यह अनुबन्ध करते हैं कि सोम एक निश्चित मूल्य पर मंगल के लिए एक मकान बनायेगा। सोम के मकान बनाने के वचन का निष्पादन पहले करना चाहिये और मंगल के भुगतान का निष्पादन बाद में।

(ख) कोई अनुबन्ध यदि पारस्परिक वचन के सम्बन्ध में है और अनुबन्ध का एक

पक्षकार दूसरे पक्षकार को अपने वचन का निष्पादन करने से रोकता है तो इस प्रकार रोके गये पक्षकार की इच्छा पर वह अनुबन्ध शून्यकरणीय होता है और अनुबन्ध के पूरा न होने के फलस्वरूप उसे जो क्षति हुई है उसका मुआवजा वह दूसरे पक्षकार से पाने का अधिकारी है। (धारा 53)

उदाहरण—सीताराम और राधेश्याम यह अनुबन्ध करते है कि राधेश्याम सीताराम के लिए 2000 रुपये मे कोई काम करेगा राधेश्याम इस कार्य को करने के लिए तैयार एवं इच्छुक है परन्तु सीताराम उसे ऐसा करने से रोकता है। राधेश्याम की इच्छा पर यह अनुबन्ध शून्यकरणीय है तथा सीताराम से अनुबन्ध भंग के लिये क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

(ग) किसी अनुबन्ध में जब ऐसे पारस्परिक वचन हैं कि जिनमें से एक तब तक पूरा नही किया जा सकता है अथवा उसे पूरा करने की मांग तब तक नही की जा सकती जब तक कि दूसरा पूरा न हो चुका हो और उसे दूसरे पक्षकार की ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति करनी होगी जो उसे अनुबन्ध के निष्पादन न होने से उठानी पड़ी हो। (धारा 54)

उदाहरण—हरिशंकर ओमशंकर को 100 क्विंटल चावल बेचने का वचन देता है जिसकी सुपुर्दगी अगले दिन की जायेगी और ओमशंकर उनका मूल्य 15 दिन के भीतर हरिशंकर को देने का वचन देता है। हरिशंकर अगले दिन चावल की सुपुर्दगी नही देता है अत. ओमशंकर को मूल्य के लिए भी बाध्य नही किया जा सकता है। यदि हरिशंकर द्वारा निष्पादन न करने के कारण ओमशंकर को कोई क्षति होती है तो उसकी पूर्ति भी हरिशंकर करेगा।

(3) अनुबन्ध जिनमें पारस्परिक वचन स्वतन्त्र हैं—ऐसे अनुबन्ध में प्रत्येक पक्षकार को अपने-अपने वचन को दूसरे पक्षकार की प्रतिज्ञा किये बिना ही स्वतन्त्र रूप से पूरा करना पड़ता है और यदि दूसरा पक्षकार अपने वचन का निष्पादन नही करता है तो वह क्षतिपूर्ति के लिए दायी होगा।

उदाहरण—महेश रमेश को 100 टन चावल 15 फरवरी को बेचने का करार करता है जिसका मूल्य रमेश द्वारा 1 फरवरी को पेशगी दिया जायेगा। यदि रमेश 1 फरवरी को भुगतान नही करता है तो भी महेश चावल की सुपुर्दगी देने के लिए स्वतन्त्र है तथा रमेश को सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य किया जा सकेगा। महेश रमेश के ऊपर क्षतिपूर्ति तथा कीमत के भुगतान के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

जब समय अनुबन्ध का सार तत्त्व हो (When time is essence of contract)—इस सम्बन्ध में, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 55 में निम्नलिखित तीन नियम हैं :—

(क) जब अनुबन्ध का सार समय है—यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार एक निश्चित समय पर या दूसरे पूर्व अपने वचन के निष्पादन का वचन देता है और समय अनुबन्ध का सार है किन्तु, ऐसा करने में, वह असफल रहे तो यह अनुबन्ध वचनगृहीता की इच्छा पर शून्यकरणीय हो जाता है।

(ख) जब अनुबन्ध का सार समय नहीं है—यदि पक्षकारों का अभिप्राय यह नही था कि समय अनुबन्ध का सार हो, तो वचनदाता द्वारा निश्चित समय पर या दूसरे पूर्व

अपने वचन का निष्पादन नही करने पर अनुबन्ध शून्यकरणीय नही होगा। यदि ऐसी हानि-पूर्ति के लिए अधिकारी हो जाता है।

(ग) निश्चित समय के अतिरिक्त किसी अन्य समय पर निष्पादन स्वीकार कर लेना यदि वचनदाता द्वारा निश्चित समय पर वचन का निष्पादन नही होता है तो अनुबन्ध शून्यकरणीय हो जाता है किन्तु, यदि वचनगृहीता ने किसी अन्य समय उस वचन का निष्पादन स्वीकार कर लिया है तो वचनगृहीता निर्दिष्ट समय पर वचन के निष्पादन न होने से हुई किसी हानि के लिए क्षति-पूर्ति की मांग नही कर सकता किन्तु यदि वचनगृहीता ने निष्पादन स्वीकार करते समय अपनी क्षतिपूर्ति की इच्छा व्यक्त कर दी थी तो वह क्षति-पूर्ति पा सकता है।

(v) भुगतानों का नियोजन (Appropriation of Payment)–भुगतानों के नियोजन की समस्या उस समय उत्पन्न होती है जबकि ऋणी को ऋणदाता के अनेक ऋण देने होते हैं। ऋणी द्वारा किया गया भुगतान ऋणदाता किस ऋण के लिए माने। इस समस्या का समाधान भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धाराएँ 59 से 61 तक करती हैं जिनका वर्णन निम्न-लिखित प्रकार है :—

(1) स्पष्ट सूचना के अनुसार नियोजन—यदि एक ऋणी ने एक ही ऋणदाता से कई ऋण लिये हैं और वह स्पष्ट सूचना के साथ किसी एक विशेष ऋण का भुगतान करता है तो ऋणदाता का कर्त्तव्य है कि उस भुगतान का उपयोग उसी ऋण के लिए करे जिसके लिए ऋणी ने निर्देश किया है।

यदि ऋणी कोई स्पष्ट सूचना नही देता है किन्तु परिस्थितियो से ऐसा ज्ञात होता है कि भुगतान किसी विशेष ऋण के सम्बन्ध मे ही है तो ऐसी दशा मे ऋणदाता को ऋण के सम्बन्ध मे ही उस धन का नियोजन करना चाहिये।

उदाहरण—जनार्दन ऋणी है और नलिन ऋणदाता है जनार्दन को नलिन के कई ऋण चुकाने हैं। एक ऋण 5000 रुपये के प्रतिज्ञा-पत्र के सम्बन्ध मे भी है जो उसे 1 अगस्त को चुकाना है। जनार्दन पर नलिन का इतनी ही राशि का कोई अन्य ऋण नहीं है जनार्दन नलिन को 1 अगस्त को 5000 रुपये भेजता है। इस भुगतान का नियोजन इस प्रतिज्ञा पत्र के लिए ही माना जायेगा।

(2) ऋणदाता की इच्छानुसार नियोजन—जब एक ऋणी अपने अनेक ऋणो मे से किसी एक ऋण का भुगतान करते समय ऋणदाता को स्पष्ट निर्देश नही देता और न ही परिस्थितियो में भुगतान का नियोजन किया जा सकता है ऐसी स्थिति में ऋणदाता अपनी इच्छा से उस भुगतान का नियोजन किसी वैध ऋण के लिए कर सकता है, चाहे उसका प्राप्त करना प्रचलित लिमिटेशन अधिनियम के अन्तर्गत वर्जित हो अथवा नहीं।

उदाहरण – लोकेश किसी एक बैंक से दो ऋण लेता है जो प्रत्येक 30,000 रुपये का है जिसमें एक ऋण का प्रतिभू नरेश है। लोकेश ने बैंक में 40,000 रुपये भेजे लेकिन यह सूचना नही देता है कि इस राशि में से पहले किस ऋण का नियोजन करना है। बैंक सबसे पहले उस ऋण को समाप्त करता है जिस पर गारन्टी नही है और बाकी 10,000 रुपये दूसरे ऋणी की ओर नियोजन कर दिये जिस पर नरेश प्रतिभू था। यह नियोजन वैध माना जावेगा।

(3) समय क्रम में नियोजन—यदि ऋणी व ऋणदाता दोनों में से कोई भी भुगतान का नियोजन नहीं करता है तो उसका नियोजन समय क्रम के अनुसार अर्थात् सबसे पुराने ऋण का भुगतान सबसे पहले उसके बाद वाले का उसके बाद करना चाहिये भले ही ऋण परिसीमन अधिनियम के अन्तर्गत हो चाहे वह ऋण अवधि वर्जित हो चुका हो। यदि एक ही दिन एक से अधिक ऋण दिये गये हैं तो चुकाई गई राशि का प्रत्येक ऋण के लिये आनुपातिक तौर पर विनियोजन करना चाहिये।

उदाहरण—(क) अमर पर जनार्दन के निम्न ऋण हैं—

ऋण की राशि	ऋण की विशेषताएँ—
5000	अवधि-वर्जित ऋण है।
2000	10 अगस्त को चुकाना है।
3000	14 अगस्त को चुकाना है।
2000	20 ,, ,,
3000	30 ,, ,,

अगस्त माह में अमर जनार्दन को 3000 रुपये भेजता है तथा भुगतान किस विशेष ऋण के लिए है इसकी सूचना नहीं देता है और परिस्थितियों से भी कोई बात प्रकट नहीं होती है तो ऐसी स्थिति में ऋणदाता अवधि-वर्जित ऋण के लिए 3000 रुपये की राशि का नियोजन कर सकता है।

(ख) सीताराम को राधेश्याम के कुछ ऋण निम्न प्रकार चुकाने हैं—

ऋण की राशि	ऋण की विशेषताएँ—
4000	अवधि-वर्जित है।
2000	,, ,,
4000	1 फरवरी को चुकाना है।
6000	15 मार्च को चुकाना है।

सीताराम 31 जनवरी को 3000 रुपये भेजता है किन्तु नियोजन के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई सूचना नहीं देता है तो ऐसी स्थिति में राधेश्याम 3000 रुपयें को दोनों अवधि-वर्जित ऋणों के भुगतान के लिए ऋणों की राशि के अनुपात में अर्थात् 2000 रुपये 1000 रुपये का नियोजन किया जावेगा।

(4) यदि ऋण पर ब्याज भी हो—ऋण यदि ऐसा है जिस पर ब्याज भी देना है और ऋण का भुगतान करने वाला यह बिना बताये भुगतान करता है कि यह राशि ब्याज के लिए है या मूलधन के लिए तो ऐसी स्थिति में राशि का भुगतान सर्वप्रथम ब्याज के लिये किया जावेगा और शेष राशि का मूलधन के लिए।

उदाहरण—मनमोहन ऋणी है और जगमोहन ऋणदाता है। मनमोहन ने जगमोहन से 5000 रुपये व्यापार ऋण लिया। कुछ समय के बाद मनमोहन ने 550 रुपये जगमोहन के पास भिजवाये यदि इस समय तक ब्याज 50 रुपये हो गये हो तो पहले ब्याज के 50 रुपये नियोजन करेगा और शेष 500 रुपये का मूलधन के लिए नियोजन करेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनुबन्ध की समाप्ति के विभिन्न ढगों की संक्षेप मे विवेचना कीजिये।
   Explain the various ways in which a contract may be discharged.
   (जोधपुर वि. वि. 1979)
2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार भुगतानों के नियोजन सम्बन्धी नियमों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
   Discuss briefly the rules regarding appropriation of payment as stated in Indian Contract Act.

11

अनुबन्ध-मुक्ति
(Discharges of Contracts)

विषय सामग्री—अनुबन्ध मुक्ति की रीतियाँ या विधियाँ, अभ्यास के लिए प्रश्न।

अनुबन्ध-मुक्ति की रीतियाँ या विधियाँ
(Methods of Discharge of Contract)
(धारा 37 से 67 तक)

अनुबन्ध निम्न में से किसी भी विधि से समाप्त किया जा सकता है :—

I. पक्षकारों द्वारा वचनों का निष्पादन करके।
II. पारस्परिक करार द्वारा।
  (1) नवीयन द्वारा।
  (2) परिवर्तन द्वारा।
  (3) अधिकार-त्याग द्वारा।
  (4) आश्वासन तथा संतुष्टि द्वारा मुक्ति।
III. अवधि समाप्त होने से अनुबन्ध की समाप्ति।
IV. निष्पादन की असम्भवता द्वारा मुक्ति।
  (1) विद्यमान असम्भवता।
  (2) आकस्मिक असम्भवता।
V. अनुबन्ध-भंग द्वारा मुक्ति।
  (1) वास्तविक भंग।
  (2) प्रत्याशित भंग।
VI. शून्यकरणीय एवं शून्य अनुबन्धों में प्रतिस्थापन।

(I) पक्षकारों द्वारा वचनों का निष्पादन करके (Discharge by Performance of Promises)—इस विधि के अनुसार अनुबन्ध के पक्षकार अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार अपने-अपने दायित्वों का पालन कर देते हैं तथा अनुबन्ध से मुक्ति दिला देते हैं। यह विधि अनुबन्ध से मुक्ति की सबसे अधिक प्रचलित विधि है।

उदाहरण—मोहन अपनी गाय जनार्दन को 1000 रुपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। यहाँ मोहन गाय की सुपुर्दगी देकर अपने वचन का निष्पादन करता है तथा जनार्दन 1000 रुपये देकर प्राप्त कर लेता है तथा अपने वचन का निष्पादन करता है तो माना जाता है कि पक्षकारों ने अपने-अपने वचन का निष्पादन कर दिया और अनुबन्ध की पूर्णतः मुक्ति हो जाती है।

(ii) पारस्परिक करार द्वारा समाप्ति (Discharge by mutual agreement)—पारस्परिक करार द्वारा भी अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अनुबन्ध से मुक्ति पा सकते हैं। पारस्परिक करार द्वारा अनुबन्ध से निम्नलिखित में से किसी भी विधि से मुक्ति पाई जा सकती है—

(1) नवीयन (Novation)—नवीयन से आशय मूल अनुबन्ध के स्थान पर नये अनुबन्ध के निर्माण से है। यह नया अनुबन्ध या तो पुराने पक्षकारों के मध्य ही हो सकता है या अन्य किन्हीं नये पक्षकारों के बीच हो सकता है। नवीयन की दशा में अनुबन्ध की शर्तें पुराने अनुबन्ध की तुलना में पर्याप्त भिन्न हो सकती हैं।

नवीयन के फलस्वरूप पुराने अनुबन्ध को निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं होती और नया अनुबन्ध उसके स्थान पर अस्तित्व में आ जाता है। सभी पक्षकारों की सहमति से ही नवीयन हो सकता है।

नवीयन की विशेषताएँ

(i) मूल अनुबन्ध के स्थान पर नया अनुबन्ध प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

(ii) पुराने अनुबन्ध के सभी पक्षकार हों, यह नये अनुबन्ध में आवश्यक नहीं है, पक्षकार बदल भी सकते हैं।

(iii) मूल अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन हो सकता है।

(iv) नवीयन के लिए मूल अनुबन्ध के सभी पक्षकार सहमत होने चाहिए।

(v) मूल अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त सभी अधिकार नवीयन की स्थिति में समाप्त हो जाते हैं।

(vi) नवीयन द्वारा प्रतिस्थापित अनुबन्ध राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होना चाहिए अगर ऐसा नहीं है तो नवीयन नहीं कहलायेगा।

उदाहरण—(i) लोकेश, हरीश का ऋणी है। लोकेश, हरीश और हरि आपस में करार करते हैं कि हरीश लोकेश के स्थान पर हरि को अपना ऋणी मानेगा। यहाँ नवीयन द्वारा अर्थात् नये अनुबन्ध के स्थान पर पुराने अनुबन्ध की समाप्ति कर दी गयी है।

(ii) महेश, रमेश का 1000 रुपये का ऋणी है। महेश, रमेश से अनुबन्ध करता है। जिसके अन्तर्गत महेश रमेश को अपना मकान 5,000 रुपये में बन्धक रख देता है। इस नये अनुबन्ध में पुराने अनुबन्ध की शर्त बदल गयी है।

(2) परिवर्तन द्वारा (Alteration)—दोनों पक्षों की राय से किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत कोई परिवर्तन किया जाता है जो मूल अनुबन्ध की शर्तों से बिल्कुल भिन्न हो तो इसे परिवर्तन कहा जाता है। शर्तों में परिवर्तन समय, स्थान अथवा रकम इत्यादि के सम्बन्ध में हो सकता है।

उदाहरण—राकेश सुरेश को 100 क्विंटल चावल 200 रुपये प्रति क्विंटल की दर से 2 माह मे देने का वचन देता है। बाद में राकेश और सुरेश इस प्रकार परिवर्तन कर देते हैं कि राकेश सुरेश को उसी दर पर 70 क्विंटल चावल 4 माह के अन्दर देगा। अतः स्पष्ट है कि बाद वाला अनुबन्ध पहले अनुबन्ध का अन्त कर देता है।

(3) अधिकार त्याग द्वारा (By remission)—अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक सहमति द्वारा मूल अनुबन्ध को रद्द करते हैं। ऐसा करने पर अनुबन्ध किसी भी पक्षकार पर लागू नहीं होता है।

ऐसा अनुबन्ध स्पष्ट करार द्वारा समाप्त हो सकता है अथवा आचरण मे गभित हो सकता है। उचित समय के अन्दर दोनों पक्षकारों द्वारा निष्पादन न करना निरस्त करने का प्रमाण हो सकता है।

उदाहरण—रमेश, सुरेश को कुछ माल एक निश्चित तिथि को सुपुर्द करने का वचन देता है। निष्पादन की तिथि से पूर्व रमेश व सुरेश आपस में करार करते हैं कि अनुबन्ध का निष्पादन नहीं किया जायेगा तो यहाँ पर अनुबन्ध अधिकार त्याग द्वारा समाप्त माना जायेगा।

(4) आश्वासन तथा सन्तुष्टि द्वारा समाप्ति (Termination by Accord and satisfaction)—आश्वासन एवं संतुष्टि में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को नया प्रतिफल देता है और दूसरा पक्षकार इस नये प्रतिफल के बदले में अपने मूल अनुबन्ध के अधिकार को छोड़ देता है। इस श्रेणी मे प्राय. ऐसे करार आते हैं यहाँ ऋणदाताओं को निर्दिष्ट समय पर अथवा उससे पहले आंशिक भुगतान कर दिया जाता है और वह उसे पूर्ण प्रतिफल के रूप में स्वीकार कर लेते है। अथवा यदि किसी अनुबन्ध के अधीन देय राशि के सम्बन्ध में कोई विवाद हो और पारस्परिक निश्चित की हुई किसी रकम का भुगतान किया जाय अथवा दिवालिया होने की दशा में कोई फैसला किया जाये और फैसले की ही रकम दी जाये।

उदाहरण—जोगेन्द्र महेन्द्र का 4000 रुपये का ऋणी है। जोगेन्द्र उस रकम के बदले में महेन्द्र को केवल 3000 रुपये उसी स्थान तथा समय पर देता है जिस समय तथा जिस स्थान पर 4000 रुपये देय थे। महेन्द्र उसे स्वीकार कर लेता है। ऐसी दशा में पूर्ण ऋण को समाप्त समझना चाहिए।

अवधि समाप्त होने से अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of contract by lapse of time)—यदि अनुबन्ध एक निश्चित समय के अन्दर ही सम्पन्न करना है तो उसी निश्चित अवधि में पक्षकारों को अपने वचन का निष्पादन कर देना चाहिए। यदि अनुबन्ध के निष्पादन की मांग अनुबन्ध के पक्षकार उस निश्चित समय में नहीं करते तो ऐसा अनुबन्ध समाप्त हुआ माना जावेगा।

उदाहरण के लिए—"यदि कोई ऋणी अपने ऋणदाता को निश्चित समय पर ऋण वापस नहीं करता है और ऋणदाता ने देय तिथि के बाद तीन वर्ष में मुकदमा दायर नहीं किया है तो राजनियम द्वारा ऋण वसूल करने का उसका अधिकार समाप्त हो जायेगा और ऐसी स्थिति में ऋणी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा और अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा।

(iv) निष्पादन की असम्भवता द्वारा समाप्ति (Termination by impossibility of performance)—किसी अनुबन्ध का जब निष्पादन करना असम्भव हो जाता है तो वह अनुबन्ध शून्य हो जाता है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 56 के अनुसार, "असम्भव कार्य को करने के करार शून्य होते हैं।[1]"

इस धारा के अन्तर्गत असम्भवता दो प्रकार की मानी गयी है :—

(1) विद्यमान असम्भवता (Existent impossibility)—यह दो प्रकार की होती है :—

(i) अज्ञात असम्भवता (Unknown impossibility)—जब अनुबन्ध के पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय जिस कार्य के सम्बन्ध में अनुबन्ध किया जा रहा है वह कार्य असम्भव है ऐसे कारणों की जानकारी नहीं होती है तो अज्ञात असम्भवता मानी जाती है।

(ii) ज्ञात असम्भवता (Known impossibility)—जब अनुबन्ध के किसी पक्षकार को अनुबन्ध करते समय असम्भवता की जानकारी थी या आसानी से जानकारी की जा सकती थी तो यह ज्ञात असम्भवता मानी जाती है।

(2) आकस्मिक असम्भवता (Supervening Impossibility)—वह कार्य जिसके विषय में अनुबन्ध किया गया है यदि अनुबन्ध के समय सम्भव था किन्तु अनुबन्ध करने के बाद परिस्थितियों के परिणामस्वरूप असम्भवता का कारण उत्पन्न हो जाता है तो यह आकस्मिक असम्भवता कहलाती है।

आकस्मिक असम्भवता या निराशा निम्न कारणों से हो सकती है—

(i) अनुबन्ध की विषय वस्तु या उद्देश्य नष्ट हो जाने पर—जब अनुबन्ध करने के बाद वह वस्तु या उद्देश्य जिसके लिए अनुबन्ध किया गया है नष्ट हो जाता है और वचनदाता का दूसरा कोई दोष नहीं है तो अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

उदाहरण—महेश अपना हॉल माहेश्वरी समाज को 2 दिन के लिए किराये पर देता है। माहेश्वरी समाज द्वारा अपना कार्यक्रम प्रारम्भ करने के पूर्व ही वह हाल आग से नष्ट हो जाता है। तो ऐसी स्थिति में यहाँ किराये का यह अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

(ii) किसी घटना का घटित न होना—किसी घटना का घटित होना यदि अनुबन्ध का आधार है और यदि वह घटना नहीं होती है तो ऐसी स्थिति में अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा।

उदाहरण—क्रेल बनाम हेनरी का मामला महत्वपूर्ण है। इस विवाद में हेनरी ने क्रेल के मकान को सम्राट् सप्तम एडवर्ड व राजतिलक के जुलूस को देखने के लिए किराये पर लेने का अनुबन्ध किया था। बाद में सम्राट् की बीमारी के कारण राजतिलक का जुलूस स्थगित कर दिया गया न्यायालय में इस अनुबन्ध को आकस्मिक असम्भवता द्वारा शून्य घोषित किया।

(iii) राजनियम में परिवर्तन के कारण—जब अनबन्ध का निष्पादन राजनियम में परिवर्तन हो जाने के कारण अवैध या असम्भव हो जाता है तो ऐसी स्थिति में अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव होने के कारण अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

उदाहरण—लखनऊ का लखन लाल जोधपुर के जयपाल को 500 क्विटल गेहूँ

---

1. "An Agreement to do an act impossible in itself is void." (Sec. 56)

बेचने तथा जोधपुर में सुपुर्दगी देने का अनुबन्ध करता है। अनुबन्ध करने के बाद में सरकार एक अध्यादेश द्वारा एक राज्य से दूसरे राज्य में गेहूँ ले जाने पर रोक लगा देती है। तो इस अनुबन्ध की समाप्ति राजनियम के लागू होने के कारण हुई।

(iv) व्यक्तिगत असमर्थता—व्यक्तिगत सेवा के अनुबन्ध में जिस व्यक्ति की सेवा प्रदान करनी है उसकी मृत्यु या असमर्थता के कारण अनुबन्ध का पालन करना असम्भव हो जाता है तो अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

उदाहरण—गोपाल, मोहन के लिए ताजमहल का चित्र बनाने का वादा करे और वह अगर 20 दिन बाद ही मर जाता है या उसका हाथ कट जाता है या वह अन्धा हो जाता है तब अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

(v) युद्ध छिड़ने के कारण असम्भवता—अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अलग-अलग देशों में रहने वाले हैं। पहले दोनों देश मित्र थे, किन्तु अब युद्ध छिड़ जाने से ऐसे अनुबन्ध का निष्पादन युद्ध-काल के दौरान नहीं किया जा सकता है।

उदाहरण—जय जो भारत का रहने वाला है एक अमेरिकी व्यापारी से सामान खरीदने का अनुबन्ध करता है यदि अनुबन्ध सम्पन्न होने के पूर्व ही भारत और अमेरिका में युद्ध छिड़ जाय तथा जो सामान खरीदना था उस पर भारत सरकार प्रतिरोध लगा दे तो अमेरिकी व्यापारी बेचने के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायेगा।

(v) अनुबन्ध भंग द्वारा समाप्ति (Termination of contract by Breach)—जब अनुबन्ध का कोई पक्षकार अपने वचन का निष्पादन न करे तो यह अनुबन्ध का भंग कहलाता है। अनुबन्ध का भंग दो प्रकार का हो सकता है :—

(i) वास्तविक भंग (Actual Breach)—यदि अनुबन्ध के निष्पादन के निश्चित समय पर कोई पक्षकार अनुबन्ध के अधीन अपने दायित्वों को निष्पादित करने में असफल रहता है तो इसे वास्तविक भंग कहा जाता है।

उदाहरण—मंगल, आनन्द को 500 क्विंटल चावल एक अगस्त को बेचने का करार करता है एक अगस्त को वह चावल की सुपुर्दगी नहीं देता है यह निष्पादन के समय अनुबन्ध भंग माना जावेगा।

(ii) प्रत्याशित अनुबन्ध भंग (Anticipatory Breach of contract)—जब अनुबन्ध के निष्पादन के समय से पहले ही कोई पक्षकार अपने निष्पादन करने से इन्कार कर देता है अथवा व्यवहार द्वारा अनुबन्ध को निष्पादित न करने का अपना स्पष्ट अभिप्राय प्रकट करता है अथवा निष्पादन के लिए अपने आपको असमर्थ बना लेता है तो इसे प्रत्याशित भंग कहा जाता है।

उदाहरण—(i) चंचल कुमार सुजाता के साथ विवाह करने का करार करता है। शादी की निश्चित तिथि से पहले ही वह सुमन से शादी कर लेता है।

(ii) रामगोपाल कुछ वस्तुएँ गिरधारी को एक अगस्त को सुपुर्द करने का अनुबन्ध करता है। 1 अगस्त से पहले ही गिरधारी को यह सूचना देता है कि वह माल की पूर्ति न कर सकेगा।

(vi) शून्यकरणीय एवं शून्य अनुबन्धों में प्रतिस्थापन—जब वह पक्षकार जिसकी

इच्छा पर अनुबन्ध शून्यकरणीय है उसे निरस्त कर देता है तो दूसरे पक्षकार को भी अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने दायित्व को निष्पादन करने की आवश्यकता नहीं रहती। शून्यकरणीय अनुबन्ध को त्यागने वाले पक्षकार ने यदि अनुबन्ध के अन्तर्गत दूसरे पक्षकार से कोई लाभ प्राप्त किया है तो वह उस लाभ को उसे लौटाने के लिए बाध्य है, जिससे उसने ऐसा लाभ प्राप्त किया था।

जब कोई करार शून्य हो जाता है अथवा जब कोई अनुबन्ध शून्य हो जाता है तो जिस व्यक्ति ने भी इस करार के अन्तर्गत लाभ प्राप्त किया है वह उस दूसरे व्यक्ति को जिससे कि वह लाभ प्राप्त हुआ है लौटाने के लिए या क्षतिपूर्ति करने के लिये बाध्य है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वे कौन-कौन सी विधियाँ है जिसके द्वारा एक अनुबन्ध समाप्त किया जा सकता है?
   What are the various methods by which a contract may be discharged or terminated?

   (जोधपुर वि. वि. 1979)

2. अनुबन्ध के नवीयन से आप क्या समझते है? वह किस प्रकार किया जाता है? इसके वैधानिक परिणाम क्या होते हैं? नवीयन और परिवर्तन मे क्या अन्तर है?
   What is "Novation" of a contract? How is it effected? What are its legal consequences? How does it differ from alteration?

3. अनुवन्ध के निष्पादन के समय व स्थान से सम्वन्धित क्या नियम हैं? अनुबन्ध के निष्पादन के समय अनुवन्ध का सार कब माना जाता है तथा उसके क्या परिणाम होते हैं?

   What is the law relating to the time and place of performance of contract? When is the time deemed to be essence of the contract in the performance of a contract and with what consequences?

4. प्रत्याशित अनुबन्ध-भंग से आप क्या समझते है? प्रत्याशित अनुवन्ध-भंग की दशा में पक्षकारों के अधिकार और उत्तरदायित्व क्या होते हैं?

   What do you understand by anticipatory breach of contract? What are the rights and liabilities of parties in case of an anticipatory breach of contract?

5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   (अ) नवीयन

   (ब) छुटकारा या त्याग

   (स) करार और सन्तुष्टि

   (द) भावी या आकस्मिक असम्भवता या नैराश्य

(य) अनुबन्ध का अप्रत्याशित भंग
(र) संयुक्त दायित्वों का बंटवारा
(a) Novation
(b) Rescission or Waiver
(c) Accord and Satisfaction
(d) Supervening Impossibility or Frustration
(e) Anticipatory breach of contract
(f) Distribution of Joint liabilities

6. उदाहरण सहित अनुबन्ध के नैराश्य सिद्धान्त का वर्णन कीजिये। अनुबन्ध के नैराश्यग्रस्त हो जाने के वैधानिक परिणामों की विस्तृत विवेचना कीजिये।
Explain with illustrations what is meant by the frustration of a contract. Discuss fully the legal effects of frustration of contract.

□□□

12

अर्द्ध अथवा गर्भित अनुबन्ध
(Quasi or Implied Contracts)

विषय-सामग्री—गर्भित अनुबन्ध का आशय, विशेषताएँ, गर्भित अनुबन्ध एवं साधारण अनुबन्धों मे अन्तर, गर्भित अनुबन्धो के प्रकार, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

अर्द्ध या गर्भित अनुबन्ध का आशय
(Meaning of a Quasi Contracts)

प्रत्येक अनुबन्ध के लिए प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति का होना अनिवार्य है परन्तु कुछ व्यवहारों मे प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति नही होती है किन्तु वे भी उसी प्रकार के दायित्व उत्पन्न करते है । जैसे वैध अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न होते है । अतः राजनियम इनको भी अनुबन्ध मानता है और ऐसे अनुबन्धों को गर्भित अनुबन्ध कहा जाता है ।

इस प्रकार अर्द्ध अनुबन्ध वे अनुबन्ध हैं, जो पक्षकारो द्वारा नही किये जाते, बल्कि राजनियम द्वारा किये जाते है ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में अर्द्ध अनुबन्ध को अनुबन्धों से मिलते-जुलते कुछ सम्बन्ध (Certain relations resembling those created by contracts) कहा है ।

संक्षेप में "अर्द्ध अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जो पक्षकारो के बीच स्पष्ट प्रस्ताव एवं स्वीकृति के अभाव में उत्पन्न होता है । किन्तु राजनियम के अनुसार उसमें सामान्य रूप से कुछ अधिकार और दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं ।

अर्द्ध अनुबन्ध की विशेषताएँ

(1) अर्द्ध-अनुबन्ध पक्षकारों की इच्छा से उत्पन्न नही होते हैं ।

(2) एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को अर्द्ध अनुबन्ध में कुछ धनराशि चुकाने के लिए बाध्य होता है ।

(3) राज्य नियमों द्वारा अर्द्ध अनुबन्ध उत्पन्न होते हैं ।

(4) अर्द्ध अनुबन्ध किसी विशेष व्यक्ति के विरुद्ध लागू होते हैं ।

अर्द्ध अनुबन्ध एवं साधारण अनुबन्धों में अन्तर
(Distinction between Quasi and ordinary contracts)

क्र. सं. अन्तर का आधार	अर्द्ध अनुबन्ध	सामान्य अनुबन्ध
1. पक्षकारों की इच्छा से उत्पन्न	अर्द्ध अनुबन्ध दोनों पक्षकारों की इच्छा से उत्पन्न नहीं होता है।	साधारण अनुबन्ध दोनों पक्षकारों की इच्छा से उत्पन्न होते हैं।
2. वैध अनुबन्ध के तत्व	इसमें वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण नहीं पाये जाते हैं।	वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण इसमें पाये जाते हैं।
3. करार का होना	अर्द्ध अनुबन्ध में पक्षकारों के मध्य करार नही होता है। परन्तु प्रभाव अनुबन्ध की भाँति माना जाता है।	साधारण अनुबन्ध मे पक्षकारो के मध्य करार होना आवश्यक है। बिना करार के अनुबन्ध नही होता है।
4. दायित्व की उत्पत्ति	राजनियम की प्रभावशीलता के होने से अर्द्ध अनुबन्ध में दायित्व उत्पन्न होता है।	इसमें पक्षकारों के दायित्व अपने आप अनुबन्ध के निर्माण के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।
5. अनुबन्ध का उत्पन्न होना	जब एक पक्षकार ने लाभ अथवा धन प्राप्त कर लिया है तब अर्द्ध अनुबन्ध उत्पन्न होता है।	साधारण अनुबन्ध में ऐसा नहीं है।

अर्द्ध अनुबन्धों के प्रकार
(Kinds of Qnasi Contracts)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में गर्भित अनुबन्धों के पाँच प्रकार बनाये गये हैं ये निम्नलिखित हैं :—

(i) अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68 के अनुसार, यदि अनुबन्ध करने में असमर्थ किसी व्यक्ति (जैसे अवयस्क, पागल) को अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को जिसका पालन करने के लिए ऐसा असमर्थ व्यक्ति वैधानिक रूप से बाध्य है, कोई दूसरा व्यक्ति उसकी स्थिति के अनुकूल जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो वह व्यक्ति जिसने आवश्यकताओं की पूर्ति की है ऐसे असमर्थ व्यक्ति की सम्पत्ति से भुगतान पाने का अधिकारी है।[1]

1. "If a Person, Incapable of entering in to a contract or any one whom be is legally bound to support is supplied by another person with necessary, suited to his condition in life, the person who has furnished such supplies in entitled to be reimpured from the property of such in capable person." (Sec. 68)

इस धारा का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं :—

(1) वस्तुएँ किसी अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्तियों को अथवा उनके आश्रितों को दी जानी चाहिये।

(2) ऐसी वस्तुएँ जीवन की आवश्यक आवश्यकताएँ होती हैं।

(3) वस्तुएँ जीवन स्तर के अनुकूल होनी चाहिये।

(4) व्यक्ति इन वस्तुओं का मूल्य प्राप्त कर सकता है।

(5) मूल्य केवल उस पक्षकार की सम्पत्ति में से ही प्राप्त किया जा सकता है।

उदाहरण—अरूण एक पागल व्यक्ति वरूण की उसकी आर्थिक स्थिति के अनुकूल आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अरूण वरूण की सम्पत्ति में से भुगतान प्राप्त कर सकता है। वरूण व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होगा।

(ii) अपने हित के लिए दूसरे व्यक्ति की ओर से भुगतान कर देने की दशा में—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 69 के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे धन के भुगतान में कोई हित रखता है जिसका भुगतान करने के लिए दूसरा व्यक्ति वैधानिक रूप से बाध्य है और इसलिए उस धन का भुगतान स्वयं कर देता है तो वह दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति से ऐसा चुकाया गया धन पाने का अधिकारी है।[1]

इस प्रकार इस नियम में निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—

(1) किसी व्यक्ति पर कोई दायित्व देय हो।

(2) वह व्यक्ति इस देय धन को चुकाने के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी हो।

(3) भुगतानकर्त्ता का भुगतान करते समय भुगतान में हित होना चाहिये।

(4) भुगतान किसी अन्य व्यक्ति को होना चाहिये, स्वयं अपने आप को नहीं।

(5) भुगतान करने वाला व्यक्ति उस व्यक्ति को भुगतान किया गया धन प्राप्त कर सकता है।

उदाहरण—जगमोहन राधेश्याम से उसका मकान किराये पर लेता है। राधेश्याम पर इस मकान के प्रति एक वर्ष का पानी का कर बकाया है। कर अदा न करने पर पानी की लाईन काटी जा सकती है। पानी की लाईन को काटने से रोकने के लिए जगमोहन पानी का कर चुका देता है। जगमोहन राधेश्याम से भुगतान वापस पाने का अधिकारी है।

(iii) स्वेच्छा से किन्तु शुल्क लेने की भावना से किये गये काम—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 70 के अनुसार, "जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिए वैध रूप से कोई कार्य करता है अथवा उसे कोई वस्तु सुपुर्द करता है और वह ऐसा बिना शुल्क के अभिप्राय से नहीं करता और दूसरा व्यक्ति उसके किये गये लाभ का प्रयोग कर लेता है तो दूसरा व्यक्ति उस पहले वाले व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करने अथवा उस वस्तु को लौटाने के लिए बाध्य होता है।"[2]

1. A Person who is interested in the payment of money which another is bound by law to pay, and who therefore pays its entitled to be reimburesed by the other" (Sec. 69)

2. "Where a person lawful'y does anything for another Person or delives any thing to him not intending to do so gratuitously, aud such other Person enjoy the benefit there of, the latter is bound to make compensation to the former in respect or to restore, the thing so done or delivered." (Sec. 70)

इस धारा के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं :—

(1) एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिए कोई वैधानिक कार्य करे या किसी वस्तु की सुपुर्दगी करे।

(2) वह व्यक्ति यह कार्य स्वेच्छा से करे।

(3) माल की सुपुर्दगी निःशुल्क भावना से नहीं होनी चाहिये।

(4) इस कार्य या वस्तु से वह दूसरा व्यक्ति लाभ प्राप्त करे।

(5) पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कार्य की क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है अथवा वस्तु को पुनः प्राप्त कर सकता है।

उदाहरण—(i) अगर कोई पॉलिश करने वाला आपके जूतों की पॉलिश करता है और आप उसे करने देते हैं। आपको उसे उचित पारिश्रमिक देना होगा।

(ii) राम कुछ वस्तुएँ गलती से श्याम के घर पर छोड़ आता है। श्याम उन वस्तुओं को अपनी वस्तुओं के रूप में काम में लेता है। ऐसी अवस्था में श्याम उसका मूल्य चुकाने के लिये या उन वस्तुओं को वापस लौटाने के लिए बाध्य है।

(iv) माल पड़ा पाने वाले का उत्तरदायित्व (Responsibility of finder of goods)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 71 के अनुसार, "अगर एक व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति का पड़ा हुआ माल मिल जाता है और उसको अपने अधिकार मे ले लेता है तो उसका उत्तरदायित्व निक्षेपगृहीता के समान हो जाता है।[1]

अर्थात् उसको माल की पूर्ण देखभाल करनी चाहिये जैसे साधारण बुद्धि का आदमी ऐसी परिस्थितियों में अपनी वस्तुओं की करता है। वास्तविक स्वामी को माल पहुँचाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। यदि वास्तविक स्वामी का पता लग जाये तो वस्तुएँ उसे सौंप देनी चाहिये। वह अपने कष्ट अथवा माल की देखरेख के सम्बन्ध मे हुए खर्च की क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है। और जब तक ऐसी क्षतिपूर्ति नही होती वह माल को अपने अधिकार मे रोक सकता है।

उदाहरण—जेकी को एक घड़ी सड़क पर पड़ी मिलती है। जेकी उस घड़ी को उठा लेता है। यहाँ पर जेकी उस घड़ी का निक्षेपगृहीता बन जाता है जेकी को घड़ी के वास्तविक मालिक का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(v) गलती से अथवा उत्पीड़न के अधीन रुपया या माल देने की दशा में—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 72 के अनुसार, "यदि किसी व्यक्ति को गलती से अथवा उत्पीड़न के अधीन कोई धन दिया गया है अथवा कोई वस्तु सुपुर्द की गई है तो ऐसे व्यक्ति को मुद्रा का भुगतान करना होगा या वस्तु लौटानी पड़ेगी।"[2]

उदाहरण—यदि व्यापारी राम गलती से कुछ वस्तुएँ श्याम के मकान की बजाय मोहन के मकान पर दे आता है तो मोहन को चाहिये कि उन वस्तुओं को वापस कर दे। यदि मोहन इन वस्तुओं को लौटाना नही चाहता है तो उसे उनकी कीमत चुकानी होगी।

---

1. "A Person who finds goods belonging to another and takes them in to his custody is subject to same responsibility as a bailee." (Sec. 71)
2. "A Person to whom money has been paid or any thing delivered by mistake or under must repay or return it." (Sec. 72)

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अर्द्ध अनुबन्ध से आप क्या समझते हैं ? यह साधारण अनुबन्ध से किस प्रकार भिन्न है ? इस प्रकार के अनुबन्धों का वर्णन कीजिये ।

   What do you mean by a quasi-contract ? How does it differ with an ordinary contract ? Give description of such contract.

2. अर्द्ध अनुबन्ध क्या है ? भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दिये गये अर्द्ध अनुबन्धों को समझाइये । (जोधपुर वि. वि. 1980)

   What are quasi-contracts ? discuss in detail the quasi-contracts dealt with under the Indian contract Act.

13

अनुबन्ध-भंग के परिणाम
(Consequences of Breach of Contract)

किसी एक पक्षकार द्वारा जब अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न हुए अपने दायित्वों को पूरा नहीं किया जाता है तो अनुबन्ध का भंग हो जाता है। अनुबन्ध-भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार को निम्नलिखित उपचार प्राप्त है :—

(1) अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्ति—अनुबन्ध का एक पक्षकार जब अपने दायित्व का निष्पादन नहीं करता है तो दूसरा पक्षकार अनुबन्ध को भंग हुआ समझ सकता है और वह अपने भाग के निष्पादन के लिए दायी नहीं रहता।

उदाहरण—रहीम अपनी गाय करीम को 1000 रुपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। करीम 1000 रुपये लेकर रहीम के पास जाता है। रहीम गाय देने से इन्कार करता है। अब करीम अपने दायित्व के निष्पादन (1000 रुपये देने) से मुक्त है।

(2) उचित पारिश्रमिक के लिए अधिकार (Claim for Quantum meriut)—इसका शाब्दिक अर्थ है "किसी व्यक्ति को उतना धन देना जितना कि उसने अर्जित किया है।" जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की प्रार्थना पर किसी वस्तु की पूर्ति करता है अथवा उसके लिए कोई काम करता है और यदि उसके लिये पहले से कोई पारिश्रमिक निश्चित नहीं होता है तो उसे न्याय की दृष्टि से सदैव कोई उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिये। इस उचित पारिश्रमिक को ही (Quantum meriut) कहा जाता है।

उदाहरण—सीताराम ने राधेश्याम के लिए मकान 10,000 रुपये में बनाने का अनुबन्ध किया। सीताराम द्वारा कार्य प्रारम्भ करने के कुछ समय बाद तथा कार्य पूरा होने के पूर्व राधेश्याम अनुबन्ध को भंग कर देता है और सीताराम को काम करने से रोक देता है। सीताराम ने जितना मकान बनाया है वह उसका उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है तथा इसके अतिरिक्त अनुबन्ध भंग के लिए हर्जाने का दावा कर सकता है।

उचित पारिश्रमिक पाने का सिद्धान्त निम्नलिखित परिस्थितियों में लागू होता है।

(i) कुछ कार्य करने के बाद अनुबन्ध-भंग करना—एक पक्षकार ने यदि दूसरे पक्षकार द्वारा अनुबन्ध भंग करने से पूर्व ही कुछ कार्य कर लिया है तो उसे कार्य के लिए उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(ii) जब किसी शून्य अनुबन्ध के अधीन कुछ कार्य किया गया है—किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत यदि किसी एक पक्षकार ने कुछ कार्य किया हो किन्तु वह अनुबन्ध

किन्हीं कारणों से शून्य हो जाता है तो दूसरे पक्षकार को पहला पक्षकार उचित पारिश्रमिक देने को बाध्य है।

(iii) जब कार्य निःशुल्क करने का विचार न हो—एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिए जब अपनी इच्छा से कोई कार्य करता है और दूसरा व्यक्ति उस कार्य से लाभ उठाता है तो ऐसी परिस्थिति में दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक चुकाने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

(iv) जब अनुबन्ध विभाजनीय हो—किसी विभाजन योग्य अनुबन्ध के अन्तर्गत यदि किसी एक पक्षकार द्वारा किये कार्यों का लाभ दूसरे ने प्राप्त किया है तो वह उसका उचित पारिश्रमिक देने को उत्तरदायी होगा। यदि अनुबन्ध अविभाज्नीय है तो उचित पारिश्रमिक की मांग नहीं की जा सकती।

(3) क्षतिपूर्ति के लिये दावे का अधिकार (Right of claim damages)—हर्जाने का आशय मुद्रा के रूप में क्षतिपूर्ति है जो कि वह पक्षकार जिसे अनुबन्ध भंग से हानि होती है उस पक्षकार से पाने का अधिकारी है जिसने अनुबन्ध भंग किया है।

क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित करने से सम्बन्धित नियम

(i) सामान्य क्षति (General damages)—अनुबन्ध का निष्पादन न होने के कारण अनुबन्ध के दूसरे पक्ष को सामान्य रूप से जो हानि सहन करनी पड़ती है उसे सामान्य क्षति कहा जाता है।

उदाहरण – महेन्द्रसिंह ने जोगेन्द्रसिंह का जहाज एक निश्चित किराये पर लेने का अनुबन्ध किया परन्तु बाद मे महेन्द्रसिंह ने अनुबन्ध को भंग कर दिया। जोगेन्द्र सिंह को जहाज अन्य व्यक्ति को किराये पर देना पड़ा। यहाँ पर यदि जोगेन्द्र सिंह को अब प्राप्त किराया पूर्व अनुबन्धित किराये से कम है तो क्षति सामान्य क्षति मानी जायेगी और महेन्द्रसिंह को इसकी पूर्ति करनी पडेगी।

(ii) विशेष क्षति (Special demages)—कोई पक्षकार यदि विशेष क्षति की मांग करता है तो उसको यह सिद्ध करना पड़ता है कि यह क्षति उन विशेष दशाओं के कारण हुई जो अनुबन्ध भंग से ही उत्पन्न हुई और जिनके बारे में अनुबन्ध करते समय दूसरे पक्षकार को ज्ञान था या अनुबन्ध करते समय स्पष्ट कर दिया था।

(iii) क्षति वास्तव में हुई हो—यह अधिकार तभी मिलता है जबकि दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध-भंग के फलस्वरूप हानि हुई हो।

(iv) नाम मात्र की क्षतिपूर्ति—यह उस समय प्रदान की जाती है जबकि अनुबन्ध-भंग के कारण कोई विशेष क्षति नहीं हुई है।

(v) ब्याज के रूप में क्षति—किसी पक्षकार पर जब कोई राशि देय है और वह उसका भुगतान देय तिथि पर करने में त्रुटि करता है तो दाता पक्षकार क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

(4) विशिष्ट निष्पादन (Specific performance)—न्यायालय की आज्ञा के अनुसार अनुबन्ध-भंग के दोष के कारण जब पक्षकार को अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार अनुबन्ध को पूरा करने के लिए बाध्य किया जाता है तो उसे विशिष्ट निष्पादन कहा जाता है।

सामान्यतः न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में विशिष्ट निष्पादन का आदेश दे सकता है :—

(i) जब कार्य पूर्ण या आंशिक रूप से न्याय सम्बन्धी हो।
(ii) अनुबन्ध भंग होने पर जब होने वाली क्षति का माप करना असम्भव हो।
(iii) अनुबन्ध-भंग करने के लिये जब आर्थिक रूप से क्षति प्राप्त करना सम्भव न हो।
(vi) अनुबन्ध-भंग के लिये जब आर्थिक रूप से क्षतिपूर्ति करना ही पर्याप्त प्रतीत नहीं होता हो।

सामान्यतया निम्न मामलों में विशिष्ट निष्पादन नहीं किया जाता :—

(क) जब मौद्रिक क्षतिपूर्ति का पर्याप्त उपचार हो।
(ख) जब अनुबन्ध निश्चित प्रकृति का हो।
(ग) जब अनुबन्ध व्यक्तिगत सेवाओं से सम्बन्धित हो।
(घ) जब अनुबन्ध का कोई एक पक्षकार अवयस्क हो।

उदाहरण—नरेश ने राकेश से एक प्राचीन मूर्ति खरीदने का अनुबन्ध किया। राकेश इस मूर्ति को नहीं देता। यहाँ वास्तविक क्षतिपूर्ति का माप उपलब्ध न होने के कारण न्यायालय अनुबन्ध के विशिष्ट निष्पादन का आदेश दे सकता है।

(5) निषेधाज्ञा पाने का अधिकार—अगर किसी अनुबन्ध में एक पक्षकार अपनी प्रतिज्ञा को भग करता है और निर्दोष पक्षकार न्याय के लिए न्यायालय की शरण लेता है और इसके लिए वह आवेदन-पत्र देता है तब निषेधाज्ञा के अनुसार न्यायालय द्वारा प्रतिज्ञा-भग करने वाले पक्षकार को प्रतिज्ञा पूरी करने की आज्ञा नहीं दी जाती बल्कि उसे प्रतिज्ञा-भंग करने से रोका जाता है। इस प्रकार इस निषेधाज्ञा मे उस पक्षकार को ऐसा कार्य करने से रोका जाता है जिससे प्रतिज्ञा भंग होने की संभावना हो।

उदाहरण :—कामिनी भ्रमर के थियेटर मे पन्द्रह दिन तक लगातार नृत्य के लिए प्रतिज्ञा करती है और वह यह भी वादा करती है कि इतने दिन के अन्दर कहीं दूसरी जगह नृत्य करने नहीं जायेगी। ऐसी स्थिति मे यदि कामिनी कहीं दूसरी जगह नृत्य के लिए जाती है तो उसे न्यायालय निषेधाज्ञा के द्वारा दूसरी जगह नृत्य करने से रोक सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अनुबन्ध भंग होने की परिस्थिति में पीड़ित पक्षकार को जो विभिन्न उपचार उपलब्ध हैं, उनका वर्णन कीजिये।

   State the different remedies available to the aggreved party for a breach of contract.

   (जोधपुर वि. वि. 1984)

2. उन परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिये जिनमें न्यायालय एक अनुबन्ध के विशिष्ट निष्पादन की आज्ञा दे सकता है।

Explain the circumstances in which the court may grant Specific performance of a contract.

3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

Write short notes on :

(अ) उचित पारिश्रमिक का सिद्धान्त ।

(ब) साधारण क्षति ।

(स) विशेष क्षति ।

(द) निर्णीत क्षति ।

(a) Doctrine of Quantum meriut.

(b) Ordinary damages.

(c) Special damages

(d) Liquidated damages.

अनुबन्ध अधिनियम 1872 पर कुछ महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्न एवं उनके सम्पूर्ण हल

प्रस्ताव तथा स्वीकृति

1. मधु राजेश को बम्बई में एक कारखाना 1,50,000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करता है। राजेश के पास प्रस्ताव एक द्रुतगामी पत्र द्वारा जोधपुर भेजा गया। डाकघर में पत्र रुक जाने के कारण देर हो गई। राजेश के पास मधु का पत्र पहुँचने के पूर्व ही मधु का एक तार उसके प्रस्ताव के भंग के लिये मिल गया। राजेश को परामर्श दीजिये।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) मधु बम्बई में स्थित कारखाने को द्रुतगामी पत्र द्वारा राजेश को बेचने का प्रस्ताव करता है।

(2) कारखाने का मूल्य प्रस्ताव में 1,50,000 रुपये है।

(3) मधु के प्रस्ताव का द्रुतगामी पत्र राजेश को देरी से मिलता है।

(4) डाकघर की त्रुटि से विलम्ब हुआ है।

(5) राजेश के पास मधु का पत्र पहुँचने के पूर्व ही प्रस्ताव का खण्डन करने वाला तार प्राप्त हो जाता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

सूचना देकर प्रस्ताव का खण्डन

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, प्रस्ताव का भंग प्रस्ताव के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन पूरा होने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है किन्तु इसके बाद नहीं।

निर्णय—मधु ने अपने विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन होने के पूर्व ही तार द्वारा प्रस्ताव का खण्डन कर दिया है। राजेश को प्रस्ताव के खण्डन की सूचना पहले मिली और प्रस्ताव की सूचना बाद में मिली अतः मधु द्वारा प्रस्ताव का वैधानिक भंग हो जाता है और राजेश को कोई उपचार प्राप्त नहीं है।

2. अ डाक द्वारा पत्र भेजकर ब को अपना मकान बेचने का प्रस्ताव करता है। ब इस प्रस्ताव को डाक द्वारा पत्र भेज कर स्वीकार करता है। कब ब अपनी स्वीकृति का खण्डन कर सकता है?

(जोधपुर वि. वि. 1983 राज. वि. वि. 1982)

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के तथ्य इस प्रकार हैं.—

(1) अ, ब को अपना मकान बेचने का प्रस्ताव करता है।

(2) प्रस्ताव डाक द्वारा पत्र भेजकर किया जाता है।

(3) यह प्रस्ताव ब को समय पर मिल जाता है।

(4) इस प्रस्ताव की स्वीकृति भी ब डाक द्वारा पत्र भेजकर देता है।

(5) ब अपनी स्वीकृति का खण्डन कब कर सकता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

स्वीकृति के खण्डन का समय

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार स्वीकृति के विरुद्ध स्वीकृति का संसूचन पूरा होने से पूर्व किसी भी समय स्वीकृति का खण्डन किया जा सकता है।

निर्णय—ब अपनी स्वीकृति का खण्डन अ के पास स्वीकृति-पत्र पहुँचने के पहले कर सकता है इसके बाद नहीं। अतः ऐसा खण्डन तार, टेलीफोन, टेलेक्स आदि साधनों से स्वीकृति के खण्डन की सूचना भेज देनी चाहिये। यदि अ को स्वीकृति-पत्र पहले प्राप्त हो जाता है तो अनुबन्ध हो गया और यदि अ को स्वीकृति के खण्डन की सूचना स्वीकृति पत्र के मिलने से पहले ही मिल जाती है, तो अनुबन्ध उत्पन्न नहीं हुआ माना जायेगा तथा स्वीकृति के खण्डन का सवहन बँध माना जायेगा।

3 अ एक पत्र द्वारा ब को 500 रुपये में एक घोड़ा विक्रय करने का प्रस्ताव करता है। ब भी एक पत्र द्वारा अ से 500 रुपये में घोड़ा खरीदने का प्रस्ताव करता है। दोनों पत्र एक साथ डाक में डाले जाते हैं। क्या इन दोनों पत्रों से कोई अनुबन्ध उत्पन्न होता है ?

(जोधपुर वि. वि. 1979)

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं—

(1) अ एक पत्र द्वारा ब को 500 रुपये में एक घोड़ा विक्रय करते हुये प्रस्ताव करता है।

(2) ब भी एक पत्र द्वारा अ से 500 रुपये में घोड़ा खरीदने का प्रस्ताव करता है।

(3) दोनों पत्र एक साथ डाक में डाले जाते हैं।

(4) क्या इन दोनों पत्रों से कोई अनुबन्ध उत्पन्न होता है।

निर्णय—यह अनुबन्ध नहीं है यह प्रति-प्रस्ताव है कोई भी स्वीकृति तब तक नहीं दी जा सकती है जब तक कि स्वीकर्त्ता को प्रस्ताव की जानकारी न हो। अतः यह प्रति-प्रस्ताव है।

4. A विज्ञापन द्वारा किसी भी व्यक्ति जो उसका खोया हुआ थैला लौटायेगा उसको 100 रुपये इनाम देने की घोषणा करता है। B जिसको कि

थैला मिल जाता है इस घोषणा को सुने बिना ही थैला लौटा देता है। क्या B वह इनाम पाने का अधिकारी है ?

(राज. वि. वि. 1977)

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) A का थैला खो जाता है।

(2) A विज्ञापन द्वारा थैला ढूंढकर लाने वाले को 100 रुपये इनाम देने की घोषणा करता है।

(3) B वह इनाम बिना प्राप्त किये थैला लौटाता है।

(4) क्या B इनाम पाने का अधिकारी है ?

सम्वन्धित नियम एवं निर्णय

प्रस्ताव का संसूचन

प्रस्ताव की जानकारी के बिना दी गई स्वीकृति का कोई महत्व नही होता है और उसके द्वारा अनुबन्ध का निर्माण नही होता है। लालमन शुक्ल बनाम गौरीदत्त के मामले मे यह निर्णय दिया गया है।

निर्णय—B ने इनाम के प्रस्ताव को न जाने हुए A को थैला लौटाया है अतः B इनाम पाने का अधिकारी नही है।

5. रमेश ने महेश को एक प्रस्ताव किया। महेश पत्र पहुँचने के पूर्व ही मर गया और महेश के पुत्र ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया क्या रमेश इस स्वीकृति के लिए बाध्य है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार है :—

(1) रमेश महेश को एक प्रस्ताव करता है।

(2) महेश प्रस्ताव-पत्र पहुँचने के पूर्व ही मर जाता है।

(3) महेश का पुत्र उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है।

(4) यह निश्चित करना कि क्या रमेश इस स्वीकृति से बाध्य है ?

सम्वन्धित नियम एवं निर्णय

प्रस्ताव की स्वीकृति केवल उसी व्यक्ति द्वारा दी जा सकती है जिसको प्रस्ताव रखा गया है। यदि अन्य व्यक्ति उसे स्वीकार कर लेता है तो वह स्वीकृति वैधानिक दृष्टि से मान्य नही होती है। बोल्टन बनाम जोन्स के मामले पर आधारित है।

निर्णय—इस प्रस्ताव की स्वीकृति देने का अधिकार केवल उस को ही है जिसको प्रस्ताव किया गया है चूंकि स्वीकृति उसके पुत्र ने दी है, अतः स्वीकृति वैध नहीं होने के कारण किसी भी प्रकार के अनुबन्ध का निर्माण नही हुआ है।

6. चरणदास अपने तोते को प्रस्ताव बोलना सिखाता है तथा उस तोते को रामदास के पास भेज देता है। तोता रामदास को प्रस्ताव बोल कर सुनाता है। क्या यह वैध प्रस्ताव है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार है—

(1) धरणदास अपने तोते को प्रस्ताव बोलना सिखाता है तथा उस तोते को रामदास के पास भेज देता है।

(2) तोता रामदास को प्रस्ताव बोल कर सुनाता है।

(3) यह निश्चित करना कि क्या यह एक वैध प्रस्ताव है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

अधिनियम के अनुसार वैध प्रस्ताव के लिए यह आवश्यक है कि उसका संसूचन हो जाये। अधिनियम में संसूचन किस विधि से हो। यह नहीं दिया गया है अतः प्रस्ताव का संसूचन किसी भी प्रकार से हो सकता है।

निर्णय—यदि तोता उस प्रस्ताव को सही प्रकार से सुना दे और रामदास उसको सही प्रकार से समझ ले तो प्रस्ताव का संसूचन वैध है।

7. जानी ने रेल्वे के क्लॉक रूम में एक बैग रखा जो खो गया। जानी ने रेल्वे कम्पनी पर 500 रुपये की हानि के लिए वाद प्रस्तुत किया। रेल्वे के टिकट पर लिखा था "पीछे देखो" पीछे लिखी शर्तों के अनुसार अतिरिक्त शुल्क देने पर ही रेल्वे कम्पनी 100 रुपये से अधिक की हानि की पूर्ति की दायी होगी। जानी ने इस शर्त को पढ़ा नहीं था। क्या जानी रेल्वे कम्पनी से पूरी क्षति प्राप्त कर सकता है।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) जानी ने रेल्वे के क्लॉक रूम मे एक थैला रखा।

(2) क्लॉक रूम मे रखा थैला खो गया।

(3) रेल्वे के टिकट पर लिखा था "पीछे देखो"। पीछे लिखी शर्तों के अनुसार अतिरिक्त शुल्क देने पर ही रेल्वे कम्पनी 100 रुपये से अधिक की हानि की पूर्ति की दायी होगी।

(4) जानी ने इस शर्त को नही पढ़ा।

(5) क्या जानी रेल्वे से पूरी क्षति प्राप्त कर सकता है ?

निर्णय—थैला जमा करने पर प्राप्त टिकट के पीछे कुछ शर्तें लिखी थी और टिकट के ऊपर "पीछे देखो" शब्द लिखा था। यदि जानी ने पीछे लिखी शर्तों को नही पढ़ा तो यह उसकी लापरवाही थी। अतः जानी रेल्वे कम्पनी से 100 रुपये से अधिक की क्षति नही प्राप्त कर सकता है। पारकर बनाम एस. ई. रेल्वे कम्पनी के मामले में इस बात की पुष्टि की गयी है।

पक्षकारों की अनुबन्ध करने की क्षमता

8. रमेश की पत्नी कामनी ने अपने पति के पुस्तकालय का फर्नीचर व पुस्तकें महेश के पास अपने (i) गहनो तथा (ii) जीवनयापन

के लिए आवश्यक भोजन सामग्री क्रय करने के लिए रमेश की जानकारी व सहमति के बिना गिरवी रख दी। महेश के क्या अधिकार होंगे ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) कामनी रमेश की पत्नी है।

(2) कामनी ने अपने पति रमेश की जानकारी व सहमति के बिना अपने पति के पुस्तकालय का फर्नीचर व पुस्तकें (i) गहनों तथा (ii) जीवन-यापन के लिए आवश्यक भोजन सामग्री क्रय करने के लिए महेश के पास गिरवी रखी दी।

(3) यह निश्चित करना कि महेश के क्या अधिकार हैं।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

(1) भारतीय राजनियम में विवाहिता अथवा अविवाहिता स्त्री अपनी इच्छानुसार अनुबन्ध कर सकती है। दोनों को अनुबन्ध करने की स्वतन्त्रता है।

(2) प्रत्येक पति राजनियम के अनुसार अपनी पत्नी के भरण-पोषण के लिए उत्तरदायी है।

(3) एक विवाहिता स्त्री अपने जीवन की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में अपने पति की साख तथा सम्पत्ति को भी बन्धक रख सकती है।

निर्णय—महेश जीवनयापन के लिए क्रय की गयी भोजन सामग्री के एवज में गिरवी रखी सम्पत्ति को उस समय तक रोके रख सकता है जब तक उसका मूल्य न चुका दिया जाय। महेश गहनों के मूल्य के लिए इन फर्नीचर तथा पुस्तकों को नहीं रोक सकता है अतः आभूषण के बदले में गिरवी रखी सम्पत्ति को रमेश को लौटाने के लिए बाध्य होगा।

9. सीताराम राधेश्याम के निवेदन पर उसकी अावश्यकता में अपनी सेवाएँ अर्पित करता है। राधेश्याम वयस्क होने पर सीताराम से समझौता करता है कि उसकी अवयस्कता में सीताराम ने जो सेवाएँ अर्पित की है, उसकी क्षतिपूर्ति करेगा। क्या यह समझौता वैध है।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं—

(1) राधेश्याम के निवेदन पर उसकी अवयस्कता में सीताराम अपनी सेवाएँ अर्पित करता है।

(9) राधेश्याम वयस्क होने पर उन सेवाओं की क्षतिपूर्ति करने का समझौता करता है।

(3) यह निश्चित करना कि क्या राधेश्याम और सीताराम के मध्य यह समझौ ा वैध है ?

सम्बन्धित नियम तथा निर्णय

अवयस्क के साथ किया गया करार शून्य होता है यह धर्मोदास घोष बनाम माहरी बीबी के मामले में निश्चित हो चुका है। अवयस्कता के समय की गई सेवाओं के सम्बन्ध में वह वयस्क होने पर उनका पुष्टिकरण नहीं कर सकता।

निर्णय—राधेश्याम की अवयस्कता के समय सीताराम ने जो सेवाएँ अर्पित कीं, वयस्क हो जाने पर, उनकी क्षतिपूर्ति के लिए उसके द्वारा किया गया समझौता शून्य है। यह महत्वहीन है कि यह सेवाएँ राधेश्याम के निवेदन पर की गयी हैं। अतः यह अनुबन्ध शून्य है।

10. सोम एक अवयस्क है और अपने आपको वयस्क बताकर एक व्यापारी से कुछ वस्तुएँ उधार खरीद लेता है। क्या व्यापारी मूल्य वसूल कर सकता है?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) सोम एक अवयस्क है।

(2) वयस्क बताकर एक व्यापारी से कुछ वस्तुएँ उधार खरीद लेता है।

(3) यह निर्णय करना कि क्या व्यापारी मूल्य वसूल कर सकता है।

सम्बन्धित नियम तथा निर्णय

यदि क्रम की गयी वस्तुएँ जीवन-यापन के लिए आवश्यक हैं तो व्यापारी उनका मूल्य अवयस्क की सम्पत्ति से वसूल कर सकता है। अवयस्क व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा। यदि क्रय की गयी वस्तुएँ जीवन-यापन के लिए आवश्यक नहीं हैं तो व्यापारी उनका मूल्य अवयस्क की सम्पत्ति से वसूल नहीं कर सकता।

स्वतन्त्र सहमति

11. श्याममुन्दर रेशम का एक थान बेचने का अनुबन्ध करता है रामगोपाल इसको जापानी रेशम समझता है। श्याममुन्दर जानता है कि रामगोपाल ऐसा सोचता है जबकि श्याममुन्दर को मालूम है कि वह इंग्लिश रेशम है। श्यामसुन्दर रामगोपाल की इस धारणा को ठीक नहीं करता तदुपरान्त रामगोपाल को मालूम होता है कि वह जापानी रेशम नहीं है क्या वह अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है? (राज. वि. वि. 1979)

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) श्यामसुन्दर रेशम का एक थान रामगोपाल को बेचने का अनुबन्ध करता है।

(2) रामगोपाल इसे जापानी रेशम समझता है।

(3) थान वास्तव में इंग्लिश रेशम का है।

(4) श्यामसुन्दर को मालूम है कि यह जापानी रेशम नहीं है बल्कि इंग्लिश रेशम है और वह रामगोपाल को इस विषय के सम्बन्ध में नहीं बतलाता है।

(5) बाद में रामगोपाल को वास्तविकता की जानकारी हो जाती है।

(6) क्या रामगोपाल इस अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है यह निश्चित करना है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

मौन द्वारा कपट—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार, "तथ्य

सम्बन्धी मौन जो अनुबन्ध करने वाले पक्षकार की इच्छा को प्रभावित कर सकता है तब तक कपट नहीं कहलाता जब तक कि मामले की परिस्थिति के अनुसार मौन रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्त्तव्य न हो अथवा मौन रहना स्वयं उसके बोलने के बराबर है।" अतः साधारणतः मौन रहना कपट नहीं है, चाहे उससे किसी व्यक्ति की इच्छा पर प्रभाव पड़े या न पड़े।

निर्णय—श्यामसुन्दर मौन कपट का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। हाँ, यदि रामगोपाल श्यामसुन्दर से पूछता कि क्या यह जापानी रेशम है अथवा रामगोपाल यह कहता कि मुझे जापानी रेशम चाहिये तो ऐसी परिस्थिति में श्यामसुन्दर द्वारा मौन रहना कपट होता। अतः श्यामसुन्दर ने चुप रह कर कोई कपट नहीं किया। क्रेता सावधान रहे नियम के अनुसार रेशम का थान खरीदते समय रामगोपाल को सावधान रहना चाहिये था।

12. घनश्याम के पुत्र ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर रामनारायण के जाली हस्ताक्षर कर लिये हैं। रामनारायण ने घनश्याम के पुत्र पर जालसाजी का मुकदमा चलाने की धमकी देकर घनश्याम से एक बौण्ड उक्त जाली प्रतिज्ञा-पत्र की राशि का प्राप्त कर लिया। रामनारायण ने घनश्याम पर उक्त बौण्ड के लिए वाद प्रस्तुत किया। क्या वह वाद में सफल होगा?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) घनश्याम का पुत्र रामनारायण के नाम से एक जाली प्रोनोट बना लेता है।
(2) रामनारायण घनश्याम के पुत्र पर मुकदमा चलाने की धमकी देकर जाली प्रोनोट की रकम का बौण्ड घनश्याम से प्राप्त कर लेता है।
(3) घनश्याम इस बौण्ड की राशि का भुगतान नहीं करता है। रामनारायण इस बौण्ड की राशि प्राप्त करने के लिए घनश्याम पर न्यायालय में वाद प्रस्तुत करता है।
(4) क्या रामनारायण इस बौण्ड की राशि घनश्याम से प्राप्त कर सकता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

उत्पीड़न द्वारा सहमति— भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, ' किसी व्यक्ति के साथ करार करने के उद्देश्य से कोई ऐसा कार्य करना अथवा करने की धमकी देता जो भारतीय दण्ड-विधान द्वारा वर्जित है अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए किसी सम्पत्ति को अवैध रूप से रोक लेना अथवा रोकने की धमकी देना उत्पीड़न कहलाता है।"

निर्णय—घनश्याम की सहमति दबाव के अन्तर्गत प्राप्त की है अतः स्वतन्त्र सहमति के अभाव में यह बौण्ड शून्य है और इस आधार पर रामनारायण घनश्याम के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।

13 मोहन, सोहन को नीलामी में एक घोड़ा बेचता है जिसके बारे में मोहन जानता है कि यह अस्वस्थ है, मोहन, सोहन को घोड़े की अस्वस्थता के बारे में कुछ नहीं बताता क्या सोहन इस अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के तथ्य इस प्रकार हैं :—

(1) मोहन, सोहन को नीलामी द्वारा घोड़ा बेचता है।

(2) घोड़ा अस्वस्थ है, इसकी जानकारी मोहन को है।

(3) सोहन को घोड़े की अस्वस्थता के बारे में कुछ नही बताता।

(4) क्या सोहन अनुबन्ध निरस्त कर सकता है यह निश्चित करना।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

मौन द्वारा कपट—इससे सम्बन्धित नियम वे ही हैं जो ऊपर समस्या मे दिये गये हैं।

निर्णय—घोड़े की अस्वस्थता के बारे में बताना मोहन का कर्त्तव्य नही था। यदि सोहन ने पूछा होता तब मोहन का कर्त्तव्य था कि वह सही-सही बताता। अतः अनुबन्ध वैध है और किसी प्रकार का कपट नही है।

14. राम एक कारखाने का मालिक है, उसे श्याम को बेचने का इरादा रखते हुये उसे धोखा देने के अभिप्राय से कहता है कि मेरे कारखाने में प्रति माह 2000 इकाइयाँ उत्पादित की जाती है। यह कथन श्याम को राम के साथ अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है। बाद में ज्ञात होता है कि कारखाना केवल 1400 इकाईयाँ ही बना रहा था। क्या यह अनुबन्ध वैध है ? क्या इसमें कोई परिवर्तन होगा, यदि श्याम कारखाने के सम्बन्ध में राम द्वारा दिये गये खातों की जाँच करके कारखाना खरीदने का अनुबन्ध करता ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(1) राम अपना कारखाना श्याम को बेचना चाहता है।

(2) राम श्याम को धोखा देने के अभिप्राय से कहता है कि उसके कारखाने में प्रति माह 2000 इकाइयाँ उत्पादित होती है।

(3) श्याम को बाद मे ज्ञात होता है कि कारखाने में केवल 1400 इकाईयाँ ही उत्पादन होता है।

(4) यह निश्चित करना कि

(अ) क्या अनुबन्ध वैध है ?

(ब) यदि श्याम कारखाने के खातों की जाँच करके कारखाने के उत्पादन से विश्वस्त हो जाता तो अनुबन्ध पर क्या प्रभाव पड़ता ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

कपट पूर्ण अन्यथा कथन—किसी पक्षकार को जानबूझ कर जब धोखा देने के उद्देश्य से राम ने जानबूझ कर कपट पूर्ण अन्यथा कथन किया है और श्याम को इसमे धोखा हुआ है अतः यह कपट है।

राम ने कारखाने के खाते श्याम को निरीक्षण के लिए दिये और श्याम ने उन्हें

जाँचा और फिर कारखाने को खरीदने का अनुबन्ध किया तो यह अनुबन्ध वैध और कपटपूर्ण अन्यथा कथन के आधार पर शून्यकरणीय घोषित नही किया जा सकता। श्याम के पास सत्य का पता लगाने के ऐसे साधन उपलब्ध थे जिनका कोई भी विवेकशील व्यक्ति सामान्य परिश्रम से समान परिस्थितियों में अवश्य प्रयोग करता।

प्रतिफल

15. नरेश को लोकेश का बटुआ सड़क पर पड़ा हुआ मिला और उसे लोकेश को दे देता है। इसके लिए लोकेश नरेश को 200 रुपये देने का वचन देता है। बाद में वह उक्त राशि देने से मना कर देता है। नरेश क्या वह राशि प्राप्त कर सकता है?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(1) नरेश को लोकेश का सड़क पर पड़ा हुआ बटुआ मिलता है।

(2) नरेश ने वह बटुआ लोकेश को लौटा दिया।

(3) लोकेश इसके लिए नरेश को 200 रुपये देने का वचन देता है।

(4) लोकेश बाद में वह राशि देने से मना कर देता है।

(5) नरेश क्या वह राशि लोकेश से प्राप्त कर सकता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

बिना प्रतिफल के मान्य करार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 (2) के अनुसार कुछ परिस्थितियों में बिना प्रतिफल के भी करार वैध माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिये स्वेच्छा से कोई कार्य करता है जिसे करने के लिये वह दूसरा वैधानिक रूप से बाध्य था को ऐसे कार्य के लिए क्षतिपूर्ति करने का करार बिना प्रतिफल के भी वैध है।

निर्णय—नरेश और लोकेश के मध्य वैध अनुबन्ध हुआ है। अतः नरेश लोकेश से 200 रुपये पाने का अधिकारी है।

16. नारायण ने अपनी पत्नी कुसुम को स्वाभाविक प्रेम व स्नेहवश उसको जन्म दिन पर भेंट स्वरूप 1000 रुपये देने का वचन दिया किन्तु उसने जन्म दिन पर अपने वचन का निष्पादन करने से मना कर दिया। क्या कुसुम नारायण के विरुद्ध सफलतापूर्वक वाद चला सकती है।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य है :—

(1) नारायण अपनी पत्नी कुसुम को उसके जन्म दिन पर स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित होकर 1000 रुपये देने का वचन देता है।

(2) जन्म दिन पर भेंट की राशि देने से मना कर देता है।

(3) क्या नारायण की पत्नी कुसुम नारायण के विरुद्ध सफलतापूर्वक वाद चला सकती है?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 (1) के अनुसार जब कोई करार ऐसे पक्षकारों के बीच जो एक दूसरे के निकट सम्बन्धित हैं, स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण होता है और वह करार लिखित तथा रजिस्टर्ड होता है तो वह करार बिना प्रतिफल के भी वैध है ?

निर्णय--नारायण ने यद्यपि स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित होकर अपनी पत्नी कुसुन को 1000 रुपये उसके जन्म-दिन पर देने का वचन दिया किन्तु यह वचन लिखित तथा रजिस्टर्ड नहीं है। अतः नारायण की पत्नी कुसुम अनुबन्ध को प्रवर्तित नहीं करा सकती।

17. एक संस्था ने बाढ़-पीड़ितों के लिए चन्दा इकट्ठा करने का कार्य किया। दौलतराम ने संघ के सदस्यों को *1000 रुपये चन्दा देने का वचन दिया।* दौलतराम के इस वचन के आधार पर संस्था के सदस्यों ने बाढ़-पीड़ितों में 6400 रुपये की कीमत *का कपड़ा अनाज आदि वितरित कर दिया बाद में दौलतराम ने चन्दा देने से* इन्कार कर दिया। क्या वह संस्था चन्दा वसूल कर सकती है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(1) दौलतराम ने बाढ-पीड़ित लोगों के लिए 1000 रुपये चन्दा देने का वचन दिया।

(2) दौलतराम द्वारा चन्दा देने के वचन के आधार पर संघ ने 6400 का सामान खरीद कर बाढ़-पीड़ितों में बांट दिया।

(3) बाद में दौलतराम ने अपने वचन की राशि देने से इन्कार कर दिया।

(4) क्या संघ दौलतराम से चन्दे की राशि प्राप्त कर सकता है ?

सम्बन्धित नियम तथा निर्णय

चन्दे के लिए दिया गया वचन बिना प्रतिफल का होने के कारण शून्य होता है किन्तु यदि वचनगृहीता ने उस वचन पर विश्वास करके कुछ कार्य किया है जिससे उसको कोई वास्तविक हानि होती है तो उस हानि के लिए दान-दाता उत्तरदायी होता है। यह मामला **केदारनाथ बनाम मोहम्मद** के विवाद पर आधारित है।

निर्णय—प्रस्तुत मामले में संस्था ने दौलतराम के वचन पर विश्वास करके 6400 रुपये व्यय किये है अतः संस्था दौलतराम से 6400 रुपये वसूल कर सकती है।

18. रूपचन्द राम एण्ड कम्पनी में कर्मचारी है। नौकरी छोड़ने के बाद वह कम्पनी से समझौता करता है कि जोधपुर से 200 मील की परिधि में वह इसी प्रकार की किसी अन्य संस्था में नौकरी नहीं करेगा। क्या यह प्रतिबन्ध वैध है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के *अग्रांकित* तथ्य हैं :—

(1) रूपचन्द राम एण्ड कम्पनी में कर्मचारी है।

(2) रूपचन्द कम्पनी की नौकरी छोड़ देता है।

(3) रूपचन्द नौकरी छोड़ते समय कम्पनी से समझौता करता है कि जोधपुर से 200 मील की परिधि में वह इसी प्रकार की किसी अन्य संस्था में नौकरी नहीं करेगा।

(4) क्या यह प्रतिबन्ध वैध है ?

सम्बन्धित नियम तथा निर्णय

व्यापार में रुकावट डालने वाले करार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 27 के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को वैध व्यवसाय, व्यापार धन्धे में रुकावट डाली जाती है तो ऐसा करार शून्य होगा। परन्तु इस नियम का यह अपवाद है कि यदि किसी कर्मचारी के सेवाकाल के दौरान उसके नियोक्ता द्वारा उस पर व्यापार तथा धन्धे की अथवा अन्यत्र नौकरी नहीं करने की रोक वैध मानी जावेगी।

निर्णय—रूपचन्द पर नौकरी छोड़ देने के बाद व्यापार करने की (नौकरी करने की) उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया था अतः यह समझौता शून्य है।

19. घनश्याम से तस्करी की घड़ियाँ खरीदने के लिये राधेश्याम, 2000 रुपये उधार लेता है क्या घनश्याम इस राशि को राधेश्याम से वसूल कर सकता है। यदि (अ) वह उस उद्देश्य को जानता है जिसके लिए राधेश्याम धन उधार ले रहा है। (ब) यदि वह उस उद्देश्य को नही जानता जिसके लिए राधेश्याम से धन उधार लिया है।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं—

(1) राधेश्याम घनश्याम से 2000 रुपये उधार लेता है।

(2) राधेश्याम इन रुपयों से सीताराम से तस्करी की घड़ियाँ खरीदता है।

(3) क्या घनश्याम इस राशि को राधेश्याम से वसूल कर सकता है यदि
  (अ) घनश्याम उधार रुपये देने का उद्देश्य नही जानता है।
  (ब) घनश्याम उधार रुपये देने का उद्देश्य जानता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

लोक नीति के विरुद्ध करार भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 में बताया गया है कि एक वैध अनुबन्ध के लिए अनुबन्ध का उद्देश्य तथा प्रतिफल वैध होना चाहिये। करार जो *सामान्य जनता अथवा देश के हित के विरुद्ध है ऐसे करार* लोक-नीति के विरुद्ध होने के कारण शून्य होते है।

अवैध करार छूत की बीमारी के समान होने के कारण यह केवल मूल अनुबन्ध का ही विनाश नहीं करता है बल्कि समपार्श्विक करारों का भी विनाश कर देता है।

निर्णय—(अ) घनश्याम राधेश्याम से रुपया वसूल नही कर सकता क्योंकि उसे इस

बात की जानकारी है कि राधेश्याम तस्करी की घड़ियाँ खरीदने के लिये रुपया उधार ले रहा है अतः यह करार लोक-नीति के विरुद्ध है।

(ब) घनश्याम को राधेश्याम का उद्देश्य ज्ञात नहीं है अतः अनुबन्ध वैध होने के कारण घनश्याम राधेश्याम से वसूल कर लेगा।

20. महेश की पत्नी स्नेहलता ने अपने पति को जेल से मुक्त कराने हेतु जेलर को रिश्वत देने के अभिप्राय से रमेश को 1000 रुपये दिये। जेलर उसके पति को मुक्ति दिलाने में असफल रहा। क्या महेश की पत्नी उक्त धनराशि वापिस प्राप्त कर सकती है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(1) स्नेहलता अपने पति महेश को जेल से मुक्त करवाना चाहती है।

(2) स्नेहलता जेलर को रिश्वत के रूप में देने के लिए 1000 रुपये रमेश को देती है।

(3) रमेश जेलर को 1000 रुपये दे देता है जेलर उसके पति महेश को जेल से मुक्ति दिलाने में असफल रहा।

(4) क्या स्नेहलता वह धनराशि प्राप्त कर सकती है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

लोक-नीति के विरुद्ध करार—रिश्वत के करार लोक-नीति के विरुद्ध होते है अतः यह करार शून्य होते हैं।

निर्णय—स्नेहलता इस धन राशि को वापस नहीं प्राप्त कर सकती है क्योंकि जेलर को रिश्वत देना लोक-नीति के विरुद्ध होने से यह करार शून्य है।

सांयोगिक अनुबन्ध

21. सोम, मंगल को एक निश्चित रकम देने का वचन देता है, यदि एक विशेष जहाज एक वर्ष के अन्दर लौट कर आ जावे। जहाज वर्ष के अन्दर ही जल कर नष्ट हो गया। मंगल को सलाह दीजिये।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य— उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य है :—

(1) सोम मंगल को एक निश्चित रकम देने का वचन देता है।

(2) यदि एक विशेष जहाज एक वर्ष के अन्दर लौटकर आ जाय।

(3) वर्ष के अन्दर वह जहाज जल कर नष्ट हो जाता है।

(4) मंगल के क्या अधिकार हैं ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

सांयोगिक अनुबन्ध लागू करने के नियम—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा

35 के अनुसार जब किसी अनुबन्ध का निष्पादन किसी निर्दिष्ट अनिश्चित घटना के निर्धारित समय के भीतर हो जाने पर निर्भर करता है तो ऐसा अनुबन्ध तभी प्रवर्तित करवाया जा सकेगा जबकि वह घटना उस निश्चित समय के भीतर घटित हो जाय। यदि उस निश्चित समय में वह घटना घटित नहीं होती है या यदि निश्चित समय के पहले ही ऐसी घटना का घटित होना असम्भव हो जाय तो ऐसा करार शून्य हो जाता है।

निर्णय—निश्चित समय से पूर्व ही घटना का घटित होना असम्भव हो गया (जहाज जल कर नष्ट हो गया) अतः अनुबन्ध शून्य है और मगल को कुछ भी प्राप्त करने का अधिकार नहीं है।

22. हेमराज, खेमराज को उसके इस वचन के बदले कि खेमराज हेमराज की लड़की सुशीला से शादी करेगा, 2000 रुपये देता है। सुशीला की मृत्यु हो जाती है तथा वह शादी नहीं होती है। क्या हेमराज खेमराज से वह धन-राशि वापिस प्राप्त कर सकता है ? पूर्ण विवेचना कीजिये।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(1) हेमराज खेमराज को 2000 रुपये देता है।

(2) हेमराज खेमराज को वह राशि इसलिए देता है कि खेमराज हेमराज की लड़की सुशीला से शादी करेगा।

(3) हेमराज की लड़की सुशीला शादी से पहले ही मर जाती है।

(4) क्या हेमराज खेमराज से 2000 रुपये वापस प्राप्त कर सकता है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 32 के अनुसार किसी कार्य को करने या न करने के सांयोगिक अनुबन्ध किसी निश्चित घटना के घटित होने पर ही प्रवर्तित करवाया जाता है राजनियम द्वारा उस समय तक प्रवर्तित नहीं कराये जा सकते जब तक कि वह घटना घटित न हो जाये किन्तु यदि ऐसी निश्चित घटना का घटित होना ही असम्भव हो जाय तो ऐसा अनुबन्ध शून्य हो जाता है।

निर्णय—हेमराज की लड़की सुशीला की मृत्यु खेमराज द्वारा विवाह करने के पूर्व ही हो जाती है अतः सुशीला के साथ शादी होना अब असम्भव है। अतः अनुबन्ध शून्य है। हेमराज, खेमराज से रुपया वापस प्राप्त कर सकता है।

23. दिनेश के कहने पर लोकेश एक अखबार के स्वामी राकेश के विरुद्ध एक अपमानजनक लेख प्रकाशित कर देता है तथा दिनेश के प्रकाशन के परिणामों और इससे समस्त लागत एवं हर्जाने की हानि रक्षा करने को सहमत हो जाता है। लोकेश पर राकेश वाद प्रस्तुत कर देता है और उसे हर्जाना एव खर्चों का भुगतान करना पड़ता है क्या दिनेश लोकेश की हानि की पूर्ति करने के लिये बाध्य है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य है :—

(1) लोकेश एक अखबार का स्वामी है।

(2) लोकेश दिनेश के कहने पर राकेश के विरुद्ध एक अपमानजनक लेख प्रकाशित करता है।

(3) दिनेश ऐसे प्रकाशन के परिणामों के लिए और समस्त लागत एवं हर्जाने की हानि-रक्षा करने को सहमत हो जाता है।

(4) राकेश लोकेश पर अपने विरुद्ध इस अपमानजनक लेख छापने के लिए वाद प्रस्तुत करता है।

(5) लोकेश राकेश की मान-हानि की क्षतिपूर्ति कर देता है।

(6) यह निश्चित करना कि क्या दिनेश लोकेश की हानिपूर्ति करने के लिए बाध्य है?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार कोई ऐसा करार जिससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को हानि पहुँचती है तो ऐसा करार अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल से प्रेरित माना जाता है और लोक-नीति के विरुद्ध होता है।

निर्णय—राकेश के व्यक्तित्व को हानि पहुँची है अतः यह अनुबन्ध शून्य है। लोकेश की हानि के लिए दिनेश बाध्य नहीं है।

विशेष टिप्पणी—(1) धारा 124 के अन्तर्गत यद्यपि यह विवाद हानि रक्षा का अनुबन्ध है परन्तु वैध अनुबन्ध का प्रमुख लक्षण वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के अभाव में यह अनुबन्ध शून्य है।

(2) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 इस प्रकार है—हानि-रक्षा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है, जो वचनदाता के स्वयं के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे।

24. सतीश अपना घर हरीश को एक शादी के उत्सव के लिये जून, 1984 में किराये पर देने के लिए करार करता है। 15 मई को अचानक आग लग जाने से घर नष्ट हो गया। सतीश और हरीश के सम्बन्धित अधिकारों का विवेचन कीजिये।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं:—

(1) सतीश अपना घर हरीश को एक शादी के उत्सव के लिए जून, 1984 में किराये पर देने का वचन देता है।

(2) 15 मई को घर आग से नष्ट हो जाता है।

(3) सतीश और हरीश के अधिकारों को निश्चित करना है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

निष्पादन की असम्भवता द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 56 के अनुसार, "जब किसी अनुबन्ध का निष्पादन किया जाना असम्भव हो जाता है तो ऐसा अनुबन्ध शून्य हो जाता है।

निर्णय—घर के नष्ट हो जाने के कारण निष्पादन असम्भव हो गया अतः अनुबन्ध शून्य हो गया अर्थात् समाप्त हो गया। यदि हरीश ने अनुबन्ध के अन्तर्गत सतीश को कुछ राशि दी हो तो वह उस राशि को पुनः प्राप्त कर सकेगा।

□□□

14

क्षतिपूर्ति तथा गारन्टी अनुबन्ध
(Contract of Indemnity and Guarantee)

विषय-सामग्री—क्षतिपूर्ति अनुबन्ध का अर्थ, आवश्यक तत्त्व, क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकार, क्षतिपूरक के अधिकार. गारन्टी की परिभाषा, आवश्यक तत्त्व, क्षतिपूर्ति तथा गारन्टी अनुबन्ध में अन्तर, गारन्टी के प्रकार, प्रतिभू के अधिकार, प्रतिभू का दायित्व से मुक्त होना, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

क्षतिपूर्ति अनुबन्ध का अर्थ
(Meaning of Contract of Indemnity)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 के अनुसार, "क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो वचनदाता के स्वयं के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे ।"[1]

जो व्यक्ति क्षति से बचाने का वचन देता है उसे क्षतिपूरक कहते हैं और जिसको ऐसा वचन दिया जाता है उसे क्षतिपूर्ति का दावेदार कहते हैं ।

उदाहरण—सुजीतकुमार का जहाज समुद्र यात्रा के लिए जा रहा है । लायड्स इन्श्योरेंस कम्पनी कुछ प्रीमियम पाने के बदले में यह वायदा करती है कि जहाज को या उस पर रखे हुए माल को कुछ नुकसान होने पर वह क्षतिपूर्ति कर देगी तो यह क्षतिपूर्ति अनुबन्ध का उत्तम उदाहरण है ।

क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व
(Essential Elements of a Contract of Indemnity)

क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के निम्नलिखित आवश्यक तत्त्व हैं :—

(1) अन्य अनुबन्धों की तरह क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में भी दो पक्षकार होते हैं ।

(2) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में एक पक्षकार प्रस्ताव करता है और दूसरा पक्षकार उस प्रस्ताव को स्वीकार करता है ।

(3) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में प्रस्ताव व स्वीकृति का सम्बन्ध क्षतिपूर्ति से होता है ।

---

1. "A Contract by which one party promises to save the other loss caused to him by the conduct of the promisor himself, or by the conduct of any oth'r Person is called a contract of Indemnity." (See 124)

(4) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में पहले पक्षकार को दूसरा पक्षकार क्षतिपूर्ति का वचन देता है।

(5) वैध प्रतिफल तथा उद्देश्य क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में विद्यमान रहता है।

(6) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध अभिव्यक्त या गर्भित हो सकता है।

(7) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध लिखित या मौखिक हो सकता है।

(8) स्वयं के आचरण से क्षतिपूर्ति के दावेदार को कोई हानि होनी है तो वह इस राशि की क्षतिपूर्ति नहीं करा सकता है।

(9) क्षतिपूरक का दायित्व ऐसी दशा में ही उत्पन्न होता है जबकि क्षतिपूर्ति के दावेदार को अनुबन्ध के अन्तर्गत वास्तव में कुछ हानि हो जाय।

(10) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में जो व्यक्ति हानि से बचाने का वचन देता है उसे क्षतिपूरक कहते हैं और जिस व्यक्ति को हानिरक्षा का वचन दिया जाता है वह क्षतिपूर्ति का दावेदार कहलाता है।

(11) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध पूर्णत: सद्-विश्वास पर आधारित माना जाता है।

(12) क्षतिपूर्ति का दावेदार क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में उतनी ही राशि प्राप्त कर सकता है जितनी कि उसे वास्तव में क्षति पहुँची है, न कि क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में वर्णित समस्त राशि।[3]

क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकार
(Rights of Indemnity holder)
(धारा 125)

क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकार
1. क्षतिपूर्ति।
2. व्ययों की प्राप्ति।
3. चुकाए गये धन।

(1) क्षतिपूर्ति—क्षतिपूर्ति का दावेदार समस्त क्षति की राशि प्राप्त करने का अधिकारी है जो वह किसी ऐसे वाद के ऐसे मामले के सम्बन्ध में चुकाने के लिए विवश हुआ है जो हानि-रक्षा के वचन से सम्बन्धित है।

(2) व्ययों की प्राप्ति—ऐसे सब व्यय जो उसे किसी ऐसे वाद को प्रस्तुत करने अथवा बचाव में चुकाने पड़ें जिसमें क्षतिपूर्ति का वचन लागू है।

(3) चुकाए गए धन—ऐसे सब धन जो उसने किसी ऐसे ही वाद के समझौते की शर्तों के अन्तर्गत चुकाये हो।

क्षतिपूरक के अधिकार
(Rights of Indemnifer)

(1) क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकारों की प्राप्ति—क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के अन्तर्गत जब क्षतिपूरक क्षतिपूर्ति के दावेदार की क्षतिपूर्ति कर देता है तो उसे वे सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो क्षतिपूर्ति के दावेदार को क्षतिपूर्ति के पहले क्षतिपूरक के विरुद्ध प्राप्त थे।

(2) **क्षतिपूर्ति के दावेदार के नाम से वाद प्रस्तुत करने का अधिकार**—तीसरे पक्षकार पर क्षतिपूर्ति के दावेदार के नाम से क्षतिपूरक को वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिल जाता है।

(3) **क्षतिपूर्ति राशि तक अधिकार**—जिस सीमा तक क्षतिपूरक ने क्षतिपूर्ति के दावेदार की क्षतिपूर्ति की है, क्षतिपूरक को तीसरे पक्षकार के विरुद्ध उतने ही अधिकार प्राप्त होंगे।

(4) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के बाहर क्षति की दशा में क्षतिपूरक क्षतिपूर्ति के दावेदार को मना करने का अधिकार रखता है।

क्षतिपूरक के अधिकार

1. क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकारों की प्राप्ति।
2. क्षतिपूर्ति के दावेदार के नाम से वाद प्रस्तुत करने का अधिकार।
3. क्षतिपूर्ति राशि तक अधिकार।
4. क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के बाहर क्षति की दशा में क्षतिपूर्ति के दावेदार को मना करने का अधिकार रखता है।

गारन्टी का अनुबन्ध
(Contract of Guarantee)
(धारा 126)

गारन्टी की परिभाषा

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 126 के अनुसार, "जिस अनुबन्ध में एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के वचन या ऋण को उसके द्वारा पूरा न करने पर स्वयं पूरा करने का वचन दे उसे गारन्टी का अनुबन्ध कहते हैं।"[1]

गारन्टी अनुबन्ध में वचन देने वाले प्रतिभू (Surety) जिसके लिए वचन दिया जाता है उसे मुख्य ऋणी (Principal debtor) और जिसको वचन दिया जाता है उसे ऋणदाता कहा जाता है।

उदाहरण—निरूपम, अनुपम से वायदा करता है कि यदि अनुपम निरूपम को 1000 रुपये उधार दे तो अरूपम द्वारा भुगतान न करने पर निरूपम भुगतान की राशि चुका देगा। यहाँ निरूपम गारन्टी देकर गारन्टी का अनुबन्ध अनुपम के साथ करता है। यहाँ निरूपम प्रतिभू है, अनुपम ऋणदाता तथा निरूपम मुख्य ऋणी है।

गारन्टी अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व

(1) गारन्टी अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक हो सकता है।

(2) गारन्टी अनुबन्ध में प्राथमिक दायित्व मुख्य ऋणी का होता है। गारन्टी देने वाले का दायित्व गौण होता है।

(3) गारन्टी अनुबन्ध में तीन पक्षकार होते हैं—मूल ऋणी, ऋणदाता एवं प्रतिभू। इन तीनों पक्षकारों की सहमति से निर्मित अनुबन्ध ही गारन्टी अनुबन्ध कहलायेगा।

---

1. "A contract of guarantee is a contract to Perform the Promise or discharge the Liability of a third Person in case of his default."
(Sec. 126 Indian Contract Act)

(4) गारन्टी के अनुबन्ध में एक साथ तीन अनुबन्ध होते हैं—
   (i) ऋणदाता तथा मूल ऋणी के बीच ।
   (ii) ऋणदाता तथा प्रतिभू के बीच तथा
   (iii) प्रतिभू तथा मूल ऋणी के बीच ।

(5) गारन्टी अनुबन्ध में ऋण या दायित्व का होना भी आवश्यक है ।

(6) गारन्टी अनुबन्ध मे ऋण या दायित्व का वैधानिक होना भी आवश्यक है ।

(7) गारन्टी अनुबन्ध मे प्रतिफल का होना भी आवश्यक है । रामनारायण बनाम हरीसिंह के मामले मे राजस्थान उच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए स्पष्ट शब्दो में कहा है कि बिना प्रतिफल के गारन्टी का अनुबन्ध शून्य है ।" परन्तु इस सम्बन्ध मे यह महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रतिभू व मुख्य ऋणी के बीच अनुबन्ध मे प्रतिफल का पाया जाना आवश्यक नही है ।

(8) वैध गारन्टी के लिए आवश्यक है कि ऋणदाता उन सभी बातों को प्रकट करदे जो वह मुख्य ऋणी के बारे मे जानता है और जिनसे उसके दायित्वों पर प्रभाव पड़ सकता है ।

(9) गारन्टी अनुबन्ध मे प्रतिभू तथा ऋणदाता मे ही अनुबन्ध करने की क्षमता का होना आवश्यक है । मुख्य ऋणी मे अनुबन्ध करने की क्षमता का होना आवश्यक नही है । अयोग्य पक्षकारो की गारन्टी देने की स्थिति मे प्रतिभू को मुख्य ऋणी पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं मिलता है ।

(10) गारन्टी का अनुबन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किया जा सकता है ।

क्षतिपूर्ति तथा गारन्टी अनुबन्धों में अन्तर

(Distinction between Contracts of Indemnity and Guarantee)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध	गारन्टी का अनुबन्ध
1.	परिभाषा	क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो वचनदाता के स्वयं के आचरण से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे । (धारा 124) उदाहरण—X का जहाज समुद्र यात्रा के लिए जा रहा है । लायड्स इन्श्योरेंस कम्पनी	जिस अनुबन्ध में एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के वचन या ऋण को उसके द्वारा पूरा न करने पर स्वयं पूरा करने का वचन दे उसे गारन्टी का अनुबन्ध कहते हैं ।" (धारा 126) उदाहरण—X, Y से वायदा करता है कि यदि Y, Z को 1000 रुपये उधार दे तो Z

क्र.सं.	अन्तर का आधार	क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध	गारन्टी का अनुबन्ध
		कुछ प्रीमियम पाने के बदले में यह वादा करती है कि जहाज को या उस पर के माल को कुछ नुकसान होने पर वह क्षति की पूर्ति कर देगी तो यह क्षतिपूर्ति अनुबन्ध का उत्तम उदाहरण है।	द्वारा भुगतान न करने पर X भुगतान की राशि चुका देगा। यहाँ X गारन्टी देकर गारन्टी का अनुबन्ध Y के साथ करता है। यहाँ X प्रतिभू है, Y ऋणदाता तथा Z मुख्य ऋणी है।
2.	पक्षकारों की संख्या	इसमें केवल दो पक्षकार होते हैं—(1) क्षतिपूरक और (2) क्षतिपूर्ति का दावेदार	इसमें तीन पक्षकार होते हैं— (1) मुख्य ऋणी, (2) ऋणदाता, (3) प्रतिभू।
3.	अनुबन्धों की संख्या	क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में केवल एक अनुबन्ध क्षतिपूरक तथा क्षतिपूर्ति के दावेदार के बीच होता है।	गारन्टी अनुबन्ध में तीन अनुबन्ध होते हैं— (1) मुख्य ऋणी तथा ऋणदाता के बीच। (2) ऋणदाता तथा प्रतिभू के बीच। (3) प्रतिभू तथा मुख्य ऋणी के बीच।
4.	उत्तरदायित्व	क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में वचनदाता का प्रधान उत्तरदायित्व होता है।	इसमें गारन्टी देने का दायित्व गौण होता है।
5.	उद्देश्य	इसका उद्देश्य भावी अथवा निश्चित घटना से बचना है।	ऋणदाता को गारन्टी प्रदान करने का उद्देश्य है।
6.	प्रकृति	क्षतिपूर्ति अनुबन्ध हानि की रक्षा के लिए होते हैं।	गारन्टी अनुबन्ध ऋण देने वाले की जमानत के रूप में होते हैं।
7.	क्षेत्र	इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि इसमें गारन्टी अनुबन्ध शामिल नहीं किये जाते हैं।	गारन्टी अनुबन्ध में क्षतिपूर्ति अनुबन्ध शामिल होता है इसलिये इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है।

अजिताभ को दिया और कहा कि आज से भावी व्यवहार के लिए वह दायी नहीं होगा (अर्थात् अमिताभ ने अपनी चालू गारन्टी के खण्डन की सूचना भेजी)। ऐसी स्थिति में यदि अजिताभ 1,000 रु. सुमित को नहीं चुकाता है तो उसका भुगतान अमिताभ को करना पड़ेगा।

(2) प्रतिभू की मृत्यु हो जाने पर (धारा 131)—किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में प्रतिभू की मृत्यु समस्त भावी व्यवहारों के सम्बन्ध में चालू गारन्टी का खण्डन कर देती है। परन्तु उसके जीवन-काल से किए गये व्यवहारों के लिए प्रतिभू का वैधानिक प्रतिनिधि दायी होगा।

अंग्रेजी कानून के अनुसार इस प्रकार की गारन्टी के खण्डन के लिए प्रतिभू की मृत्यु की जानकारी ऋणदाता को होनी आवश्यक है, किन्तु भारतीय राजनियम में इसकी आवश्यकता नहीं होती।

(3) परिवर्तन द्वारा (धारा 133)—प्रतिभू उस समय अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है जबकि ऋणदाता मुख्य ऋणी के साथ किये गये अनुबन्ध में प्रतिभू की बिना सहमति से परिवर्तन कर देता है।

प्रतिभू के अधिकार
(Rights of Surety)

अनुबन्ध अधिनियम में दिये गये प्रतिभू के अधिकारों को तीन भागों में बांटा जा सकता है :—

I मुख्य ऋणी के विरुद्ध (Against Principal Debtor)
II ऋणदाता के विरुद्ध (Against Creditor)
III सह-प्रतिभू के विरुद्ध (Against Co-Surety)

I मूल ऋणी के विरुद्ध अधिकार

मूल ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है :—

(1) वाद प्रस्तुत करने का अधिकार—मुख्य ऋणी द्वारा त्रुटि करने पर जब प्रतिभू ऋण चुका देता है तब उसको वे सब अधिकार मिल जाते हैं जो कि ऋणदाता को मुख्य ऋणी के विरुद्ध प्राप्त थे। उदाहरणार्थ—प्रतिभू स्वयं मुख्य ऋणी के विरुद्ध रुपया वसूल करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। यदि ऋणदाता को मुख्य ऋणी को बेचे गये माल को मार्ग में रोकने का अधिकार है तो प्रतिभू को भी यह अधिकार मिल जाता है। यदि ऋणदाता को मूल ऋणी के दिवालिया होने की दशा में आनुपातिक भाग पाने का अधिकार है तो प्रतिभू को भी यह अधिकार मिल जाता है। इसको स्पष्ट करने के लिए अंग्रेजी में एक वाक्य है—"The Surety stands in the shoes of the Creditor"

(2) प्रदत्त धनराशि की वसूली का अधिकार (Rights to recover sum paid)—प्रतिभू को यह अधिकार है कि वह मुख्य ऋणी से वह समस्त धनराशी प्राप्त करले जो कि प्रतिभू ने ऋणदाता को मुख्य ऋणी की ओर से वैध रूप से चुकायी है. किन्तु ऐसा कोई धन पाने का अधिकार नहीं है जो उसने त्रुटिपूर्ण रूप से चुकाया है।

उदाहरण—Z द्वारा Y को दिये जाने वाले गेहूँ के मूल्य के भुगतान के लिए 3000 रुपये तक के लिए X, Z को गारन्टी देता है। Z, Y को 3000 रुपये से कम

मूल्य के गेहूँ देता है परन्तु X से 3000 रुपये प्राप्त कर लेता है तो ऐसी स्थिति में X, Z से वास्तव में दिये गये मूल्य से अधिक वसूल नहीं कर सकता है।

II ऋणदाता के विरुद्ध अधिकार

ऋणदाता के विरुद्ध प्रतिभू को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं—

(1) प्रतिभूति का लाभ पाने का अधिकार—प्रतिभू को ऐसी प्रत्येक जमानत के लाभ पाने का अधिकार है जो ऋणदाता के पास मुख्य ऋणी के विरुद्ध उस समय थी, जब गारन्टी अनुबन्ध किया गया था, चाहे प्रतिभू को ऐसी जमानत के विषय में मालूम हो अथवा नहीं। यदि ऋणदाता ऐसी जमानत खो देता है अथवा वह प्रतिभू की सहमति के बिना उसको अलग कर देता है तो प्रतिभू उस जमानत के मूल्य की सीमा तक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

उदाहरण—चन्द्रविहारी अपने किरायेदार बृजविहारी को 2000 रुपये अमित की गारन्टी पर उधार देता है। अमित इस 2000 रुपये के लिए एक और जमानत बृजविहारी के फर्नीचर की बन्धक के रूप में ले लेता है। अमित बाद में इस बन्धक को निरस्त कर देता है। बृजविहारी दिवालिया हो जाता है। चन्द्रविहारी फर्नीचर के मूल्य की रकम तक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है।

(2) घटोत्तरी का लाभ उठाने का अधिकार—यदि ऋणदाता से मुख्य ऋणी को भी कुछ रकम प्राप्त करनी है तो ऐसी स्थिति में प्रतिभू को यह अधिकार है कि वह उस ऋण में से वह राशि घटा कर भुगतान करे जो मुख्य ऋणी से ऋणदाता को प्राप्त करनी है।

III सह-प्रतिभू के विरुद्ध अधिकार

(1) बराबर अंशदान पाने का अधिकार (धारा 146)—यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने मिलकर कोई जमानत दी है तो वे किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, कुछ ऋण अथवा उसके भाग के लिए जो मूल ऋणी द्वारा चुकाया नहीं गया है आपस में बराबर-बराबर अंश चुकाने के लिए उत्तरदायी हैं।

उदाहरण—X,Y और Z संयुक्त रूप से A को उधार दिये गये 3000 रुपये के लिए B के प्रतिभू हैं। A भुगतान करने में त्रुटि करता है X, Y और Z में से प्रत्येक 1000 रुपये के उत्तरदायी है।

(2) भिन्न-भिन्न राशि के दायित्व वाले सह-प्रतिभू की दशा में (धारा 147)—यदि सह-प्रतिभू भिन्न-भिन्न धन के लिये बाध्य है तो वे जहाँ तक उनके दायित्व की सीमायें हैं, बराबर-बराबर भुगतान के लिये दायी है।

उदाहरण—राकेश, विनोद, रवि और राजू द्वारा विकास को ठीक तरह हिसाब देने के लिए राजू के प्रतिभुओं के रूप में भिन्न-भिन्न दण्डों के लिए अलग-अलग तीन प्रतिज्ञा-पत्र लिखते हैं—राकेश 5,000 रुपये के दण्ड का, विनोद 10,000 रुपये के दण्ड का और रवि 20,000 रुपये के दण्ड का। राजू 15,000 रुपये तक की राशि के सम्बन्ध में त्रुटि करता है राकेश, विनोद और रवि प्रत्येक 5,000 रुपये लिए उत्तरदायी है।

प्रतिभू का दायित्व से मुक्त होना
(Discharge of the Surety)

प्रतिभू का दायित्व से मुक्त होना
1. प्रतिसंहरण की सूचना द्वारा।
2. प्रतिभू की मृत्यु होने पर।
3. अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन।
4. मुख्य ऋणी को दायित्व से मुक्त करना।
5. ऋणदाता तथा मुख्य ऋणी के बीच में समझौता होने पर
6. ऋणदाता द्वारा कोई ऐसा कार्य या भूल हो जिससे प्रतिभू के अधिकार में कमी हो जाती है।
7. ऋणदाता द्वारा जमानत खोने पर।
8. अन्यथा कथन द्वारा गारन्टी प्राप्त करना।
9. छिपाव द्वारा गारन्टी प्राप्त करने पर।
10. सह-प्रतिभू द्वारा गारन्टी न देने पर।
11. लोक-नीति के विरुद्ध होने पर।

(1) प्रतिसंहरण की सूचना द्वारा (By Notice of revocation)—यदि प्रतिभू अपने अनुबन्ध का प्रतिसंहरण करता है तो वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। ऋणी तथा ऋणदाता के बीच गारन्टी के प्रतिसंहरण की सूचना देने के बाद हुए व्यवहारों के लिए प्रतिभू को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है।

उदाहरण—आशुतोष, बिरजू से कहता है कि वह सरजू को उसकी इच्छानुसार माल देता रहे वह इसके सम्बन्ध में 5000 रुपये तक की अपनी गारन्टी बिरजू को दे देता है। कुछ दिनों के बाद आशुतोष बिरजू से कहता है कि वह सरजू के प्रति उत्तरदायी नही होगा। यहाँ आशुतोष, ने बिरजू को सूचना देकर गारन्टी समाप्त कर ली है।

(2) प्रतिभू की मृत्यु होने पर (On Surety's death)—कोई विपरीत समझौता नही है तो अगर प्रतिभू की मृत्यु हो जाय तो भविष्य के व्यवहारों के सम्बन्ध में चालू गारन्टी का अन्त हो सकता है और उसके बाद के व्यवहारों के लिए प्रतिभू का कोई उत्तरदायित्व नही होता है।

(3) अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन करके (Changes in terms of contract) यदि प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणदाता तथा मुख्य ऋणी गारन्टी के अनुबन्ध की शर्तों मे कुछ परिवर्तन कर लेते हैं तब प्रतिभू परिवर्तन के बाद किये गये व्यवहारों के लिए उत्तरदायी नही होता।

लार्ड वैस्टबरी (Lord westbury)—ने एक मामले में निर्णय देते हुए लिखा है कि यदि प्रतिभू की सहमति के बिना अनुबन्ध में कोई परिवर्तन किया जाता है, भले ही वह प्रतिभू के लिए ही क्यों न हो, प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। लेकिन अगर प्रतिभू ने किसी परिवर्तन के लिए अपनी राय दी है तब यह दायित्व से मुक्त नही होगा। ऐसी परिस्थिति मे यह सिद्ध करने का भार कि परिवर्तन के लिए अपनी सहमति दे दी थी, ऋणदाता पर होगा।

(4) मुख्य ऋणी को दायित्व से मुक्त करना (By Release or Discharge of Principal Debtor)—यदि ऋणदाता ने मुख्य ऋणी को उसके दायित्व से मुक्त कर दिया है तो प्रतिभू भी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है। यदि ऋणदाता कोई ऐसी भूल करता है या कार्य करता है जिससे मुख्य ऋणी दायित्व से मुक्त हो जाता है तो प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

उदाहरण—X, Y के लिए एक निश्चित समय में एक निश्चित मूल्य के लिए मकान बनाने का अनुबन्ध करता है। Y इसके लिए आवश्यक लकड़ी आदि देने का वचन देता है। Z, X के कार्य के लिए प्रतिभू बन जाता है। Y लकड़ी आदि देने में त्रुटि करता है तो Z गारन्टी के दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(5) ऋणदाता तथा मुख्य ऋणी के बीच में समझौता होने पर (Compromise between Crditor and Principal debtor)—यदि ऋणदाता और मुख्य ऋणी प्रतिभू की सहमति के बिना कोई ऐसा समझौता कर लेते है जिसके द्वारा ऋणदाता मुख्य ऋणी को समय देने, या उस पर मुकदमा न करने का वचन देता है, तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। (धारा 135)

धारा 135 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि निम्नलिखित परिस्थिति मे प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है :—

(i) मूल अनुबन्ध में कोई समायोजन कर लेता है अथवा

(ii) भुगतान की अवधि को बढ़ा देता है अथवा

(iii) मूल ऋणी पर वाद प्रस्तुत न करने का वचन देता है।

उदाहरण—अर्जुनसिंह, भीमसिंह को 2000 रुपये कर्मसिंह की गारन्टी पर 12 प्रतिशत ब्याज पर उधार देता है। भुगतान समय पर नहीं हो पाता है। अर्जुनसिंह और भीमसिंह आपस में नया समझौता करते हैं, जिसके अनुसार अर्जुनसिंह इस राशि को 100 रुपये प्रतिमाह की 20 किस्तों में चुकायेगा और अर्जुनसिंह उसके ब्याज की राशि नहीं लेगा ऋणदाता तथा मुख्य ऋणी के बीच ऋण के समायोजन का समझौता हो गया है अतः कर्मसिंह अपने दायित्व से मुक्त हो गया है।

अपवाद—निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता है :—

(i) अगर मुख्य ऋणी का समय देने का अनुबन्ध ऋणदाता ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ किया है और मुख्य ऋणी के साथ नहीं किया है तब प्रतिभू अप. दायित्व से छुटकारा नहीं पाता है। (धारा 136)

(ii) अगर अनुबन्ध में कोई विपरीत आदेश नहीं है, तब ऋणदाता की ओर से मुख्य ऋणी पर मुकदमा न चलाने से या उसके विरुद्ध किसी दूसरे उपचार को लागू न करने से ही प्रतिभू अपने दायित्व से छुटकारा नहीं पाता। (धारा 137)

उदाहरण—A पर B का एक ऋण है जिसकी C ने गारन्टी दी है। ऋण देय हो गया है। B, A पर ऋण देय हो जाने के एक वर्ष तक मुकदमा नहीं करता है ऐसी स्थिति C प्रतिभू के दायित्व से मुक्त नहीं होगा।

(iii) यदि किसी अनुबन्ध में सह-प्रतिभू है, और ऋणदाता उनमें से किसी एक को दायित्व से मुक्त कर देता है तो ऐसी स्थिति में शेष प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते और न इस तरह से छुटकारा पाया हुआ प्रतिभू ही दूसरे प्रतिभुओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है (धारा 138)

(6) ऋणदाता द्वारा कोई ऐसा कार्य या भूल हो जिससे प्रतिभू के अधिकार में कमी हो जाती है (By Creditor's act or omission impairing surety's eventual rights)—यदि ऋणदाता कोई ऐसा कार्य करता है जो प्रतिभू के अधिकार के विरुद्ध या हितों के विरुद्ध है या वह कोई ऐसा कार्य करने में भूल करे जिसको पूरा करना उसका उत्तरदायित्व है और जिससे मुख्य ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के अधिकारों में कमी हो जाती है तो ऐसी स्थिति में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। (धारा 139)

उदाहरण—X, Z को Y के यहाँ नौकर के रूप में रखता है और वह Z की विश्वसनीयता के लिए Y को गारन्टी देता है। साथ ही साथ Y यह वचन देता है कि वह महीने में कम से कम एक बार यह जाँच करेगा कि Z हिसाब पूरा कर देता है। Y ऐसा नही करता है और Z हिसाब-किताब में चोरी कर लेता है। X, Y के प्रति गारन्टी के लिए उत्तरदायी नही है।

(7) ऋणदाता द्वारा जमानत खोने पर (By Loss of Security)—यदि ऋणदाता प्रतिभू की सहमति के बिना अपने पास रखी मुख्य ऋणी की किसी जमानत की सम्पत्ति को खो देता है, तो प्रतिभू ऐसी जमानत की सम्पत्ति के मूल्य की सीमा तक अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। (धारा 141)

उदाहरण—जेकी अपने किरायेदार जिमी को जोन की गारन्टी पर 2000 रुपये उधार देता है जिमी जेकी के पास जमानत के रूप में फर्नीचर बन्धक रखता है। जिमी, जोन को फर्नीचर लौटा देता है। जोन की त्रुटी की दशा में जेकी फर्नीचर के मूल्य के बराबर अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

(8) अन्यथा कथन द्वारा गारन्टी प्राप्त करना (Guarantee obtained by misreprsentation)—यदि ऋणदाता द्वारा अथवा उसकी जानकारी और सहमति से किये गये अन्यथा कथन के द्वारा प्रतिभू से गारन्टी प्राप्त की गई है तो वह प्रभावहीन होगी। (धारा 142)

राम अपनी ओर से रुपया वसूल करने के लिए श्याम को नियुक्त करता है। श्याम हिसाब नही देता है और कुछ रुपये अपने पास रख लेता है। राम, श्याम से ठीक-ठीक हिसाब देने के लिए जमानत माँगता है। मोहन श्याम के द्वारा ठीक हिसाब देने के लिए गारन्टी देता है। राम, मोहन को श्याम के पहले के व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ नही बताता है बाद में श्याम त्रुटि करता है। यह गारन्टी शून्य है।

(9) छिपाव द्वारा गारन्टी प्राप्त करने पर (Obtaining guarantee by Concealment)—यदि ऋणदाता किसी तथ्य पर चुप रहकर या सत्य को छिपाकर गारन्टी प्राप्त कर लेता है तो ऐसी गारन्टी शून्य मानी जायेगी तथा प्रतिभू दायित्व से मुक्त समझा जायेगा। (धारा 143)

उदाहरण—शिरीष अपने कार्यालय में गिरीश को क्लर्क नियुक्त करता है। गिरीश रुपयों का सही हिसाब नहीं दे पाता अतः शिरीष उससे सही-सही हिसाब देने के लिए गारन्टी मांगता है। हरीश गिरीश द्वारा हिसाब देने के लिए प्रतिभू हो जाता है। शिरीष, हरीश को गिरीश की पुरानी गड़बड़ियों के बारे में कुछ भी नहीं बताता है। यहाँ तथ्यों के छिपाव द्वारा गारन्टी प्राप्त की गई है अतः गारन्टी प्रभावहीन और शून्य है।

(10) सह-प्रतिभू द्वारा गारन्टी न देने पर (On Guarantee refusal by Co-Surety)—यदि किसी व्यक्ति ने ऋणदाता को इस शर्त पर गारन्टी दी है कि उसकी गारन्टी तभी मानी जाये जब कोई दूसरा व्यक्ति उसमें प्रतिभू होना स्वीकार कर ले तो इसमें अन्य व्यक्ति के सम्मिलित न होने की दशा में गारन्टी प्रभावहीन है। (धारा 144)

उदाहरण—A, B से कहता है कि वह C को 500 रुपये के लिए गारन्टी दे दे। B गारन्टी देने को तैयार होता है। यदि D भी इसके लिए गारन्टी देने को तैयार है। D गारन्टी देने के लिए इन्कार कर देता है यहाँ B गारन्टी के दायित्व से मुक्त हो जावेगा।

(11) लोक-नीति के विरुद्ध होने पर (Against Public policy)—गारन्टी अनुबन्ध से सम्बन्धित कोई ऐसा कार्य ऋणदाता करता है जो लोक-नीति के विरुद्ध है तो भी प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। राधाकान्त बनाम यूनाइटेड बैंक आफ इण्डिया के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "क्षतिपूर्ति अनुबन्ध" किसे कहते है ? क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकारों की विवेचना कीजिये।
   What is the contract ot idemnity ? Discuss the rights of indemnity holder.
2. क्षतिपूरक के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिये।
   Disiuss the rights and duties of indeminitier.
3. गारन्टी के अनुबन्ध की परिभाषा दीजिये और क्षतिपूर्ति तथा गारन्टी के अनुबन्ध में अन्तर बताइये।
   Define a "contract of guarantee" and distinguish between a contract of indemnity and a contract of guarantee.
   (जोधपुर वि. वि. 1978, 80, 81, 84)
4. चालू गारन्टी क्या है ? और यह किस प्रकार समाप्त की जा सकती है ? स्पष्ट रूप से समझाइए।
   What is continuing guarantee and how may it be revoked ? Explain fully,
   (जोधपुर वि. वि. 1978, 81 व 85)
   (राज. वि. वि. 1977, 1980)

5. किन परिस्थितियों में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है ?
In what circumstances a surety is discharged from his liability ?
(जोधपुर वि. वि. 1979, राज. वि. वि. 1979,)

6. प्रतिभू के क्या अधिकार होते हैं ? उदाहरणों की सहायता से उन्हें स्पष्ट कीजिये ।
What are the rights of the surety ? Explain with the help of illustrations.
(राज. वि. वि. 1978

7. "प्रतिभू का दायित्व मुख्य ऋणी के दायित्व के साथ सह-विस्तृत होता है" इस कथन की व्याख्या कीजिये ।
"The liability of the surety is Co-extensive wi'h that of the principal debtor." Expla n this statement.

8. प्रत्याभूति के अनुबन्ध को परिभाषित कीजिये और क्षतिपूर्ति तथा प्रत्याभूति अनुबन्ध में अन्तर बताइये । क्षतिपूर्ति के दावेदार के अधिकारों की व्याख्या कीजिये ।
Define a "contract of guarantee" and distinguish between a contract of indemnity and that of guarantee. Explain the rights of indemnity holdor.
(राज. वि वि 1981)

9. (अ) चालू गारन्टी क्या है ? यह किस प्रकार समाप्त की जा सकती है ? पूर्ण रूप से समझाइये ।
(ब) ऋणदाता और मुख्य ऋणी के विरुद्ध प्रतिभू के क्या अधिकार होते हैं ?
(a) What is continuing guarantee ? How may it be rewoked ? Explain fully.
(b) What are the rights of a surety against the creditor and the principal debtor.
(राज. वि. वि. पूरक 1982)

10 (i) चालू गारन्टी क्या होती है ? उसका प्रतिसंहरण कब होता है ?
(i) What is continuing gurrantee ? How may it be revoked ?
(ii) समझाइये
(ii) Explain.
(क) खोये हुये माल पाने वाला
(ख) निक्षेप की समाप्ति
(a) Finder of the lost goods.
(b) Termination of Bailment.
(जोधपुर वि. वि. 1985)

□□□

15

निक्षेप सम्बन्धी अनुबन्ध
(Contracts of Bailment)
(धाराएं 148 से 181)

विषय-सामग्री—निक्षेप का आशय, परिभाषा, विशेषताएँ, निक्षेपी के कर्तव्य, अधिकार निक्षेप-गृहीता के कर्तव्य, निक्षेप के प्रकार, खोई हुई वस्तु पाने वाले के अधिकार और कर्त्तव्य, ग्रहणाधिकार का आशय, लक्षण, प्रकार, ग्रहणाधिकार की समाप्ति, अभ्यास के लिए प्रश्न।

परिचय
(Introduction)

निक्षेप अनुबन्ध भी क्षतिपूर्ति तथा गारन्टी अनुबन्धों की तरह एक विशेष व्यापारिक अनुबन्ध है। निक्षेप अनुबन्ध के नियम भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 से धारा 181 में निहित हैं।

निक्षेप का आशय
(Meaning of Bailment)

बेलमेण्ट (Bailment) शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के बेलर (Bailer) से हुई है। बेलर का अर्थ 'सुपुर्द करना" होता है। किन्तु राजनियम की भाषा में निक्षेप शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में होता है। "स्वेच्छापूर्वक किसी वस्तु का एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण करना निक्षेप है। (Voluntary change of Possession from one person to another)"

निक्षेप की परिभाषा
(Definition of Bailment)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 के अनुसार, "जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से, इस अनुबन्ध पर माल की सुपुर्दगी करता है कि उस उद्देश्य के पूरा होने पर माल सौंपने वाले को लौटा दिया जायगा अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी, तो ऐसी सुपुर्दगी को निक्षेप कहते हैं।[1]"

1. A bailment is the delivery of goods by one Person to another for some Purpose upon a contract that they shall, when the Purpose is accomplished be returned or otherwise disposed of according of the directions of the Person delivering them." (Sec. 148 Indian contract Act 1872)

जिस व्यक्ति द्वारा माल सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेपी (Bailor) और जिस व्यक्ति को माल सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेप-गृहीता (Bailee) कहते हैं ।

उदाहरण—महेन्द्र यात्रा के लिए जाते समय अपनी मोटर साइकिल सुरेन्द्र को सुपुर्द कर जाता है और कहता है कि यात्रा से लौटकर इसे वापस ले लेगा, इसे हम निक्षेप कहेंगे । यहाँ पर महेन्द्र निक्षेपी तथा सुरेन्द्र निक्षेप-गृहीता कहलायेगा ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 149 का आदेश है कि "निक्षेप-गृहीता के लिए माल की सुपुर्दगी किसी भी ऐसे कार्य के करने से हो सकती है जिसका प्रभाव यह हो कि माल निक्षेप-गृहीता के अधिकार में पहुँच जाये अथवा निक्षेप-गृहीता की ओर से उसे रखने के लिए अधिकृत व्यक्ति के अधिकार में पहुँच जाये ।'

निक्षेप अनुबन्ध के लक्षण अथवा तत्त्व
(Characteristics of Bailment)

अनुबन्ध अधिनियम की परिभाषा और विभिन्न न्यायालयों द्वारा की गयी इसकी व्याख्याओं के आधार पर निक्षेप के निम्नलिखित लक्षण हो सकते है :—

निक्षेप अनुबन्ध के लक्षण अथवा तत्त्व
1. माल के अधिकार का हस्तान्तरण ।
2. अस्थाई उद्देश्य ।
3 विद्यमान माल का ही निक्षेप ।
4. स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं ।
5. माल पुन: प्राप्त करने का अधिकार ।
6. दो पक्षकारों का होना ।
7. सुपुर्दगी किसी अन्य व्यक्ति को ।
8. हस्तान्तरण किसी वस्तु का हो ।
9. अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है ।
10 माल के रूप में परिवर्तन ।
11. केवल चल सम्पत्तियों का निक्षेप ।
12. क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध नहीं ।

(1) माल के अधिकार का हस्तान्तरण (Transfer of Possessiou)—निक्षेप के अनुबन्ध में माल के अधिकार का हस्तान्तरण होना जरूरी है । यह हस्तान्तरण वास्तविक या रचनात्मक सुपुर्दगी द्वारा हो सकता है । केवल माल की रखवाली या देखभाल करना निक्षेप का अनुबन्ध नहीं हो सकता जैसे—नौकर द्वारा अपने मालिक के सामान की देखभाल करना निक्षेप नहीं है ।

उदाहरण—रामगुलाम बनाम उत्तर प्रदेश सरकार का मामला महत्त्वपूर्ण है । इस मामले में रामगुलाम के आभूषण चोरी चले गये जिन्हे पुलिस ने प्राप्त कर लिया । पुलिस के कब्जे में यह आभूषण थे फिर इनकी चोरी हो गयी । रामगुलाम ने सरकार पर हानि का दावा किया जिसे न्यायालय ने यह कह कर निरस्त कर दिया कि आभूषण सरकार के पास किसी अनुबन्ध के अधीन नहीं रखे थे अर्थात् निक्षेप एक अनुबन्ध है जो पक्षकारों में होना चाहिए ।

(2) अस्थायी उद्देश्य (Temporary Purpose)—अस्थायी उद्देश्य के लिए माल के अधिकार का हस्तान्तरण होना चाहिए यदि स्थायी उद्देश्य से माल का हस्तान्तरण किया जाता है तो यह विक्रय है न कि निक्षेप जैसे रोहित अपनी साइकिल 400 रुपये में मोहित को हस्तान्तरित कर दे तो इसे विक्रय कहा जायेगा निक्षेप नहीं ।

(3) विद्यमान माल का ही निक्षेप (Applies for existing goods) - जो माल निक्षेप के समय विद्यमान नहीं है उसका निक्षेप नही हो सकता है। अर्थात् निक्षेप के समय वस्तु का होना आवश्यक है।

(4) स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं (Ownership not transferred)—निक्षेप के अनुबन्ध में केवल माल के अधिकार का ही हस्तान्तरण होता है स्वामित्व का नही। स्वामित्व तो निक्षेपी का ही होता है जिसके आधार पर वह माल भविष्य मे पुनः प्राप्त करता है।

(5) माल पुन. प्राप्त करने का अधिकार (Right to receive back of goods)—विशेष उद्देश्य के पूरा हो जाने के पश्चात् माल निक्षेपी को वापस कर दिया जायेगा इस शर्त पर निक्षेप अनुबन्ध में माल का हस्तान्तरण किया जाता है। इस शर्त के अभाव मे निक्षेप का अनुबन्ध नही माना जाता है।

उदाहरण—बालकृष्ण ने यात्रा पर जाते समय मुरली मनोहर को रेडियो दिया। यात्रा से वापस आने के बाद मुरली मनोहर बालकृष्ण को रेडियो वापस कर दे या बालकृष्ण के आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दें।

यहाँ पर यह स्पष्ट रूप से समझ लेना भी आवश्यक है कि निक्षेप का अनुबन्ध तभी होगा जबकि सुपुर्दगी पाने वाला उसी माल को वापस करे जिसको उसने प्राप्त किया है। उसके स्थान पर दूसरा माल नही। अतः बैंक के खाते मे यदि कोई व्यक्ति रुपया जमा करता है तो यह निक्षेप का अनुबन्ध नहीं है, क्योंकि बैंक ने जिन नोटों को जमा किया है उन्ही नोटो को वापस नही करता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति कुछ मूल्यवान वस्तुयें सिक्के या नोट बक्स में बन्द करके बैंक को दे जाता है तब यह निक्षेप का अनुबन्ध है।

(6) दो पक्षकारों का न होना (Presence of Two Parties)—दो पक्षकारों का निक्षेप अनुबन्ध में होना आवश्यक है। माल का स्वामी अर्थात् माल के अधिकार का हस्तान्तरण करने वाला पक्षकार निक्षेपी कहलाता है और जिस व्यक्ति को यह हस्तान्तरण होता है उसे निक्षेप-गृहीता कहते हैं।

(7) सुपुर्दगी किसी अन्य व्यक्ति को (Transfer of goods)—निक्षेप अनुबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी कि माल की सुपुर्दगी किसी अन्य व्यक्ति को होनी चाहिए, स्वयं को नही।

मद्रास उच्च न्यायालय का मामला इस सम्बन्ध मे काफी महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में एक स्त्री ने एक सुनार को पुराने आभूषण इसलिए दिए कि वह उनको गला कर नये आभूषण बना दें। प्रतिदिन शाम को सुनार के यहाँ जाती और बने या आधे बने नये गहने लेकर सुनार के ही कमरे में सन्दूक में बन्द कर देती थी और चाबी अपने साथ ले जाती थी। उस स्त्री ने देखा कि एक दिन सुबह उसके गहने चोरी हो गये है। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि इन आभूषणों की सुपुर्दगी सुनार को नहीं दी गई थी अतः सुनार निक्षेप-गृहीता नहीं था।

(8) हस्तान्तरण किसी वस्तु का हो—हस्तान्तरण किसी वस्तु का ही हो, निक्षेप के अनुबन्ध में यह जरूरी है। यदि ऐसा नहीं है तो वह निक्षेप अनुबन्ध नही है।

(9) अनुबन्ध लिखित अथवा गर्भित—दोनों ही प्रकार से हो सकता है।

(10) माल के रूप में परिवर्तन - यह आवश्यक नहीं है कि निक्षेप के अनुबन्ध में हमेशा माल ठीक उसी दशा में वापिस लौटाया जाये जिसमें उसे सौंपा गया था। वस्तु के रूप मे मामूली परिवर्तन हो सकता है।

(11) केवल चल सम्पत्तियों का निक्षेप—केवल चल सम्पत्तियों के निक्षेप का अनुबन्ध हो सकता है, अचल सम्पत्ति का नहीं।

(12) क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध नहीं—यदि पर्याप्त सावधानी के बाद भी वस्तु नष्ट हो जाती है तो निक्षेप गृहीता उत्तरदायी नही होता है। बिजली गिरने, आंधी, वर्षा, विदेशी आक्रमण आदि आकस्मिक घटनाओं के कारण भी वस्तु नष्ट हो जाती है तो ऐसी स्थिति में भी गृहीता का कोई दायित्व नही होता है।

निक्षेपी के कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व
(Duties or Responsibilities of Bailor)

निक्षेप के अनुबन्ध के अन्तर्गत निक्षेपी के निम्नलिखित कर्त्तव्य एवं दायित्व हैं :—

निक्षेपी के कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व

1. निक्षेपित माल के दोषों को प्रकट करना।
2. निक्षेप-गृहीता को माल सुपुर्द करना।
3. आवश्यक व्ययों का भुगतान।
4. असाधारण व्ययों का भुगतान।
5. निर्धारित अवधि से पूर्व माल वापस लेने के कारण होने वाली क्षति को पूरा करना।
6. निक्षेप-गृहीता की क्षतिपूर्ति करना।
7. निक्षेप-गृहीता को पारिश्रमिक चुकाना।
8. निक्षेपित वस्तु की क्षति को वहन करना।
9. उद्देश्य पूर्ति व समय पूर्व प्राप्त निक्षेपित माल पर क्षतिपूर्ति।

(1) निक्षेपित माल के दोषों को प्रकट करना (To disclose the Faults in the goods bailed)—धारा 150 के अनुसार मालकी सुपुर्दगी करते समय निक्षेपी का यह कर्त्तव्य होता है कि माल के उन समस्त दोषों अथवा त्रुटियों को प्रकट कर दे, जिनकी उसे जानकारी हो। यदि निक्षेपी जानबूझकर ऐसे दोषों को छिपाता है अथवा बताता नही है तो इन दोषों से निक्षेप-गृहीता को हुई हानि के लिए निक्षेपी को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

यदि निक्षेप स.शुल्क है, तो उन सब क्षतियों को निक्षेपी पूरा करेगा जो निक्षेप-गृहीता को माल के दोषों के कारण उठानी पड़ी हों चाहे निक्षेपी को उन दोषों की जानकारी थी या नहीं। किन्तु नि:शुल्क निक्षेप मे निक्षेपी केवल जानकार दोषों को प्रकट न करने के कारण होने वाली क्षति के लिए ही उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—(i) अरुण, वरुण को एक घोडा उधार देता है। घोड़ा शैतान है यह अरुण जानता है लेकिन वरुण को प्रकट नही करता। वरुण घायल हो जाता है। अरुण, वरुण की क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी है।

(ii) वीरेन्द्र, धीरेन्द्र की एक गाड़ी किराये पर लेता है। गाडी में खराबी है किन्तु धीरेन्द्र को इसकी जानकारी नही है। गाडी मे वीरेन्द्र को चोट लग जाती है धीरेन्द्र क्षति के लिए उत्तरदायी है। क्योंकि सःशुल्क निक्षेप का अनुबन्ध है।

(2) निक्षेप-गृहीता को माल सुपुर्द करना (*Goods transferred to Bailee*)—निक्षेपी का कर्त्तव्य है कि माल निक्षेप-गृहीता को सुपुर्द कर दे। यह माल की सुपुर्दगी वास्तविक, रचनात्मक अथवा सांकेतिक किसी भी रूप मे की जा सकती है।

(3) आवश्यक व्ययों का भुगतान करना (Repayment of necessary expenses)—धारा 158 के अनुसार यदि निक्षेप की शर्तों के अनुसार निक्षेपित माल को कही ले जाना है या माल को रखना है या उस पर निक्षेपी द्वारा अपेक्षित कोई कार्य करना है और निक्षेप-गृहीता को इन सबके लिए कोई पारिश्रमिक नही मिलेगा तो निक्षेप के उद्देश्य को पूरा करने के लिए जो भी आवश्यक व्यय निक्षेप-गृहीता ने किये हैं, उनकी पूर्ति करना निक्षेपी का कर्त्तव्य है।

उदाहरण—रोहिताश्व, अमरेश की मोटर कार उसके दोस्त पीयूष के पास पहुँचाने को सहमत हो जाता है। अमरेश इस कार्य के लिए कोई पारिश्रमिक नही लेगा। रोहिताश्व द्वारा पीयूष तक मोटर कार पहुँचाने के लिए पैट्रोल पर जो खर्च होगा उसकी पूर्ति अमरेश द्वारा की जायेगी।

(4) असाधारण व्ययों का भुगतान करना (Rembursement of extra ordinary Expenses)—उन समस्त असाधारण व्ययों का निक्षेपी भुगतान करे जो कि निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध मे निक्षेप-गृहीता द्वारा किये गये है।

उदाहरण—कुसुमाकर अपनी गाय दिनकर के पास छोड़कर तीर्थयात्रा करने के लिए चला जाता है। कुछ दिनो बाद गाय बीमार पड़ जाती है। बीमारी का खर्च असाधारण व्यय है। यह व्यय दिनकर कुसुमाकर से प्राप्त कर सकता है।

(5) निर्धारित अवधि या उद्देश्य से पूर्व माल वापस लेने के कारण होने वाली क्षति को पूरा करना—

यदि निक्षेप का अनुबन्ध किसी निश्चित समय के लिए या उद्देश्य के लिए किया गया है और माल को निर्धारित समय या उद्देश्य के पूरा होने से पूर्व निक्षेपी ले लेता है तो ऐसी स्थिति मे निक्षेपी का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेप-गृहीता की क्षतिपूर्ति करें।

(6) निक्षेप-गृहीता को क्षतिपूर्ति करना (To compensate the loss incurred by bailee)—निक्षेपित माल में निक्षेपी के दोषयुक्त स्वामित्व के कारण निक्षेप-गृहीता को जो क्षतियाँ होती है उसे निक्षेपी पूरा करने के लिए दायी है। (धारा 164)

उदाहरण—भास्कर कुछ माल कलकत्ता से एक ट्रक मे लदवाता है जिसे बम्बई भेजता है। ट्रक वाले को यह नही बताया कि यह माल चोरी का है। रास्ते मे ट्रक को पुलिस वाले रोक लेते हैं. इस कारण ट्रक को पाँच दिन के लिए रुकना पड़ता है। ट्रक का मालिक भास्कर से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

(7) निक्षेप-गृहीता को पारिश्रमिक चुकाना (To-pay remuneration)—निक्षेपी का यह भी कर्तव्य है कि निक्षेप-गृहीता का उचित या निश्चित किया हुआ पारिश्रमिक यदि कोई है तो चुका देना चाहिए ।

(8) निक्षेपित वस्तु की क्षति को वहन करना (To bear the loss on goods bailed)—निक्षेपित माल की निक्षेप-गृहीता ने अपने माल की तरह देखभाल की है लेकिन फिर भी निक्षेपित माल की क्षति हो जाती है तो निक्षेपी का यह कर्तव्य है कि वह उस क्षति को वहन करें ।

उदाहरण—संजय ने अजय को अपना रेडियो 4 दिन के लिए दिया । अजय ने अपने सोने के कमरे मे उसे रख दिया जहाँ वह सुरक्षित था । किसी कारण से छत गिरने से रेडियो क्षतिग्रस्त हो जाता है । यह क्षति निक्षेपी द्वारा वहन की जायेगी निक्षेप-गृहीता इसके लिए दायी नहीं है ।

(9) उद्देश्य पूर्ति अथवा समय पूर्व मांगे गये माल पर क्षतिपूर्ति—निक्षेप के निःशुल्क होने की दशा में, निक्षेपी का कर्तव्य है कि वह समय के पूर्व अथवा उद्देश्य प्राप्ति के पूर्व वापिस मांगी गयी निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध में निक्षेप-ग्रहीता की उस हानि की पूर्ति करे जो उसे उठानी पड़ी हो । (धारा–159)

निक्षेपी के अधिकार
(Rights of Bailor)

निक्षेपी के अधिकार निम्नलिखित हैं—

(1) माल को वापस पाने का अधिकार—निक्षेपी का एक महत्वपूर्ण अधिकार यह है कि वह निक्षेप-गृहीता से निक्षेप का माल उद्देश्य की पूर्ति पर या उस समय के समाप्त होने पर जिसके लिए निक्षेप किया गया है वापस ले अथवा निक्षेपी के आदेशानुसार किसी और व्यक्ति को दे ।

निक्षेपी के अधिकार

1. माल को वापस पाने का अधिकार ।
2. निक्षेप-गृहीता की उपेक्षा से हुई हानि की क्षतिपूर्ति ।
3. लाभ या वृद्धि को प्राप्त करना ।
4. शर्तों के विरुद्ध कार्य करने पर अनुबन्ध की समाप्ति ।
5. क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार ।
6. निःशुल्क निक्षेप को समाप्त करना ।
7. निक्षेप-गृहीता द्वारा माल वापस न करने से होने वाली क्षति की पूर्ति ।
8. निक्षेपी के माल को अपने माल में मिलाने पर :—
   (i) निक्षेपी की सहमति से माल मिलाना ।
   (ii) निक्षेपी की सहमति के बिना माल को मिलाना ।
   (iii) निक्षेप-गृहीता अपनी इच्छा से निक्षेपी माल मिला दे जिससे निक्षेपी की वस्तु अलग न की जा सके ।

(2) निक्षेप-गृहिता की उपेक्षा से हुई हानि की क्षतिपूर्ति—निक्षेप-गृहीता की उपेक्षा से हुई हानि की क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का निक्षेपी को अधिकार है । उपेक्षा से आशय यह है कि निक्षेपित माल की निक्षेप-गृहीता द्वारा उचित देखभाल न करने से हुई हानि या किसी अन्य प्रकार से निक्षेपित माल को क्षति पहुँचाना । (धारा 152)

उदाहरण—गोविन्द एण्ड कम्पनी अपने 100 क्विन्टल प्याज एक कोल्ड स्टोरेज को 4 माह तक सुरक्षित रखने के लिए देती है । उचित देखभाल के अभाव मे प्याज सड़ जाते हैं । गोविन्द एण्ड कम्पनी को इस हानि को प्राप्त करने का अधिकार है ।

(3) लाभ या वृद्धि को प्राप्त करना—निक्षेप की गई वस्तु में कुछ वृद्धि हो जाती है या उसके द्वारा कोई लाभ होता है तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव मे निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप-गृहीता से ऐसी वृद्धि या लाभ प्राप्त करें।

उदाहरण—गंगाराम तीर्थयात्रा जाते समय अपनी गाय सनातन के पास देखभाल के लिए छोड़ देता है। गाय के एक बछड़ा हो जाता है। गंगाराम को यह अधिकार है कि वह गाय व बछड़ा दोनों ही प्राप्त करे।

(4) शर्तों के विरुद्ध कार्य करने पर अनुबन्ध की समाप्ति—निक्षेपी को यह अधिकार है कि निक्षेप की शर्तों के अनुसार निक्षेप-गृहीता कार्य नहीं करता है तो वह निक्षेप के अनुबन्ध को समाप्त करके और माल वापस ले ले। (153)

उदाहरण—राम श्याम को निजी सवारी के लिए एक घोड़ा किराये पर देता है। श्याम घोड़े की सवारी की बजाय गाड़ी में चलाता है। ऐसी स्थिति मे राम की इच्छा पर अनुबन्ध समाप्त किया जा सकता है।

(5) निःशुल्क निक्षेप को समाप्त करना—निःशुल्क निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत निक्षेपी वस्तु को किसी भी समय प्राप्त कर सकता है। कुछ परिस्थितियों मे निक्षेप-गृहीता की क्षतिपूर्ति भी करनी पड़ सकती है। (धारा 159)

(6) क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार—निक्षेप-गृहीता निक्षेप अनुबन्ध के विरुद्ध कोई कार्य करता है और उसके द्वारा उपयोग से या उपयोग के समय माल को कोई हानि पहुँचती है तब निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप-गृहीता से अपनी हानि की पूर्ति करा ले।

उदाहरण—अनिल अपना एक घोड़ा सुनील को दिल्ली जाने के लिये किराये पर देता है। सुनील दिल्ली जाने के बजाय बम्बई की ओर चल देता है। रास्ते में घोड़ा एक नदी में गिर जाता है और घायल हो जाता है, यहाँ अनिल को सुनील से क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है।

(7) निक्षेप-गृहीता द्वारा माल वापस न करने से होने वाली क्षति की पूर्ति—यदि निक्षेप की निश्चित अवधि अथवा उद्देश्य समाप्त होने के बाद भी निक्षेप-गृहीता माल नहीं लौटाता है तो इस उद्देश्य या अवधि को पूरा करने के बाद माल में होने वाली किसी भी क्षति अथवा निक्षेपित माल के खोने पर मूल्य की क्षतिपूर्ति करवाने का अधिकार निक्षेपी को होगा। (धारा 161)

(8) निक्षेपी के माल को अपने माल में मिलाने पर—निक्षेप किये गये माल को निक्षेप-गृहीता कभी-कभी अपने माल मे मिला लेता है। इस सम्बन्ध मे अधिनियम में तीन व्यवस्थाएँ हैं—

(i) निक्षेपी की सहमति से माल मिलाना—यदि निक्षेपी की सहमति से निक्षेप-गृहीता ने माल को अपने माल में मिला लिया है तो ऐसी स्थिति में निक्षेपी व निक्षेप-गृहीता का हित अपने माल के अंश के अनुपात में होगा। (धारा 155)

(ii) निक्षेप को बिना सहमति से मिलाना—निक्षेपी की बिना सहमति से निक्षेप-गृहीता ने माल को अपने माल में मिला लिया है तो ऐसी स्थिति मे यदि माल अलग किया जा सकता है तो दोनों पक्षकार अपने-अपने माल के अधिकारी होंगे और माल

या बाँटने का व्यय प्राप्त करने या मिलावट से होने वाली हानि की पूर्ति कराने का निक्षेपी का अधिकार होगा। (धारा 156)

(iii) निक्षेपी के माल को यदि निक्षेप-गृहीता अपनी इच्छा से मिला देता है और इस मिश्रण में से निक्षेपी की वस्तु अलग नहीं की जा सकती है तो ऐसी स्थिति में निक्षेपी को उसके सम्पूर्ण माल की क्षतिपूर्ति करने का अधिकार होगा। (धारा 157)

निक्षेप-गृहीता के कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व (Duties and Responsibilities of Bailee)

निक्षेप-गृहीता के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं :—

(1) निक्षेपित माल की उचित देखभाल करना—निक्षेप-गृहीता का यह महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपित माल की उचित देखरेख करे। निक्षेप चाहे नि:शुल्क हो या स शुल्क हो, निक्षेप-गृहीता को निक्षेपित माल की समान रूप से देखभाल करनी चाहिये। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 151 के अनुसार, "निक्षेपित माल की निक्षेप-गृहीता उतनी ही देखभाल करने को बाध्य है जितनी कि एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति, उन्हीं परिस्थितियों में उतने ही मूल्य, गुण व मात्रा के अपने माल की देखभाल करता।

उदाहरण—सूर्यनारायण ने अनाज के कुछ बोरे नन्दकुमार को रखने के लिए दिये। नन्दकुमार ने उन्हें अपने गोदाम में रख दिया। गोदाम की छत में दरार है इसको नन्दकुमार जानता था लेकिन फिर भी उसने मरम्मत नहीं करायी। वर्षा होने के कारण छत से पानी टपकने के कारण अनाज खराब हो गया। ऐसी स्थिति में नदकुमार उत्तरदायी होगा।

(2) उचित देखभाल की उपेक्षा करने पर क्षतिपूर्ति करना—निक्षेपित माल की उचित देखरेख करने में निक्षेप-गृहीता उपेक्षा करता है ऐसी उपेक्षा से माल नष्ट होने पर या माल के सड़ने पर निक्षेपी की क्षतिपूर्ति करनी होगी। (धारा 152) नौकर की लापरवाही के लिए भी निक्षेप-गृहीता दायी है।

निक्षेप-गृहीता के कर्त्तव्य

1 निक्षेपित माल की उचित देखभाल करना।
2 उचित देखरेख की उपेक्षा करने पर क्षतिपूर्ति करना।
3. निक्षेपित माल का अनधिकृत उपयोग न करना
4. अनधिकृत उपयोग की क्षतिपूर्ति करना।
5. निक्षेपित वस्तु वापस कर देना।
6. निक्षेपित वस्तु नहीं लौटाने पर क्षतिपूर्ति का दायित्व।
7. निक्षेपित माल में हुई वृद्धि या लाभ को वापस करना।
8. निक्षेपित माल के विपरीत स्वामित्व न जमाना।
9. निक्षेपित माल को अपने माल में नहीं मिलाना।

उदाहरण—राजेन्द्र ने कुछ आभूषण सत्येन्द्र के पास गिरवी रखे। सत्येन्द्र ने यह आभूषण एक आलमारी में अपने आभूषणों के साथ रख दिया और आलमारी की चाबी पास ही रखे कैश-बॉक्स में रख दी। घर के सभी लोग छत पर सोने चले गये। चोर ताला तोड़कर जेवर निकाल ले गये। न्यायालय ने निर्णय दिया कि सत्येन्द्र ने सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति की तरह देखरेख नहीं की है क्योंकि चाबी वहीं पड़े कैश बॉक्स में रखना लापरवाही है।

(3) निक्षेपित माल का अनधिकृत उपयोग न करना—यदि निक्षेपित वस्तु को निक्षेप-गृहीता ऐसे उपयोग में लाता है जो निक्षेप की शर्तों के अनुसार नहीं है तो वह ऐसे उपयोग से या उपयोग के दौरान होने वाली निक्षेपित माल की किसी भी क्षति को पूरा करने को दायी होगा। (धारा 153)

उदाहरण— राम ने श्याम को अपना घोड़ा स्वय की सवारी के लिए दिया। श्याम ने अपने छोटे भाई मोहन को घोड़ा सवारी के लिए दे दिया। मोहन बड़ी सावधानी से सवारी करता है। फिर भी अचानक घोडा गिर जाता है और घायल हो जाता है, श्याम इस क्षति के लिए दायी है।

(4) अनधिकृत उपयोग की क्षतिपूर्ति करना—निक्षेपित वस्तु का यदि निक्षेप-गृहीता शर्तों के विरुद्ध उपयोग करता है और उस वस्तु को क्षति पहुँचती है तो निक्षेप-गृहीता इस क्षति के लिए दायी है।

उदाहरण—सन्तोष ने एक घोड़ा जयपुर से दिल्ली जाने के लिए किराये पर लिया। वह घोड़ा लेकर टोंक रवाना हो जाता है। रास्ते मे घोड़ा नदी मे गिर कर घायल हो जाता है तो सन्तोष घोड़े के मालिक को क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी है।

(5) निक्षेपित वस्तु वापस कर देना—निक्षेप-गृहीता का यह कर्त्तव्य है कि निक्षेपित वस्तु की अवधि समाप्त हो जाने पर या जिस उद्देश्य के लिए वस्तु दी गयी थी उसके पूरा हो जाने पर निक्षेपी के आदेशानुसार वापस कर दें। (धारा 160)

(6) निक्षेपित वस्तु नहीं लौटाने पर क्षतिपूर्ति का दायित्व—यदि निक्षेप-गृहीता निक्षेपित माल को निश्चित अवधि के समाप्त होने पर या निश्चित उद्देश्य के पूरा होने पर नहीं लौटाता है, तो इसके बाद माल में होने वाली प्रत्येक क्षति के लिए निक्षेप-गृहीता स्वयं उत्तरदायी होता है। (धारा 161)

उदाहरण—मनोज ने विनोद से एक घोड़ा 1 दिसम्बर से 31 दिसम्बर तक के लिये किराये पर लिया। मनोज ने यह घोडा 10 जनवरी तक नहीं लौटाया। घोड़ा 10 जनवरी को मर जाता है। यहाँ मनोज को विनोद के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(7) निक्षेपित माल में हुई वृद्धि या लाभ को वापस करना—यदि निक्षेपित माल में कुछ वृद्धि हो जाती है या उस पर कुछ लाभ हो जाता है तो निक्षेप-गृहीता का यह कर्त्तव्य है कि वह यह वृद्धि या लाभ लौटा दें। (धारा 163)

उदाहरण—सन्तोष तीर्थयात्रा जाते समय अपनी गाय गोविन्द के यहाँ छोड़ जाता है। गाय के एक बछड़ा हो जाता है। सन्तोष के तीर्थयात्रा से वापस आने पर गोविन्द गाय व बछड़ा दोनों सन्तोष को लौटाने के लिए बाध्य होगा।

(8) निक्षेपित माल के विपरीत स्वामित्व न जमाना—निक्षेप-गृहीता का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपित माल को निक्षेप-गृहीता के रूप मे ही अपने अधिकार में बनाये रखे न कि स्वामी के रूप मे। किसी अन्य व्यक्ति को अपनी इच्छा से माल हस्तान्तरित नही करना चाहिये और न ही बेचना चाहिये। (भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 117)

(9) निक्षेपित माल को अपने माल में नहीं मिलाना—निक्षेपित माल को निक्षेप-गृहीता को अपने माल में नही मिलना चाहिये। माल के मिलावट पर निम्नलिखित स्थितियाँ होंगी :—

(i) निक्षेपी की सहमति से उसके माल को अपने माल मे मिला देता है तो इस प्रकार के मिश्रण में, निक्षेपी व निक्षेप-गृहीता का हित, अपने-अपने माल के अंश के अनुपात में होगा। (धारा 155)

उदाहरण—(i) जितेन्द्र 20 सेर गेहूँ का आटा कमल को निक्षेप करता है। जितेन्द्र, कमल की सहमति से अपना निजी 10 सेर आटा जितेन्द्र के आटे में मिला देता है। पूर्ण मिलावट में जितेन्द्र का भाग दो-तिहाई है और कमल का भाग एक तिहाई होगा।

(ii) निक्षेपी की सहमति के बिना उसके माल को अपने माल में मिला देता है। माल को पुनः अलग-अलग किया जा सकता है, तो दोनों पक्षकार अपने-अपने माल के अधिकारी होंगे। माल को अलग-अलग करने अथवा बांटने का व्यय तथा मिलावट से होने वाली हानि के लिए निक्षेपगृहीता उत्तरदायी होगा। (धारा 156)

उदाहरण—वरुण एक विशेष किस्म की 100 गाँठें कपास की तरुण को निक्षेप के रूप में देता है। वरुण की बिना सहमति के तरुण उक्त गाँठों को अपनी गोदाम में रखी अन्य गाँठों के साथ रखवा देता है। वरुण को यह अधिकार है कि वह अपनी गाँठों को अलग करवा कर वापस ले ले। ऐसा करने में जो खर्च होगा वह तरुण को वहन करना पड़ेगा।

(iii) यदि निक्षेपी की सहमति के बिना उसके माल को अपने निजी माल में मिला देता है। इस मिश्रण में से निक्षेपी की वस्तु पृथक् नहीं की जा सकती है, तो निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप की गयी वस्तु की क्षति की पूर्ति निक्षेप-गृहीता से करा ले। (धारा 157)

उदाहरण—विजय 100 पौंड विशेष किस्म की चाय जिसका मूल्य 800 रुपये है भास्कर को निक्षेप करता है। भास्कर बिना विजय की सहमति से उस चाय को अपनी निजी 100 पौंड चाय में जिसका मूल्य 400 रुपये है, मिला देता है तो ऐसी स्थिति में भास्कर को विजय के लिए उसकी पूरी चाय की हानि की क्षतिपूर्ति करनी होगी।

निक्षेप के प्रकार या रूप
(Kinds of Bailment)

निक्षेप निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :—

निक्षेप के प्रकार या रूप—
1. सुरक्षित रखने के लिए निक्षेप।
2. प्रयोग के लिए निक्षेप।
3. स-शुल्क निक्षेप।
4. नि-शुल्क निक्षेप।
5. किराये पर निक्षेप।
6. गिरवी द्वारा निक्षेप।
7. परिवहन सम्बन्धी निक्षेप।
8. मरम्मत के लिए निक्षेप।

(1) सुरक्षित रखने के लिए निक्षेप (Bailment for safe custody)—सुरक्षित निक्षेप तब होता है जबकि निक्षेपी निक्षेप-गृहीता को माल केवल सुरक्षित रखने के लिए सुपुर्द करता है।

उदाहरण—सत्यनारायण अपनी कुछ मूल्यवान वस्तुएँ तीर्थयात्रा जाने के पूर्व अपने मित्र के पास रख देता है। यह सामान सुरक्षा के लिए रखा गया है। सत्यनारायण यात्रा से वापस लौटाने पर माल को पुन. प्राप्त करने का अधिकारी है। ऐसे निक्षेप को सुरक्षित निक्षेप कहते हैं।

(2) प्रयोग के लिए निक्षेप (Bailment for use)—यदि निक्षेप अपनी किसी

वस्तु को निक्षेप-गृहीता को उसके प्रयोग के लिए देता है तो इसे प्रयोग के लिए निक्षेप कहा जाता है।

उदाहरण—किशन अपना कैमरा मदन को उसके द्वारा 2 माह तक प्रयोग के लिए देता है। यह प्रयोग के लिए निक्षेप कहलायेगा।

(3) सशुल्क निक्षेप (Bailment for Reward)—निक्षेप सुरक्षित रखने के लिए हो या प्रयोग के लिए यदि कोई शुल्क प्राप्त किया जाता है तो इसे सशुल्क निक्षेप कहते हैं।

उदाहरण—यदि बैंक माल सुरक्षित रखने के लिए शुल्क लेता है तो इसे सःशुल्क निक्षेप कहते हैं।

(4) निःशुल्क निक्षेप (Gratuitous Bailment)—यदि निक्षेप के लिए कोई शुल्क प्राप्त नही किया जाता है तो उसे नि.शुल्क निक्षेप कहते है।

उदाहरण– जुगल अपनी वस्तुएँ नवल के पास छोड़ जाता है। नवल अपनी सेवा का कोई शुल्क नही लेता है तो ऐसा निक्षेप नि शुल्क निक्षेप कहलाता है।

(5) किराये पर निक्षेप (Hire)—जब निक्षेपी अपनी कोई वस्तु किराये के प्रतिफल में प्रयोग के लिए देता है तो इसे किराये पर निक्षेप कहा जाता है।

उदाहरण—राजू अपना फोटो कैमरा मोनू को छह महीने के लिए किराये पर देता है इसे हम किराये पर निक्षेप कहेगें।

(6) गिरवी द्वारा निक्षेप (Pledge)—जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से रुपया उधार लेता है। ऋणदाता को जमानत के रूप में कोई वस्तु देता है तो इसे गिरवी का निक्षेप कहेगें।

(7) परिवहन सम्बन्धी निक्षेप (Bailment for transportation)—जब किसी वाहक को वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिए दी जाती है तो इसे परिवहन सम्बन्धी निक्षेप कहा जाता है। रेल्वे अथवा किसी ट्रांसपोर्ट कम्पनी को माल इस उद्देश्य से सौंपा जाता है तो इसे परिवहन निक्षेप कहा जायेगा।

(8) मरम्मत के लिए निक्षेप (Repair)—यदि कोई वस्तु दूसरे व्यक्ति को मरम्मत के लिए हस्तान्तरित कर दी जाती है तो इसे मरम्मत के लिए निक्षेप कहा जायेगा।

निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति
(Termination of Bailment)

निम्नलिखित दशाओं मे निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति होती है :—

(1) निश्चित समय पूरा हो जाने पर—जिस उद्देश्य के लिए निक्षेप किया गया है यदि वह पूरा हो जाता है तो निक्षेप अनुबन्ध भी समाप्त हो जाता है। (धारा 160)

उदाहरण—रामकिशोर अपनी मोटरकार बृजकिशोर को 5 दिन के लिए देता है। 5 दिन के बाद निक्षेप की समाप्ति हो जायेगी।

(2) उद्देश्य के पूरा हो जाने पर—

निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति

1. निश्चित समय पूरा हो जाने पर।
2. उद्देश्य के पूरा हो जाने पर।
3. शर्तों के विरुद्ध कार्य करने पर।
4. किसी एक पक्षकार की मृत्यु होने पर।
5. बिना मूल्य वाले निक्षेप, निक्षेपी की इच्छा पर।

जिस उद्देश्य के लिए निक्षेप किया गया हो उसके पूरा हो जाने पर निक्षेप की समाप्ति हो जायेगी।

(3) शर्तों के विरुद्ध कार्य करने पर—अगर निक्षेप-गृहीता निक्षेपित माल का अनधिकृत उपयोग करता है तब निक्षेपी चाहे तो निक्षेप की समाप्ति कर सकता है।
(धारा 153)

(4) किसी एक पक्षकार की मृत्यु होने पर—निःशुल्क निक्षेप में किसी एक पक्षकार निक्षेपी अथवा निक्षेप-गृहीता की मृत्यु पर निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति हो जाती है। (धारा 162)

(5) बिना मूल्य वाले निक्षेप, निक्षेपी की इच्छा पर—बिना मूल्य वाले निक्षेप में निक्षेपी अपनी इच्छानुसार कभी भी निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति कर सकता है। (धारा 159)

खोई हुई वस्तु पाने वाले के अधिकार और कर्त्तव्य
(Rights and duties of a finder of lost goods)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 71 के अनुसार जब किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति की खोई हुई वस्तु मिल जाती है और वह व्यक्ति उस वस्तु को अपने अधिकार में रख लेता है तो उसका कर्त्तव्य निक्षेप-गृहीता की ही भाँति हो जाता है यह सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई वस्तु पड़ी हुई मिलती है तो वह उसको अपने अधिकार में लेने के लिए बाध्य नहीं है किन्तु यदि वह उसको अपने अधिकार में लेता है तो उसकी स्थिति निक्षेप-गृहीता की हो जाती है।

पड़ा माल पाने वाले के अधिकार
(Rights of a Finder of goods)

(1) माल पर अधिकार—पड़ा हुआ माल पाने वाला उसे अपने पास रखने का अधिकार रखता है यदि माल के वास्तविक स्वामी के अलावा अन्य व्यक्ति उस माल को मांगता है तो वह देने से मना कर सकता है।

पड़ा माल पाने वाले के अधिकार
1. माल पर अधिकार।
2. माल पर ग्रहणाधिकार।
3. घोषित पुरस्कार प्राप्त करने का अधिकार।
4. पड़ा माल को बेचने का अधिकार।

(2) माल पर ग्रहणाधिकार—पड़ा माल पाने वाले का उस माल पर ग्रहणाधिकार होता है। तब तक वह उस माल को रोक कर रख सकता है जब तक माल के सम्बन्ध में किये गये सभी खर्च या क्षतिपूर्ति नहीं मिल जाती है। (धारा 168)

(3) घोषित पुरस्कार प्राप्त करने का अधिकार—यदि माल के स्वामी ने खोई हुई वस्तु के सम्बन्ध में कोई पुरस्कार घोषित किया है तो माल पड़ा पाने वाला ऐसे पुरस्कार के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। जब तक उसे वह पुरस्कार न मिल जाये तब वह उस माल को रोक सकता है।

(4) पड़ा माल को बेचने का अधिकार—यदि उचित प्रमाण के बाद भी मालिक

का पता नहीं चले अथवा माँग करने पर भी वह पाने वाले को उचित व्यय चुकाने से मना करे, तो पड़ा माल पाने वाला उसे बेच सकता है।

सामान्यतः खोये माल के प्राप्तकर्त्ता को माल को बेचने का अधिकार निम्नलिखित परिस्थितियों में मिल जाता है :—

(i) जबकि वस्तु के नष्ट हो जाने अथवा उसके मूल्य का अधिकतर भाग कम हो जाने की सम्भावना है।

(ii) जब पाई हुई वस्तु के सम्बन्ध में पाने वाले के वैध खर्च उसके दो-तिहाई मूल्य तक पहुँच जाते है।

(iii) जब उचित प्रयत्नो के बाद भी पड़े हुए माल के वास्तविक स्वामी का पता नहीं चल सकता हो।

(iv) पड़ा माल का वास्तविक स्वामी ही मिल जाये किन्तु माल के प्राप्तकर्त्ता द्वारा किये गये खर्च को चुकाने से इन्कार करता हो।

माल पाने वाले के कर्त्तव्य
(Duties of finder of goods)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 71 के अनुसार वस्तुओं का पाने वाला एक साधारण निक्षेप-गृहीता की स्थिति में होता है इस कारण उसके वही सब कर्तव्य होते हैं जो कि एक निक्षेप-गृहीता के होते है जो निम्नलिखित हैं :—

(1) प्राप्त माल की उचित देख-भाल करना।
(2) प्राप्त माल का अनुचित उपयोग न करना।
(3) प्राप्त माल को अपने माल में से मिलना।
(4) प्राप्त माल के स्वामी को ढूँढने का उचित परिश्रम करना।
(5) प्राप्त माल को वास्तविक स्वामी को वापस करना।
(6) उचित देखरेख की उपेक्षा करने पर माल के स्वामी की क्षतिपूर्ति करना।

ग्रहणाधिकार
(Lien)

ग्रहणाधिकार का आशय

एक व्यक्ति के माल को जो कि उसके अधिकार में है किन्तु जो दूसरे व्यक्ति का है उस समय तक रोक रखने के अधिकार को ग्रहणाधिकार कहते हैं जब तक उसकी माँगे को पूरा न कर दिया जाय। ग्रहणाधिकार माल पर अधिकार होने से ही उत्पन्न होता है। अनुबन्ध द्वारा नही।

उदाहरण—जगमोहन 10 तोला चांदी भूरामल को आभूषण बनाने के लिए देता है। भूरामल आभूषण बना देता है। जब तक भूरामल को आभूषण बनाने की मजदूरी न चुका दी जाये उसे उस समय तक आभूषण रोकने का अधिकार है। परन्तु जब जगमोहन और भूरामल के बीच इसके विपरीत कोई अनुबन्ध हो गया है, तो ऐसे अनुबन्ध के आधार पर ग्रहणाधिकार समाप्त किया जा सकता है।

ग्रहणाधिकार के लक्षण
(Characteristics of Lien)

ग्रहणाधिकार के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं :—

ग्रहणाधिकार के लक्षण

1. माल पर अधिकार।
2. माल वैधानिक तरीके से प्राप्त हो।
3. उत्पत्ति।
4. केवल माल रखने का अधिकार।
5. ग्रहणाधिकार के अधिकार को हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता है।
6. ग्रहणाधिकार एक सुरक्षात्मक अधिकार है।

(1) माल पर अधिकार- माल पर अधिकार ग्रहणाधिकार रखने वाले का होता है। यदि माल पर अधिकार नही है तो ग्रहणाधिकार नहीं मिल सकता है।

(2) माल वैधानिक तरीके से प्राप्त हो—उत्पीड़न, कपट आदि से यदि माल अधिकार में लिया गया है तो ग्रहणाधिकार उत्पन्न नहीं हो सकता है अर्थात् माल पर अधिकार वैधानिक ढंग से हुआ हो।

(3) उत्पत्ति—ग्रहणाधिकार राजनियम के द्वारा उत्पन्न होता है, अनुबन्ध द्वारा नहीं।

(4) केवल माल रखने का अधिकार—ग्रहणाधिकार में केवल माल को अपने पास रखने का अधिकार होता है उसे अन्य किसी प्रकार से निपटारा करने या बेचने का अधिकार नही है।

(5) ग्रहणाधिकार के अधिकार को हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता है—ग्रहणाधिकार एक व्यक्तिगत अधिकार है वह अपने इस अधिकार को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित नही कर सकता है।

(6) ग्रहणाधिकार एक सुरक्षात्मक अधिकार है—जब तक उसकी माँगों की पूर्ति नही हो जाती वह माल को अपने पास रोक सकता है।

ग्रहणाधिकार के प्रकार
(Kinds of Lien)

ग्रहणाधिकार दो प्रकार के होते हैं :—

(1) साधारण ग्रहणाधिकार (Ordinary Lien)—साधारण ग्रहणाधिकार वह अधिकार है जिसके द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को *लेखे के साधारण शेष के भुगतान* के लिए रोक कर रखा जाता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार केवल निम्नलिखित को ही साधारण ग्रहणाधिकार प्राप्त है :—

(i) **बैंकर्स**—ग्राहकों के खातों मे नकद रुपया विनिमय बिल, चैक आदि पर बैंकर्स का साधारण ग्रहणाधिकार होता है।

(ii) **आढ़तिये**—अपने स्वामी का माल आढ़तिये को उस समय तक रोकने का अधिकार है जब तक वह उनके कमीशन का पूरा भुगतान न कर दे।

(iii) **उच्च न्यायालय के एटॉर्नी**—उच्च न्यायालय के एटॉर्नी अपने मुवक्किल के

क्र. सं.	अन्तर का आधार	विशिष्ट ग्रहणाधिकार	साधारण ग्रहणाधिकार
2.	अधिकार की प्राप्ति	कानून के अनुसार यह अधिकार निम्नलिखित व्यक्तियों को प्राप्त होता है— 1. माल के अदत्त विक्रेता को। 2. माल पड़ा पाने वाला। 3. गिरवी रख लेने वाला। 4. एजेन्ट को।	कानून के अनुसार यह अधिकार निम्नलिखित व्यक्तियों को ही प्राप्त है— 1. बैंकर। 2. आढ़तिये। 3. घाटपाल। 4. बीमा के दलाल। 5. हाईकोर्ट का एटॉर्नी। 6. अन्य व्यक्ति जिन्हें लिखित करार द्वारा यह अधिकार प्राप्त होता है।
3.	प्रयोग	यह किसी वस्तु विशेष के सम्बन्ध में किये गये काम में पारिश्रमिक के लिये ही प्रयोग में लाया जा सकता है।	यह हिसाब की साधारण बाकी के सम्बन्ध में किसी प्राप्त रकम के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

ग्रहणाधिकार की समाप्ति
(Termination of Lien)

ग्रहणाधिकार निम्नलिखित परिस्थितियों में समाप्त हो जाता है :—

(1) जब माल पर अधिकार न रहे तो ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।
(2) ग्रहणाधिकार भुगतान लेने से मना करने पर समाप्त हो जाता है।
(3) आपस में समझौता करके पक्षकार ग्रहणाधिकार समाप्त कर सकते हैं।
(4) ग्रहणाधिकार तब भी समाप्त हो जाता है जब ग्रहणाधिकार रखने वाला पक्षकार किसी अन्य प्रकार से सन्तुष्ट हो जाय।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निक्षेप की परिभाषा दीजिए और निक्षेपी तथा निक्षेप-गृहीता के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व बतलाइए।

   Define Bailment and state the duties of the bailor and bailee.

   (जोधपुर वि. वि. 1979, 1984, राज. वि. वि. 1980)

2. "सामान्य ग्रहणाधिकार" और "विशिष्ट ग्रहणाधिकार" में क्या अन्तर है ? निक्षेप-ग्रहीता के ग्रहणाधिकार को आप किस श्रेणी में रखेंगे ? सामान्य ग्रहणाधिकार के कौन-कौन अधिकारी होते हैं ?
   Distinguish between 'General Lien' and 'Particular Lien' In what category would you place the bailee's lien ? Who are entitled to a general lien ?
   (राज. वि. वि. 1979.व.1981)

3. खोई हुई वस्तु पाने वाले के अधिकार और दायित्व क्या है ? माल पाने वाले का पूर्वाधिकार किस प्रकार का होता है ?
   What are the rights and responsibilities of a finder of the lost goods ? What kind of lien the finder of the goods has ?
   (राज. वि. वि. 1977)
   (गुलाड़िया वि वि. 1955)

4. निक्षेप की परिभाषा दीजिए। निक्षेपी के कर्त्तव्य एव अधिकार स्पष्ट कीजिए।
   Define bailment. state the duties and rights of the bailor.
   (राज. वि. वि. 1978)

5. निःशुल्क निक्षेप क्या है ? ऐसे निक्षेप के सम्बन्ध में क्या नियम हैं ?
   What is gratuitous bailment ? What is the law in regard to such bailment.

6. व्यापक ग्रहणाधिकार तथा विशिष्ट ग्रहणाधिकार के अन्तर को समझाइए। खोए हुए माल को पाने वाले व्यक्ति के अधिकार और कर्त्तव्य क्या हैं ?
   Distinguish between 'General lien and Particular lien.' What are the rights and duties of a finder of goods ?

7. निक्षेपित माल के सम्बन्ध मे निक्षेपी के क्या कर्त्तव्य होते हैं ? जब निक्षेप-ग्रहीता अपना निजी माल निक्षेपी के माल के साथ मिला देता है तो निक्षेप-ग्रहीता के विरुद्ध निक्षेपी के क्या अधिकार होते हैं ?
   What are the duties of the bailor in respect of goods bailed ? What are the rights of the bailor when the bailee Mixes the goods bailed with his own goods ?

8. निक्षेप की परिभाषा दीजिए और इसके लक्षण बताइए यह किसे [illegible] है निक्षेप-ग्रहीता के कर्त्तव्यों को स्पष्ट कीजिए।
   [illegible]

16

गिरवी के अनुबन्ध
(Contracts of Pledge)

विषय-सामग्री—गिरवी की परिभाषा, विशेषताएँ, गिरवी व निक्षेप में अन्तर, गिरवी रखने वाले के अधिकार, गिरवी रखने वाले के कर्त्तव्य, गिरवी रख लेने वाले के अधिकार, गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य, ऐसे व्यक्तियों द्वारा गिरवी रखना जो माल के स्वामी नहीं है, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

परिभाषा
(Definition)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 172 के अनुसार, "किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के पालन के लिए जमानत के रूप में माल के निक्षेप को गिरवी रखना कहते है ।"[1]

गिरवी रखने के अनुबन्ध मे माल रखने वाले को गिरवी रखने वाला (Pawner) और जिसके पास माल रखा जाता है उसे गिरवी रख लेने वाला या गिरवीदार (Pawnee) कहते है ।

उदाहरण—राम अपने रेडियो की जमानत पर श्याम से कुछ रुपया उधार लेता है । यहाँ राम गिरवी रखने वाला और श्याम गिरवी रख लेने वाला गिरवीदार है ।

गिरवी की विशेषताएँ

गिरवी के अनुबन्ध मे निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(1) माल का अस्तित्व में होना—गिरवी के अनुबन्ध के लिए आवश्यक है कि *माल अस्तित्व मे होना चाहिए । यदि माल का उत्पादन या निर्माण नही हुआ है तो ऐसे* माल को गिरवी नही रखा जा सकता है ।

(2) अधिकार का हस्तान्तरण—जब तक माल के अधिकार का हस्तान्तरण नही कर दिया जाता है तब तक गिरवी का अनुबन्ध पूरा नहीं हो सकता है ।

(3) सुपुर्दगी आवश्यक है—गिरवी अनुबन्ध में सुपुर्दगी होना आवश्यक है । सुपुर्दगी चाहे वास्तविक हो या रचनात्मक ।

---

1 "The bailment of goods as security for Payment of debt Performance of a Promise is called pledge." (Sec. 172 Indian Contract Act)

(4) चल सम्पत्तियों की गिरवी—केवल चल सम्पत्तियों को ही गिरवी रखा जा सकता है अचल वस्तुओं को नहीं। कम्पनियों के शेयर, विनिमय साध्य पत्र, सरकारी प्रतिभूतियाँ, दस्तावेज आदि गिरवी की विषय वस्तु हैं।

(5) पुनः सुपुर्दगी से गिरवी का अन्त नहीं होता है—गिरवी रख लेने वाला व्यक्ति यदि गिरवी रखी हुई वस्तु को किसी विशेष कारणवश गिरवी रखने वाले को लौटा देता है तो इस प्रकार की पुनः सुपुर्दगी गिरवी के अनुबन्ध को समाप्त नहीं कर सकती है।

गिरवी की विशेषताएँ

1. माल का अस्तित्व में होना।
2. अधिकार का हस्तान्तरण।
3. सुपुर्दगी आवश्यक है।
4. चल सम्पत्तियों की गिरवी।
5. पुनः सुपुर्दगी से गिरवी का अन्त नही होता है।
6. विक्रय योग्य वस्तु।
7. यह आवश्यक नहीं कि ऋण एवं गिरवी की क्रियाएँ साथ-साथ हों।

(6) विक्रय-योग्य वस्तु—गिरवी रखी जाने वाली वस्तु विक्रय योग्य होनी चाहिये अर्थात् जिस वस्तु का विक्रय नही किया जा सकता, उसे गिरवी भी नही रखा जा सकता।

(7) यह आवश्यक नहीं है कि ऋण व गिरवी को क्रियाएँ साथ-साथ हों—ऐसा हो सकता है कि ऋण पहले दे दिया जाये और गिरवी की वस्तु की सुपुर्दगी बाद में दी जाये अर्थात् यह आवश्यक नही है कि ऋण व गिरवी की क्रियाएँ साथ-साथ हों।

गिरवी व निक्षेप में अन्तर
(Difference between Pledge and Bailment)

क्र सं	अन्तर का आधार	गिरवी	निक्षेप
1.	उद्देश्य	किसी ऋण के चुकाने *अथवा वचन के निष्पादन की जमानत के रूप में* वस्तु को दूसरे व्यक्ति के पास गिरवी रखा जाता है।	माल की सुपुर्दगी साधारणतः *देख-भाल के उद्देश्य से या अन्य किसी उद्देश्य से की* जाती है।
2.	प्रतिफल	इसमें प्रतिफल का होना आवश्यक है।	निःशुल्क निक्षेप में प्रतिफल होना आवश्यक नहीं है।
3.	विक्रय का अधिकार	गिरवी रखने वाले को कुछ *विशेष परिस्थितियों में* माल का विक्रय करने का अधिकार होता है।	इसमें केवल माल पर *अधिकार प्राप्त होता है।* विक्रय का अधिकार नहीं।

क्र सं	अन्तर का आधार	गिरवी	निक्षेप
4.	माल की वापसी	इसमें ऋण का भुगतान करने या वचन के निष्पादन करने के बाद ही गिरवी रखने वाला माल को वापस मांग सकता है।	इसमें निश्चित उद्देश्य के पूरा होने पर या अवधि की समाप्ति पर निक्षेपित माल को निक्षेप-गृहीता निक्षेपी को या उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को लौटा दें।
5.	माल का उपयोग	गिरवी मे माल रख लेने वाले को ऐसे माल के उपयोग करने का अधिकार नहीं होता है।	इसमे निक्षेप-गृहीता पर माल के उपयोग के सम्बन्ध मे कोई प्रतिबन्ध नही है।
6.	माल लौटाने पर अनुबन्ध पर प्रभाव	गिरवी के अन्तर्गत यदि किसी कारणवश माल लौटा भी दिया जाये तो भी गिरवी का अनुबन्ध समाप्त नही होता।	इसके अन्तर्गत यदि माल लौटा दिया जाये तो निक्षेप का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।
7.	माल की सुपुर्दगी	इसमे गिरवी का अनुबन्ध करने के बाद भी माल की सुपुर्दगी दी जा सकती है।	बिना माल सुपुर्दगी किये निक्षेप का अनुबन्ध नही हो सकता है।

गिरवी रखने वाले के अधिकार
(Rights of Pawner)

गिरवी रखने वाले को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है :—

(1) माल पुन: प्राप्त करने का अधिकार—ऋण का भुगतान अथवा वचन पालन कर देने पर गिरवी रखने वाले को वस्तु वापस लेने का अधिकार है।

(2) गिरवी की वस्तु का विक्रय करने पर ऋण से अधिक राशि प्राप्त होने वाली रकम को वापस लेने का अधिकार—यदि गिरवी रखी हुई वस्तु का विक्रय ऋण का भुगतान करने के लिए किया जाता है तो ऐसी स्थिति में ऋण से अधिक जो राशि प्राप्त होती है उसको प्राप्त करने का अधिकार है।

(3) लाभ या वृद्धि को प्राप्त करना—गिरवी रखे हुये माल मे यदि किसी तरह की वृद्धि हो जाती है या लाभ हो जाता है तो उसे प्राप्त करने का अधिकार है।

(4) यदि गिरवी रख लेने वाले की उचित देख-रेख के अभाव मे कोई हानि हो जाती है तो उसे उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है।

गिरवी रखने वाले के कर्त्तव्य
(Duties of Pawner)

(1) गिरवी रखने वाले का कर्त्तव्य है कि वह माल के समस्त दोषों को प्रकट कर दे।

(2) यदि गिरवी रख लेने वाले ने गिरवी रखे माल के सम्बन्ध में कोई साधारण अथवा असाधारण व्यय किये हैं तो गिरवी रखने वाले को वे सभी खर्चे चुका देने चाहिये।

(3) यथा समय अपने ऋण का भुगतान कर देना चाहिये।

गिरवी रख लेने वाले या गिरवीदार के अधिकार
(Rights of Pawnee)

(1) वस्तु रोक रखने का अधिकार—जब तक गिरवी रखने वाला वचन का पालन या ऋण का भुगतान नही कर देता है तब तक बन्धक रखी हुई वस्तु को अपने अधीन रख सकता है। इतना ही नही, बल्कि उन सभी आवश्यक खर्चों के लिए तथा ऋण के ब्याज के लिए भी माल को रोक सकता है।

उदाहरण—भारत, शिवकुमार से अपनी मोटर साईकिल गिरवी रख कर 1000 रु प्राप्त करता है। भारत एक वर्ष बाद भुगतान करता है यहाँ शिवकुमार भारत से 1000 रुपये, ब्याज की राशि तथा रोड़ टेक्स की राशि जो उसने चुकाई है प्राप्त करने का अधिकारी है।

(2) असाधारण व्यय प्राप्त करने का अधिकार- गिरवी रख लेने वाले ने गिरवी रखे गये माल के सम्बन्ध में कोई असाधारण व्यय किये हैं तो वह गिरवी रखने वाले से उसे प्राप्त करने का अधिकारी है।

(3) विशेष ऋण के लिए गिरवी—केवल उसी ऋण के भुगतान तथा वचन के निष्पादन के लिए गिरवी रख लेने वाला वस्तु को रोक सकता है जिसके लिए गिरवी रखी गई है।

(4) शून्यकरणीय अनुबन्ध के अधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना—गिरवी रखे गये माल का अधिकार गिरवी रखने वाले ने, ऐसे अनुबन्ध के आधीन प्राप्त किया है जो उत्पीड़न अन्यथा कथन, कपट अथवा अनुचित प्रभाव द्वारा होने के कारण वास्तविक स्वामी की इच्छा पर शून्यकरणीय है परन्तु गिरवी रखने के समय तक अनुबन्ध निरस्त नही किया गया है तो ऐसी परिस्थिति में बंध

गिरवी रख लेने वाले के अधिकार

1. वस्तु रोक रखने का अधिकार
2. असाधारण व्यय प्राप्त करने का अधिकार।
3. विशेष ऋण के लिए गिरवी।
4. शून्यकरणीय अनुबन्ध के आधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना।
5. गिरवी रखने वाले के त्रुटि करने पर अधिकार।
6. माल के दोषों को प्रकट न करने से यदि कोई हानि हुई है तो उसकी क्षतिपूर्ति का अधिकार।

अधिकार गिरवी रख लेने वाला प्राप्त कर लेता है। उसने सद्भावना से वस्तु ली है तथा गिरवी रखने वाले के अधिकार सम्बन्धी दोष की सूचना उसे नहीं मिली है।

(5) गिरवी रखने वाले के त्रुटि करने पर अधिकार—यदि गिरवी रखने वाला समय पर ऋण का भुगतान या वचन का पालन नहीं करता है तो गिरवी रख लेने वाले को निम्नलिखित अधिकार होंगे —

(i) वह गिरवी रखने वाले पर ऋण के भुगतान के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ii) गिरवी रखने वाले को बिक्री की उचित सूचना देकर गिरवी रखे माल को बेच सकता है। ध्यान रहे कि वह स्वयं गिरवी रखे हुए माल का क्रय नहीं कर सकता है।

(iii) विक्रय से प्राप्त धन ऋण के अनुपात में अपर्याप्त है तो गिरवी रखने वाला शेष धन के लिए उत्तरदायी होता है। यदि विक्रय के रुपये ऋण से अधिक हों तो उसे गिरवी रखने वाले को उतने रुपये वापस करने पड़ेंगे।

(6) माल के दोषों को प्रकट न करने से यदि कोई हानि हुई है तो उसकी क्षतिपूर्ति का अधिकार—यदि माल के दोषों को गिरवी रखने वाले ने प्रकट नहीं किया है और उससे गिरवी रखने वाले व्यक्ति को जो क्षति पहुँचती है तो ऐसी स्थिति में उससे क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

गिरवी रख लेने वाले या गिरवीदार के कर्त्तव्य
(Duties of Pawnee)

गिरवी रख लेने वाले के निम्नलिखित प्रमुख कर्त्तव्य हैं :—

(1) उचित देखभाल करना—उचित देखभाल से आशय यह है कि एक साधारण बुद्धि का कोई मनुष्य वैसी ही परिस्थितियों में समान मूल्य, गुण तथा मात्रा वाली अपनी निजी वस्तु की करता है।

(2) वस्तु को स्वयं न खरीदना—गिरवी रख लेने वाले का एक महत्वपूर्ण यह कर्त्तव्य है कि यदि गिरवी रखने वाला ऋण का भुगतान नहीं करता है तो उसे ऐसी वस्तु स्वयं नहीं खरीदना चाहिये। बाजार में बेचकर उसका उचित मूल्य प्राप्त करना चाहिये।

(3) अतिरिक्त धन-राशि को लौटाना—गिरवी रखे गये माल की विक्रय-राशि ऋण की राशि से अधिक है तो अधिक राशि गिरवी रखने वाले को लौटाने का उसका कर्त्तव्य है।

(4) माल को निजी उपयोग में नहीं लेना—गिरवी रखी गयी वस्तु को अपने उपयोग में नहीं ले यह गिरवी रख लेने वाले का कर्त्तव्य है।

(5) माल वापस करना—जब ऋण का भुगतान गिरवी रखने वाला कर देता है तो गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह गिरवी रखा हुआ माल वापस कर दें।

(6) असाधारण खर्चों के लिए वस्तु को न रोकना—गिरवी रख लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह माल के सम्बन्ध में हुये असाधारण व्ययों के लिए माल को नहीं रोके।

(7) अनुबन्ध की शर्तों के विरुद्ध कार्य न करना—यह भी गिरवी रख लेने वाले का कर्त्तव्य है कि वह अनुबन्ध की शर्तों के विरुद्ध कोई कार्य न करें।

(8) लाभ या वृद्धि को वापस करना—गिरवी रखे हुये माल में यदि वृद्धि या लाभ हो जाता है तो विपरीत अनुबन्ध के अभाव मे यह वृद्धि या लाभ गिरवी रखने वाले को लौटाने का कर्त्तव्य है।

(9) अपने माल में न मिलाना—अपने माल मे गिरवी माल को न मिलाना यह भी गिरवी रख लेने वाले का कर्त्तव्य है।

गिरवी रख लेने वाले या गिरवीदार के कर्त्तव्य

1. उचित देखभाल करना।
2. वस्तु को स्वयं न खरीदना।
3. अतिरिक्त धन राशि को लौटाना।
4. माल को निजी उपयोग मे नहीं लेना।
5. माल वापस करना।
6. असाधारण खर्चों के लिए वस्तु को न रोकना
7. अनुबन्ध की शर्तों के विरुद्ध कार्य न करना।
8. लाभ या वृद्धि को वापस करना।
9. अपने माल मे न मिलाना।
10. दूसरे ऋण के लिए नहीं।

(10) दूसरे ऋण के लिए नहीं—गिरवी रख लेने वाले का यह भी एक कर्त्तव्य है कि वह गिरवी रखे गये माल को केवल उसी ऋण के भुगतान के लिए रोक रखे जिसके लिए वस्तु गिरवी रखी गयी थी।

ऐसे व्यक्तियों द्वारा गिरवी रखना जो माल के स्वामी नहीं हैं
(Pledge of Goods by non owners)

(1) व्यापारिक एजेन्ट द्वारा गिरवी रखना—व्यापारिक एजेन्ट जो माल का स्वामी न होने हुये भी माल को गिरवी रखने का अधिकार रखता है। अगर माल या माल के अधिकार प्रपत्रो को, जो उसके कब्जे में है, गिरवी रखता है तो उसका ही किया हुआ बन्धक उतना वैध होगा मानो वस्तु के मालिक ने स्वयं किया हो हालांकि गिरवी रख लेने वाला सद्भाव से काम करे तथा उसे यह भी मालूम न हो कि गिरवी रखने वाले को गिरवी रखने का अधिकार नही है।

(2) जब गिरवी रखने वाले का माल में सीमित हित है—यदि कोई व्यक्ति ऐसी वस्तु को गिरवी रखता है जिससे सीमित हित है तो गिरवी केवल उसके हित की सीमा तक ही वैध होगी। खोई हुई वस्तु को पाने वाला भी पायी हुई को अपने हित तक गिरवी रख सकता है।

(3) सहस्वामियों द्वारा गिरवी—एक वस्तु के यदि एक से अधिक स्वामी हो और वस्तु किसी एक के अधिकार मे हो तब अगर वह अपने सहस्वामियो की राय से उस वस्तु को बन्धक रखता है तो वह गिरवी मान्य होगा।

(4) **विक्री के बाद विक्रेता या क्रेता द्वारा गिरवी रखना**—वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 30 के अनुसार यदि किसी क्रेता के पास माल विक्रय होने से पहले ही पहुँच चुका हो या विक्रेता जिसके पास विक्रय के बाद भी माल पर अधिकार है कानूनी तरीके से गिरवी रख सकते हैं, बशर्ते कि गिरवी रख लेने वाले ने सद्भावना से कार्य किया है और उसे विक्रय के व्यवहार का कोई ज्ञान नहीं था।

(5) **शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना**—यदि किसी व्यक्ति ने किसी शून्यकरणीय अनुबन्ध के द्वारा माल पर अधिकार प्राप्त किया है तब वह उस माल को बन्धक कर सकता है परन्तु ऐसा अनुबन्ध का प्रतिसंहरण माल गिरवी रखने के पहले न कर दिया हो। यदि गिरवी रख लेने वाले ने सद्भावना से तथा वास्तविक मालिक को न जानते हुये कार्य किया है तो उसका माल पर न्यायपूर्ण अधिकार होगा।

गिरवी तथा ग्रहणाधिकार में अन्तर

क्र. सं.	अन्तर का आधार	गिरवी	ग्रहणाधिकार
1.	उत्पत्ति	गिरवी अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न होता है।	ग्रहणाधिकार की उत्पत्ति राजनियम द्वारा उत्पन्न होती है।
2.	माल के विक्रय का अधिकार	गिरवी में किसी विशेष दशाओं में गिरवी रख लेने वाले या गिरवीदार को माल के विक्रय का अधिकार होता है।	ग्रहणाधिकार के अन्तर्गत माल के विक्रय का अधिकार नहीं होता।
3.	उद्देश्य	गिरवी का उद्देश्य किसी ऋण का भुगतान या किसी वचन के निष्पादन के लिए माल की जमानत के रूप में देना होता है।	ग्रहणाधिकार का उद्देश्य माँग को पूरा करने के समय तक माल को अपने अधिकार में रखना है।
4.	समाप्ति	माल के वास्तकि स्वामी को माल वापस कर देने पर सदैव गिरवी समाप्त हो जाय यह आवश्यक नहीं है।	माल के अधिकार की समाप्ति के साथ ही ग्रहणाधिकार का अन्त हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गिरवी से आप क्या समझते हैं गिरवी व निक्षेप में क्या अन्तर है ? वैधानिक गिरवी कौन-कौन रख सकता है ?

   What do you understand by pledge ? Explain what is the difference between pledge and bailment ? Who can make a valid pledge ?

2. गिरवी की परिभाषा दीजिये। गिरवी रखने वाले और गिरवी रख लेने वाले के अधिकार और कर्त्तव्य बतलाइये ?

   Define 'pledge' state the rights and duties of the pawner and pawnee.

3. गिरवी तथा ग्रहणाधिकार में क्या अन्तर है ? गिरवी रख लेने वाले के अधिकारों और कर्त्तव्यों की संक्षेप में विवेचना कीजिये।

   Distinguish between pledge and lien state briefly the rights and duties of the pawnee.

17

एजेन्सी अभिकरण सम्बन्धी अनुबन्ध
(Contracts of Agency)

विषय-सामग्री—एजेन्सी की परिभाषा, एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है, कौन व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है? क्या एजेन्सी के अनुबन्ध के लिए प्रतिफल अनिवार्य है? एजेन्सी का निर्माण, एजेन्ट अभिकर्त्ता का नियोक्ता के प्रति कर्तव्य, नियोक्ता के विरुद्ध एजेन्ट के अधिकार, एजेन्ट के प्रति नियोक्ता के कर्तव्य एवं अधिकार, तीसरे पक्षकारों के साथ अनुबन्धों पर एजेन्सी के प्रभाव, एजेन्ट के अधिकार का विस्तार, उप-एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट, अन्तर, पुष्टिकरण का सिद्धान्त, प्रभाव, एजेन्सी की समाप्ति, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

वास्तविक जीवन में यह असम्भव है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सभी कार्य स्वयं कर सके इसलिए यह अधिनियम उसको अपने वैध कार्यों को पूरा करने में दूसरो द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करने की आज्ञा देता है तथा ऐसे प्रतिनिधि द्वारा किये गये कार्यों का वही प्रभाव होता है, जो उसके नियोक्ता द्वारा करने पर होता । इस अधिनियम के अनुसार ऐसे नियुक्त किये हुए व्यक्ति को एजेन्ट कहते हैं ।

एजेन्ट की परिभाषा
(Definition of Agent)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 182 के अनुसार, "एजेन्ट वह व्यक्ति है, जो अपने नियोक्ता के किसी काम को करने या अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहारों में उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए रखा गया हैं ।"[1]

अंग्रेजी अधिनियम के अनुसार, "एजेन्सी का अनुबन्ध ऐसा अनुबन्ध है, जिस में किसी एक व्यक्ति का, दूसरे व्यक्ति के द्वारा तीसरे व्यक्तियों के साथ वैधानिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है ।"[2]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नियोक्ता द्वारा अपना एजेन्ट या अभिकर्त्ता नियुक्त करने के परिणामस्वरूप उनके मध्य जो एक कानूनी सम्बन्ध उत्पन्न हो जाता है, इसी कानूनी या वैधानिक सम्बन्ध को एजेन्सी अभिकरण कहते हैं ।

---

1. "An agent is Person employed to do any act for another or to represent an other in dealing with third Person" (Sec. 182)

2 "A Contract of Agency is the employment of one person by another is order to bring the Latter in to Legal relationship with a third Person." (English Law)

महेशचन्द्र वसु बनाम राधाकिशोर भट्टाचार्यजी के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने एजेन्सी को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एजेन्सी का सार यह है कि नियोक्ता अपने एजेन्ट को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह नियोक्ता का अन्य व्यक्तियों के साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करें।"

एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है ? (Who may employed an agent)— भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 183 के अनुसार, "एजेन्ट प्रत्येक व्यक्ति नियुक्त कर सकता है यदि वह राजनियम के अनुसार वयस्क है और स्वस्थ मस्तिष्क का है। दूसरे शब्दों में, अवयस्क तथा अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति एजेन्ट की नियुक्ति कर सकता है।

न्यायालय यह मानकर चलता है कि अवयस्क तथा अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों में एजेन्ट नियुक्त करने की सूझ-बूझ नहीं होती है। एजेन्ट का जो कार्य है वह नियोक्ता का कार्य है। अतएव ऐसा व्यक्ति तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जबकि उसमे अनुबन्ध करने की क्षमता हो। अतः यह आवश्यक है कि नियोक्ता में अनुबंध करने की क्षमता होनी चाहिये।

एजेन्ट कौन हो सकता है ? (Who may be an agent) (धारा 184)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 184 के अनुसार, "जहाँ तक नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकार के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की बात है कोई भी व्यक्ति एजेन्ट हो सकता है परन्तु वह व्यक्ति जो वयस्क नही हुआ है तथा सही दिमाग का नही है, इस अर्थ मे एजेन्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह अपने नियोक्ता तथा तीसरे पक्षकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करके नियोक्ता के प्रति ठीक उसी प्रकार दायी हो जिस प्रकार उसका नियोक्ता उसके कार्यों के लिए तीसरे व्यक्ति के प्रति दायी है।

साधारण शब्दों में कोई भी व्यक्ति चाहे वह वयस्क आयु तथा स्वस्थ मस्तिष्क का हो अथवा नही एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है। किन्तु जिस व्यक्ति में अनुबन्ध करने की योग्यता नहीं ऐसे एजेन्ट में अपने नियोक्ता व तीसरे पक्षकारों के मध्य अनुबन्ध स्थापित करने की क्षमता होती है। परन्तु ऐसा एजेन्ट अन्य एजेन्टों की भांति अपने नियोक्ता के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता। ऐसे कार्यों के लिए नियोक्ता को ही उत्तरदायी होना होगा।

एजेन्सी के निर्माण में प्रतिफल आवश्यक नहीं है (No consideration is necessary to Create an agency)—(धारा 185) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 185 के अनुसार, एजेन्सी के निर्माण के लिए प्रतिफल का होना कोई आवश्यक नही है।" यह आवश्यक नही है कि एजेन्ट को अपनी सेवाओं के बदले कोई पारिश्रमिक मिले। एजेन्ट पारिश्रमिक प्राप्त करे या नहीं उनके अधिकार व कर्त्तव्य समान रहते हैं उनमें कोई अन्तर नही पड़ता। इस प्रकार एजेन्सी मे प्रतिफल हो अथवा नहीं नियोक्ता तथा तीसरे पक्षकारों के बीच सम्बन्धों में कोई अन्तर नही पड़ता है।

एजेन्सी की स्थापना
(Creation of Agency)

निम्नलिखित प्रमुख विधियों द्वारा एजेन्सी की स्थापना हो सकती है :—

एजेन्सी की स्थापना

1. अभिव्यक्त अधिकार द्वारा।
2. गर्भित अधिकार द्वारा।
3. प्रदर्शन या गत्यावरोध द्वारा।
   (i) नियोक्ता द्वारा एजेन्ट स्वीकार करना।
   (ii) अधिक व्यापक अधिकारों को स्वीकार करना।
   (iii) पहले एजेन्ट था।
4. पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी।
5. आवश्यकता द्वारा एजेन्सी की स्थापना।

(1) अभिव्यक्त अधिकार द्वारा (By express Authority)—जब कोई व्यक्ति लिखकर या कह कर किसी दूसरे व्यक्ति को अपना कार्य करने का अधिकार दे तो एजेन्सी स्पष्ट नियुक्ति द्वारा मानी जाती है।

उदाहरण- रवि, रोशन से एक लिखित अनुबन्ध करता है कि रोशन को रवि की ओर से वस्तुओं का क्रय-विक्रय तथा लेन-देन का अधिकार है तो इसे हम स्पष्ट अधिकार द्वारा स्थापित एजेन्सी कहेंगे।

(2) गर्भित अधिकार द्वारा (By implied Authority)—जब किसी व्यक्ति की नियुक्ति अभिव्यक्त अधिकार प्रदान करके एजेन्ट के रूप में न हुई हो, परन्तु पक्षकारों के आचरण अथवा मामले की परिस्थितियों को देखने से एजेन्सी का होना प्रतीत हो तो ऐसी एजेन्सी को गर्भित अधिकार द्वारा उत्पन्न एजेन्सी कहा जायेगा।

उदाहरण—जयपुर निवासी गोविन्द की जोधपुर में एक दुकान है। दुकान का प्रबन्धक सन्तोष दुकान के लिए सन्त कुमार से माल खरीदता है। खरीदे हुए माल का मूल्य सदैव गोविन्द द्वारा जुटाये गये धन में से चुकाया जाता था यहाँ सन्तोष के आचरण के कारण गोविन्द को एजेन्ट माना जायेगा।

(3) प्रदर्शन या गत्यावरोध द्वारा (By Estoppel or Holding out)—जब कोई व्यक्ति अपने शब्दों अथवा आचरण द्वारा किसी व्यक्ति को यह विश्वास कर लेने देता है कि कोई विशेष व्यक्ति उसका एजेन्ट है, जबकि वास्तव में वह व्यक्ति उसका एजेन्ट नहीं होता है और वह दूसरा व्यक्ति इस बात पर विश्वास करके उस विशेष व्यक्ति के साथ अनुबन्ध कर लेता है तो इसे प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी कहा जायेगा।

वाट्टेइन बनाम फेनविक (Wattean V/s Feuwick)—का मामला महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में एक होटल के मैनेजर को नियोक्ता की ओर से कुछ विशेष वस्तुयें ही खरीदने का अधिकार था। मैनेजर ने कुछ अन्य वस्तुयें खरीदी यद्यपि उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं था, स्वामी को उन अन्य वस्तुओं के लिए भी उत्तरदायी ठहराया गया क्योंकि उसने अपने व्यवहार से यह माना कि प्रबन्धक को प्रत्येक वस्तु जो होटल सम्बन्धित है, खरीदने का अधिकार था। प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी निम्नलिखित तीन तरह से स्थापित हो सकती है।—

(i) नियोक्ता द्वारा एजेन्ट स्वीकार करना—एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपना एजेन्ट मान सकता है। यद्यपि वह दूसरा व्यक्ति उसका एजेन्ट नही है और न कभी रहा है।

उदाहरण—"अरविन्द, बिन्नू से (चन्द्रमणि की उपस्थिति मे) चन्द्रमणि के लिए 100 मन चावल मांगता है चन्द्रमणि ने इसको सुना और इसका विरोध नही किया। बिन्नू यह विश्वास करके कि अरविन्द, चन्द्रमणि का एजेन्ट है 100 मन चावल दे देता है। ऐसी स्थिति मे चन्द्रमणि को यह मानना पड़ेगा कि अरविन्द उसका एजेन्ट है और उसे अरविन्द के कार्यों के लिए बिन्नू के प्रति बाध्य होना पडेगा।

(ii) अधिक व्यापक अधिकारों को स्वीकार करना—जब कोई व्यक्ति अपने एजेन्ट के उससे अधिक व्यापक अधिकारों को स्वीकार कर ले कि जितने अधिकार उसने उसे पहले दिये थे।

उदाहरण—वाटोउ बनाम फेनावीक (Watteau V/s Fenuick)—में मामले के अनुसार एक पब्लिक हाउस के प्रबन्धक को केवल शराब खरीदने का अधिकार दिया गया था परन्तु प्रबन्धक ने कुछ सिगार भी खरीद लिये जिसे खरीदने का उसे अधिकार नही था। मालिक के आचरण से यह माना गया कि प्रबन्धक को पब्लिक हाउस से सम्बन्धित सभी वस्तुओं के खरीदने का अधिकार था इसलिए मालिक को सिगार की खरीद के लिए उत्तरदायी ठहराया गया।

(iii) पहले एजेन्ट था—जब कोई व्यक्ति पहले कभी एजेन्ट रह चुका हो, परन्तु वास्तव मे अब एजेन्ट न हो, पर फिर भी नियोक्ता यह मान ले कि वह व्यक्ति अब भी उसके लिए एजेन्ट का कार्य करता है।

उदाहरण—विनय, विशारद का एजेन्ट था। हमेशा, महावीर की दुकान का माल खरीदता था। कुछ समय पश्चात् विशारद को इस कार्य से मुक्त कर देता है किन्तु उसने इस बात की सूचना विनय को नही दी। अतः विनय ने यदि विशारद के साथ उसे महावीर का एजेन्ट मानते हुए कोई अनुबन्ध किया तो महावीर उसके लिए उत्तरदायी है।

(4) पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी (By Ratification)—पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी उस समय उत्पन्न होती है जब एक व्यक्ति द्वारा दूसरे की ओर से बिना उसकी जानकारी अथवा अधिकार के कोई कार्य किया जाता है, तो इस कार्य की पुष्टि करना अथवा अस्वीकार करना उस व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है जिसकी ओर से कार्य किया गया है। जब दूसरा व्यक्ति पुष्टि कर देता है तो यह माना जाता है कि उस व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की ओर से ऐसा अनुबन्ध करने का अधिकार दिया गया था और नियोक्ता उस अनुबन्ध के लिए बाध्य होगा।

उदाहरण—नीरज ने धीरज के एजेन्ट के रूप मे किन्तु धीरज से बिना अधिकार प्राप्त किये पंकज से एक अनुबन्ध कर लिया। अनुबन्ध हो जाने के पश्चात् धीरज ने इसका पुष्टिकरण कर दिया। यह पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी का उदाहरण है।

(5) आवश्यकता द्वारा एजेन्सी की स्थापना (By necessity)—कभी-कभी एजेन्सी की स्थापना आवश्यकता के परिणामस्वरूप भी हो जाती है। जब एक व्यक्ति

विवश होकर, दूसरे व्यक्ति की ओर से, उस दूसरे व्यक्ति से बिना स्पष्ट अधिकार प्राप्त किये कार्य करे तो ऐसी एजेन्सी आवश्यकता द्वारा एजेन्सी कहलाती है ,

उदाहरण—नार्दर्न रेल्वे बनाम स्वाफील्ड (Northern Railway V/s Swaffield)-के मामले में एक घोड़े को रेलगाड़ी द्वारा भेजा गया। स्वामी ने घोड़े की सुपुर्दगी निर्दिष्ट स्टेशन पर कुछ दिनों तक नहीं ली और घोड़े की आवश्यकता वश रेल्वे कम्पनी को खिलाना पड़ा। निर्णय दिया गया कि रेल्वे कम्पनी आवश्यकता द्वारा एजेन्ट थी।

पति-पत्नी की स्थिति (Position of husband and wife)—सामान्य नियम यह है कि पत्नी पति की एजेन्ट नहीं है और इसी प्रकार पति भी अपनी पत्नी का एजेन्ट नहीं है किन्तु इन दोनों में कोई भी व्यक्ति स्पष्ट करार द्वारा, प्रदर्शन द्वारा अथवा पुष्टिकरण द्वारा एजेन्ट हो सकता है। सामान्यतः पति-पत्नी की निम्नलिखित दो स्थितियाँ हो सकती हैं—

(i) जब वे साथ-साथ रहते हों—जब पत्नी अपने पति के साथ रहती है तो उसे घरेलू उपयोग की सभी अनिवार्य वस्तुएँ पति के नाम से उधार खरीदने का अधिकार होता है।

(ii) जब वे अलग-अलग रहते हों—यदि पति अपनी पत्नी को अनुचित रूप से अपने से अलग कर देता है तो पत्नी अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने पति की साख गिरवी रख सकती है।

एजेन्ट के नियोक्ता के प्रति कर्त्तव्य
(Agent's Duties toward Principal)

एजेन्ट के नियोक्ता के प्रति कर्त्तव्य-
1. आदेशानुसार कार्य करना।
2. उचित चतुराई व परिश्रम से काम करना।
3. हिसाब रखना तथा प्रस्तुत करना।
4. कठिनाई की दशा मे नियोक्ता को सूचित करना।
5 अपने हिसाब में व्यवहार न करना।
6. गुप्त लाभों को प्रकट करना।
7. नियोक्ता के हिसाब मे प्राप्त धन नियोक्ता को देना।
8. प्राप्त सूचना को नियोक्ता के विरुद्ध प्रयोग नहीं करना।
9 स्वामित्व स्थापित नहीं करना।
10. अधिकारों का हस्तान्तरण नहीं करना चाहिए।
11. हितों के टकराव से बचना।
12. नियोक्ता के पागल हो जाने या मृत्यु होने की स्थिति मे उसके हितों की रक्षा करना।

(1) आदेशानुसार कार्य करना (To conduct the business according to the instructions)—एजेन्ट का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि एजेन्ट अपने नियोक्ता के आदेशानुसार ही एजेन्सी के व्यवसाय का संचालन करे। यदि एजेन्ट नियोक्ता के आदेश या व्यापार की रीतियों के विपरीत कार्य करता है और उसके परिणामस्वरूप कुछ हानि होती है, तो एजेन्ट हानि के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—मोहम्मद ने अपने एजेन्ट असलम को निर्देश दिया कि माल को खरीद कर गोदाम में रखवा दे तथा उसका बीमा करादे। असलम ने माल रखवा दिया लेकिन बीमा नहीं कराया। गोदाम मे आग लगने से माल नष्ट हो गया। क्षतिपूर्ति के लिए असलम उत्तरदायी है।

(2) उचित चतुराई व परिश्रम से काम करना (To conduct the business with reasonable skill and diligence)—एजेन्ट को अपनी एजेन्सी का कार्य उतनी ही कुशलता से करना चाहिये जितनी से उसी प्रकार के व्यापार में लगे हुए व्यक्ति साधारणतः चलाते हैं। एजेन्ट की लापरवाही में या चतुराई के अभाव में नियोक्ता को हुई प्रत्यक्ष हानि को पूरा करने के लिए एजेन्ट ही उत्तरदायी होता है किन्तु यदि ऐसी हानि अप्रत्यक्ष और दूरवर्ती हो तो एजेन्ट उसकी पूर्ति करने के लिए बाध्य नही है।

उदाहरण—राम एक विक्रय एजेन्ट है जिसको माल उधार बेचने का अधिकार है। श्याम को आर्थिक स्थिति की बिना उचित पूछताछ किये ही माल उधार बेच देता है। विक्रय करने के समय ही श्याम दिवालिया था। तो ऐसी स्थिति में नियोक्ता को पहुँची हानि की क्षतिपूर्ति एजेन्ट को करनी होगी।

(3) हिसाब रखना तथा प्रस्तुत करना (213)—नियोक्ता द्वारा माँग करने पर एजेन्ट उचित हिसाब देने के लिए बाध्य है इसलिए एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यवहार का ठीक-ठीक हिसाब रखे और जब भी नियोक्ता हिसाब देखना चाहे उसे दिखाने के लिए तैयार रहना चाहिये। नियोक्ता और एजेन्ट के बीच निक्षेपी और निक्षेप-गृहीता का सम्बन्ध होता है। एजेन्ट नियोक्ता का ट्रस्टी होता है।

(4) कठिनाई की दशा में नियोक्ता को सूचित करना (214)—एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि वह कठिनाई की दशा में नियोक्ता को सूचना दे और उसका आवश्यक आदेश प्राप्त कर कार्य करे। यदि एजेन्ट को नियोक्ता को सूचित करने का अवसर प्राप्त न हो तो ऐसी स्थिति में वह साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति के समान सावधानी रखने पर निर्दोष समझा जा सकता है।

(5) अपने हिसाब में व्यवहार न करना (215)—एजेन्ट को अपने नियोक्ता की सहमति के बिना तथा उसे ऐसी समस्त महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों की जानकारी कराये बिना जिनका एजेन्ट को ज्ञान है, कार्य नही करना चाहिये। एजेन्ट के ऐसा न करने पर नियोक्ता को ऐसा व्यवहार निरस्त करने का अधिकार है, यदि मामले से यह पता चलता है कि एजेन्ट द्वारा नियोक्ता से कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य बेईमानी से छिपाया है या इससे नियोक्ता को कोई हानि पहुँचती है।

उदाहरण—ललित किशोर अपने एजेन्ट श्याम सुन्दर को अपने लिए एक मकान खरीदने का आदेश देता है। एजेन्ट ललित किशोर को कह देता है कि यह मकान नही खरीदा जा सकता है और एजेन्ट उस मकान को स्वयं खरीद लेता है। ललित किशोर को पता लग जाने पर कि मकान श्याम सुन्दर ने खरीद लिया है वह एजेन्ट को विवश कर सकता है कि वह उस मकान को ललित किशोर के लिए उस मूल्य पर बेच दे जो उसने स्वयं चुकाया है।

(6) गुप्त लाभों को प्रकट करना (216)—यदि कोई एजेन्ट बिना नियोक्ता की जानकारी के अपने हिसाब में कोई व्यवहार करता है और उससे कुछ लाभ प्राप्त होता है तो उसे गुप्त लाभ को नियोक्ता को प्रकट कर देना चाहिए। ऐसा लाभ प्राप्त करने का अधिकार नियोक्ता को है।

(7) नियोक्ता के हिसाब में प्राप्त धन नियोक्ता को देना (217 तथा 218)- नियोक्ता की ओर से एजेन्ट कार्य करता है अतः एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि नियोक्ता हिसाब में उसे जो भी धन मिले उसे नियोक्ता को दे दे। किन्तु एजेन्ट प्राप्त धन में धारा 217 के अनुसार निम्नलिखित राशियाँ रोक सकता है।

(i) यदि नियोक्ता को एजेन्ट ने कोई धन राशि अग्रिम के रूप में दे दी हो।

(ii) व्यवसाय के सचालन में एजेन्ट ने जो उचित राशि व्यय की हो।

(iii) एजेन्ट के रूप मे कार्य करने का पारिश्रमिक।

(8) प्राप्त सूचना को नियोक्ता के विरुद्ध प्रयोग नहीं करना—एजेन्सी के समय एजेन्ट ने कोई सूचना प्राप्त की है तो एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि उस सूचना का प्रयोग नियोक्ता के हितो के विरुद्ध नही करें।

(9) स्वामित्व स्थापित नहीं करना—यदि एजेन्ट ऐजेन्सी के व्यवहार में अपने नियोक्ता का कोई माल या सम्पत्ति प्राप्त करता है तो उसका कर्त्तव्य है कि वह उस माल पर या सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व स्थापित न करें।

(10) अधिकारों का हस्तान्तरण नहीं करना चाहिए—एजेन्ट को एजेन्सी का कार्य कुछ अपवादों को छोड़कर स्वयं ही करना चाहिए और अपना अधिकार किसी अन्य को हस्तान्तरित नहीं करना चाहिए।

(11) हितों के टकराव से बचना—एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसा कोई कार्य नही करे जिससे उसके व्यक्तिगत हितों और नियोक्ता के प्रति उसके कर्त्तव्यों में टकराव उत्पन्न हो।

(12) नियोक्ता के पागल हो जाने या मृत्यु होने की स्थिति में उसके हितों की रक्षा करना—यदि नियोक्ता के पागल हो जाने या मृत्यु हो जाने से एजेन्सी समाप्त हो जाती है तो ऐसी स्थिति मे एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि वह उसको सौपे गये हितों की रक्षा के लिए अपने नियोक्ता के उत्तराधिकारियों की ओर से सभी उचित कदम उठाये।

नियोक्ता के विरुद्ध एजेन्ट के अधिकार
(Rights of an Agent against the Principal)

(1) प्राप्त धन रोक रखने का अधिकार (धारा 217)—नियोक्ता के हिसाब मे प्राप्त की हुई राशि मे से एजेन्ट निम्नलिखित रोक सकता है—

(i) व्यापार को चलाने के लिए यदि कोई राशि अपने नियोक्ता को अग्रिम रूप मे दी हो।

(ii) व्यवसाय के संचालन मे जो राशि उचित रूप से एजेन्ट ने खर्च की हो।

(iii) एजेन्ट के रूप में कार्य करने का प्राप्त पारिश्रमिक।

(2) पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार (धारा 219-220)—एजेन्ट एजेन्सी के कार्य की पूर्ति के पश्चात् ही पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है। यदि इसके विपरीत कोई करार नही हुआ हो किन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में एजेन्ट को पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार नही होगा।

(i) यदि एजेन्ट एजेन्सी के व्यापार में दुराचरण के लिए दोषी है, तो वह व्यापार के उस भाग के सम्बन्ध में जो उसके दुराचरण से किया गया है कोई पारिश्रमिक पाने का अधिकारी नहीं है।

(ii) जब एजेन्सी के कार्य के लिए प्रतिफल नहीं दिया जाना हो।

(iii) एजेन्सी का कार्य एजेन्ट ने निर्धारित शर्तों के अनुसार नहीं किया हो।

नियोक्ता के विरुद्ध एजेन्ट के अधिकार

1. प्राप्त धन रोक रखने का अधिकार।
2. पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार।
3. एजेन्ट का ग्रहणाधिकार।
4. क्षतिपूर्ति करवाने का अधिकार।
5. माल को रास्ते में रोकना।
6. नियोक्ता की उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव में एजेन्ट का अधिकार।
7. तीसरे पक्षकार को दी हुई क्षतिपूर्ति राशि को प्राप्त करना।
8. निश्चित समय से पूर्व एजेन्सी समाप्त करने पर क्षतिपूर्ति।

(3) एजेन्ट का ग्रहणाधिकार (221)—किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एजेन्ट अपने नियोक्ता की रखी हुई वस्तुओं, कागजात तथा अन्य अचल तथा चल आदि उस समय तक रोक रखने का अधिकारी है, जब तक कि उसे उसके सम्बन्ध में प्राप्त धन का भुगतान न कर दिया जावे अथवा हिसाब न कर दिया जावे।

(4) क्षतिपूर्ति करवाने का अधिकार—एजेन्ट अपने अधिकारों के अन्तर्गत किये गये समस्त वैध कार्यों के परिणामों के विरुद्ध नियोक्ता द्वारा क्षतिपूर्ति का अधिकारी है, अवैध कार्यों को करने से उत्पन्न हानि के सम्बन्ध में नियोक्ता क्षतिपूर्ति नहीं करेगा।

उदाहरण—जयपुर के आनन्द के आदेशानुसार जोधपुर का बृजेश, कमलेश के साथ उसको कुछ माल देने का अनुबन्ध करता है। आनन्द, बृजेश को उक्त माल नहीं भेजता है। इसलिए कमलेश ने वचन भंग करने के कारण बृजेश पर वाद किया। इस बात की सूचना बृजेश ने आनन्द को दी। इस पर आनन्द को मुकदमे की पैरवी करने का अधिकार दिया। इस कार्य के लिए बृजेश को व्यय करना पड़ा तथा हर्जाना भी देना पड़ा। ऐसी स्थिति में व्यय और हर्जाना चुकाने के लिए आनन्द बाध्य है।

(5) माल को रास्ते में रोकना—माल को रास्ते मे रोकने का अधिकार निम्नलिखित दो दशाओं में एजेन्ट को प्राप्त होता है—

(i) यदि नियोक्ता के लिए अपने रुपयों में ही माल खरीदा है अथवा

(ii) अपनी जमानत पर ही माल खरीदा है।

इन दोनों परिस्थितियों में एजेन्ट की स्थिति प्रदत्त विक्रेता के समान होती है और इसलिए उसको वह माल मार्ग मे रोकने का अधिकार हो जाता है जो कि उसने एक वाहक को अपने नियोक्ता के पास पहुँचाने के लिए दे दिया है।

(6) नियोक्ता की उपेक्षा व चतुराई के अभाव में एजेन्ट का अधिकार—एजेन्ट को नियोक्ता से उसकी उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव के कारण पहुँची हुई हानि की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार है।

उदाहरण—सुदर्शन एक घर बनाने मे सुधीर को ईंट रखने वाले के रूप में नियुक्त करता है और सुदर्शन स्वय मकान तैयार करना है। मकान चतुराई से न बनाने के कारण सुधीर को चोट लग जाती है तो यहाँ सुदर्शन सुधीर की क्षतिपूर्ति करने हेतु उत्तरदायी है।

(7) तीसरे पक्षकारों को दी हुई क्षतिपूर्ति की राशि को प्राप्त करना—जब एजेन्ट अपने अधिकार-क्षेत्र मे नियोक्ता के लिए सद्भाव से कार्य करता है और ऐसे कार्य से किसी तीसरे पक्षकार को क्षति पहुँचती है और एजेन्ट को उसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है तो नियोक्ता उसकी पूर्ति करेगा।

(8) निर्धारित समय से पूर्व एजेन्सी समाप्त करने पर क्षतिपूर्ति—यदि पर्याप्त कारणों के अभाव में नियोक्ता किसी एजेन्ट को हटा देता है तो एजेन्ट क्षतिपूर्ति का अधिकारी है।

एजेन्ट के प्रति नियोक्ता के कर्त्तव्य
(Duties of Principal towards Agent)

एजेन्ट के प्रति नियोक्ता के निम्नलिखित कर्त्तव्य है —

(1) एजेन्ट को उसका पारिश्रमिक तथा अन्य व्यय देने का कर्त्तव्य।

(2) असावधानी तथा लापरवाही से कार्य करने पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करना।

(3) उचित क्षतिपूर्ति करना।

(4) नियोक्ता की उपेक्षा से उत्पन्न हानि की पूर्ति करना।

(5) सद्भाव से किये गये कार्यों से उत्पन्न क्षति की पूर्ति करना।

(छात्रों को इनका विस्तार से वर्णन एजेन्ट के अधिकारों को ध्यान में रखकर देना चाहिए।)

एजेन्ट के विरुद्ध नियोक्ता के अधिकार
(Rights of Principal against agent)

नियोक्ता के एजेन्ट के विरुद्ध निम्नलिखित अधिकार हैं—

(1) आदेश के अनुसार कार्य करवाना।

(2) असावधानी तथा लापरवाही से कार्य करने पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करना।

(3) हिसाब प्राप्त करना।

(4) गुप्त लाभों को प्राप्त करना।

(5) अपनी ओर से एजेन्ट ने जो धन राशि प्राप्त की उसको वसूल करना।

(छात्रों को एजेन्ट के कर्त्तव्यों को ध्यान में रखकर विस्तार से वर्णन करना चाहिए।)

तीसरे पक्षकारों के साथ अनुबन्धों पर एजेन्सी के प्रभाव
(Effects of Agency on Contract with third Persons)

I. तीसरे पक्षकारों के प्रति नियोक्ता का दायित्व
(Responsibility of Principal towards third Parties)

तीसरे पक्षकार के प्रति नियोक्ता के अग्रलिखित दायित्व होते हैं :—

तीसरे पक्षकारों के प्रति नियोक्ता का दायित्व

1. एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार के अधीन किये गये कार्य।
2. एजेन्ट के अपने अधिकार से बाहर कार्य करने पर नियोक्ता का दायित्व।
3. एजेन्ट का अंशतः अनधिकृत कार्य पृथक् करने योग्य न होने पर नियोक्ता का दायित्व।
4. एजेन्ट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर नियोक्ता का उत्तरदायित्व।
5. एजेन्ट को दी गई सूचना का प्रभाव।
6. एजेन्ट के कपट अथवा अन्यथा कथन के लिए दायित्व।
7. सकट काल में कार्यों के लिए दायित्व।
8. दण्डनीय अपराध के लिए दायित्व।
9. एजेन्ट की स्वीकृति के लिए दायित्व।
10. एजेन्ट के गलत कार्यों के लिए दायित्व।

(1) एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार के अधीन किये गये कार्य—एजेन्ट द्वारा किये गये अनुबन्ध और कार्यों से उत्पन्न दायित्व उसी प्रकार प्रवर्तित कराये जा सकते है और उनके वे ही परिणाम होंगे जैसे कि अनुबन्ध तथा कार्य नियोक्ता द्वारा स्वय ही किये गये है। यदि कोई तीसरा पक्षकार अपने दायित्व से एजेन्ट के प्रति मुक्त हो जाता है तो उसका प्रभाव यह होता है कि नियोक्ता के प्रति भी इसका दायित्व समाप्त हो जाता है।

(2) एजेन्ट के अपने अधिकार से बाहर कार्य करने पर नियोक्ता का दायित्व—जब कोई एजेन्ट अपने अधिकार से बाहर काम करता है और ऐसे कार्य को अधिकृत कार्यों से अलग किया जा सकता है। तब स्वामी उसी कार्य के निष्पादन के लिए उत्तरदायी होगा जो कि एजेन्ट की अधिकार सीमा में था। तीसरा पक्षकार उस अतिरिक्त अनधिकृत कार्य के लिए नियोक्ता को उत्तरदायी नही ठहरा सकता है।.

उदाहरण—राम एक जहाज तथा उस पर लदे हुए माल दोनों का स्वामी है। वह रमेश को 20,000 रुपये में जहाज का सामुद्रिक बीमा का अधिकार देता है रमेश जहाज का सामुद्रिक बीमा करवा लेता है साथ ही वह 20,000 रुपये के माल का भी बीमा कराता है। राम जहाज के बीमे का प्रीमियम देने के लिए ही उत्तरदायी है। माल की पॉलिसी के लिए नही है।

(3) एजेन्ट का अंशत अनधिकृत कार्य पृथक् करने योग्य न होने पर नियोक्ता का दायित्व—जब एजेन्ट अपने अधिकार के बाहर कार्य करता है और इस अनधिकृत कार्य को अलग नही किया जा सकता है तो नियोक्ता इस व्यवहार को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

उदाहरण—गोविन्द ने सन्तोष को 200 भेड़ें खरीदने का अधिकार दिया। सन्तोष ने 200 भेड़ें तथा 50 मैमने 2000 रुपये में खरीदे हैं, तो ऐसी स्थिति में गोविन्द सम्पूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर सकता है। क्योंकि भेडे तथा मेमनों के मूल्यों को अलग करने का कोई निश्चित आधार नही है।

(4) एजेन्ट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर नियोक्ता का उत्तरदायित्व—यदि नियोक्ता ने शब्दों या आचरण द्वारा दूसरे व्यक्तियों को

उदाहरण—सुदर्शन एक घर बनाने में सुधीर को ईंट रखने वाले के रूप में नियुक्त करता है और सुदर्शन स्वयं मकान तैयार करता है। मकान चतुराई से न बनाने के कारण सुधीर को चोट लग जाती है तो यहाँ सुदर्शन सुधीर की क्षतिपूर्ति करने हेतु उत्तरदायी है।

(7) तीसरे पक्षकारों को दी हुई क्षतिपूर्ति की राशि को प्राप्त करना—जब एजेन्ट अपने अधिकार-क्षेत्र में नियोक्ता के लिए सद्भाव से कार्य करता है और ऐसे कार्य से किसी तीसरे पक्षकार को क्षति पहुँचती है और एजेन्ट को उसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है तो नियोक्ता उसकी पूर्ति करेगा।

(8) निर्धारित समय से पूर्व एजेन्सी समाप्त करने पर क्षतिपूर्ति—यदि पर्याप्त कारणों के अभाव में नियोक्ता किसी एजेन्ट को हटा देता है तो एजेन्ट क्षतिपूर्ति का अधिकारी है।

एजेन्ट के प्रति नियोक्ता के कर्त्तव्य
(Duties of Principal towards Agent)

एजेन्ट के प्रति नियोक्ता के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—

(1) एजेन्ट को उसका पारिश्रमिक तथा अन्य व्यय देने का कर्त्तव्य।
(2) असावधानी तथा लापरवाही से कार्य करने पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करना।
(3) उचित क्षतिपूर्ति करना।
(4) नियोक्ता की उपेक्षा से उत्पन्न हानि की पूर्ति करना।
(5) सद्भाव से किये गये कार्यों से उत्पन्न क्षति की पूर्ति करना।
(छात्रों को इनका विस्तार से वर्णन एजेन्ट के अधिकारों को ध्यान में रखकर देना चाहिए।)

एजेन्ट के विरुद्ध नियोक्ता के अधिकार
(Rights of Principal against agent)

नियोक्ता के एजेन्ट के विरुद्ध निम्नलिखित अधिकार हैं—

(1) आदेश के अनुसार कार्य करवाना।
(2) असावधानी तथा लापरवाही से कार्य करने पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करना।
(3) हिसाब प्राप्त करना।
(4) गुप्त लाभों को प्राप्त करना।
(5) अपनी ओर से एजेन्ट ने जो धन राशि प्राप्त की उसको वसूल करना।
(छात्रों को एजेन्ट के कर्त्तव्यों को ध्यान में रखकर विस्तार से वर्णन करना चाहिए।)

तीसरे पक्षकारों के साथ अनुबन्धों पर एजेन्सी के प्रभाव
(Effects of Agency on Contract with third Persons)

I. तीसरे पक्षकारों के प्रति नियोक्ता का दायित्व
(Responsibility of Principal towards third Parties)

तीसरे पक्षकार के प्रति नियोक्ता के अग्रलिखित दायित्व होते हैं :—

तीसरे पक्षकारों के प्रति नियोक्ता का दायित्व

1. एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार के अधीन किये गये कार्य।
2. एजेन्ट के अपने अधिकार से बाहर कार्य करने पर नियोक्ता का दायित्व।
3. एजेन्ट का अंशतः अनधिकृत कार्य पृथक् करने योग्य न होने पर नियोक्ता का दायित्व।
4. एजेन्ट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर नियोक्ता का उत्तरदायित्व।
5. एजेन्ट को दी गई सूचना का प्रभाव।
6. एजेन्ट के कपट अथवा अन्यथा कथन के लिए दायित्व।
7. संकट काल में कार्यों के लिए दायित्व।
8. दण्डनीय अपराध के लिए दायित्व।
9. एजेन्ट की स्वीकृति के लिए दायित्व।
10. एजेन्ट के गलत कार्यों के लिए दायित्व।

(1) एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार के अधीन किये गये कार्य—एजेन्ट द्वारा किये गये अनुबन्ध और कार्यों से उत्पन्न दायित्व उसी प्रकार प्रवर्तित कराये जा सकते हैं और उनके वे ही परिणाम होंगे जैसे कि अनुबन्ध तथा कार्य नियोक्ता द्वारा स्वयं ही किये गये है। यदि कोई तीसरा पक्षकार अपने दायित्व से एजेन्ट के प्रति मुक्त हो जाता है तो उसका प्रभाव यह होता है कि नियोक्ता के प्रति भी इसका दायित्व समाप्त हो जाता है।

(2) एजेन्ट के अपने अधिकार से बाहर कार्य करने पर नियोक्ता का दायित्व—जब कोई एजेन्ट अपने अधिकार से बाहर काम करता है और ऐसे कार्य को अधिकृत कार्यों से अलग किया जा सकता है। तब स्वामी उसी कार्य के निष्पादन के लिए उत्तरदायी होगा जो कि एजेन्ट की अधिकार सीमा में था। तीसरा पक्षकार उस अतिरिक्त अनधिकृत कार्य के लिए नियोक्ता को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।

उदाहरण—राम एक जहाज तथा उस पर लदे हुए माल दोनों का स्वामी है। वह रमेश को 20,000 रुपये में जहाज का सामुद्रिक बीमा का अधिकार देता है रमेश जहाज का सामुद्रिक बीमा करवा लेता है साथ ही वह 20,000 रुपये के माल का भी बीमा कराता है। राम जहाज के बीमे का प्रीमियम देने के लिए ही उत्तरदायी है। माल की पॉलिसी के लिए नहीं है।

(3) एजेन्ट का अंशतः अनधिकृत कार्य पृथक् करने योग्य न होने पर नियोक्ता का दायित्व—जब एजेन्ट अपने अधिकार के बाहर कार्य करता है और इस अनधिकृत कार्य को अलग नहीं किया जा सकता है तो नियोक्ता इस व्यवहार को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

उदाहरण—गोविन्द ने सन्तोष को 200 भेड़ें खरीदने का अधिकार दिया। सन्तोष ने 200 भेड़ें तथा 50 मैमने 2000 रुपये में खरीदे है, तो ऐसी स्थिति में गोविन्द सम्पूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर सकता है। क्योंकि भेड़े तथा मेमनों के मूल्यों को अलग करने का कोई निश्चित आधार नहीं है।

(4) एजेन्ट के अनधिकृत कार्य को अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाने पर नियोक्ता का उत्तरदायित्व—यदि नियोक्ता ने शब्दों या आचरण द्वारा दूसरे व्यक्तियों को

विश्वास दिलाया है कि एजेन्ट द्वारा बिना अधिकार के किये गये कार्य नियोक्ता द्वारा अधिकृत हैं तो नियोक्ता ऐसे कार्यों के लिए अन्य व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी है।

(5) एजेन्ट को दी गई सूचना का प्रभाव—एजेन्सी के सम्बन्ध में एजेन्ट को दी गई अथवा एजेन्ट द्वारा प्राप्त की गई कोई सूचना नियोक्ता तथा तीसरे पक्षकार के बीच उसी प्रकार के वैधानिक परिणाम रखती है जैसे कि यह सूचना नियोक्ता को दी गई थी अथवा नियोक्ता द्वारा प्राप्त की गई थी। यदि एजेन्ट या नियोक्ता इस सूचना के अनुसार कार्य नहीं करता है तो तीसरे पक्षकारों के लिए नियोक्ता उत्तरदायी होगा।

उदाहरण—इन्द्रमणि, नीलमणि को राधेश्याम की गाय खरीदने के लिए नियुक्त करता है। राधेश्याम गाय के पाँव की हड्डी टूटी होने की बात बताता है। नीलमणि उस गाय को खरीद लेता है, नीलमणि इन्द्रमणि को यह बात नहीं बताता है, इन्द्रमणि को बाद में इस बात की जानकारी होती है, इन्द्रमणि इस अनुबन्ध को रद्द कर सकता है क्योंकि एजेन्ट को इस बात की सूचना दी जा चुकी थी।

(6) एजेन्ट के कपट अथवा अन्यथा कथन के लिए दायित्व—एजेन्सी के व्यापार की साधारण प्रगति में एजेन्ट के कपट तथा अन्यथा कथन के लिए भी नियोक्ता दायी होता है। यदि एजेन्ट ने अन्यथा कथन अथवा कपट अपने अधिकार के बाहर के कार्यों के लिए किया है तो उसके लिए नियोक्ता उत्तरदायी नहीं है।

(7) संकटकाल के कार्यों के लिए दायित्व—आपत्तिकाल में एजेन्ट द्वारा किये उन सभी कार्यों के लिए नियोक्ता तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता है।

(8) दण्डनीय अपराध के लिए दायित्व—अपने अधिकार के भीतर कार्य करते हुए एजेन्ट ने किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को हानि पहुँचाई हो तो नियोक्ता तीसरे पक्षकार के लिए उत्तरदायी होगा। साथ ही एजेन्ट भी उसके लिए उत्तरदायी होगा।

(9) एजेन्ट की स्वीकृति के लिए दायित्व—एजेन्ट के रूप में कार्य करते हुए एजेन्ट द्वारा दी गई प्रत्येक स्वीकृति नियोक्ता की ही स्वीकृति मानी जायेगी और वह उसके लिए बाध्य होगा।

(10) एजेन्ट के गलत कार्यों के लिए दायित्व—नियोक्ता अपने एजेन्ट के गलत कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होता है, यदि वह काम नियोक्ता की नौकरी की प्रगति में किया गया है।

II. एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से कब उत्तरदायी होता है?
(When is an agent Personally Liable)

निम्नलिखित परिस्थितियों में एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से दावा कर सकता है और वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है :—

(1) विदेशी नियोक्ता—जब एजेन्ट किसी ऐसे नियोक्ता की ओर से अनुबन्ध करता है जो विदेश में रहता है तो तीसरे पक्षकार एजेन्ट पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं। नियोक्ता की ओर से एजेन्ट भी तीसरे पक्षकारों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(2) अप्रकट नियोक्ता—जब एजेन्ट अपने नियोक्ता के लिए अनुबन्ध करता है जिसका नाम उसने तीसरे को नही बतलाया है और यह भी नही कहा है कि वह स्वयं नियोक्ता नही है, बल्कि एजेन्ट है तो ऐसी स्थिति में तीसरा पक्ष एजेन्ट को अनुबन्ध पूरा करने के लिए बाध्य कर सकता है।

(3) बनावटी एजेन्ट की दशा में—जब एक व्यक्ति दूसरे से यह कहे कि वह अमुक व्यक्ति का एन्जेट है और ऐसा कर दूसरे पक्ष से अनुबन्ध कर लेता है तो ऐसा एजेन्ट बनावटी एजेन्ट कहलाता है। यदि बनावटी एजेन्ट के कार्यो का नियोक्ता द्वारा पुष्टिकरण नही हो पाता है तो तीसरा पक्षकार ऐसे एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहरा सकता है।

(4) अधिकारों के बाहर किये गये कार्यो के लिए—जब एजेन्ट अपने अधिकार के बाहर काम करता है और नियोक्ता द्वारा उसकी पुष्टि नही की जाती है तो ऐसी स्थिति में एजेन्ट पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है तथा उसे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से कब उत्तरदायी होता है?

1. विदेशी नियोक्ता।
2. अप्रकट नियोक्ता।
3. बनावटी एजेन्ट की दशा में।
4. अधिकारों के बाहर किये गये कार्यो के लिए।
5. जब नियोक्ता के विरुद्ध वाद नही चलाया जा सकता हो।
6. जब एजेन्ट अभिव्यक्त या गर्भित रूप से अनुबन्ध के अन्तर्गत व्यक्तिगत रूप से दायी होता है।
7. जब अनुबन्ध मे एन्जेट का हित निहित हो।
8. जब एजेन्ट अनुबन्ध पर अपने नाम के हस्ताक्षर करे।
9. जब कपट या अन्यथा कथन करता है।
10. जब एजेन्ट किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है।
11. अविद्यमान नियोक्ता के लिये किये गये कार्य।

(5) जब नियोक्ता के विरुद्ध वाद नहीं चलाया जा सकता हो—यदि तीसरे पक्ष के सामने एजेन्ट ने अपने नियोक्ता का नाम प्रकट किया हो लेकिन उसके विरुद्ध वाद नही किया जा सकता हो तो ऐसी स्थिति में एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(6) जब एजेन्ट अभिव्यक्त या गर्भित रूप में अनुबन्ध के अन्तर्गत व्यक्तिगत रूप में दायी होता है तो ऐसी परिस्थिति में एजेन्ट के साथ व्यवहार करने वाला तीसरा पक्षकार या तो एजेन्ट को या नियोक्ता को या दोनों को उत्तरदायी ठहरा सकता है। (धारा 233)

उदाहरण—विनीत ने अजीत के साथ 100 गाँठें रुई बेचने का अनुबन्ध किया। बाद में विनीत को मालूम होता है कि अजीत तो सूरज का एजेन्ट है। विनीत रुई के मूल्य के लिए या तो अजीत के विरुद्ध या सूरज के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(7) जब अनुबन्ध में एजेन्ट का हित निहित हो—जब एक एजेन्ट अनुबन्ध करता है, अनुबन्ध की विषय-वस्तु में एजेन्ट का भी हित है तो ऐसी दशा मे हित की सीमा तक उसकी स्थिति एक एजेन्ट के रूप मे नही बल्कि नियोक्ता के रूप में होगी और उस सीमा तक उस पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है या वह वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(8) जब एजेन्ट अनुबन्ध पर अपने नाम के हस्ताक्षर करें—अनुबन्ध-पत्रों, प्रतिज्ञा-पत्रों आदि पर जब एजेन्ट अपने नाम के ही हस्ताक्षर करता है तथा किसी अन्य पक्षकार की तरफ से हस्ताक्षर नहीं करता है तो ऐसी दशा में एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से दायी ठहराया जा सकता है।

(9) जब कपट या अन्यथा कथन करता है—जब एजेन्ट अपने अधिकार के बाहर कार्य करते समय कपट या अन्यथा कथन करता है तो ऐसी दशा मे एजेन्ट ही व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, नियोक्ता नही।

(10) जब एजेन्ट किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है—एजेन्सी के अधिकार के बाहर एजेन्ट किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है तो इसके लिए वह व्यक्तिगत रूप से दायी होता है।

(11) अविद्यमान नियोक्ता के लिये किये गये कार्य—यदि एजेन्ट किसी ऐसे नियोक्ता के लिए कार्य करता है जिसका अस्तित्व नही है तो ऐसे कार्यों के लिए एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

III अप्रकट नियोक्ता (Un disclosed Principal)

अपने नियोक्ता की ओर से जब एजेन्ट को अनुबन्ध करने का अधिकार है और वह इस बात को छिपाते हुए कि वह एजेन्ट है, तीसरे पक्षकार के साथ अपने नाम में अनुबन्ध करता है तो ऐसा नियोक्ता अप्रकट नियोक्ता कहलाता है। ऐसी दशा में तीसरा पक्षकार एजेन्ट को एजेन्ट न समझ कर वरन् नियोक्ता समझकर अनुबन्ध करता है अप्रकट नियोक्ता की दशा मे एजेन्ट तथा तीसरे पक्षकारों के अधिकार तथा दायित्व निम्नलिखित होंगे :—

(1) निष्पादन की माँग—अगर कोई एजेन्ट ऐसे व्यक्ति के साथ अनुबन्ध करता है जो उसको नियोक्ता समझ कर ही व्यवहार करता है तो ऐसी स्थिति मे उसका नियोक्ता अनुबन्ध के निष्पादन की माँग कर सकता है। तीसरे पक्षकार को भी नियोक्ता के विरुद्ध वे सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो उसे उस समय प्राप्त होते जबकि एजेन्ट ही नियोक्ता होता।

(2) तृतीय पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध पूरा करने को इन्कार करना—यदि नियोक्ता अनुबन्ध के पूरा होने से पहले ही अपने आपको प्रकट कर देता है तो दूसरा पक्षकार अनुबन्ध करने को पूरा करने से इस शर्त पर मना कर सकता है कि अनुबन्ध करने वाला व्यक्ति एजेन्ट है, नियोक्ता नही है, तो वह अनुबन्ध नही करता।

IV बनावटी एजेन्ट (Pretended Agent)

जो एजेन्ट न होते हुए भी तीसरे पक्षकार के सामने असत्य रूप से अपने आपको दूसरे व्यक्ति का अधिकृत एजेन्ट बतलाता है और तीसरे पक्षकार को अपने साथ अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है तो उसे बनावटी एजेन्ट कहा जाता है। बनावटी एजेन्ट द्वारा किये गए कार्यों के सम्बन्ध मे निम्नलिखित अधिकार एवं उत्तरदायित्व होते हैं :—

(1) बनावटी एजेन्ट का पुष्टिकरण के अभाव में दायित्व—यदि बनावटी एजेन्ट का कथित नियोक्ता उसके द्वारा किये अनुबन्धों की पुष्टि नही करता है तो ऐसी स्थिति में ऐसा एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होता है।

(2) नियोक्ता का पुष्टिकरण करने पर दायित्व—यदि बनावटी एजेन्ट का कथित नियोक्ता उसके द्वारा किये कार्यों की पुष्टि कर देता है तो ऐसी दशा में वह नियोक्ता ही उन सब कार्यों के लिये तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होगा।

(3) वास्तविक क्षति की पूर्ति—यदि बनावटी एजेन्ट ने तीसरे पक्षकार के साथ अनुबन्ध कर लिया है, तथाकथित नियोक्ता उसकी पुष्टि नहीं करता है तो ऐसी दशा मे बनावटी एजेन्ट तीसरे पक्षकार की वास्तविक हानि को पूरा कराने के लिए उत्तरदायी है।

(4) बनावटी एजेन्ट निष्पादन की मांग नहीं कर सकता है—बनावटी एजेन्ट तीसरे पक्षकार से अनुबन्ध निष्पादन की मांग नही कर सकता है लेकिन तीसरा पक्षकार अनुबन्ध निष्पादन की मांग एजेन्ट से कर सकता है।

एजेन्ट के अधिकार का विस्तार
(Extent of Agent's Authority)

(i) साधारण परिस्थितियों के अन्तर्गत अधिकारों का विस्तार—एक एजेन्ट जिसको किसी एक कार्य के करने का अधिकार है, उसको इस कार्य के लिये आवश्यक सभी वैध कार्य करने का अधिकार है।

उदाहरण—सुरेश, जो लन्दन मे रहता है—अमरेश को बम्बई मे अपने किसी ऋण को वसूल करने के लिए नियुक्त करता है। अमरेश उन ऋणों को वसूल करने के लिए कोई भी आवश्यक वैध विधि प्रयोग में ला सकता है।

(2) संकटकालीन स्थिति में एजेन्ट के अधिकार का विस्तार—एजेन्ट को संकटकालीन स्थिति मे अपने नियोक्ता को हानि से बचाने के लिये समस्त कार्य करने का अधिकार है, जो समान परिस्थितियों मे किसी साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति द्वारा अपने निजी मामले मे किये जाते।

उप-एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट
(Sub-Agent and Substituted Agent)

उप-एजेन्ट (Sub-Agent) धारा (191)—उप-एजेन्ट वह व्यक्ति है जो एजेन्सी के मुख्य एजेन्ट के द्वारा नियुक्त किया जाता है तथा जो उसके नियन्त्रण में काम करता है।

उदाहरण—जोधपुर का व्यापारी जयपुर मे किसी व्यापारी को एजेन्ट नियुक्त कर अपने यहाँ के तैयार माल को बेचने की आज्ञा देता है इस काम को करने के लिये कुछ ऐसे कार्य भी करना आवश्यक है जिसे साधारणतः एक बैंक करता है। अतः जयपुर का व्यापारी सतीश नामक एक बैंकर को नियुक्त करता है, तो यहाँ सतीश उप-एजेन्ट है।

निम्नांकित परिस्थितियो में एजेन्ट के द्वारा उप-एजेन्ट की नियुक्ति की जा सकती है :—

(i) जब व्यवसाय की सामान्य प्रचलित प्रथा के अनुसार उप-एजेन्ट की नियुक्ति की जा सकती है।

(ii) जब कार्य लिपिक-प्रकृति का हो तथा जिसको करने में किसी प्रकार के विशेष विवेक की आवश्यकता न हो।

(iii) जब नियोक्ता ने स्पष्ट या गर्भित रूप से एजेन्ट को ऐसा उप-एजेन्ट नियुक्त करने का अधिकार दिया हो।

(iv) नियोक्ता को पहले से ही इस बात की सूचना हो कि एजेन्ट उप-एजेन्ट नियुक्त कर रहा है और नियोक्ता उसे ऐसा करने से न रोके।

(v) किसी संकटकालीन परिस्थिति में जब उप-एजेन्ट नियुक्त करना आवश्यक हो।

(vi) जब एजेन्सी की प्रकृति ऐसी है कि एजेन्सी के काम को पूरा करने के लिए उप-एजेन्ट नियुक्त करना आवश्यक है।

नियोक्ता, एजेन्ट व उप-एजेन्ट के बीच वैधानिक सम्बन्ध

नियोक्ता, एजेन्ट तथा तीसरे के साथ उप-एजेन्ट के वैधानिक सम्बन्ध का अध्ययन निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से करेंगे :—

I. जब उप-एजेन्ट की नियुक्ति उचित रूप से की गई है

(i) उचित रूप से नियुक्त उप-एजेन्ट समस्त कार्यों के लिए ठीक उसी प्रकार तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होता है जैसे वह एक ऐसा एजेन्ट है जो मूल रूप में ही नियोक्ता द्वारा नियुक्त किया गया था।

(ii) मूल एजेन्ट उप-एजेन्ट के द्वारा किये गये कार्यों के लिए नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है।

(iii) यदि उप-एजेन्ट ने जान-बूझकर त्रुटि की हो या कपट किया हो तो इसके लिए नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है।

II एजेन्ट द्वारा अनधिकृत रूप से उप-एजेन्ट नियुक्त किया हो

यदि एजेन्ट ने अधिकार न होते हुए भी, उप-एजेन्टकी नियुक्ति कर दी है—ऐसा उप एजेन्ट अपने कार्यों के लिए नियोक्ता को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता और नियोक्ता भी ऐसे एजेन्ट के कार्यों के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। उप-एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के प्रति उत्तरदायी माना जाता है।

स्थानापन्न एजेन्ट (Substituted Agent) (धाराएँ 194-195)—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 194 के अनुसार, "यदि कोई एजेन्सी के व्यवसाय में नियोक्ता की ओर से किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित कराता है तो ऐसे व्यक्ति को स्थानापन्न एजेन्ट कहेंगे न कि उप-एजेन्ट।"

उदाहरण—मंजुल अपने सॉलिसिटर मृदुल को अपनी भू-सम्पत्ति नीलाम द्वारा बिकवाने और इस उद्देश्य के लिए एक नीलाम कर्ता की नियुक्ति करने का आदेश देता है। मृदुल भू-सम्पत्ति की बिक्री के लिए मनीष को नामांकित करता है। मनीष स्थानापन्न एजेन्ट है न कि उप-एजेन्ट।

नियोक्ता तथा तीसरे पक्षकारों के साथ स्थानापन्न एजेन्ट का सम्बन्ध—

(1) नियोक्ता के मूल एजेन्ट के समान ही स्थानापन्न एजेन्ट होता है स्थानापन्न एजेन्ट अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है।

(2) तीसरे पक्षकार के साथ स्थानापन्न द्वारा किये गये अनुबन्धों के प्रति नियोक्ता उत्तरदायी होता है।

(3) स्थानापन्न एजेन्ट के चुनाव एवं नियुक्ति में यदि मूल एजेन्ट ने पर्याप्त सावधानी नहीं बरती है तो वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा।

उप-एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर
(Distinction between Sub-agent and Substituted agent)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	उप-एजेन्ट	स्थानापन्न एजेन्ट
1.	नियुक्ति की दशा	एजेन्ट केवल उसी दशा में उप-एजेन्ट नियुक्त कर सकता है जबकि व्यापार की साधारण रीति के अनुसार हो अथवा एजेन्सी की प्रकृति के अनुसार ऐसी नियुक्ति आवश्यक है।	एजेन्ट स्थानापन्न एजेन्ट को तभी नियुक्त कर सकता है जबकि नियोक्ता की ओर से उसे ऐसा करने का अभिव्यक्त या गर्भित अधिकार है।
2.	उत्तरदायित्व	उप-एजेन्ट अपने कार्यों के प्रति एजेन्ट के प्रति उत्तरदायी होता है, नियोक्ता के प्रति नहीं।	स्थानापन्न एजेन्ट केवल नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है, मूल एजेन्ट के प्रति नहीं।
3.	स्थिति	उप-एजेन्ट मूल एजेन्ट के अधीन कार्य करता है।	स्थानापन्न एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है मूल एजेन्ट के प्रति नहीं।
4.	पारिश्रमिक माँगने का अधिकार	उप-एजेन्ट अपनी सेवाओं के बदले पारिश्रमिक की माँग नियोक्ता से नहीं कर सकता।	स्थानापन्न एजेन्ट पारिश्रमिक की माँग नियोक्ता से कर सकता है।
5.	मूल एजेन्ट का दायित्व	उप-एजेन्ट के कार्यों के प्रति मूल एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है।	स्थानापन्न एजेन्ट के कार्यों के लिये मूल एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है।
6.	मूल एजेन्ट का कर्त्तव्य	मूल एजेन्ट का कर्त्तव्य उप-एजेन्ट की दशा में अन्त तक बना रहता है।	मूल एजेन्ट का कर्त्तव्य स्थानापन्न एजेन्ट की दशा में सामान्यत: ऐसे एजेन्ट के नामांकन करते ही समाप्त हो जाता है।
7.	नियोक्ता द्वारा उत्तरदायी ठहराया जाना	उप-एजेन्ट को नियोक्ता उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।	स्थानापन्न एजेन्ट को नियोक्ता उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है।

पुष्टिकरण का सिद्धान्त
(Doctrine of Ratification)

यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की जानकारी तथा अधिकार के बिना ही उसकी ओर से एजेन्ट के रूप में कोई अनुबन्ध कर लेता है और दूसरा व्यक्ति बाद में उन कार्यों की पुष्टि कर देता है तो उसे पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी कहा जाता है।

पुष्टिकरण सिद्धान्त के तत्त्व

पुष्टिकरण के सिद्धान्त के तत्त्व
1. दूसरे पक्ष की जानकारी के बिना।
2. दूसरे पक्षकार को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार।
3. स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का प्रभाव।

(1) दूसरे पक्ष की जानकारी के बिना—यह सिद्धान्त तब क्रियाशील होता है जबकि कार्य दूसरे व्यक्ति की सहमति तथा जानकारी के बिना किया गया हो।

(2) दूसरे पक्षकार को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार—जिस व्यक्ति के लिये कार्य किया गया हो उसे कार्य को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का अधिकार है।

(3) स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का प्रभाव—यदि उसे स्वीकार कर लिया जाता है तो एजेन्सी की स्थापना हो जाती है तथा उस कार्य के लिए वह दूसरा व्यक्ति उत्तरदायी हो जाता है। अस्वीकार करने पर एजेन्सी की स्थापना नहीं होती है और वह उत्तरदायी नहीं होता है।

पुष्टिकरण का प्रभाव
(Effects of Ratification)

(1) सामान्य एजेन्सी की स्थिति—किसी दूसरे व्यक्ति के लिए उसके अधिकार एवं जानकारी के बिना कोई कार्य किया जाता है और दूसरा व्यक्ति उस कार्य की पुष्टि कर देता है तो वे एक सामान्य एजेन्सी के रूप में पहुँच जाते हैं।

(2) पुष्टिकरण पिछली तिथि से सम्बन्धित होता है—पुष्टिकरण की स्थिति मे एजेन्सी पुष्टिकरण की तिथि से हुई नही मानी जाती है बल्कि कार्य को आरम्भ करने की तिथि से ही पुष्टिकरण का प्रभाव लागू हो जाता है।

(3) अनधिकृत कार्यों का अधिकृत हो जाना।

(4) एजेन्ट का उस कार्य के लिये व्यक्तिगत दायित्व समाप्त हो जाता है।

(5) वैध पुष्टिकरण से नियोक्ता का उत्तरदायित्व तीसरे पक्षकार के प्रति होता है।

(6) पुष्टिकरण के बाद एजेन्ट को उस कार्य के लिए पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है।

(7) आवश्यक व्यय प्राप्त करने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है।

पुष्टिकरण की शर्तें या नियम
(Conditions or Rules of Ratification)

(1) कार्य दूसरे व्यक्ति के लिए हुआ हो—यदि एजेन्ट अपने नाम से कार्य करता

है और अपने नियोक्ता का नाम प्रकट नही करता है तो ऐसे कार्य का पुष्टिकरण नही हो सकता है।

(2) **नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये** - नियोक्ता मे अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये यह क्षमता उस समय भी होनी चाहिए जबकि वह कार्य किया गया है।

(3) **नियोक्ता का अस्तित्व**—जिस समय पर कार्य किया गया था यदि उस समय पर नियोक्ता का अस्तित्व नही था तो वह पुष्टिकरण करने का अधिकारी नही होगा।

(4) **वैध कार्य**—वैध कार्यों का ही पुष्टिकरण हो सकता है। पुष्टिकरण कर देने से दोष पूर्ण कार्य उचित नही बन सकता है।

(5) **अभिव्यक्त अथवा गर्भित**—पुष्टिकरण अभिव्यक्त अथवा गर्भित हो सकता है।

(6) पुष्टिकरण करने वाले व्यक्ति को मामले की सभी महत्वपूर्ण घटनाओ की जानकारी होनी आवश्यक है अन्यथा पुष्टिकरण वैध नही होगा।

(7) नियोक्ता को एजेन्ट के पूरे कार्य का पुष्टिकरण करना पड़ेगा किसी हिस्से का नही अर्थात् पुष्टिकरण किया जाता है तो सम्पूर्ण कार्य का ही होगा, कुछ भाग का नहीं।

(8) यदि पुष्टिकरण से किसी तीसरे पक्षकार को क्षति पहुँचती है तो वह पुष्टिकरण वैध नही माना जाता है।

(9) अगर समय निश्चित न हो तब उचित समय के अन्दर ही पुष्टिकरण होना चाहिए।

(10) पुष्टि की सूचना एजेन्ट के पास उचित या निश्चित समय में पहुँच जानी चाहिये।

(11) कार्य उस तिथि का हुआ माना जायेगा जिस दिन वास्तव में कार्य हुआ था न कि पुष्टि की तिथि से।

(12) पुष्टिकरण के बाद एजेन्ट को उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है।

(13) पुष्टिकरण के बाद नियोक्ता का तीसरे पक्षकार के प्रति दायित्व हो जाता है।

(14) अधिकारों के अन्तर्गत पुष्टिकरण होना चाहिये।

एजेन्सी की समाप्ति
(Termination of Agency)

एजेन्सी की समाप्ति निम्नलिखित दो तरीकों से की जा सकती है :—

I. पक्षकारों के कार्यों द्वारा समाप्ति

(Termination by the Act of the parties)

(1) **नियोक्ता द्वारा एजेन्ट के अधिकार का खण्डन करने पर**—नियोक्ता किसी भी समय एजेन्ट के अधिकार का खण्डन करके एजेन्सी समाप्त कर सकता है। निम्नलिखित दशाओं मे नियोक्ता अपने एजेन्ट के अधिकारों का खण्डन नहीं कर सकता—

(i) जब एजेन्ट का एजेन्सी की विषय वस्तु में कोई हित हो तो ऐसी दशा में किसी स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव मे नियोक्ता के खण्डन द्वारा ऐसे हित को हानि पहुँचाने के लिए एजेन्सी समाप्त नही की जा सकती है।

(ii) यदि एजेन्ट के अधिकार का खण्डन होने से पूर्व एजेन्ट ने अपने अधिकार का प्रयोग इस प्रकार कर लिया है कि उसके कार्यों से नियोक्ता बाध्य हो जाता है तो ऐसी दशा मे एजेन्सी समाप्त नही की जा सकती है।

(iii) यदि एजेन्ट ने अपने अधिकार का आंशिक रूप से प्रयोग कर लिया है तो उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए एजेन्सी समाप्त नही की जा सकती है।

उदाहरण (i) गणेश, जिनेश को अपना मकान किराये पर देने के लिये नियुक्त करता है बाद में गणेश उस मकान को स्वय किराये पर दे देता है। ऐसी दशा में जिनेश के अधिकार की गर्भित रूप से समाप्ति हो गई है।

(ii) राम, सोहन को अपनी भूमि बेचने तथा प्राप्त राशि मे से अपने ऋण के भुगतान का अधिकार देता है। राम इस अधिकार का खण्डन करके एजेन्सी की समाप्ति नही कर सकता है। क्योंकि एजेन्सी की विषय वस्तु में सोहन का हित है।

(2) एजेन्ट द्वारा अधिकार का परित्याग करना—एजेन्ट नियोक्ता को उचित सूचना देकर एजेन्सी की समाप्ति कर सकता है। धारा 205 के अनुसार यदि एजेन्सी किसी निश्चित समय के लिए हो और यदि एजेन्ट इस अवधि के पहले ही बिना उचित कारण के एजेन्सी समाप्त करता हो तथा यदि इससे नियोक्ता को किसी प्रकार की हानि होती है तो एजेन्ट को नियोक्ता की हानि को पूरा करना होगा।

(3) आपसी करार द्वारा—नियोक्ता तथा एजेन्ट के पारस्परिक करार द्वारा एजेन्सी की समाप्ति किसी भी समय तथा किसी भी अवस्था में की जा सकती है।

II. राजनियम के प्रभाव द्वारा समाप्ति—

(4) एजेन्सी के व्यापार या कार्य के पूरा हो जाने पर—एजेन्ट की जिस कार्य के लिए नियुक्ति की गयी है, उस कार्य के पूरा हो जाने पर एजेन्सी की समाप्ति हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि दिवाकर ने अपनी भूमि बेचने के लिए प्रभाकर की नियुक्ति की है तो भूमि के विक्रय पर एजेन्सी समाप्त हो जायेगी।

(5) एजेन्सी की अवधि समाप्त हो जाने पर—यदि किसी निश्चित समय के लिए एजेन्सी हुई है तो निश्चित समय के समाप्त हो जाने के बाद एजेन्सी अपने आप समाप्त हो जाती है।

(6) नियोक्ता या एजेन्ट की मृत्यु—नियोक्ता तथा एजेन्ट का सम्बन्ध पूर्णरूप से व्यक्तिगत होता है। इनमे से किसी एक की भी मृत्यु हो जाने पर एजेन्सी की समाप्ति होना आवश्यक है। यदि नियोक्ता की मृत्यु हो जाय तो उसके बाद एजेन्ट के कार्यों के लिए नियोक्ता के उत्तराधिकारी बाध्य नहीं होगें, क्योंकि उनसे एजेन्सी का अनुबन्ध नही हुआ है। यदि नियोक्ता की मृत्यु के बाद एजेन्ट के कार्यों का पुष्टिकरण उसके उत्तराधिकारी करें तो वे उत्तरदायी होंगे।

(7) नियोक्ता का दिवालिया हो जाना—नियोक्ता के दिवालिया हो जाने पर एजेन्सी की समाप्ति हो जाती है क्योंकि कानून की दृष्टि से वह अनुबन्ध करने योग्य नहीं रहता है। यदि कोई एजेन्सी का काम करे तो ऐसे कार्यों के लिए एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

(8) एजेन्सी की विषय वस्तु का नष्ट हो जाना—जिस वस्तु के सम्बन्ध मे एजेन्सी की स्थापना की गई है उसके नष्ट हो जाने पर एजेन्सी का अन्त हो जाता है। उदाहरण के लिए पीयूष ने अपना मकान बेचने के लिए जगदीश को एजेन्ट के रूप मे नियुक्त किया। मकान के नष्ट हो जाने की स्थिति मे एजेन्सी की समाप्ति हो जायेगी।

(9) एजेन्ट या नियोक्ता के पागल होने पर—नियोक्ता या एजेन्ट के पागल होने पर एजेन्सी की समाप्ति हो जाती है। यद्यपि एजेन्ट की नियुक्ति करते समय किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है फिर भी एजेन्ट के पागल होने पर कानून की ओर से यह आदेश है कि एजेन्सी समाप्त कर दी जाय।

(10) जब नियोक्ता विदेशी शत्रु हो जाता है—जब नियोक्ता के देश को एजेन्ट के देश ने शत्रु देश घोषित कर दिया है तो एजेन्सी स्वत. समाप्त हो जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एजेन्सी की परिभाषा कीजिये। यह किस प्रकार स्थापित की जाती है और किस प्रकार समाप्त की जाती है ?

   Define Agency, How is it Created and terminated ?

2. एजेन्सी क्या है ? एजेन्ट के अपने नियोक्ता के प्रति अधिकार व कर्त्तव्य बताइए।

   Define agency. What are the rights and duties of an agent towards his principal.

   (जोधपुर वि. वि. 1978, राज. वि. वि. 1977, 81)

3. उप-एजेन्ट और स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर बताइये ? नियोक्ता व तीसरे पक्षकारों के साथ उनका सम्बन्ध बतलाइये।

   Distinguish between a Sub-agent and a substituted agent. Point-out their relations with the principal and third party.

   (जोधपुर वि. वि. 1984)

4. उप-एजेन्ट क्या है ? एजेन्ट, नियोक्ता और तीसरे पक्षकार के साथ उप-एजेन्ट का क्या सम्बन्ध है ?

   What is sub-Agent ? What is the relation of a sub-agent with an agent, Principal and third party.

5. नियोक्ता की ओर से किये हुए व्यवहारों के लिये एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से कब वाद प्रस्तुत कर सकता है तथा किन परिस्थितियों में उस पर व्यक्तिगत रूप से वाद प्रस्तुत किया जा सकता है ?

When can an agent sue or be sued personally on contracts *entered into by him on behalf of his principal ?*

(जोधपुर वि. वि. 1980, राज. वि. वि. 1980,82)

6. एजेन्सी को परिभाषित कीजिये । एजेन्सी की स्थापना के कौन से विभिन्न तरीके हैं ?

Define agency. What are the different ways in which an agency can be created ?

(जोधपुर वि. वि. 1981)

7. पुष्टिकरण क्या है ? एजेन्ट के कार्यों पर यह सिद्धान्त लागू होने के पूर्व किन दशाओं का पूरा होना आवश्यक है ?

What is ratification ? What Conditions should be fulfilled before the application of this principle to the acts of an agent ?

(राज. वि. वि. पूरक 1982)

8. "एक प्रतिनिधि अपना कार्य दूसरों को नहीं सौंप सकता ।" एजेन्सी अनुबन्धों का विशेष निर्देश करते हुए इस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।

"A delegate cannot delegate." Explain this principle with special references to agency contracts.

(सुखाड़िया वि. वि. 1985)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—

(i) आवश्यकता द्वारा स्थापित एजेन्सी ।
(ii) गत्यवरोध अथवा प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी । (जोधपुर वि.वि. 1979)
(iii) मूल एजेन्ट द्वारा उप-एजेन्ट को प्राधिकार सौंपना ।
(iv) अप्रकट नियोक्ता । (जोधपुर वि.वि. 1979)
(v) बनावटी एजेन्ट ।
(vi) उप-एजेन्ट ।

(जोधपुर वि वि. 1979)

(vii) अप्रकट नियोक्ता

(जोधपुर वि. वि. 1979)

(viii) पुष्टिकरण का नियम ।

Write Short notes on :—

(i) Agency established by necessity.
(ii) Agency by Estoppel or Holding out.
(iii) Delegation of authority by an original agent or sub-agent.

(iv) undisclosed Principal
(v) Pretended Agent.
(vi) Sub-Agent
(vii) un-disclosed Principal
(viii) Law of ratification.

9. अपने नियोक्ता की ओर से किये गये अनुबन्धों के प्रति एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से कब उत्तरदायी होता है ?

When an agent is personally liable for contracts entered into by him on behalf of his Principal.

(राज. वि. वि. 1980,82 जोधपुर वि. वि. 1985)

यूनिट 2 पर चुने हुए व्यावहारिक प्रश्न तथा उनका हल

हानि रक्षा एवं गारन्टी के अनुबन्ध

1. हेमकांत द्वारा रमाकान्त को दिये गये 10,000 रुपये की चन्द्रकांत ने गारन्टी दी। भुगतान के लिए हेमकांत ने रमाकात पर दबाव डाला, जिसमें रमाकांत ने एक माँग प्रतिज्ञा-पत्र दे दिया एवं हेमकांत ने रमाकांत पर कुछ दिन तक वाद प्रस्तुत नहीं किया। विभिन्न पक्षों के दायित्व तय कीजिये।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(1) हेमकांत रमाकांत को 10,000 रुपये देता है।
(2) चन्द्रकांत इस राशि के लिए हेमकात को गारन्टी देता है।
(3) हेमकांत द्वारा भुगतान माँगने पर रमाकांत एक प्रतिज्ञा-पत्र लिख कर देता है।
(4) हेमकांत ने रमाकांत पर वाद प्रस्तुत नहीं किया।
(5) बाद में हेमकांत चन्द्रकांत के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करता है।
(6) क्या हेमकांत चन्द्रकांत से वह राशि प्राप्त करने में सफल हो सकेगा ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

प्रतिभू का दायित्व से मुक्त होना—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 133 के अनुसार यदि प्रतिभू की सहमति के बिना मुख्य ऋणी तथा ऋणदाता अनुबन्ध की शर्तों में कुछ परिवर्तन कर लेते हैं तो प्रतिभू परिवर्तन के बाद किये गये व्यवहारों के सम्बन्ध में दायित्व से मुक्त हो जाता है।

निर्णय—(1) रमाकात द्वारा प्रतिभू चन्द्रकात की जानकारी के बिना हेमकांत के पक्ष मे माँग प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया गया है। जिसके परिणामस्वरूप अनुबन्ध में परिवर्तन हो जाने से चन्द्रकात अपने दायित्व से मुक्त हो गया है।

(2) चन्द्रकांत जो कि प्रतिभू है, की सहमति माँग प्रतिज्ञा-पत्र लिखे जाने व दिये जाने के सम्बन्ध में नही ली गयी थी। अतः इसकी राशि चुकाने के लिए चन्द्रकात दायी नही है।

2. रामधन, नारायण के बैंक में, गोविन्द मैनेजर के लिए प्रतिभूति देता है कुछ समय बाद गोविन्द और नारायण आपस में रामधन की बिना जानकारी के यह समझौता

करते हैं कि गोविन्द का वेतन बढ़ा दिया जाये और वह अधिविकर्ष पर हानियों के लिए उत्तरदायी होगा। गोविन्द एक व्यापारी को अधिविकर्ष मंजूर करता है और वह डूब जाता है। क्या रामधन, गोविन्द के इस कार्य के लिए उत्तरदायी है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) नारायण के बैंक में गोविन्द की मैनेजर के पद पर नियुक्ति के लिए रामधन प्रतिभूति देता है।

(ii) बाद में रामधन की जानकारी के बिना गोविन्द और नारायण यह समझौता करते हैं कि गोविन्द का वेतन बढ़ा दिया जाय और इसके बदले गोविन्द अधिविकर्ष की हानियों के लिए भी उत्तरदायी होगा।

(iii) गोविन्द एक व्यापारी को अधिविकर्ष मंजूर करता है जो डूब जाता है।

(iv) क्या रामधन गोविन्द के इस कार्य के लिए उत्तरदायी है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

प्रतिभू का दायित्व से मुक्त होना—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 133 के अनुसार यदि प्रतिभू की सहमति के बिना मुख्य ऋणी तथा ऋणदाता अनुबन्ध की शर्तों में कुछ परिवर्तन कर लेते हैं तो प्रतिभू परिवर्तन के बाद किये गये व्यवहारों के सम्बन्ध में दायित्व से मुक्त हो जाता है।

निर्णय—रामधन को उत्तरदायी ठहराने का नारायण को कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि नारायण ने बिना रामधन की जानकारी एवं सहमति के गोविन्द के अधिकार तथा दायित्व बढ़ाये थे।

3. रमेश, महेश के साथ एक निश्चित मूल्य पर 4 माह में महेश के लिए एक मकान तैयार करके देने का अनुबन्ध करता है, जिसके लिए महेश सामान देगा। कमलेश अनुबन्ध के निष्पादन की गारन्टी देता है। महेश आवश्यक सामान की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है। कमलेश के उत्तरदायित्व का विवेचन कीजिये।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) रमेश एक निश्चित मूल्य पर 4 माह के अन्दर महेश के लिए एक मकान बनाने का अनुबन्ध करता है।

(ii) महेश इस मकान के लिए आवश्यक सामान स्वयं देगा।

(iii) महेश मकान बनाने के लिए आवश्यक सामान की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है।

(iv) अनुबन्ध के निष्पादन की गारन्टी कमलेश देता है।

(v) कमलेश के क्या उत्तरदायित्व होंगे ?

(ब) क्या अमर को कोट रोक लेने का अधिकार है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

निक्षेप-गृहीता के विशिष्ट ग्रहणाधिकार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 170 के अनुसार यदि निक्षेप-गृहीता ने उसको सौंपे हुए माल की कोई सेवा की है जिसमें परिश्रम अथवा चातुर्य की आवश्यकता है तो वह किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में उस माल को रोक सकता है जब तक कि उसे उन सेवाओं के लिए उचित पारिश्रमिक न मिल जाय।

निर्णय—निक्षेप अनुबन्ध की शर्त के अनुसार अमर, अकबर का तैयार कोट रोक रखने का अधिकार नहीं है, क्योंकि अमर ने अनुबन्ध की शर्तों का पालन नहीं किया जो इस प्रकार थी—

(i) जब भी कोट तैयार हो जायेगा वह अकबर को लौटा देगा यह अमर ने वचन दिया था।

(ii) सिलाई की रकम का भुगतान तैयार कोट की सुपुर्दगी पर नहीं होगा बल्कि तीन महीने के पश्चात् होगा।

गिरवी के अनुबन्ध

(1) राम कपट द्वारा श्याम से स्कूटर प्राप्त करता है और उसको मोहन के पास गिरवी रख देता है। श्याम और मोहन के इस सम्बन्ध में क्या अधिकार होंगे ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त समस्या के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) राम कपट द्वारा श्याम से स्कूटर प्राप्त करता है।

(ii) राम उस स्कूटर को मोहन के पास गिरवी रख देता है।

(iii) राम और मोहन के गिरवी रखे गये स्कूटर के सम्बन्ध में क्या अधिकार है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 178 के अनुसार यदि गिरवी रखने वाले को माल के अधिकार शून्यकरणीय अनुबन्ध (कपट, अन्यथा कथन, अनुचित प्रभाव तथा उत्पीड़न) के अन्तर्गत प्राप्त किया हो किन्तु गिरवी रखते समय तक अनुबन्ध निरस्त नहीं किया गया हो, तो गिरवी रख लेने वाले को अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाता है और गिरवी का अनुबन्ध वैध माना जायेगा बशर्ते उसने सद्विश्वास से कार्य किया हो तथा गिरवी रख लेने वाले को इस प्रकार के दूषित अधिकार की जानकारी नहीं थी।

निर्णय—(i) मोहन ने यदि स्कूटर रखते समय सद्विश्वास से कार्य किया है तो मोहन का स्कूटर पर वैध अधिकार है।

(ii) वास्तविक स्वामी श्याम को स्कूटर के विरुद्ध मोहन को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

(2) 31 मार्च, 1984 को लोकेश, हरीश को 20 पेटी काँच बेचने का अनुबन्ध करता है जिसका भुगतान अनुबन्ध की तिथि से पाँच महीने के अन्दर कर दिया जायेगा तथा उसी समय में सुपुर्दगी भी ले ली जायेगी। इतने समय तक माल लोकेश के गोदाम मे बिना किराये रखा जायेगा। 25 मई, 1984 को लोकेश उस माल को नरेश के पास गिरवी रख देता है जिसको कि हरीश को माल बेचने की जानकारी नही है। क्या यह गिरवी वैध है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) 31 मार्च, 1984 को लोकेश, हरीश को 20 पेटी काँच बेचने का अनुबन्ध करता है।

(ii) इस अनुबन्ध में भुगतान एवं सुपुर्दगी की तिथि सौदे की तिथि के पाँच माह बाद तय होती है।

(iii) जब हरीश माल के मूल्य का भुगतान लोकेश को कर देगा तभी लोकेश, हरीश को माल की सुपुर्दगी देगा।

(iv) लोकेश के गोदाम में भुगतान होने से पूर्व तक माल बिना किराये के रखा जायेगा।

(v) 25 मई, 1984 को लोकेश उस माल को मोहन के पास गिरवी रख देता है।

(vi) मोहन को यह जानकारी नहीं थी कि लोकेश द्वारा यह माल हरीश को बेचा जा सकता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

विक्रय के पश्चात् विक्रेता द्वारा गिरवी रखना—जो व्यक्ति अपने पास माल गिरवी रखता है उसने यदि सद्विश्वास से ऐसा किया है तो गिरवी वैध होती है।

निर्णय—मोहन ने सद्भावना से यह माल अपने पास गिरवी रखा है। मोहन को यह जानकारी नही है कि उस माल को हरीश को बेच दिया गया है। ऐसी स्थिति में मोहन द्वारा इस माल को अपने पास गिरवी रखना वैध है।

एजेन्सी के अनुबन्ध

7. विमलेश, कमलेश को अपने लिए एक जहाज क्रय करने का निर्देश देता है। कमलेश विमलेश के लिए जहाज का चुनाव करने के लिए एक ख्यातिप्राप्त जहाज निरीक्षक को नियुक्त करता है। निरीक्षक जहाज का चुनाव करने मे लापरवाही करता है। जिसके परिणामस्वरूप जहाज समुद्र में चलने के अयोग्य सिद्ध होता है और नष्ट हो जाता है। विमलेश, कमलेश पर हर्जाने का दावा करता है। अपना निर्णय दीजिए।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) विमलेश, कमलेश को जहाज खरीदने का निर्देश देता है।

(ii) जहाज का चुनाव करने के लिए कमलेश ने एक ख्यातिप्राप्त निरीक्षक को नियुक्त किया ।

(iii) जहाज के चुनाव में निरीक्षक ने लापरवाही की ।

(iv) जहाज समुद्र में उचित रूप से नहीं चलता है और नष्ट हो जाता है ।

(v) विमलेश,कमलेश पर हर्जाने का दावा करता है ।

(vi) क्या विमलेश, कमलेश से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है ।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

स्थानापन्न एजेन्ट को नामांकित करने में एजेन्ट का कर्तव्य—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 195 के अनुसार अपने नियोक्ता के लिए एजेन्ट का चुनाव करते समय एजेन्ट को उतने ही विवेक से कार्य करना चाहिए जितने विवेक से साधारण बुद्धि का व्यक्ति अपने निजी मामले में करता है । इस प्रकार से चुने गये एजेन्ट का कार्य अथवा उसकी लापरवाही के लिए वह अर्थात् मूल एजेन्ट अपने नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा ।

निर्णय—कमलेश ने अपने नियोक्ता विमलेश के लिए स्थानापन्न एजेन्ट ख्याति-प्राप्त निरीक्षक को चुना है । कमलेश ने इस कार्य में उतने ही विवेक से कार्य किया है जितने विवेक से एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति अपने निजी मामले में करता, अतः कमलेश क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता ।

8. गौरीशंकर ने विनियोग करने के लिए कुछ धन रामगोपाल को सौंपा जिसे रामगोपाल ने बिना गौरी शंकर के ज्ञान के अपने व्यापार में लगा दिया रामगोपाल बैंक दर से उस राशि पर लगातार ब्याज देता रहा किन्तु अपने व्यापार में ऊँची दर से लाभ कमाया रामगोपाल के विरुद्ध गौरी शंकर के यदि कोई अधिकार हैं तो क्या हैं ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य है :—

(i) गौरीशंकर रामगोपाल को कुछ धन विनियोग करने के लिए देता है ।

(ii) गौरीशंकर की जानकारी के बिना रामगोपाल उस धन को अपने व्यापार में लगा देता है ।

(iii) गौरीशंकर को रामगोपाल बैंक दर से उस राशि पर निरन्तर ब्याज देता रहा ।

(iv) व्यापार में रामगोपाल को काफी लाभ हुआ ।

(v) क्या गौरीशंकर को रामगोपाल के विरुद्ध कोई अधिकार है ।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्तव्य—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 211 के अनुसार एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह अपने नियोक्ता के आदेशानुसार ही कारोबार का संचालन करें, यदि नियोक्ता के आदेशों के विपरीत एजेन्ट कोई कार्य करता है तो

उससे होने वाली हानि के लिए एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से दायी होगा परन्तु यदि लाभ होता है तो उस पर नियोक्ता का अधिकार होगा।

निर्णय--गौरीशंकर को रामगोपाल से उस विनियोजित राशि से कमाये गये लाभ का हिसाब प्राप्त करने का अधिकार है तथा लाभ की अतिरिक्त राशि प्राप्त करने का अधिकार है।

9. जगमोहन अपने एजेन्ट रूपमोहन को कुछ माल उधार खरीदने के लिए भेजता है। बाद में वह उसका भुगतान कर देता है। दूसरी बार जगमोहन पुनः रूपमोहन को माल खरीदने भेजता है और रूपमोहन को इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त धन देता है। रूपमोहन उसी पुराने व्यापारी से माल उधार खरीदता है, कुछ समय पश्चात् रूपमोहन भाग जाता है। क्या जगमोहन व्यापारी को भुगतान करने के लिए बाध्य है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) जगमोहन अपने एजेन्ट रूपमोहन को कुछ माल उधार खरीदने के लिए भेजता है।

(ii) जगमोहन बाद में माल के मूल्य का भुगतान कर देता है।

(iii) दूसरी बार पुनः जगमोहन, रूपमोहन को माल खरीदने भेजता है तथा जगमोहन, रूपमोहन को पर्याप्त धन देकर भेजता है।

(iv) रूपमोहन उसी पुराने व्यापारी से जगमोहन के नाम माल उधार खरीद लाता है।

(v) कुछ समय के पश्चात् रूपमोहन रुपया लेकर भाग जाता है।

(vi) उस व्यापारी को क्या जगमोहन भुगतान करने के लिए दायी है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

नियोक्ता का तीसरे पक्षकार के प्रति दायित्व—तीसरे पक्षकार के प्रति नियोक्ता अपने एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिए उत्तरदायी है।

निर्णय—नियोक्ता अपने एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। अतः जगमोहन व्यापारी को मूल्य चुकाने के लिए दायी है।

10. सावंतसिह, लक्ष्मणसिह को 100 रुई की गाठें बेचने का अनुबन्ध करता है। बाद में मालूम होता है कि लक्ष्मणसिह गोविन्दसिह के एजेन्ट के रूप में काम कर रहा था। सावंतसिह को रुई का मूल्य चुकाने के लिए कौन बाध्य है ?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य—उपरोक्त विवाद के निम्नलिखित तथ्य हैं :—

(i) सावंतसिह ने लक्ष्मणसिह को 100 रुई की गाठें बेचने का अनुबन्ध किया।

(ii) बाद में सावंतसिह को यह ज्ञात होता है कि लक्ष्मणसिह गोविन्दसिह के एजेन्ट के रूप मे कार्य कर रहा था।

(iii) सावंतसिंह को रुई की इन 100 गांठों का मूल्य चुकाने के लिए कौन दायी है ?

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

एजेन्ट से व्यवहार करने वाले व्यक्ति के अधिकार—भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 223 के अनुसार उन सभी दशाओं में, जहाँ एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से दायी हो, उसके साथ व्यवहार करने वाला कोई भी व्यक्ति या तो एजेन्ट को या उसके नियोक्ता को या उन दोनों को उत्तरदायी ठहरा सकता है।

निर्णय—सावंतसिंह इन गांठों का मूल्य चुकाने के लिए लक्ष्मणसिंह को भी बाध्य कर सकता है और गोविन्दसिंह को भी बाध्य कर सकता है।

18

साझेदारी
(Partnership)

विषय-सामग्री—साझेदारी, अर्थ एवं परिभाषा, लक्षण, वैधता की जाँच, साझेदारी और सहस्वामित्व, साझेदारी और हिन्दू संयुक्त परिवार व्यवसाय, साझेदारी के प्रकार, साझेदारों के भेद, साझेदारी विलेख।

भारतीय साझेदारी अधिनियम जिसमें कुल 74 धाराओं का समावेश है, अक्टूम्बर 1932 से लागू हुआ। साझेदारी फर्मों के पंजीयन से सम्बन्धित इस अधिनियम की धारा (69) अक्टूम्बर 1, 1933 से क्रियान्वित की गई। यह अधिनियम इंगलिश साझेदारी अधिनियम, 1990 पर आधारित है। इस अधिनियम में उन सभी नियमों का उल्लेख है जिनके द्वारा साझेदारी का अर्थ, गठन, वैधता, विघटन और साझेदारों के आपसी सम्बन्ध, कर्त्तव्य, दायित्व, अधिकार तथा साझेदारी फर्म के पंजीयन और विघटन सम्बन्धी जानकारी होती है।

साझेदारी का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and definition of Partnership)

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति लाभ कमाने एवं उसे बाँटने के उद्देश्य से परस्पर किसी व्यवसाय के संचालन हेतु कोई समझौता करते हैं और व्यवसाय संचालन के लिए सामूहिक रूप से आवश्यक साधनों का एकत्रीकरण करते हैं, तो उनके मध्य के सम्बन्ध को "साझेदारी" कहा जाता है और ऐसे व्यक्ति "साझेदार" और सामूहिक रूप से साझेदारी फर्म कहलाते हैं।

साझेदारी का उपरोक्त अर्थ निम्न महत्वपूर्ण साझेदारी अधिनियमों द्वारा और भी स्पष्ट हो जाता है—

(1) अमेरिकन साझेदारी अधिनियम के अनुसार—इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व भारतवर्ष में साझेदारी व्यवसाय सम्बन्धित नियम भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, (1972) के अध्याय 11, की धाराओं 239 से 266 के अन्तर्गत थे।

"साझेदारी" दो या दो से अधिक उन व्यक्तियों का एक संघ है जो कि सहस्वामियों की तरह लाभ के लिए किसी व्यवसाय को चलाते हैं।

(2) इंगलिश साझेदारी अधिनियम के अनुसार—"उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध साझेदारी कहलाता है जो मिल-जुल कर लाभ कमाने के लिए किसी व्यवसाय को चलाते हैं।"

(3) भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 4 के अनुसार—"साझेदारी" उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जो कि किसी ऐसे व्यवसाय के लाभों के विभाजन हेतु सहमत हुए हैं जिसे वे सभी अथवा उन सभी के लिए उनकी ओर से उनमें से कोई चलाएं।"[1]

उपरोक्त अधिनियम के अनुसार साझेदारी अनुबन्ध के आधार पर निर्मित दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य का वह सम्बन्ध है जिसकी स्थापना व्यवसाय के अर्जित लाभों को बांटने के लिए की गई है। साझेदारी का तात्पर्य साझेदारों के बीच के सम्बन्ध से है न कि साझेदार अथवा साझेदारी व्यवसाय से है। साझेदारों के पारस्परिक सम्बन्ध से ही साझेदारी का निर्माण होता है।

साझेदारी के लक्षण
(Characteristics of Partnership)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 4 के आधार पर साझेदारी के तत्त्व, विशेषताएँ अथवा लक्षणों को निम्नानुसार समझाया गया है :—

(1) साझेदारों की न्यूनतम संख्या का दो होना (At least two Persons in Partnership)—साझेदारी व्यवसाय के लिए कम से कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है। एक अकेला व्यक्ति स्वयं का साझेदार नहीं बन सकता और इस प्रकार वह किसी साझेदारी की स्थापना नहीं कर सकता है। साझेदारी अधिनियम की धारा 41 भी यह स्पष्ट करती है कि किसी साझेदार के मरने, पागल होने या दिवालिया होने से साझेदारी फर्म में साझेदारों की संख्या जब केवल एक रह जाती है तो साझेदारी का अनिवार्यतः समापन हो जाता है।

(2) साझेदारों की अधिकतम संख्या—(Maximum number of Partners)—साझेदारों की अधिकतम संख्या के बारे में भारतीय साझेदारी अधिनियम में कुछ भी स्पष्ट नहीं बताया गया है। किन्तु भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 11 यह बतलाती है कि साधारण व्यवसाय की दशा में किसी साझेदारी में अधिक से अधिक 20 व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं और बैंकिंग व्यवसाय करने वाली साझेदारी फर्म में अधिक से अधिक 10 व्यक्ति साझेदार बन सकते हैं। इस सीमा से साझेदारों की संख्या अधिक होने पर साझेदारी अवैध होगी।

(3) साझेदारी का आधार एक अनुबन्ध का होना (*Partnership is based on an agreement*)—साझेदारी अधिनियम की धारा 4 और धारा 5 में दी गई बातों से स्पष्ट है कि साझेदारी का निर्माण अनुबन्ध के द्वारा ही हो सकता है। यह अनुबन्ध लिखित

---

1. "Partnership" is the relation between Persons who have agreed to share the profits of a business carried on by all or any of them acting for all. —Section 4

या मौखिक हो सकता है तथा अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 10 के अनुसार अनुबन्ध करने योग्य हो। इस धारा के अनुसार साझेदारों में अनुबन्ध करने की क्षमता, उनकी स्वतन्त्र सहमति, न्यायोचित प्रतिफल तथा वैध उद्देश्य के बिना साझेदारी अनुबन्ध शून्य होगा। इसलिए एक नाबालिग को साझेदार नहीं बनाया जा सकता।

स्थिति से साझेदारी का जन्म नहीं होता। यही एक ऐसी विशेषता है जो साझेदारी को अन्य कुछ संगठनों से भिन्न करती है जैसे संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य किसी प्रकार का कारोबार कर रहे हैं तो भी उनको ऐसे कारोबार में साझेदार नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके बीच में सम्बन्ध अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न नहीं होता।

साझेदारी के लक्षण

1. साझेदारों की न्यूनतम संख्या का दो होना।
2. साझेदारों की अधिकतम संख्या का 20 एवं बैंकिंग व्यवसाय होने पर 10 होना।
3. अनुबन्ध का होना।
4. व्यवसाय किया जाना।
5. व्यवसाय से अर्जित लाभों को बाँटा जाना।
6. व्यवसाय एक या अधिक अथवा सभी साझेदारों द्वारा किया जाना।
7. अन्य विशेषताएँ
   1. दोहरी स्थिति
   2. असीमित दायित्व
   3. सर्वसम्मति से निर्णय
   4. व्यक्तियों का साझेदार होना
   5. पारस्परिक सद्विश्वास
   6. अस्तित्व
   7. पूँजी विनियोग
   8. फर्म का नाम निश्चित होना
   9. वैधानिक स्थिति।

(4) व्यवसाय किया जाना (Business activity)—साझेदारी में व्यवसाय कार्य का होना जरूरी है तथा ऐसा व्यवसाय वैध भी होना चाहिये। व्यवसाय कार्य से यहाँ अभिप्राय धन्धा, पेशा, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, सेवाएँ आदि से सम्बन्धित क्रियाओं से है। व्यवसाय के न होने पर व्यक्तियों के समूह को साझेदारी नहीं कहा जा सकता।

उदाहरण—सोनू और मोनू मिलकर रूई की 500 गाँठे खरीद कर आपस में बाँट लेते है। सोनू और मोनू साझेदार नहीं हैं क्योंकि उन्होंने कोई कारोबार नहीं किया। वे केवल संयुक्त पूँजी एवं साधनों के सह-स्वामी (Co-owners) माने जाएँगे। अगर वे उन गाँठों को मिलकर बेचने का अनुबन्ध करें तो उन्हें साझेदार कहा जा सकता है। यहाँ यह ध्यान में रहे कि कारोबार का दीर्घकालीन होना आवश्यक नहीं है। एक कार्य विशेष अथवा अल्पकालीन अवधि के लिए भी साझेदारी हो सकती है।

(5) व्यवसाय से अर्जित लाभ को बाँटना (Sharing Profits from Business)—साझेदारी में केवल व्यवसाय करना ही पर्याप्त नहीं होता, अपितु उसका प्रमुख उद्देश्य साझेदारों में लाभ बाँटना है। इसमें यह बात छिपी हुई है कि व्यवसाय का उद्देश्य लाभ होना चाहिये। जनकल्याण सेवाकार्य एवं मनोरंजन के लिए की जाने वाली क्रियाओं को

जिनका उद्देश्य लाभार्जन करना नहीं है, व्यवसाय नहीं माना जा सकता। उदाहरण के तौर पर वरुण, पिन्टु व अमित सैनिकों की विधवाओं को क्रय मूल्य पर खाद्य सामग्री देने के लिए दिल्ली में कुछ दुकाने चलाते हैं। यहाँ वरुण, पिन्टू एवं अमित का उद्देश्य सेवा करना है न कि लाभार्जन करना। अतः वरुण, पिन्टू एवं अमित को साझेदार नहीं कहा जा सकता।

साझेदारी में लाभ कमाने के साथ-साथ लाभ का बंटवारा करना आवश्यक होता है। उदाहरणतया अगर मनोज, राकेश एवं कैलाश अनुबन्ध के अनुसार ऐसी शर्तों पर व्यवसाय करते हैं, जिनके फलस्वरूप कैलाश को लाभ में हिस्सा नहीं मिलेगा तो ऐसी स्थिति में न तो कैलाश को साझेदार माना जाएगा और न ही उनका पारस्परिक सम्बन्ध साझेदारी का रूप लेगा।

भारतीय साझेदारी विधान की धारा 13 के अनुसार लाभों का विभाजन सभी साझेदारों में बराबर होता है परन्तु, साझेदार चाहे तो समझौता करके लाभ-विभाजन का अनुपात कम-ज्यादा अथवा पूँजी के अनुपात में कर सकते हैं। साझेदारी व्यवसाय में हानि भी किसी अन्य समझौते के अभाव में साझेदारों द्वारा उनके लाभ-विभाजन के अनुपात में सहन की जाती है। अगर साझेदार चाहें तो उनके हानि व लाभ के हिस्से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। उनका आपस में समझौता करने पर कुछ साझेदारों का केवल लाभ में हिस्सा रखा जा सकता है अर्थात् हानि में नहीं। इस प्रकार प्रत्येक साझेदार को हानि सहन करना आवश्यक नहीं है, परन्तु लाभ में हिस्सा बँटाना आवश्यक होता है।

(6) व्यवसाय संचालन एक या अधिक अथवा सभी साझेदारों द्वारा (Business carried on by all Partners or any of them)—सभी साझेदारों को साझेदारी व्यवसाय चलाने का अधिकार होता है किन्तु, ये जरूरी नहीं है कि सभी साझेदार सक्रिय रूप से साझेदारी व्यवसाय में हाथ बँटाएँ। साझेदारी व्यवसाय का संचालन सभी साझेदारों की सहमति से किसी एक या अधिक साझेदारों को सौंपा जा सकता है। यदि किसी साझेदार को साझेदारी व्यवसाय-संचालन के अधिकार से वंचित किया जाता है तो ऐसा व्यवसाय साझेदारी संगठन का रूप नहीं ले सकता है।

(7) अन्य विशेषताएँ (Other Characteristics)

(1) दोहरी स्थिति :—साझेदारी में प्रत्येक साझेदार एक-दूसरे का अभिकर्ता भी होता है और साझेदारी फर्म का स्वामी भी। स्वामी के रूप में वह अन्य साझेदारों के द्वारा किये गए कार्यों के लिए जिम्मेवार रहता है और अभिकर्ता के रूप मे किये गए कार्यों से साझेदारी फर्म को बद्ध करता है। वास्तव में साझेदारी अधिनियम एजेन्सी अधिनियम की एक शाखा है। किसी साझेदार द्वारा किया गया कार्य साझेदारी फर्म और अन्य साझेदारों द्वारा किया गया कार्य माना जाता है। फर्म और अन्य साझेदार नियोक्ता की दृष्टि से उसके कार्यों से बद्ध रहते हैं। उदाहरणार्थ—चन्द्रप्रकाश, मुकेश और नरेन्द्र एक फर्म में साझेदार हैं। साझेदार चन्द्रप्रकाश साझेदारी फर्म के लिये भरत नामक व्यक्ति से व्यवहार करता है। यहाँ चन्द्रप्रकाश, मुकेश एवं नरेन्द्र का प्रतिनिधि है और उन सभी पर या उनमे

से किसी पर भी भरत द्वारा वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु यहाँ पर ये ध्यान में रहना चाहिये कि एक साझेदार के कार्यों से साझेदारी फर्म उसी दशा में बद्ध होगी जबकि ऐसे कार्य फर्म के कारोबार से सम्बन्धित हों।

(2) असीमित दायित्व—साझेदारी फर्म में साझेदारों का दायित्व असीमित होता है। प्रत्येक साझेदार व्यक्तिगत एवं संयुक्त दोनों रूप से फर्म के दायित्वों के लिए उत्तरदायी है। साझेदारी फर्म के ऋणों को चुकाने के लिए फर्म की सम्पत्ति अपर्याप्त रहने पर साझेदारों को वैयक्तिक पूँजी लाने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त फर्म के ऋणदाता फर्म से ऋण वसूल न कर पाने पर किसी एक या कुछ या सभी साझेदारों से भी तमाम ऋण का भुगतान पाने के लिए उन पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

साझेदारी फर्म का ऋण यदि किसी एक साझेदार द्वारा चुकाया जाता है तो वह अन्य साझेदारों से कानूनन उनके हिस्से की ऋण राशि वसूल करने का अधिकार होता है। उदाहरण के तौर पर अकबर, एंथोनी एवं अमर एक साझेदारी फर्म में तीन बराबर के हिस्सेदार हैं। फर्म पर कुल ऋण तीन लाख रुपये हैं जबकि, फर्म की सम्पत्ति केवल दो लाख चालीस हजार रुपये की ही है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक साझेदार द्वारा ऋण चुकाने के लिए बीस हजार रुपये की राशि देनी होगी। किसी एक साझेदार—जैसे अमर द्वारा अपने हिस्से की राशि न लाने पर अन्य साझेदार अकबर व एंथोनी से ऋणदाता द्वारा यह राशि वसूल की जा सकेगी। इस प्रकार साझेदारों का दायित्व व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से असीमित है।

(3) सर्वसम्मति से निर्णय—साझेदारी में कुछ महत्त्वपूर्ण बातों—जैसे किसी साझेदार के हित का हस्तान्तरण, लाभ हानि के अनुपात में परिवर्तन इत्यादि पर निर्णय अन्य साझेदारों की सर्व सम्मति के बिना नहीं किया जा सकता परन्तु, दैनिक मामलों अथवा कम महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय बहुमत के आधार पर हो सकता है।

(4) केवल व्यक्ति ही साझेदार बन सकता है—कोई भी समामेलित संस्था जैसे कम्पनी, निगम इत्यादि और अन्य पंजीयित संस्थाएँ साझेदार हो सकती हैं। किन्तु साझेदारी फर्म स्वतन्त्र अस्तित्व न होने से साझेदार नहीं बन सकती।

(5) पारस्परिक सद्विश्वास—"साझेदारी समझौतों का आधार पारस्परिक सद्विश्वास होता है। इसलिए प्रत्येक साझेदार को चाहिये कि वह परस्पर न्याय, लग्न, ईमानदारी एवं निष्ठा के साथ कार्य करें।

(6) अस्तित्व—साझेदारी, फर्म व साझेदार अलग-अलग नहीं होते। यदि सभी साझेदार पृथक हो जाते हैं अथवा कोई भी पागल या दिवालिया हो जाता है तो साझेदारी समाप्त हो जाती है।

(7) पूँजी विनियोग—साझेदारी व्यवसाय में प्रत्येक साझेदार द्वारा पूँजी लगाना अनिवार्य नहीं होता।

(8) फर्म का नाम निश्चित होना—साझेदारी व्यवसाय के लिए आवश्यक है कि वह किसी निश्चित नाम से कारोबार करे। इसी नाम को साझेदार फर्म का वैधानिक नाम कहा जाता है। इस नाम में साझेदारों के नामों को शामिल किया जाना जरूरी नहीं है किन्तु, नाम इस प्रकार का नहीं होना चाहिये जिससे सरकारी संरक्षण का आभास होता

हो अथवा इसी नाम की कोई अन्य व्यापारिक फर्म हो। इसके अतिरिक्त फर्म के नाम का चुनाव करते वक्त साझेदारी अधिनियम की धारा 58 (3) व व्यापारिक नाम और ख्याति सम्बन्धी प्रावधानों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 58 (3) में बिना सम्बन्धित पक्षकारों की अनुमति के निम्न शब्दों का प्रयोग फर्म के नाम हेतु निषिद्ध है। पालियामेन्ट, सम्राट, साम्राज्ञी, साम्राज्य, राजपद, राजा, रानी, शाही, जिन्ना, कायदे-आजम, संयुक्त, राष्ट्र संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, और वे सभी शब्द जिनसे सरकार का अनुमोदन एवं संरक्षण का आभास होता है।

(9) वैधानिक स्थिति—साझेदारी व्यवसाय भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धाराओं से नियन्त्रित होता है, किन्तु इससे यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि साझेदारी व्यवसाय और साझेदारों का अस्तित्व अलग-अलग है।

साझेदारी की जाँच
(Test of Partnership)

व्यक्तियों का कोई समूह साझेदारी है अथवा नहीं, इसकी जाँच एक कठिन समस्या है। कुछ व्यक्ति किसी पारस्परिक समझौते के आधार पर अपने को साझेदार बताते हैं जबकि वे वैधानिक तौर से साझेदार नहीं होते। सन् 1972 में राजस्थान उच्च न्यायालय ने लक्ष्मीबाई बनाम रोशनलाल के मामले में यह निर्णय दिया कि केवल "साझेदार" अथवा "साझेदारी" शब्द के प्रयोग से कोई फर्म साझेदारी फर्म नहीं बनती। इस प्रकार अपने को साझेदारी फर्म न मानने वाला कोई समूह या संस्था कानून की दृष्टि से साझेदारी फर्म हो सकती है।

साझेदारी की विद्यमानता का निर्धारण करने के लिये भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 4 के अनुसार साझेदारी के लक्षणों को धारा, 5 के अनुसार साझेदारों की उत्पत्ति और धारा 6 के अनुसार साझेदारों के वास्तविक सम्बन्धों तथा उनकी अनुबन्ध करने की क्षमता को देखना चाहिये। इन धाराओं पर आधारित निम्न तथ्य किन्हीं व्यक्तियों के समूह को साझेदारी और ऐसे व्यक्तियों को साझेदार सिद्ध करने में सहायक होते हैं :—

साझेदारी विद्यमानता की जाँच के आधार

1. साझेदारी के तत्व
2. साझेदारी की उत्पत्ति
3. पक्षकारों के वास्तविक सम्बन्ध
4. अन्य तथ्य
   (अ) कार्य-विधि
   (आ) गोपनीय पुस्तकों तक पहुँच
   (इ) एक-दूसरे के कार्य से बद्ध होना
   (ई) व्यक्तियों की अधिकतम संख्या

(1) साझेदारी के तत्व—भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 4 के अनुसार किसी समूह को तभी साझेदार कहा जा सकता है जबकि उस समूह के मध्य एक लिखित अथवा मौखिक समझौता हुआ है और उसमें निम्न तत्व विद्यमान हैं :—

(अ) समझौते में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का और उनकी संख्या साधारण व्यवसाय की दशा में अधिक से अधिक 20 तथा बैंकिंग व्यवसाय की दशा में अधिकतम संख्या 10 का होना।

(आ) समझौता करने वाले व्यक्तियों का अनुबन्ध करने योग्य होना, ।
(इ) समझौता किसी वैध व्यवसाय के संचालन के लिए किया जाना।
(ई) समझौते में सभी साझेदारों में लाभों के विभाजन की बात का शामिल किया जाना।
(उ) व्यवसाय-संचालन का अधिकार सभी साझेदारों को दिया जाना अथवा साझेदारों की सहमति से कोई एक या अधिक साझेदारो को व्यवसाय-संचालन के कार्य का सौंपा जाना।

(2) साझेदारी की उत्पत्ति—भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 5 के अनुसार साझेदारी की उत्पत्ति एक अनुबन्ध से होती है । किसी स्थितिवश उसका निर्माण नही होता है। अतः हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य जो पारिवारिक व्यवसाय मे लगे हुए हैं और लाभों का विभाजन भी करते हैं, साझेदार नही माने जा सकते है। बौद्ध धर्म पालन करने वाले बर्मी पति-पत्नी अगर कोई व्यवसाय करके उपार्जित लाभ का विभाजन करते हैं तो भी उन्हें साझेदार नहीं माना जा सकता। हिन्दू संयुक्त परिवार के सदस्य और बौद्ध पति-पत्नी स्थिति वश व्यवसाय और उससे उपार्जित लाभों के अधिकारी हैं न कि अनुबन्ध के अनुसार।

(3) पक्षकारों के वास्तविक सम्बन्ध—भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 6 के अनुसार साझेदारी की कसौटी ही पक्षकारों (कथित साझेदारो) के वास्तविक सम्बन्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में कावस बनाम हिकमैन का मुकदमा भी प्रकाश डालता हैं। इसमें न्यायाधीश ने अपने निर्णय मे बताया है कि "यह निर्णय करते वक्त कि 'व्यक्तियों का समूह साझेदारी है या नहीं' उनके आपस के सम्बन्धों पर जोर देना होगा।" धारा 6 में वर्णित तथ्यों और धारा 4 के संदर्भ में साझेदारी की विद्यमानता की जांच करते वक्त निम्न दो बातों को भी ध्यान मे रखना चाहिये :—

(अ) साझेदारी और सह-स्वामित्व में भिन्नता होना,
(आ) व्यवसाय के लाभ का वितरण साझेदारी का निश्चयात्मक प्रमाण नही होना,

(अ) साझेदारी और सह स्वामित्व की भिन्नता—"साझेदारी और सह-स्वामित्व अलग-अलग हैं। सह-स्वामित्व से अभिप्राय किसी सम्पत्ति के एक से अधिक स्वामी होने से है। जबकि साझेदारी का अर्थ दो या दो से अधिक व्यक्तियों का मिलकर किसी समझौते द्वारा लाभ कमाने व बाँटने हेतु व्यवसाय करना होता है।

उदाहरणार्थ—श्याम एवं कैलाश मिलकर एक मकान क्रय करते हैं, उससे उपार्जित किराया भी आपस में बाँट लेने का समझौता करते है तो भी श्याम और कैलाश का सम्बन्ध यहाँ पर साझेदारी का नही है कारण कि उनका कार्य किसी व्यवसाय से सम्बन्धित नही है वे केवल मकान के सह-स्वामी हैं परन्तु यदि उस मकान मे लाभ कमाने एवं उसे बाँटने के लिए होटल व्यवसाय प्रारम्भ कर देते है, तो उन्हें होटल व्यवसाय में साझेदार कहा जावेगा तथा उनका होटल व्यवसाय साझेदारी व्यवसाय माना जायगा ।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि किसी सम्पत्ति से होने वाली सकल आय अथवा लाभ को उस सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा बाँट लेना, ऐसे व्यक्तियो को साझेदार नही बना देता। साझेदारी और सह-स्वामित्व की भिन्नता को आगे दी गई तालिका में समझाया गया है।

तालिका

क्र स	आधार	साझेदारी	सह-स्वामित्व
1.	अधिनियम होना	साझेदारी के लिए भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 लागू होता है।	सह-स्वामित्व के लिये अलग से कोई अधिनियम नहीं है।
2.	अनुबन्ध की आवश्यकता	साझेदारी निर्माण के लिये अनुबन्ध आवश्यक है। अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक हो सकता है।	सह-स्वामित्व के लिये अनुबन्ध आवश्यक नहीं होता। उत्तराधिकार के नियम के अन्तर्गत भी सह-स्वामी बन सकते हैं।
3.	असीमित उत्तरदायित्व	प्रत्येक साझेदार का दायित्व संयुक्त और व्यक्तिगत रूप से असीमित होता है।	सह-स्वामित्व में सह-स्वामियों का दायित्व असीमित नही होता।
4.	व्यवसाय का होना तथा उससे लाभ कमाना व बाँटना	व्यवसाय किया जाना और उससे लाभ कमाना व बाँटना ही उद्देश्य है।	व्यवसाय के बजाय संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त करना ही उद्देश्य है।
5.	हितो का हस्तान्तरण	साझेदारी में अन्य साझेदारों की अनुमति बिना एक साझेदार अपने हिस्से का हस्तान्तरण नही कर सकता।	सह-स्वामी अपने हिस्से का हस्तान्तरण अन्य सह-स्वामियों की सहमति बिना भी कर सकता है।
6.	प्रतिनिधित्व	प्रत्येक साझेदार फर्म व अन्य साझेदारो का प्रतिनिधित्व करता है।	सह-स्वामी अन्य सह-स्वामियों के प्रतिनिधि नही माने जाते।
7.	अधिकतम संख्या	साझेदारो की अधिकतम संख्या बीस (बैंकिंग व्यवसाय मे दस) होती है।	सह-स्वामियों की अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नही है।
8.	ग्रहणाधिकार	साझेदारी की सम्पत्ति पर साझेदारों का ग्रहणाधिकार होता है।	सह-स्वामी का सह-स्वामित्व वाली सपत्ति पर ग्रहणाधिकार नही होता।

क्र. सं.	आधार	साझेदारी	सह-स्वामित्व
9.	बँटवारे की मांग	साझेदार साझेदारी मे अपना हिस्सा अलग करवा सकता है परन्तु बँटवारे की माग नहीं कर सकता।	सह-स्वामित्व मे कोई भी सह-स्वामी बँटवारे की मांग कर सकता है।
10.	उत्तराधिकारी	मृतक साझेदार का उत्तराधिकारी साझेदारी में स्वतः साझेदार नही बन पाता है।	मृतक सह-स्वामी का उत्तराधिकारी स्वत. सह-स्वामी हो जाता है।
11.	अस्तित्व	साझेदारी व साझेदारों का अस्तित्व अलग-अलग नही होता अत. किसी साझेदार की मृत्यु साझेदारी के समापन का कारण हो जाता है।	सह-स्वामित्व किसी एक सह-स्वामी की मृत्यु से समाप्त नहीं होता।

(आ) व्यवसाय से होने वाले लाभों का वितरण साझेदारी का निश्चयात्मक प्रमाण नहीं होना—यह धारणा गलत है कि जो लाभों में हिस्सा लेते हैं वे अवश्य साझेदार होते हैं। लाभों मे हिस्सा साझेदारी होने का निश्चयात्मक प्रमाण नही है।

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 6 के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति साझेदारी के लाभों में से कोई अंश लेने पर अथवा लाभ पर आधारित भुगतान लेने पर भी न तो साझेदार होते हैं और न ही उनके द्वारा साझेदारी का निर्माण होता है।

(1) ऋणदाता, ब्याज के अतिरिक्त फर्म के लाभों में से कोई निश्चित भाग प्राप्त करने का अधिकारी होता है। उदाहरणतया गोपेश नामक व्यक्ति एक साझेदारी फर्म को ऋण देते वक्त एक शर्त यह लगा देता है कि वह फर्म से न केवल ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी होगा बल्कि फर्म के शुद्ध लाभ में पूर्व निर्धारित हिस्सा भी लेगा तथा ऋण की सुरक्षा के लिये फर्म के व्यवसाय पर नियन्त्रण भी रखेगा। यहाँ पर ऋणदाता गोपेश को व्यवसाय में हाथ बँटाने का प्रत्यक्ष अधिकार नही होने के फलस्वरूप साझेदार नहीं माना जा सकता। यहाँ पर अनुबन्ध ऋणदाता गोपेश व साझेदारों मे साझेदारी का अनुबन्ध न होकर, ऋण व जमानत का अनुबन्ध है।

(2) कर्मचारी अथवा एजेन्ट, अपने पारिश्रमिक के बदले अथवा पारिश्रमिक के अलावा साझेदारी फर्म के लाभो मे एक निश्चित हिस्सा लेता है। उदाहरणतया, कमल को एक साझेदारी फर्म द्वारा 2000 रु. प्रति माह पर प्रबन्धक नियुक्त किया गया और उसे वेतन के अलावा फर्म के शुद्ध लाभ मे एक-तिहाई अंश देने का भी समझौता किया गया, साथ ही वह हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होगा। यहाँ कमल एक कर्मचारी है न कि साझेदार। उसे लाभ मे हिस्सा वेतन के रूप मे प्राप्त हो रहा है। वह फर्म का स्वामी नही है।

अन्य उदाहरण—मोहन अपने नाम से किसी सीमित दायित्व वाली कम्पनी के लिये ठेले लदाने व खाली करवाने (Loading and unloding) का ठेका लेता है। इस कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये वह सोहन को सौंप देता है इस शर्त पर कि, शुद्ध लाभ में से उसे आधा भाग पुरस्कार के रूप में दिया जावेगा तथा साथ ही हानि के लिये वह उत्तरदायी नहीं होगा। वास्तव में यहाँ सोहन व मोहन में साझेदारी नहीं हैं, बल्कि उनमें ऐजेन्ट व नियोक्ता का सम्बन्ध है।

(3) मृत साझेदार की वह विधवा अथवा बच्चे जो कि वार्षिक वृत्ति के रूप में साझेदारी फर्म के लाभों का कुछ भाग प्राप्त करते हैं, इनको साझेदारी फर्म का साझेदार नहीं माना जा सकता।

(4) किसी व्यवसाय का वह भूतपूर्व स्वामी या उस व्यवसाय के किसी एक भाग का स्वामी सारा या अपने अंश को वेचने के बदले में लाभों में हिस्सा पाता है। इस प्रकार व्यक्ति यद्यपि लाभो मे हिस्सेदार है, फिर भी साझेदार नहीं कहला सकता हैं।

(5) हिन्दु संयुक्त परिवार के सदस्य व्यवसाय के लाभों को बांटते हैं, तो भी उन्हें साझेदार नही कहा जा सकता।

(4) साझेदारी की विद्यमानता के अन्य तथ्य—साझेदारी की विद्यमानता पर निम्न तथ्य भी प्रकाश डालते हैं—

(अ) कार्य विधि से साझेदारी का आभास—फर्म की कार्य विधि की जानकारी भी उसे साझेदारी फर्म की संज्ञा प्रदान करने मे सहायता करती हैं। इस सम्बन्ध मे शांति-रंजन दास गुप्ता बनाम बासुराम मुर्जा मिलो के बारे मे कलकत्ता उच्च न्यायालय 1973 मे दिये गये फैसले में बताया गया कि यदि साझेदारों के पास लिखित अनुवन्ध नही है, न ही कोई लिखित हिसाब-किताब है न ही बैंक मे साझेदारों का खाता है और न ही किसी सरकारी अफसर ने साझेदारी मानता स्वीकार किया है तो इन दशाओं मे लाभो का बांटना इस बात का पर्याप्त प्रमाण नही है, जिसके आधार पर फर्म को साझेदारी फर्म के रूप में माना जा सके।

(आ) फर्म की पुस्तकों एवं बहीखातों तक पहुँच—साझेदारी फर्म का पता इस बात से भी लगाया जा सकता है कि क्या फर्म के प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार है कि वह फर्म की कोई गोपनीय पुस्तक कागज व वहियों को देख सके और उनकी प्रतिलिपियाँ ले सकें। साझेदारी फर्म में प्रत्येक साझेदार को गर्भित रूप मे इस प्रकार का अधिकार होता है।

(इ) साझेदारों के कार्यों से अन्य साझेदार का बद्ध होना—साझेदारी का आभास इस तथ्य से भी प्रकट होता है कि साझेदारों द्वारा किये गये कार्य अन्य साझे-दारों और फर्म को बद्ध करते है या नहीं।

उदाहरण—एक साझेदार साझेदारी फर्म में व्यवसाय के लिये तीसरे पक्ष से अनुबन्ध करता है तो वह तीसरे पक्ष के लिये *फर्म का स्वामी भी है और अन्य साझेदारों* का एजेन्ट भी। अतः यदि फर्म व अन्य साझेदारों को ऐसे साझेदार के कार्य बद्ध नहीं करते हैं, तो फर्म को साझेदारी नही कहा जा सकता।

(ई) व्यक्तियों की अधिकतम संख्या—फर्म में साझेदारों की संख्या अधिकतम (20) बैंकिंग व्यवसाय की दशा में (10) हो सकती हैं। अगर साझेदारों की संख्या अधिकतम सीमा से अधिक है, तो फर्म को वैध साझेदारी नही माना जा सकता।

निष्कर्ष—व्यक्तियों के समूह को साझेदारी मानने से पूर्व निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ में होना आवश्यक है :—

(क) क्या उन्होने कोई अनुबन्ध किया है ?
(ख) क्या अनुबन्ध का उद्देश्य वैध व्यवसाय चलाकर लाभ कमाना है ?
(ग) क्या लाभ उनमें परस्पर बाँटा जाता है ?
(घ) क्या व्यवसाय करने के लिये किसी साझेदार को वंचित किया गया है ?
(ङ) क्या वह समूह सह-स्वामित्व तो नही है ?
(च) क्या उनके समूह की अधिकतम संख्या भारतीय कम्पनी अधिनियम धारा 11 के अनुसार है ?
(छ) क्या वे अपने कार्यों से एक दूसरे को व फर्म को बद्ध करते हैं ?
(ज) क्या उन व्यक्तियों की पहुँच समूह की गोपनीय पुस्तकों तक है ?

साझेदारी फर्म और संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय में अन्तर

(Distinction between Partnership and Joint Hindu family business)

साझेदारी फर्म और संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय का अन्तर निम्न तालिका मे दर्शाया गया है :—

क्र सं.	अन्तर का आधार	साझेदारी व्यवसाय	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय
1.	अधिनियम लागू होना	साझेदारी व्यवसाय के लिये भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 लागू होता है।	संयुक्त हिन्दू परिवार के लिये हिन्दू अधिनियम लागू होता है।
2.	सदस्य संख्या	साझेदारी व्यवसाय मे साझेदारों की सख्या 20 और बैंकिग व्यवसाय में अधिकतम 10 होती है।	संयुक्त हिन्दू परिवार मे सदस्यों की सख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। परिवार के सभी पुरुष और उत्तराधिकारी के अभाव में विधवायें सदस्य मानी जाती हैं। चाहे उनकी संख्या कुछ भी हो।
3.	अनुबन्ध की योग्यता	साझेदारी व्यवसाय मे केवल उन व्यक्तियों को लिया जाता है जिनमें अनुबन्ध करने की योग्यता होती है ऐसे व्यक्तियों में स्त्रियाँ भी शामिल हैं।	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय में सभी पुरुष चाहे वे अनुबन्ध योग्य न हों, संयुक्त परिवार व्यवसाय के सदस्य होते हैं।

क्र. सं.	अन्तर का आधार	साझेदारी व्यवसाय	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय
4.	व्यवसाय द्वारा लाभ और उसे बाँटने का अनुबन्ध	साझेदारी व्यवसाय मे व्यवसाय-लाभ कमाने और उसे बाँटने का अनुबन्ध होना आवश्यक है।	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय मे प्रत्येक सदस्य को स्वतः हिस्सा प्राप्त होता है उन्हे अलग से अनुबन्ध करने की आवश्यकता नही होती।
5.	पंजीयन	साझेदारी में व्यावहारिक रूप से पंजीयन आवश्यक हो जाता है।	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय के पंजीयन की कोई आवश्यकता नही है।
6.	ऋण लेने का अधिकार	साझेदारी फर्म के लिये किसी भी साझेदार को ऋण लेने का अधिकार है।	हिन्दू संयुक्त परिवार में ऋण लेने का अधिकार केवल कर्त्ता को है।
7.	दायित्व	साझेदारी फर्म मे साझेदारो का दायित्व असीमित होता है। वे फर्म के ऋणो के लिये व्यक्तिगत और संयुक्त रूप से दायी है।	संयुक्त हिन्दू परिवार में केवल कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है। परिवार के अन्य सदस्य परिवार के ऋणों के लिये दायी नही है।
8.	लाभ-हानि	साझेदारी व्यवसाय मे प्रत्येक साझेदार विपरीत समझौते के अभाव में लाभ-हानि में बराबर हिस्सेदार होता है।	संयुक्त परिवार व्यवसाय की लाभ-हानि मे प्रत्येक सदस्य का हिस्सा उनके पैतृक सम्पत्ति मे हिस्से के अनुसार होता है।
9.	सम्पत्ति में हिस्सा	साझेदारों का साझेदारी की सम्पत्ति में हिस्सा उनके पूँजी अनुपात पर निर्भर है।	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय की सम्पत्ति में सदस्यों का हिस्सा उनकी पैतृक सम्पत्ति के अनुपात में होता है।
10.	पारस्परिक सम्बन्ध	साझेदारी फर्म में साझेदार एक दूसरे के कार्यों के लिए उत्तरदायी है और उनमें प्रत्येक साझेदारी फर्म का स्वामी व अन्य साझेदारों का प्रतिनिधि होता।	संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य एक-दूसरे को अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नही ठहरा सकते। केवल कर्त्ता ही कारोबार के उद्देश्य के लिए संयुक्त हिन्दू परिवार की सम्पत्ति

क्र. सं.	अन्तर का आधार	साझेदारी व्यवसाय	संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय
			व, साख, गिरवी रखने का अधिकारी होता है तथा अपने कार्यों द्वारा अन्य सदस्यों को कार्यबद्ध कर सकता है।
11.	आकस्मिक घटना	साझेदार की मृत्यु, पागलपन अथवा दिवालियापन आदि से साझेदारी का समापन हो जाता है।	हिन्दू संयुक्त परिवार व्यवसाय किसी भी सदस्य की मृत्यु, पागलपन या दिवालियापन से बन्द नहीं होता।
12.	व्यवसाय सम्बन्धी अधिकार	व्यवसाय-सचालन व अनुबन्ध करने का अधिकार साझेदारी में प्रायः प्रत्येक साझेदार को होता है।	हिन्दू संयुक्त परिवार में व्यवसाय संचालन और अनुबन्ध करने का अधिकार केवल कर्त्ता को है।
13.	सदस्यता	साझेदारी में सदस्यता केवल अनुबन्ध से ही मिलती है।	हिन्दू संयुक्त परिवार व्यवसाय में परिवार में जन्म लेने से मिलती है।
14.	अस्तित्व	साझेदारी व साझेदारों का पृथक अस्तित्व नहीं। है	हिन्दू संयुक्त परिवार-व्यवसाय के सदस्यों का अपना पृथक अस्तित्व भी होता है।
15.	हिसाब देखने का अधिकार	अवकाश प्राप्त साझेदार भी अन्य साझेदारों से पिछले वर्षों का हिसाब ले सकता है।	हिन्दू संयुक्त परिवार-व्यवसाय से अलग हो जाने पर कोई भी सदस्य कर्त्ता से पिछला हिसाब नही माँग सकता है।
16.	उत्तराधिकारी का अधिकार	मृतक साझेदार के उत्तराधिकारी को साझेदार बनाया जाना आवश्यक नहीं है।	हिन्दू संयुक्त परिवार-व्यवसाय में सदस्य की मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी स्वतः सदस्य बन जाता है।

साझेदारी के प्रकार

(Types of Partnership)

साझेदारी निम्न प्रकार की हो सकती है—

(1) ऐच्छिक अथवा अनिश्चितकालीन साझेदारी (Partnership at will) भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 7 के अनुसार जब किसी साझेदारी के अनुबन्ध में अवधि सम्बन्धी बात का समावेश नही किया जाता तो ऐसी साझेदारी को ऐच्छिक अथवा अनिश्चितकालीन साझेदारी कहते हैं। इस प्रकार की साझेदारी में किसी भी इच्छित समय तक कोई भी वैध व्यवसाय चला सकते हैं। अगर कोई साझेदार चाहे तो अन्य साझेदारों को नोटिस देकर किसी निश्चित तिथि से साझेदारी को समाप्त करा सकता है।

(2) विशिष्ट साझेदारी (Particular Partnership)—भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 8 के अनुसार विशिष्ट साझेदारी वह है, जिसकी स्थापना किसी विशेष कार्य हेतु की जाती है। विशिष्ट कार्य के समाप्त हो जाने पर ऐसी साझेदारी स्वत: ही समाप्त हो जाती है।

(3) सामान्य साझेदारी (Ordinary Partnership)—यह साझेदारी व्यवसाय को चलाने के लिए स्थापित की जाती है और उस समय तक चलती रहती है, जब तक कि उसे समाप्त न कर दिया जावें अर्थात् इस प्रकार की साझेदारी न तो किसी विशेष व्यवसाय के लिए होती है और न ही किसी अवधि के लिए।

(4) निश्चितकालीन साझेदारी (Fixe dterm Partnership)—अगर साझेदारी की स्थापना एक विशेष अवधि जैसे 5 वर्ष, 10 वर्ष आदि तक के लिए की जाती है तो इस प्रकार की साझेदारी को निश्चितकालीन साझेदारी कहा जाता है। इस प्रकार की साझेदारी की अवधि साझेदारी अनुबन्ध करते वक्त ही तय कर ली जाती है। ऐसी साझेदारी निश्चित अवधि समाप्त हो जाने पर स्वत: समाप्त हो जाती है।

(5) सीमित दायित्व वाली साझेदारी (Limited Partnership)—सीमित दायित्व वाली साझेदारी मे एक अथवा कुछ साझेदारो को छोड़कर शेष के दायित्व उनके द्वारा दी गई पूँजी तक सीमित होते हैं। भारत वर्ष में ऐसी साझेदारी की स्थापना नही की जा सकती। ऐसी साझेदारी की व्यवस्था प्राय. इंगलैण्ड व अमेरिका मे पाई जाती है।

(6) असीमित दायित्व वाली साझेदारी (Unlimited Partnership)—यह वह साझेदारी है, जिसमें साझेदारों का दायित्व असीमित होता है। भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 इसी प्रकार की साझेदारी को मान्यता प्रदान करता है। ऐसी साझेदारी को सामान्य साझेदारी भी कहते हैं तथा इसमे साझेदारो का दायित्व संयुक्त एवं पृथक् रूप से असीमित होता है।

(7) अवैध साझेदारी (Illegal Partnership)—भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 23 एवं अन्य अधिनियमो के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियो में साझेदारी अवैध मानी जाती है—

1. साझेदारी न्यायालय द्वारा भेद किये जाने पर भी जारी रहे।
2. साझेदारों की संख्या घट कर एक रह जाए और साझेदारी व्यवसाय बना रहे।
3. साझेदारों की संख्या सामान्य व्यवसाय की दशा में 20 से अधिक तथा बैंकिंग व्यवसाय मे 10 से अधिक हो जाए एवं साझेदारों का व्यवसाय बना रहे।
4. साझेदारी फर्म का कोई साझेदार किसी शत्रु राष्ट्र से सम्बन्धित हो अथवा साझेदारी का व्यवसाय किसी शत्रु राष्ट्र के साथ किया जा रहा हो।
5. साझेदारी व्यवसाय का उद्देश्य किसी लोक-नीति अथवा अन्तर्राष्ट्रीय नीति के विरुद्ध है या हो जाता है अथवा किन्हीं कानूनी व्यवस्थाओं के प्रतिकूल पड़ता है।
6. किसी निश्चित अवधि वाली अथवा विशिष्ट कार्य वाली साझेदारी अवधि के अथवा कार्य के पूर्ण हो जाने पर भी व्यवसाय जारी रखें।

साझेदारों के भेद
(Kind of Partners)

साझेदारों के दायित्वों, अधिकारों एवं कार्यो के अनुसार उनमें भेद किये जा सकते हैं। प्रमुख प्रकार के साझेदारो का वर्णन निम्नानुसार है–

(1) सामान्य अथवा सक्रिय साझेदार (General or active partner)—उन साझेदारों को सामान्य अथवा सक्रिय साझेदार माना जाता है, जिन्हें अनुबन्ध के आधार पर फर्म के व्यवसाय में सक्रिय रूप से भाग लेना होता है तथा जिनका दायित्व संयुक्त और व्यक्तिगत रूप से असीमित होता है। ऐसे साझेदारो के कार्यों से साझेदारी फर्म बद्ध होती है तथा वे फर्म के कार्यों के लिए दायी होते है।

(2) सुषुप्त अथवा निष्क्रिय साझेदार (Sleeping or Dorment or silent partner)—साझेदारी अनुबन्ध के अनुसार साझेदारी फर्म में कुछेक साझेदार निष्क्रिय साझेदार भी हो सकते हैं। ऐसे साझेदारों की निम्न विशेषताएँ है—

(अ) वे फर्म के व्यवसाय-संचालन में भाग नहीं लेते है।
(आ) वे प्रायः पूँजी लगाने वाले साझेदार होते है।
(इ) फर्म के ऋणों के लिए अन्य साझेदारो की भाँति वे भी उत्तरदायी होते हैं।
(ई) फर्म से व्यवहार करने वाले तीसरे पक्ष से उनका कोई सीधा सम्पर्क नहीं होता और इस प्रकार उनकी स्थिति गुमनाम प्रधान (Undisclosed Principal) के समान होती है।
(उ) फर्म से निवृत्ति लेते समय उन्हे सार्वजनिक सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है।
(ऊ) विपरीत अनुबन्ध के अभाव में वे फर्म को लाभ-हानि में भागीदार होते हैं।

(3) लाभ के लिए साझेदार (Partner in profit only)—साझेदारी समझौते के अनुसार अगर सभी साझेदार सहमति दें तो किसी साझेदार को केवल लाभ में हिस्सेदार रहने की अनुमति दी जा सकती है। इस प्रकार का साझेदार फर्म की हानि में हिस्सा नहीं

बँटाता किन्तु वह अन्य पक्षों के प्रति फर्म के ऋणों व कार्यों के लिए अन्य साझेदारों की भाँति उत्तरदायी होगा। इस प्रकार के साझेदार सामान्यतया व्यवसाय-संचालन में भाग नहीं लेते हैं।

(4) नाम मात्र का साझेदार (Nominal Partner)—यह साझेदार फर्म को केवल अपने नाम के प्रयोग की अनुमति देता है। वह न तो फर्म में पूँजी लगाता है और न ही फर्म के लाभ और हानि में हिस्सेदार होता है। फर्म के व्यवसाय-संचालन में भी वह सक्रिय नहीं होता किन्तु, फर्म के प्रत्येक कार्यों व ऋणों के लिए अन्य साझेदारों की भाँति तीसरे पक्ष के प्रति दायी होता है।

(5) गत्यवरोध अथवा प्रदर्शन द्वारा साझेदार (Partner by estoppel or holding-out)—साझेदारी अनुबन्ध के द्वारा ही किसी फर्म में साझेदार बना जा सकता है फिर भी ऐसे व्यक्ति को भी साझेदारी फर्म में व्यवहार करने वाला तीसरा पक्ष फर्म का साझेदार मान सकता है जो आचरण द्वारा अपने आपको फर्म का साझेदार प्रदर्शित करता है।

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 18 (1) में यह बताया गया है कि कोई व्यक्ति जो वास्तव में साझेदार नहीं है, लिखित अथवा मौखिक शब्दों अथवा आचरण द्वारा साझेदार होने का इस प्रकार प्रदर्शन करता है कि फर्म के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति उसे फर्म का साझेदार मानकर फर्म को ऋण दे देते हैं तो ऐसा व्यक्ति फर्म के ऋण के लिए फर्म के साझेदार के रूप में उत्तरदायी माना जावेगा।

उदाहरण—मोहन और सोहन एक फर्म में दो साझेदार हैं। मोहन का अग्रज रमेश जो एक प्रतिष्ठ व्यक्ति भी है, फर्म को ऋण देने वाले दिनेश नामक व्यक्ति के सामने अपने आपको साझेदार बताता है अथवा मोहन द्वारा ये बताने पर भी कि उसका भाई रमेश भी साझेदार है—रमेश शान्त रहता है, यह विश्वास करके दिनेश फर्म को ऋण दे देता है। यहाँ पर रमेश अन्य साझेदारों की भाँति दिनेश द्वारा दिये गए ऋण को चुकाने के लिए उत्तरदायी होगा।

प्रदर्शन द्वारा साझेदार की निम्न विशेषताएँ हैं—

(क) प्रदर्शन द्वारा साझेदार फर्म का वास्तविक साझेदार नहीं है।

(ख) इस प्रकार का साझेदार न तो फर्म के व्यवसाय में पूँजी लगाता है और न ही व्यवसाय-संचालन तथा प्रबन्ध में भाग लेता है।

(ग) फर्म के लाभ-हानि में भी इस प्रकार के साझेदार का कोई हिस्सा नहीं होता है। वह तो अपने शब्दों अथवा आचरण द्वारा तीसरे पक्ष के सामने अपने आपको साझेदार बतलाता है।

(घ) इस प्रकार के साझेदार अपने नाम व ख्याति बढ़ाने के लिए साझेदार बनने का प्रदर्शन करते हैं। इनका उद्देश्य अपनी प्रसिद्धि द्वारा, साझेदारी फर्म को मदद कराने का होता है।

प्रदर्शन का प्रभाव—प्रदर्शन द्वारा साझेदार बनने के प्रभाव निम्न हैं—

(क) यदि साझेदार होने का प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति के कारण तीसरे पक्ष ने

फर्म के साथ कोई अनुबन्ध किया है तो ऐसे साझेदार को अनुबन्ध पूरा किये जाने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

(ग) प्रदर्शन के आधार पर फर्म को ऋण देने वाला व्यक्ति ऐसे साझेदार को ऋण के प्रति उत्तरदायी ठहरा सकता है।

(ग) प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् फर्म के साथ किये गये अनुबन्धों के लिए उसके उत्तराधिकारी दायी नहीं होते हैं।

(घ) प्रदर्शन से साझेदार वास्तव में फर्म में साझेदार नहीं है, अतः वह फर्म के एवं साझेदारों के कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं होता है।

साझेदारी विलेख
(Partnership deed)

साझेदारी व्यवसाय के संगठन, प्रबन्ध और संचालन सम्बन्धी नियम तथा साझेदारों के कर्त्तव्य, दायित्व, अधिकार और उनके आपसी सम्बन्धों का उल्लेख अगर लिखित रूप में कर लिया जाता है, तो भविष्य में साझेदारों में आपसी मतभेद कम होते हैं और साझेदारी व्यवसाय को भी भली-भाँति चलाया जाना संभव होता है। इस लिखित रूप को "साझेदारी-विलेख" अथवा "साझेदारी-विधान" अथवा "साझेदारी-अन्तर्नियम" अथवा "साझेदारी-करार" का प्रपत्र कहते हैं।

साझेदारी-विलेख तैयार करते वक्त साझेदारों द्वारा उन सभी बातों पर सोच-विचार कर लेना चाहिये जिन पर प्रायः मन-मुटाव होने की सम्भावना रहती है। साझेदारी व्यवसाय की विशिष्ट बातों के अलावा साझेदारी विलेख में सम्मिलित की जाने वाली महत्वपूर्ण बातें प्रायः व्यवसाय-संचालन सम्बन्धी अधिकार, पूँजी, ऋण, आहरण लाभ-हानि विभाजन तथा साझेदारी का पुनर्गठन और विघटन होती हैं। साझेदारी विलेख पर समस्त साझेदारों के हस्ताक्षर होना अनिवार्य हैं तथा उस पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुसार आवश्यक राशि के स्टाम्प भी लगे होने चाहिये।

साझेदारी-विलेख की मुख्य बातें

(1) साझेदारी फर्म का नाम।
(2) साझेदारों के नाम व पते।
(3) साझेदारी फर्म के मुख्य कार्यालय का स्थान।
(4) फर्म के व्यवसाय का स्वभाव एवं क्षेत्र।
(5) साझेदारी व्यवसाय प्रारम्भ करने की तिथि।
(6) साझेदारी की अवधि।
(7) लेखा पुस्तकों का रखा जाना।
(8) हिसाब का अंकेक्षण।
(9) साझेदारों द्वारा पूँजी विनियोजन।
(10) पूँजी पर ब्याज।
(11) साझेदारों द्वारा आहरण एवं उस पर ब्याज।
(12) साझेदारों द्वारा ऋण लेना, देना।
(13) साझेदारों में लाभ-हानि का वितरण।

(14) साझेदारों के लिए पारिश्रमिक, कमीशन इत्यादि ।
(15) साझेदारों में कार्य का बँटवारा ।
(16) साझेदारों के विशिष्ट कर्त्तव्य ।
(17) साझेदारों का अवकाश ग्रहण किया जाना ।
(18) साझेदारों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व ।
(19) नये साझेदार का प्रवेश ।
(20) साझेदारी के भंग होने पर सम्पत्ति का बंटवारा ।
(21) साझेदार की मृत्यु ।
(22) व्यावसायिक ख्याति का मूल्यांकन ।
(23) साझेदारों द्वारा सम्बन्ध विच्छेद किया जाना ।
(24) साझेदारों द्वारा नियम उल्लंघन ।
(25) बीमा राशि ।
(26) साझेदारी फर्म का विघटन ।
(27) पंच-निर्णय-विधि ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साझेदारी क्या है ? साझेदारी की परिभाषा के आवश्यक तत्त्व समझाइये ।
What is Partnership ? Discuss briefly the essential elements of Partnership. (जोधपुर वि. वि. 1977)

2. "साझेदारी का सम्बन्ध अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न होता है न कि स्थिति द्वारा ।" विवेचन कीजिये ।
"The relationship of partnership arises from contract and not from status. Discuss this statement. (जोधपुर वि. वि. 1985)

3. "व्यापार के लाभों में भाग पाना साझेदारी के अस्तित्व का निश्चयात्मक प्रमाण नही है ।" इसकी विवेचना कीजिये ।
"Sharing of profits is not a conclusive evidence of the existence of partnership." Comment on this statement.
(राज वि. वि. 1982)

4. (अ) आप कैसे तय करेंगे कि व्यक्तियों का एक समूह साझेदारी का निर्माण करता है या नहीं ? पूर्ण विवेचना कीजिये ।
(ब) "लाभों में हिस्सा लेना साझेदारी का केवल ऊपरी प्रमाण है ।" विवेचना कीजिये ।
(a) How would you determine whether a group of persons does or does not constitute a partnership ? Discuss fully.
(b) "The sharing of profit is only a primafacie evidence of partnership." Comment.

साझेदारी की परिभाषा दीजिये। एक साझेदारी फर्म, संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय और सह-स्वामित्व से किस प्रकार भिन्न हैं ?

Define a partnership. How does a partnership firm differ from a Joint Hindu Family and Co-ownership ?

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—

(i) साझेदारी की विद्यमानता।

(ii) साझेदारी विलेख।

(iii) प्रदर्शन द्वारा साझेदार।

(iv) ऐच्छिक साझेदारी और विशेष साझेदारी।

Write short notes on—

(i) Existence of a Partnership

(ii) Partnership deed

(iii) Holding-out Partner

(iv) Partnership at will and Particular Partnership.

7. 'अवरोध' का क्या अर्थ है ? प्रदर्शन द्वारा साझेदारी की परिभाषा दीजिये। जनता के प्रति और फर्म के दूसरे सदस्यों के प्रति उसके क्या दायित्व होते हैं।

What is meant by 'Estoppel' ? Define a holding-out partner. Discuss his liabilities to the public as well as to the other members *of the firm.*

19

साझेदारों के आपसी सम्बन्ध
(Relations of Partner to one Another)

विषय-सामग्री—साझेदारों के कर्त्तव्य एवं दायित्व का निर्धारण, साझेदारों के पारस्परिक दायित्व और कर्त्तव्य, साझेदारी फर्म की सम्पत्ति और लाभ, साझेदारों के अधिकार।

साझेदारी व्यवसाय में दो या अधिक व्यक्ति लाभ बाँटने के उद्देश्य से, मिल कर व्यवसाय करते हैं। इस प्रक्रिया मे साझेदारों के फर्म के प्रति, एक दूसरे के प्रति एवं तीसरे पक्ष के साथ न केवल सम्बन्ध ही स्थापित होते हैं बल्कि साथ ही उनके कुछ कर्त्तव्य, दायित्व और अधिकार भी उत्पन्न होते हैं। भारतीय साझेदारी अधिनियम की धाराएँ 9–37 के अन्तर्गत दी हुई बातों से साझेदारों के सामान्य कर्त्तव्यों, दायित्वों, पारस्परिक अधिकारों और सम्बन्धों का स्पष्टीकरण होता है।

साझेदारों के कर्त्तव्य एवं दायित्व

1. अधिकतम लाभ के लिए कार्य।
2. निष्ठा एवं न्यायशीलता।
3. सही हिसाब बताना।
4. सूचनाएँ प्रदान करना।
5. कपट द्वारा होने वाले नुकसान की पूर्ति।
6. अन्य व्यवसायों पर रोक।
7. व्यवसाय संचालन का कर्त्तव्य।
8. हानि सहन करने का दायित्व।
9. सम्पत्ति के व्यक्तिगत प्रयोग पर प्रतिबन्ध।
10. प्रतियोगी व्यवसाय से लाभ।
11. व्यक्तिगत लाभों का हिसाब।
12. कर्त्तव्यों का पूर्ववत् होना।
13. अधिकार के अन्तर्गत कार्य करना।
14. संयुक्त एवं पृथक् उत्तरदायित्व।
15. अधिकार हस्तान्तरण पर रोक।
16. निवृत्ति की सार्वजनिक सूचना।

साझेदारों के कर्त्तव्य एवं दायित्व
(Duties and Responsibilities of Partners)

साझेदारों के कर्त्तव्य एव दायित्व साझेदारी फर्म एव साझेदारों के प्रति जिम्मेदारियों का बोध कराते हैं। भारतीय साझेदारी अधिनियम में दी हुई बातों के अनुसार साझेदारों के सामान्य कर्त्तव्य एवं दायित्व निम्नानुसार हैं :—

(1) अधिकतम लाभ के लिए कार्य करना (To work for maximum comman advantages)—भारतीय

साझेदारी अधिनियम की धारा 9 के अनुसार प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह फर्म के लाभ को अधिकतम करने के लिए कार्य करे। साझेदारों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने व्यक्तिगत लाभों की बजाय फर्म के कार्यों को सर्वोपरि मानें। प्रत्येक साझेदार अन्य साझेदारों के हित में इस प्रकार से कार्य करने के लिए बद्ध है, जिससे फर्म का लाभ बढ़ सके।

(2) पारस्परिक निष्ठा एवं न्यायशीलता (Faithful and just to each other)—प्रत्येक साझेदार से अन्य साझेदारों एवं फर्म के प्रति वफादारी और विश्वास की अपेक्षा की जाती है। भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 9 के अनुसार प्रत्येक साझेदार फर्म के व्यवसाय की सफलता के लिए कर्त्तव्यपूर्ण सद्भावना के साथ कार्य करेगा। उसमें अन्य साझेदारों के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नही होनी चाहिये वरना साझेदारी अधिक समय तक चल नही पायेगी।

(3) सही हिसाब बताना (To Render true accounts)—भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 9 में यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक साझेदार फर्म से सम्बन्धित कार्यों का हिसाब-किताब उचित ढंग से रखे तथा अन्य साझेदारो को हिसाब से अवगत कराने मे मदद करे।

(4) फर्म सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करना (To Provide firm related Informations)—प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह व्यवसाय को प्रभावित करने वाली समस्त जानकारी से अन्य साझेदारों अथवा उनके वैधानिक प्रतिनिधियों को अवगत करावे। (धारा 9)

(5) कपट द्वारा होने वाले नुकसान की पूर्ति (To indemnity loss Caused by fraud)—प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह ईमानदारी के साथ फर्म का व्यवसाय चलावे। साझेदारों द्वारा जानबूझ कर फर्म के व्यवसाय की लागत पर निजी फायदा लेना, फर्म व अन्य साझेदारों के साथ कपट किया जाना माना जाता है। भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 10 के अनुसार एक साझेदार का कर्त्तव्य है कि उसके द्वारा कपट किये जाने से होने वाले नुकसान को वह पूरा करे।

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 9 एवं 10 में वर्णित साझेदारों के उपरोक्त कर्त्तव्यों द्वारा उनके अन्य कर्त्तव्य एव दायित्व उनके आपसी अनुबन्धों से निर्धारित होते है। (धारा 11)

(6) अन्य व्यवसाय पर रोक (Restriction on other than Partnership Business)—साझेदार आपसी समझौते द्वारा किसी भी साझेदार द्वारा फर्म के व्यवसाय के अलावा अन्य कोई व्यवसाय करने के बारे में रोक लगा सकते हैं। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 27 में इस प्रकार का प्रतिबन्ध वैध है। जब तक एक व्यक्ति किसी साझेदारी फर्म में साझेदार रहता है तब तक उसे फर्म के व्यवसाय के अलावा अन्य व्यवसाय नहीं करना चाहिये। (धारा 11 उपधारा 2)

(7) व्यवसाय सचालन सम्बन्धी कर्त्तव्य (Duties in Conduct of Business)—प्रत्येक साझेदार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूरी लगन और मेहनत के साथ फर्म के व्यवसाय-सचालन में भाग लेगा (धारा 12 बी) इसके लिए वह वेतन प्राप्त करने का अधिकारी नही है।

साझेदार का यह भी कर्त्तव्य है कि यह फर्म में बहुमत के आधार पर लिए गए ऐसे निर्णयों को स्वीकार करे जिनके लागू किये जाने पर फर्म के व्यवसाय के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उन निर्णयों, जिनसे व्यवसाय का स्वभाव ही बदल जाता है पर सभी साझेदारों की सहमति आवश्यक होती है। [धारा 12 (सी)]

(8) हानियाँ सहन करना (To bear the losses)—किसी अनुबन्ध के अभाव में प्रत्येक साझेदार के निम्न दायित्व होंगे :—

(1) वह फर्म के लाभों को प्राप्त करने के साथ साथ फर्म की हानियों के लिए भी दायी होगा।

(2) वह फर्म को होने वाले ऐसे नुकसानों की भी पूर्ति करेगा जिनका कारण उसकी लापरवाही है। (धारा 13 बी व 13 एफ)

(9) फर्म की सम्पत्ति के व्यक्तिगत प्रयोग पर प्रतिबन्ध (Restriction on personal use of property of the firm)—समझौते के अभाव में प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग केवल फर्म के कार्यों के लिए करे। (धारा 15)

(10) व्यक्तिगत लाभों को हिसाब सहित लौटाना (To account for and to return personal profits)—समझौते के अभाव में अगर साझेदार फर्म के नाम, व्यवहार और सम्पत्ति से व्यक्तिगत लाभ उठाते हैं तो वास्तव में ऐसे लाभ के वे अधिकारी नहीं होते हैं। अतः उनका कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के कमाये हुए लाभ को हिसाब सहित फर्म को चुका देवें। (धारा 164)

(11) प्रतियोगी व्यापार से होने वाला लाभ (Profits from Compitetive Business)—साझेदार को प्रतिस्पर्धात्मक व्यवसाय करने का अधिकार नहीं होता है। अगर साझेदार ने इस तरह के व्यवसाय करके निजी लाभ अर्जित किया है तो ऐसे लाभ को हिसाब सहित फर्म को चुकाने के लिए वह दायी है। (धारा 16)

(12) पूर्ववत् कर्त्तव्यों का बना रहना (No change in duties)—फर्म द्वारा निम्न परिस्थितियों में व्यवसाय चालू रखने पर समझौते के अभाव में प्रत्येक साझेदार के कर्त्तव्य पूर्ववत् बने रहते हैं :—

(1) फर्म की बनावट में परिवर्तन (धारा 17)

(2) निश्चित अवधि की समाप्ति के उपरान्त भी फर्म द्वारा व्यवसाय जारी रखना (धारा 17)

(3) फर्म द्वारा विशिष्ट कार्यों के अलावा अन्य कार्य किये जाना (धारा 17)

(13) अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करना (To act within authority)—प्रत्येक साझेदार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने अधिकारों की सीमा में ही कार्य करे। अपने अधिकारों से बाहर कार्य करने पर वह फर्म और अन्य साझेदारों के प्रति अधिकारों के उपरान्त कार्य करने से होने वाले नुकसानों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

(14) संयुक्त एवं पृथक रूप से उत्तरदायी (Jointly and severably Liable)—प्रत्येक साझेदार अपनी साझेदारी की अवधि में फर्म के सभी व्यवहारों के लिए अन्य साझेदारों के साथ संयुक्त और पृथक् रूप से उत्तरदायी होता है। (धारा 55)

(15) अधिकारों के हस्तान्तरण पर रोक (Not to assign rights)—अन्य साझेदारों की सहमति के बिना कोई भी साझेदार अपने अधिकारों एवं हितों को हस्तान्तरित कर किसी अन्य व्यक्ति को फर्म का साझेदार नहीं बना सकता है। (धारा 29)

(16) निवृत्ति की सार्वजनिक सूचना न देने पर (Not giving Public notice of retirement)—निवृत्ति की सार्वजनिक सूचना के अभाव में, निवृत्त तथा अन्य साझेदारों के उन सभी कार्यों–जो फर्म के कार्य-क्षेत्र में आते हैं और जिन्हें साझेदार की निवृत्ति के बाद किया गया है, के सम्बन्ध में उत्तरदायी होते हैं। [धारा 32(3)]

साझेदारों के अधिकार
(Rights of Partners)

एक साझेदारी फर्म के साझेदारों के अधिकार निम्नानुसार हैं :—

(1) व्यवसाय में भाग लेने का अधिकार (Right to take part in business)—फर्म के व्यवसाय में भाग लेना प्रत्येक साझेदार का मूलभूत अधिकार होता है, किन्तु यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक साझेदार फर्म के व्यवसाय में अनिवार्य रूप से सक्रिय भाग ले। (धारा 12)

(2) मत व्यक्त करने का अधिकार (Right to Express opinion)—प्रत्येक साझेदार फर्म के व्यवसाय से सम्बन्धित विषयों पर अन्य साझेदारों के सामने अपना मत प्रकट करने का अधिकार रखता है। यहाँ ये ध्यान में रहे कि मतभेद वाली सभी बातों पर निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है। कुछ प्रमुख विषयों जैसे—नये साझेदार का प्रवेश व्यवसाय के स्वभाव में परिवर्तन किसी साझेदार द्वारा अपने हित का हस्तान्तरण, फर्म की बनावट में परिवर्तन इत्यादि पर सभी साझेदारों की सहमति का होना आवश्यक है। (धारा 12)

साझेदारों के अधिकार
1. व्यवसाय में भाग लेना
2. मत व्यक्त करना
3. पुस्तकों तक पहुँच
4. लाभ-हानि में समान हक
5. पूँजी पर ब्याज
6. अतिरिक्त धन राशि पर ब्याज
7. क्षतिपूर्ति का अधिकार
8. सम्पत्ति का प्रयोग
9. संकट में अधिकार
10. नये साझेदार पर रोक
11. फर्म के कार्यों के लिए दायी न होना
12. निवृत्त होने का अधिकार
13. साझेदारी में बने रहने का अधिकार
14. प्रतियोगी व्यवसाय का अधिकार
15. अन्य अधिकार

(3) पुस्तकों तक पहुँचने का अधिकार (Right to have access to books)—फर्म के हिसाब-किताब की पुस्तकों, लेखों व अन्य विवरण-पत्रों को देखने, जाँचने अथवा उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकार सभी साझेदारों को होता है। साझेदारों द्वारा आपत्ति न उठाये जाने पर कोई साझेदार इस कार्य के लिए अभिकर्त्ता भी नियुक्त कर सकता है। (धारा 12)

(4) लाभ हानि में एक समान हक (Right to share equally profit and loss)—अन्य समझौते के अभाव में प्रत्येक साझेदार को फर्म के लाभों में एक समान

हिस्सा बँटाने का अधिकार होता है । हानि की दशा में सभी साझेदार एक समान अंशदान के दायी होते हैं । फर्म का कोई भी साझेदार किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक पाने का अधिकारी नहीं है । (धारा 13)

(5) पूँजी पर ब्याज (Interest on capital)—किसी अन्य समझौते के न होने पर प्रत्येक साझेदार जिसे अपनी पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार है, फर्म के लाभों में से ही ब्याज लेने का अधिकारी है ।

(6) अतिरिक्त धनराशि पर ब्याज (Interest on additional capital)—कोई भी साझेदार जो अपनी पूँजी के अलावा फर्म के व्यवसाय के लिए अतिरिक्त राशि लाता है तो अन्य समझौते के अभाव में इस प्रकार की राशि पर 6% वार्षिक की दर से ब्याज पाने का अधिकारी होता है । इस प्रकार की ब्याज की राशि चुकाने के लिए फर्म द्वारा पर्याप्त लाभ कमाया जाना जरूरी नहीं है । (धारा 13)

(7) फर्म से क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार (Right to be Indemnified by the firm)—प्रत्येक साझेदार को निम्न परिस्थितियों में फर्म द्वारा क्षतिपूर्ति कराने के अधिकार होते हैं :—

(1) वह फर्म के व्यवसाय को सामान्य व सुचारु रूप से चलाने के लिए भुगतान कर सकता है एवं आर्थिक दायित्व उठा सकता है । ऐसे भुगतानों एवं दायित्वों के लिए उसे फर्म द्वारा पूर्ति कराने का अधिकार होता है । (धारा 13)

(2) संकट में फर्म को घाटे से बचाने के लिए वह उन सभी कार्यों को कर सकता है जो एक साधारण बुद्धि के व्यक्ति से इस प्रकार की परिस्थिति में अपने निजी कार्य के लिए अपेक्षित होते हैं ।

(8) साझेदारी सम्पत्तियों के प्रयोग का अधिकार (Right relating to the use of partnership property)—प्रत्येक साझेदार फर्म की सम्पत्तियों को फर्म के व्यवसाय हेतु प्रयोग करने का समान अधिकारी होता है । (धारा 14 एवं 15)

(9) संकटकालीन अधिकार (Authority in emergency)—संकट की स्थिति में फर्म को घाटे से बचाने के लिए प्रत्येक साझेदार उन सभी कार्यों को करने का अधिकारी है, जिन्हें कि एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति इस प्रकार की परिस्थिति में स्वयं के लिए अपनाता है । साझेदार के इस प्रकार के सभी कार्यों के लिए फर्म उत्तरदायी होती है । (धारा 21)

(10) नये साझेदारों के प्रवेश पर रोक (Restriction on the Admission of the new Partner)—अन्य समझौते के अभाव में और धारा 30 में दी गई बातों के अलावा प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार है कि वह फर्म में किसी नये व्यक्ति को साझेदारी में शामिल होने से रोक दे । यह इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी साझेदारों की सहमति के बिना किसी नये व्यक्ति को साझेदार नहीं बनाया जा सकता । [धारा 31 (1)]

(11) फर्म के पूर्व कार्यों के लिये दायी न होना (Not liable for previous actions)—जब कभी साझेदारी फर्म में नया साझेदार शामिल किया जाता है तो धारा 30 के लागू होने के अभाव में नये साझेदार के प्रवेश से पूर्व किये गए फर्म के कार्यों के लिये

वह उत्तरदायी नहीं होता है। इस प्रकार नये साझेदार का अधिकार है कि वह फर्म के पुराने दायित्वों को स्वीकार करने से मना कर दे। [धारा 31(2)]

(12) निवृत्त होने का अधिकार (Right to retire)—फर्म का प्रत्येक साझेदार निम्नलिखित तरीकों से अवकाश ग्रहण करने का अधिकारी है :—

(1) अन्य साझेदारों की सहमति द्वारा

(2) साझेदारी के समझौते के अनुसार,

(3) ऐच्छिक साझेदारी की दशा में अन्य साझेदारों को अवकाश ग्रहण की इच्छा की सूचना देकर। [धारा 32 (2)]

(13) साझेदारी में बने रहने का अधिकार (Right to continue in partnership)—साधारणतया प्रत्येक साझेदार फर्म में साझेदार बने रहने का अधिकारी होता है। अगर साझेदारी समझौते में बहुमत के आधार पर किसी साझेदार को निकाले जाने का प्रावधान हो तो इस प्रकार के प्रावधान के अन्तर्गत दिये गए अधिकारों को सद्भावना और सद्विश्वास के साथ लागू किया जाना चाहिये। [धारा 33(1)]

(14) प्रतियोगी व्यवसाय का अधिकार (Right to engage in competetive businees)—प्रत्येक अवकाश प्राप्त साझेदार, साझेदारी-फर्म के व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा में व्यवसाय करने का अधिकार रखता है। इस प्रकार के प्रतियोगी व्यवसाय का वह विज्ञापन भी करवा सकता है किन्तु अन्य समझौते के अभाव में अवकाश प्राप्त साझेदार को निम्न अधिकार प्राप्त नहीं हैं—

(1) फर्म के नाम का प्रयोग करना,

(2) फर्म के व्यवसाय का अभिकर्ता बनना और

(3) फर्म के पुराने ग्राहकों को अपनी ओर करने का कार्य करना।

[धारा 36 (1)]

(15) अवकाश प्राप्त साझेदारों के अन्य अधिकार (Other Rights of out-going Partners)—कोई साझेदार फर्म से अलग हो जाता है तो भी वह अथवा उसका प्रतिनिधि साझेदारी फर्म द्वारा अर्जित लाभ में अथवा फर्म की सम्पत्ति में उसकी विनियोजित राशि पर 6% वार्षिक ब्याज लेने का अधिकारी होता है। यह अधिकार उस समय समाप्त हो जाता है, जबकि फर्म ने निवृत्त साझेदार के हिसाब-किताब को निपटा दिया है अथवा अन्य समझौते द्वारा इस प्रकार के अधिकार पर रोक लगा दी गई है।

(धारा 37)

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साझेदारों के कर्त्तव्यों और अधिकारों को समझाइये।
   Explain the duties and rights of partners.

   (राज. वि. वि. 1982)

2. साझेदारों के बीच स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करने वाले नियमों का वर्णन कीजिये।

State the rules regarding the mutual relations of partners in the absence of any express contract between them.

3 एक फर्म में साझेदार के अधिकार की प्रकृति और सीमा को समझाइये।
Explain the nature and extent of authority of partner in a firm.

4. साझेदारों को क्या उपचार प्राप्त है, अगर
(क) साझेदार प्रतियोगी फर्म का सदस्य बन गया है, जो उसी प्रकार का व्यवसाय करती है।
(ख) एक साझेदार व्यक्तिगत रूप से अयोग्य हो गया है।
(ग) एक साझेदार अवकाश ग्रहण करने के बाद फर्म से प्रतियोगिता करने वाला व्यवसाय करता है।

What are the remedies of other partners if—
(a) a partner has become a member of a rival firm doing business of the same nature.
(b) a partner has become permanently invalid.
(c) a partner carries on a business competiting with that of the firm after his retirement.

□□□

20

साझेदारों के तृतीय पक्ष से सम्बन्ध
(Relations of Partner's to third Parties)

विषय-सामग्री—तृतीय पक्ष के सम्बन्ध में एक साझेदार के गर्भित अधिकार का अर्थ और विवेचन, गर्भित अधिकारों का घटाया-बढाया जाना, संकट में साझेदार के अधिकार, साझेदारों के कार्यों से फर्म का बद्ध होना, गलत कार्यों के लिए फर्म का दायित्व, हित हस्तान्तरण।

एक साझेदार के गर्भित अधिकार का अर्थ और विवेचन
(Meaning and Explanation of a Partner's implied authority)

साझेदारी व्यवसाय में जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है, प्रत्येक साझेदार को भाग लेने का अधिकार होता है। व्यवसाय के दौरान वह न केवल दूसरे साझेदारों के सम्पर्क में आता है बल्कि तृतीय पक्ष से भी उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। एक साझेदार की इस मायने मे दोहरी स्थिति होती है अर्थात् वह फर्म का स्वामी और अभिकर्त्ता दोनों ही होता है। चूंकि साझेदार एव फर्म भिन्न-भिन्न नहीं हैं—एक साझेदार फर्म के स्वामी के रूप मे अन्य साझेदारों के कार्यों से बद्ध होता है तथा अभिकर्त्ता के रूप में उसके कार्य दूसरे साझेदारों एवं फर्म को बद्ध करते है। फर्म के लिए किये गये तीसरे पक्ष के साथ व्यावसायिक समझौते प्रत्येक साझेदार को तृतीय पक्ष के प्रति उत्तरदायी ठहराते हैं। साझेदारों के तृतीय पक्ष के साथ सम्बन्ध अर्थात् अधिकार एवं दायित्वों का उल्लेख भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 18 से 30 मे किया हुआ है।

इस अधिनियम की धारा 18 में बताया गया है कि एक साझेदार फर्म के व्यवसाय के लिए फर्म का अभिकर्त्ता है। अधिनियम की धारा 19 के अनुसार फर्म के व्यवसाय हेतु साझेदारो द्वारा किये गए कार्यों से फर्म बद्ध रहती है। फर्म को बद्ध करने वाले साझेदारों के अधिकार को गर्भित अधिकार (Implied authority) कहा जाता है। अर्थात् एक साझेदार द्वारा तीसरे पक्ष के साथ फर्म के लिए किये गये व्यावसायिक समझौतों से अन्य साझेदारों को तृतीय पक्ष के प्रति उत्तरदायी बनाना, इस साझेदार (फर्म के अभिकर्त्ता के रूप मे) का गर्भित अधिकार होता है। संक्षेप में फर्म को व अन्य साझेदारों को तीसरे पक्ष के प्रति बद्ध करने वाले साझेदारों के अधिकारों को ध्वनित अथवा गर्भित अधिकार कहते हैं।

साझेदारों के गर्भित अधिकार के अन्तर्गत कार्य
(Acts within Implied Authority of Partners)

निम्नलिखित कार्य साझेदारों के गर्भित अधिकारों के अन्तर्गत आते हैं :—

1. फर्म के व्यवसाय हेतु नकद अथवा उधार माल का क्रय-विक्रय करना।
2. फर्म के व्यापार हेतु माल एवं सम्पत्ति को गिरवी रखना और ऋण लेना।
3. फर्म के व्यवसाय हेतु विनिमय साध्य प्रलेख लिखना, पृष्ठांकन और रेखांकन करना।
4. फर्म के ऋणों को चुकाना।
5. फर्म के देनदारों से भुगतान प्राप्त करना।
6. फर्म के व्यापार चलाने के लिए साधन इकट्ठे करना।
7. फर्म के व्यापार के लिए कर्मचारी नियुक्त करना।
8. फर्म के व्यापार के लिए भवन आदि किराये पर लेना।
9. फर्म के विवादों को निपटाने के लिए वकीलों की नियुक्ति करना।
10. फर्म की सम्पत्ति फर्म के लिए बंधक करवाना।
11. फर्म की साख पर फर्म के लिए ऋण लेना।

गर्भित अधिकारों में न आने वाले कार्य
(Acts outside the implied authority)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 19 (2) के अनुसार व्यापारिक रीति-रिवाजों की अनुपस्थिति, निम्न कार्य किसी साझेदार के गर्भित अधिकारों की सीमा के बाहर हैं :—

1. पंच-निर्णय द्वारा व्यावसायिक झगड़े निपटाना।
2. फर्म की ओर से साझेदार द्वारा अपने नाम से किसी बैंक में खाता खोलना।
3. फर्म के किसी दावे अथवा लेनदारी अथवा उसके भाग को त्यागना अथवा उनके सम्बन्ध में समझौता करना।
4. साझेदारों द्वारा न्यायालय में किसी पक्ष के विरुद्ध प्रस्तुत मुकदमें अथवा कार्यवाही को वापस लेना।
5. फर्म के विरुद्ध अभियोग अथवा कार्यवाही के अन्तर्गत कोई दायित्व स्वीकार करना।
6. फर्म के लिए अचल सम्पत्ति प्राप्त करना।
7. फर्म की अचल सम्पत्ति का हस्तान्तरण करना।
8. फर्म की ओर से साझेदारी में सम्मिलित होना।
9. साझेदारी फर्म की ओर से किसी को अभिकर्त्ता नियुक्त करना।
10. फर्म के देनदारों के साथ समझौता करने का स्पष्ट अधिकार नहीं होना।

उपरोक्त कार्यों के लिए कोई भी साझेदार फर्म को बद्ध नहीं कर सकता है और इस प्रकार ये कार्य साझेदार के गर्भित कार्यों में नहीं आते हैं। इनमें से किसी भी कार्य के लिए तीसरे पक्ष के प्रति साझेदारी फर्म उत्तरदायी नहीं होगी।

साझेदारों के उन कार्यों के लिए भी तृतीय पक्ष के प्रति फर्म उत्तरदायी नही होती है जिनके लिए साझेदारों पर रोक लगाई गई है और इस बात की जानकारी तृतीय पक्ष को भी है।

साझेदारों के गर्भित अधिकारों को घटाया-बढ़ाया जाना
(Extension and restriction of Partner's implied authority)

साझेदार आपसी अनुबन्ध के द्वारा किसी भी साझेदार के गर्भित अधिकारों को ज्यादा अथवा कम करने का अधिकार रखते है। (धारा 20) किसी भी गर्भित अधिकार पर प्रतिबन्ध होने के बावजूद कोई साझेदार द्वारा किये जाने वाले किसी भी गर्भित अधिकार वाले कार्य के लिए साझेदारी फर्म बद्ध होगी एव तृतीय पक्ष के प्रति उत्तरदायी होगी किन्तु, फर्म का उत्तरदायी होना इस बात से निर्धारित होगा कि तृतीय पक्ष को न तो इस प्रकार के प्रतिबन्ध की जानकारी है तथा न ही साझेदार के बारे मे उसके साझेदार होने की किसी प्रकार की शंका।

संकट-काल में साझेदार के अधिकार
(Partner's authority in an emergency)

फर्म को संकट से बचाने के लिए एक साझेदार को उन सभी कार्यों को करने का गर्भित अधिकार है जिनको एक सामान्य विवेक वाला व्यक्ति ऐसी परिस्थिति मे करता है। इस प्रकार की परिस्थिति मे साझेदारों के कार्यों से फर्म बद्ध होती है। (धारा 21)

साझेदारों के कार्यों से फर्म को बद्ध करने सम्बन्धी तथ्य
(Facts for binding a firm for Partner's Act)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 19 एवं 22 के अनुसार एक साझेदारी फर्म और साझेदार किसी भी साझेदार के द्वारा किये गये कार्यों के लिए निम्न परिस्थितियों में बद्ध होते हैं—

1. साझेदार का कार्य फर्म के व्यवसाय से ही सम्बन्धित होना चाहिए।

[धारा 19 (1)]

एक साझेदारी फर्म को उत्तरदायी ठहराने के लिए साझेदार का कार्य फर्म के व्यवसाय से सम्बन्धित होना आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर नरेश एवं महेश, एक साझेदारी फर्म मे, जिसका व्यवसाय सिले-सिलाए वस्त्रों का क्रय-विक्रय करना है, साझेदार हैं। नरेश फर्म के नाम से हरी को बर्तनो के लिए एक भारी क्रयादेश देता है। चूँकि क्रयादेश का फर्म के व्यवसाय से कोई सम्बन्ध नही है। अतः फर्म व अन्य साझेदारों द्वारा क्रयादेश को क्रियान्वित करने का कोई दायित्व नही होगा।

2. साझेदारों द्वारा किये गये व्यवहार, व्यावसायिक रीति-रिवाजो अथवा भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार उसके गर्भित अधिकारों में होना चाहिए।

[धारा 19 (2)]

3. साझेदार द्वारा किया गया व्यवहार फर्म के नाम से अथवा फर्म को बद्ध करने के लक्ष्य से किया जाना चाहिए। (धारा 22)

तृतीय पक्ष द्वारा फर्म के क्रियाशील साझेदार को दी हुई सूचना फर्म को दी हुई सूचना मानी जाती है। परन्तु अगर साझेदार अथवा उसकी सहमति से किसी कपट के उद्देश्य से साझेदारी फर्म और अन्य साझेदारों को सूचना से जान बूझकर दूर रखा जाता है तो साझेदारी फर्म तृतीय पक्ष के प्रति दायी नहीं होगी। (धारा 24)

साझेदारों के गलत कार्यों के लिए फर्म का दायित्व
(Liabilities of the firm for wrongful Act of a Partner)

साझेदारी फर्म के कार्यों के लिए प्रत्येक साझेदार व्यक्तिगत एवं संयुक्त रूप से उत्तरदायी होता है। (धारा 25)

साझेदारों के दोषपूर्ण कार्यों और भूलों के लिए जिनके कारण से तृतीय पक्ष को आर्थिक एवं शारीरिक क्षति पहुँची है, साझेदारी फर्म को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। तृतीय पक्ष के प्रति एक साझेदारी फर्म को उत्तरदायी ठहराने के लिए यह देखना आवश्यक होगा कि दोषपूर्ण कार्य अथवा भूलें अन्य साझेदारों की राय का परिणाम हैं अथवा वे फर्म के सामान्य व्यवसाय से सम्बन्ध रखती हैं। (धारा 26)

साझेदारों के दोषपूर्ण कार्य निम्न प्रकार हो सकते हैं—

(1) कपट पूर्ण व्यवहार—यदि फर्म के साझेदार फर्म की ओर से कार्य करते वक्त तृतीय पक्ष को किसी प्रकार का धोखा देकर हानि पहुँचाते हैं तो इसके लिए फर्म उत्तरदायी है।

(2) कर्त्तव्य उल्लंघन—व्यवसाय चलाते वक्त साझेदार राज्य नियम के विरुद्ध कार्य करते हैं तो उसके लिए फर्म उत्तरदायी होगी।

(3) धन का दुरुपयोग—(1) यदि कोई साझेदार फर्म के लिए अपने अधिकारों के अन्तर्गत नकद या सम्पत्ति प्राप्त करता है और उसका दुरुपयोग करता है तो इसका दायित्व फर्म पर होगा। (धारा 27)

उदाहरण—अजय, विजय और दिलीप साझेदारी में पंखों एवं बिजली के सामानों की मरम्मत का कार्य करते हैं। एक ग्राहक प्रकाश अपने पंखे को सफाई हेतु साझेदारी फर्म को सौंपता है, जिसे अजय बेच देता है। अजय के इस गलत कार्य के लिए फर्म एवं उसके साझेदार दायी हैं।

(2) यदि फर्म अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में तीसरे पक्ष से धन अथवा सम्पत्ति प्राप्त करती है और कोई साझेदार इसका दुरुपयोग करता है तो फर्म तीसरे पक्ष के प्रति दायी होगी।

(4) लापरवाही की स्थिति—फर्म के व्यवसाय के दौरान किसी साझेदार की लापरवाही से तीसरे पक्ष को नुकसान पहुँचता है तो ऐसे नुकसान के लिए फर्म उत्तरदायी होगी।

उपरोक्त परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य अवस्था में किये गये साझेदार के दोषपूर्ण कार्यों के लिए फर्म का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, दूसरे शब्दों में गलती करने वाला साझेदार स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

साझेदार के द्वारा हित हस्तान्तरण का अधिकार
(Rights of transfer of a Partner's Interest)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की [धारा 29 (1)] के अनुसार प्रत्येक साझेदार फर्म मे अपने हित को, अन्य पक्ष के नाम पर हस्तान्तरित करने का अधिकारी होता है। हित के हस्तान्तरण हेतु एक साझेदार कोई भी एक निम्न विधि अपना सकता है :—

(1) स्वतन्त्र विक्रय द्वारा

(2) रहन (Mortgage) द्वारा

(3) प्रभार (Charge) द्वारा।

एक साझेदार द्वारा फर्म में अपने हित को हस्तान्तरित करने के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं :—

1. हित हस्तान्तरण पूर्ण अथवा आंशिक हो सकता है।
2. आंशिक हित हस्तान्तरण के अन्तर्गत साझेदार, फर्म में साझेदार बना रह सकता है।
3. साझेदारों के हित को प्राप्त करके भी हस्तान्तरिती (Transferee) फर्म के जीवन काल में स्वतः साझेदार नही बन सकता है।
4. फर्म के अन्य साझेदार सर्वसम्मति से हस्तान्तरिती को फर्म में साझेदार के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।
5. फर्म मे केवल दो साझेदार होने पर किसी एक साझेदार द्वारा हित हस्तान्तरण से साझेदारी फर्म का समापन हो जाता है।
6. एक साझेदार दूसरे साझेदार का हिस्सा शेप साझेदारों की सहमति से क्रय कर सकता है। सहमति के अभाव मे ऐसा अंश सभी साझेदारों के लाभ मे फर्म द्वारा क्रय किया गया माना जावेगा।
7. एक साझेदार द्वारा किये गये हित हस्तान्तरण के आधार पर कोई भी अन्य साझेदार न्यायालय द्वारा साझेदारी फर्म को भंग करवाने का अधिकार रखता है।

हस्तान्तरिती के अधिकार
(Rights of transferee)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 29 के अनुसार हस्तान्तरिती को निम्न अधिकार प्राप्त हैं :—

(1) वह हस्तान्तरण करने वाले साझेदार का लाभ—अंश प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

(2) साझेदारों की सर्वसम्मति द्वारा वह साझेदारी फर्म में एक साझेदार बनने का अधिकारी हो जाता है।

(3) साझेदारी फर्म के भंग होने पर वह अपना हिस्सा प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

एक हस्तान्तरिती निम्नलिखित कार्य करने का अधिकारी नहीं है :—
(1) फर्म के व्यवसाय संचालन में भाग लेना,
(2) फर्म से हिसाब-किताब माँगना,
(3) फर्म की लेखा पुस्तकें तथा गोपनीय पुस्तकें देखना,
(4) साझेदारों द्वारा स्वीकृत हिसाब को चुनौती देना ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फर्म को बद्ध करने के लिए साझेदार के गर्भित अधिकार को स्पष्टतः समझाइये । किन कार्यों के लिए साझेदार द्वारा फर्म को बद्ध करने का गर्भित अधिकार नहीं होता है ?
   Explain clearly the implied authority of a partner to bind the firm. State the acts for which a partner has no implied authority to bind the firm.
   (जोधपुर वि. वि. 1983)
2. तीसरे पक्षकारों के साथ साझेदारों के सम्बन्धों को समझाइये । क्या एक फर्म साझेदारी के गलत कार्यों के लिए उत्तरदायी होगी ?
   Explain the relations of partners to third parties. Can a firm be liable for the wrongful act of a partner.
3. "फर्म के व्यवसाय के उद्देश्यों के लिए एक साझेदार फर्म का प्रतिनिधि है ।" इसकी व्याख्या कीजिए । एक साझेदार के अपने कार्यों के लिए फर्म को बाध्य करने के गर्भित अधिकार-सम्बन्धी नियमों की व्याख्या कीजिए ।
   "A partner is the agent of the firm for purposes of the business of the firm." Explain. Discuss the law regarding a partner's authority to bind the firm for his acts
4. (क) एक व्यक्तिगत साझेदार के कार्यों के लिए तृतीय पक्ष के प्रति फर्म कहाँ तक उत्तरदायी है ?
   How far is a firm liable to third parties for acts of an individual partner ?
   (ख) क्या एक साझेदार (i) फर्म के ऋणी से धन वसूल करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, (ii) फर्म की ओर से किये गये मुकदमे को वापिस ले सकता है ?
   Can a partner—(i) File a suit to recover money from persons in debted to the firm, (ii) with draw a suit filed on behalf of the firm.

21

अवयस्क साझेदार

(Minor Partner)

विषय-सामग्री—अवयस्क साझेदार की स्थिति, क्या अवयस्क वास्तव मे साझेदार है ? अवयस्क साझेदार के अधिकार और दायित्व, वयस्क होने के बाद की स्थिति।

अवयस्क साझेदार की वैधानिक स्थिति
(Legal Position of a Minor as a Partner)

एक साझेदारी फर्म केवल अनुबन्ध द्वारा ही निर्मित की जा सकती है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के अनुसार, अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है। इस अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक अवयस्क अनुबन्ध करने की योग्यता नही रखता है। अतः इसके द्वारा किये जाने वाले अनुबन्ध शून्य हैं। इसलिए एक अवयस्क, फर्म मे साझेदार नही बनाया जा सकता है।

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार एक अवयस्क को साझेदारी में लाभों में सम्मिलित अवश्य किया जा सकता है। इस धारा में वर्णित मुख्य बातें निम्नानुसार हैं :—

(1) एक व्यक्ति जिसे सम्बन्धित राजनियम के अन्तर्गत अवयस्क माना गया है, सभी साझेदारों की सहमति से फर्म के लाभों में भागीदार बनाया जा सकता है परन्तु, वह फर्म के लाभ का साझेदार नहीं होता। [धारा 30 (1)]

(2) ऐसे अवयस्क को फर्म की सम्पत्ति तथा लाभ मे वह हिस्सा पाने का अधिकार होता है, जिसे पहिले ही तय किया जा चुका है। वह फर्म के खातों तक पहुँचने, निरीक्षण करने और प्रतिलिपि लेने का अधिकारी होता है, किन्तु वह अन्य पुस्तकों, जिनमें फर्म की गोपनीय बातें होती हैं और जिनको साझेदारों तक सीमित रखना आवश्यक है, को देखने का अधिकारी नही है। [धारा 30 (2)]

(3) फर्म के कार्यो के लिए ऐसे अवयस्क का भाग दायी होता है और वह किसी भी कार्य के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी नही है। दूसरे शब्दो में अवयस्क का दायित्व फर्म की सम्पत्ति और लाभ तक ही सीमित है। [धारा 30 (3)]

(4) ऐसे अवयस्क साझेदार को फर्म के साझेदारों से हिसाब लेने के अथवा फर्म की सम्पत्ति और लाभ मे अपने हिस्से के भुगतान के लिए न्यायालय में मुकदमा करने का अधिकार नहीं होता है किन्तु. फर्म से सम्बन्ध-विच्छेद करते समय वह न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी हो जाता है। फर्म में उसके हिस्से के मूल्यांकन की विधि भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 48 में दिये गये नियमों के अनुसार होगी।

सभी साझेदार अथवा कोई भी साझेदार जिन्हें फर्म की समाप्ति की सूचना देने का अधिकार प्राप्त है, अवयस्क साझेदार द्वारा प्रस्तुत किये हुए वाद को ध्यान में रखते हुए, फर्म को समाप्त करने का फैसला कर लेते हैं तो ऐसी परिस्थिति में न्यायालय समस्त साझेदारों के खातों को निपटाने का आदेश दे सकता है। इस स्थिति में अवयस्क साझेदार के हिस्से का निर्धारण अन्य साझेदारों के हिस्सों का निर्धारण के तरीके से भिन्न नहीं होगा। [धारा 30 (4)]

(5) अवयस्क साझेदार द्वारा अपने वयस्क होने की तिथि अथवा इस बात की जानकारी की तिथि से कि वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया जा चुका है, जो भी बाद की तिथि हो उसके 6 माह के भीतर अपने इस निर्णय की सार्वजनिक सूचना दे देनी चाहिए कि उसने फर्म में साझेदार बनना अथवा न बनना तय कर लिया है। [धारा 30(5)]

यदि वह 6 माह के व्यतीत हो जाने पर भी सार्वजनिक सूचना नहीं दे पाता है तो वह फर्म में स्वत साझेदार बन जावेगा।

(6) किसी अवयस्क का साझेदारी फर्म के लाभों में सम्मिलित होना और इस तथ्य की जानकारी उसे वयस्क हो जाने के छः माह बाद हो तो इसकी पुष्टि करने का दायित्व इन तथ्यों को प्रकट करने वाले पर होगा। [धारा 30 (6)]

(7) **अगर ऐसा अवयस्क साझेदार साझेदारी फर्म में साझेदार बन जाता है तो—**

(1) अवयस्क के रूप में उसके अधिकार और दायित्व उसी तिथि तक बने रहते हैं जिस दिन वह साझेदारी फर्म में साझेदार बन जाता है किन्तु, वह व्यक्तिगत रूप से साझेदारी फर्म के उन सभी कार्यों के लिए तृतीय पक्ष के प्रति दायी होता है जिन्हें फर्म के लाभों मे उसके सम्मिलित किये जाने के बाद किया गया है।

(2) साझेदारी फर्म में साझेदार हो जाने पर भी उसका फर्म की सम्पत्ति और लाभों में हिस्सा पूर्ववत् बना रहेगा। [धारा 30 (7)]

अगर ऐसा अवयस्क साझेदार साझेदारी फर्म में साझेदार नहीं बनने का निर्णय लेता है तो—

(1) इस प्रकार के निर्णय की सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक उसके अधिकार और दायित्व पूर्ववत् बने रहेंगे।

(2) सार्वजनिक सूचना देने के बाद फर्म के कार्यों के लिए उसका भाग दायी नहीं होगा और,

(3) फर्म की सम्पत्ति और लाभ में अपने हिस्से की प्राप्ति के लिए वह अन्य साझेदारों पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी होगा। [धारा 30 (7)]

विशेष :—साझेदारी फर्म के लाभों में सम्मिलित होने वाले अवयस्क को सुविधा हेतु 'अवयस्क साझेदार' लिखा गया है।

क्या अवयस्क एक साझेदारी फर्म में साझेदार होता है ?
(Can Minor be Partner in a Partnership Firm)

धारा 30 में वर्णित तथ्यों के विश्लेषण से एक अवयस्क के साझेदारी फर्म में सम्मिलित किये जाने के सम्बन्ध में निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :—

(1) साझेदारी फर्म में एक अवयस्क को साझेदार नहीं बनाया जा सकता है किन्तु, उसे साझेदारी फर्म के लाभों मे अवश्य सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) वह केवल साझेदारी फर्म के सभी सदस्यों की सहमति के बाद ही साझेदारी के लाभों में शामिल किया जा सकता है।

(3) साझेदारी फर्म के लाभों में एक अवयस्क को सम्मिलित करने के पूर्व साझेदारी फर्म का अस्तित्व होना चाहिए।

(4) एक अवयस्क साझेदार फर्म की हानियों के लिए दायी नहीं है। 1978 में दिये गये उत्तम कुमार बनाम प्रमोद कुमार के फैसले मे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अनुसार साझेदार विलेख में अगर अवयस्क द्वारा हानि में बँटवारे की बात दी हुई है, तो साझेदारी अवैध होगी।

अवयस्क साझेदार के अधिकार और दायित्व
(Rights & Liabilities of a Minor as Partner)

एक साझेदारी फर्म के लाभों मे सम्मिलित किये जाने वाले अवयस्क के अधिकार और दायित्व निम्नानुसार होते हैं :—

अधिकार
(Rights)

(1) लाभों में हिस्सा—एक अवयस्क साझेदारी फर्म के लाभों में पूर्व निर्धारित हिस्सा प्राप्त करने का अधिकारी होता है। [धारा 30 (2)]

(2) सम्पत्ति में हिस्सा—एक अवयस्क साझेदारी फर्म की सम्पत्ति में भी हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार रखता है। [धारा 30 (2)]

(3) लेखा-पुस्तकों की जाँच—एक अवयस्क साझेदारी फर्म के लाभों में सम्मिलित किये जाने पर फर्म के हिसाब अथवा लेखा पुस्तकों तक पहुँचने, देखने, निरीक्षण करने का अधिकारी हो जाता है। [धारा 30 (2)]

(4) लेखा-पुस्तकों की प्रतिलिपि लेना—एक अवयस्क साझेदार द्वारा साझेदारी फर्म की लेखा-पुस्तकों की प्रतिलिपि माँगी जा सकती है परन्तु वह फर्म की अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को देखने व उनकी प्रतिलिपि माँगने का अधिकारी नहीं होता है।

[धारा 30 (2)]

(5) साझेदारों पर मुकदमा चलाना—एक अवयस्क साझेदारी से सम्बन्ध विच्छेद करते वक्त, फर्म की सम्पत्ति और लाभ में हिस्सा प्राप्त करने के लिए साझेदारो और फर्म पर मुकदमा चला सकता है।

(6) वयस्क होने की स्थिति में साझेदार बनना—एक अवयस्क के द्वारा वयस्कता प्राप्त करने पर अथवा फर्म के लाभों में सम्मिलित होने की जानकारी की सूचना के 6 माह के भीतर (दोनों में से जो बाद में हो) किसी भी समय सार्वजनिक सूचना द्वारा वह साझेदार बनने का अधिकार रखता है। अगर वह सार्वजनिक सूचना नहीं दे पाता है तो वह स्वतः साझेदार बन जाता है। अर्थात् यह साझेदार नहीं बनना चाहता है तो उसे इस सम्बन्ध में एक सार्वजनिक सूचना देनी होगी, वरना वह स्वतः साझेदार माना जावेगा।

दायित्व
(Liabilities)

साझेदारी फर्म के लाभों में सम्मिलित किये जाने वाले अवयस्क के दायित्व निम्न हैं —

(1) सीमित दायित्व—एक अवयस्क का दायित्व फर्म में उसके लाभ तथा सम्पत्ति के हिस्से तक सीमित रहता है। [धारा 30 (3)]

(2) व्यक्तिगत दायित्व का अभाव—एक अवयस्क का फर्म के कार्यों के लिए कोई भी व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है। उसे दिवालिया भी घोषित नहीं किया जा सकता है।

(3) साझेदारी फर्म के दिवालियापन की स्थिति से उत्पन्न दायित्व—एक साझेदारी फर्म द्वारा दिवाला निकाले जाने पर एक अवयस्क का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है। साझेदारी फर्म में विनियोजित उसकी सम्पत्ति और उसके हिस्से के लाभ को राजकीय प्रापक (official Receiver) को सौंप दिया जाता है।

(4) वयस्क होने की स्थिति में सार्वजनिक सूचना का दायित्व—एक अवयस्क के द्वारा वयस्कता प्राप्त करने पर भी वह साझेदार नहीं बनना चाहता है तो उसे इस सम्बन्ध में एक सार्वजनिक सूचना देनी होगी वरना वह स्वतः साझेदार माना जावेगा और उसी तिथि से तृतीय पक्षों के प्रति फर्म के कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा।

वयस्क होने के बाद
(Position after at ataining Majority)

एक अवयस्क साझेदार के वयस्क हो जाने पर दो अधिकार होते हैं

(क) साझेदारी फर्म में वह साझेदार बनना स्वीकार करता है।

(ख) फर्म में वह साझेदार बनना अस्वीकार करता है।

फर्म में साझेदार बनने पर उसे निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं

(1) फर्म के लाभों में हिस्सा—साझेदारी फर्म के लाभों में उसका अंश पूर्ववत् बना रहता है। [धारा 30 (7)]

(2) फर्म की सम्पत्ति में हिस्सा—साझेदारी फर्म की सम्पत्ति में भी उसका हिस्सा पूर्ववत् बना रहता है। [धारा 30 (7)]

(3) फर्म की समस्त पुस्तकों तक पहुँच—साझेदार बन जाने पर वह साझेदारी फर्म

र हिसाब-किताब की पुस्तकों के अलावा गोपनीय पुस्तकों को भी देखने व निरीक्षण करने का अधिकारी हो जाता है।

(4) साझेदार के अन्य सभी अधिकारों की प्राप्ति—वह दूसरे साझेदारों जैसे, व्यवसाय कार्य में भाग लेना, भुगतान चुकाना व प्राप्त करना इत्यादि, जैसे अधिकार प्राप्त कर लेता है।

फर्म में साझेदार बनने पर उसके निम्न दायित्व हो जाते हैं

(1) साझेदार बनने के पूर्व के दायित्व—वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित होने की तिथि के बाद वाले फर्म के सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी हो जाता है।

(2) साझेदार बनने के बाद वाले दायित्व—उसके साझेदार बनने के बाद वाले फर्म के दायित्वों के लिए वह उत्तरदायी होता है।

(3) व्यक्तिगत दायित्व का होना—वह फर्म में साझेदार बन जाता है तब उसका व्यक्तिगत दायित्व भी असीमित हो जाता है यानी फर्म और अन्य साझेदारो के प्रति उसका दायित्व भी असीमित हो जाता है।

(4) अन्य दायित्वों का होना—साझेदार बनने पर उसके दायित्व अन्य साझेदारो के समान हो जाते हैं।

फर्म का साझेदार न बनने पर—एक अवयस्क के वयस्क होने पर भी, उसके द्वारा साझेदार बनना स्वीकार न करने पर उसके अधिकार एवं दायित्व निम्नलिखित होते हैं :—

(1) सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक उसके अधिकार और दायित्व पूर्ववत् बने रहेंगे।

(2) सार्वजनिक सूचना देने की तिथि के पश्चात् फर्म द्वारा किये गये कार्यों के लिए वह दायी नहीं होगा।

(3) उसे फर्म की सम्पत्ति और लाभों में भाग प्राप्त करने के लिए साझेदारो पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिल जाता है।

(4) वयस्कता प्राप्त कर लेने के बाद फर्म से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है लेकिन फिर भी साझेदार होने का प्रदर्शन करता है, तो वह तृतीय पक्ष के प्रति दायी होता है। [धारा 30 (8)]

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. क्या अवयस्क साझेदारी में सम्मिलित किया जा सकता है? अवयस्क साझेदार के अधिकारो और दायित्वों के सम्बन्ध मे अधिनियम की व्यवस्थाओं का उल्लेख कीजिये।

   Can a minor be admitted to partnership? State the law relating to rights and liabilities of a minor partner.

   (जोधपुर वि. वि. 1981)

2. "एक अवयस्क दूसरों को बन्धन में डालता है, परन्तु दूसरों द्वारा बन्धन में नहीं डाला जा सकता है।" इस कथन की व्याख्या दीजिये। भारतीय साझेदारी अधिनियम के अन्दर उसकी क्या स्थिति है ?

"A minor binds others, but is never bound by others." Explain this statement. What is his position under the Indian partnership act.

3. क्या एक अवयस्क साझेदारी व्यवसाय में शामिल किया जा सकता है ? यदि किया जा सकता है तो उसके अधिकार और उत्तरदायित्व उसके अवयस्क होने की स्थिति में और वयस्कता प्राप्त कर लेने के बाद क्या होंगे ?

Can a minor be admitted to partnership ? If so, what will be his rights and liabilities during his minority and after he has attained majority ?

(राज. वि. वि. *1981*)

22

फर्म का पुनर्गठन
(Reconstitution of a Firm)

विषय-सामग्री—नये साझेदार का प्रवेश, अधिकार और दायित्व, पृथक् होने वाले साझेदार, अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार के दायित्व, साझेदार का निकाला जाना, साझेदार का दिवालिया हो जाना, साझेदार की मृत्यु, पृथक् होने वाले साझेदार के अधिकार।

साझेदार के आपसी अधिकारों, कर्त्तव्यों और दायित्वों में कोई परिवर्तन किया जाता है या साझेदारी फर्म की बनावट में कोई परिवर्तन होता है तो इस स्थिति में फर्म को परिवर्तित अथवा पुनर्गठित फर्म कहा जाता है। निम्न दशाओं में एक फर्म का पुनर्गठन माना जाता है :—

(1) नये साझेदार का प्रवेश,
(2) साझेदार का पृथक् होना,
(3) साझेदार द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को हित हस्तान्तरण करना।

नये साझेदार का प्रवेश
(Admission of a new Partner)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 31 (1) के अन्तर्गत एक फर्म के साझेदार किसी अन्य समझौते के अभाव में सर्वसम्मति से किसी नये व्यक्ति को साझेदार बना सकते हैं। एक स्थापित साझेदारी फर्म में एक व्यक्ति किसी भी एक निम्न तरीके से साझेदार बन सकता है :—

(1) समस्त साझेदारों की सहमति द्वारा,
(2) साझेदारी अनुबन्ध में सम्मिलित किसी शर्त के आधार पर जैसे किसी भी साझेदार को यह अधिकार दिया जा सकता है कि वह फर्म में आवश्यकता पड़ने पर किसी नये व्यक्ति को साझेदार बना ले।

प्रवेश पाने वाले साझेदार के अधिकार और दायित्व
(Rights & Liabilities of Incoming Partner)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 एवं 31 के अन्तर्गत एक नये साझेदार के निम्नलिखित दायित्व एवं अधिकार होते हैं :—

(1) एक नया साझेदार फर्म के द्वारा उसके प्रवेश के पूर्व वाले कार्यों के लिए दायी नहीं होगा। वह प्रवेश के पूर्व के उन कार्यों के लिए अवश्य दायी होगा जो अभी तक चल रहे है।

(2) वह साझेदार बनने के बाद के फर्म के सभी कार्यों के लिए दायी होता है।

(3) वह अवयस्क जिसे फर्म के लाभों में सम्मिलित किया गया था, वयस्क होने के बाद फर्म में साझेदार बन जाता है, तो उसका दायित्व उस तिथि से होगा जिस दिन वह साझेदारी के लाभों में शामिल किया गया था।

(4) साझेदारी में प्रवेश पाने वाले साझेदार को साझेदारी की समस्त शर्तों को पालन करने का दायित्व होता है। वह उन सभी अधिकारों को प्राप्त करता है, जो अन्य साझेदारों को प्राप्त हैं।

पृथक् होने वाला साझेदार
(Outgoing Partner)

एक साझेदार निम्न परिस्थितियों में साझेदारी फर्म से पृथक् हो जाता है :—

(1) अवकाश ग्रहण करने अथवा निवृत्त होने पर (On Retirement)
(2) निकाले जाने पर (*Expulsion*)
(3) दिवालिया घोषित हो जाने पर (Insolvency)
(4) मृत्यु हो जाने पर (On Death)

(1) अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार—एक साझेदार का फर्म से अवकाश ग्रहण करने से आशय यह है कि उसने फर्म से सम्बन्ध विच्छेद कर लिए हैं। फर्म का व्यवसाय शेष साझेदार चलाते रहेंगे और फर्म का समापन नहीं होगा परन्तु, फर्म पुनर्गठित अवश्य होगी।

एक साझेदार फर्म से निम्न प्रकार से अवकाश प्राप्त कर सकता है :—

(1) अन्य सभी साझेदारों की सहमति से,
(2) साझेदारों के किसी स्पष्ट अनुबन्ध के आधार पर,
(3) ऐच्छिक साझेदारी के अन्तर्गत अवकाश लेने की इच्छा की सूचना देकर,
(4) एक निष्क्रिय साझेदार की स्थिति में।

अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार के दायित्व
(Liability of a Retiring Partner)

एक अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार के दायित्व निम्न हैं :—

(1) फर्म के पूर्व कार्यों के लिए दायी होना—एक अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार शेष साझेदारों और तृतीय पक्ष के प्रति अवकाश के पूर्व वाले फर्म के कार्यों के लिए दायी होता है किन्तु यदि फर्म के शेष साझेदारों व लेनदारों के साथ अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार ने कोई विशेष अनुबन्ध कर रखा है कि वह अपने निवृत्त होने की तिथि के पूर्व के कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा तो वह दायित्व मुक्त हो जाता है।
[धारा 32 (2)]

(2) सार्वजनिक सूचना के अभाव में दायित्व—अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार तृतीय पक्ष के प्रति फर्म के कार्यों के सम्बन्ध में उस समय तक दायी रहता है जब तक कि वह अपने अवकाश ग्रहण करने की सार्वजनिक सूचना नहीं दे देता। उसके अवकाश ग्रहण

करने की सार्वजनिक सूचना पुनर्गठित फर्म के साझेदारों द्वारा भी दी जा सकती है।
[धारा 32 (3)]

(3) **तृतीय पक्ष की अज्ञानता की स्थिति में दायित्व**—फर्म से व्यवहार करने वाले तृतीय पक्ष को निवृत होने वाले साझेदार की साझेदारी की कोई जानकारी नहीं है, तथा निवृत्त साझेदार द्वारा अवकाश की सार्वजनिक सूचना न देने पर भी, ऐसे व्यवहारो के लिए वह निवृत्त साझेदार उत्तरदायी नहीं है। [धारा 32 (3)]

(4) **निष्क्रिय साझेदार बिना सूचना पर भी अवकाश का अधिकारी**—एक निष्क्रिय साझेदार के लिए अवकाश ग्रहण करने की सार्वजनिक सूचना देना आवश्यक नही है कारण कि, तीसरा पक्ष ऐसे साझेदारों के बारे मे कोई जानकारी नही रखता है।

(5) **साझेदार का निकाला जाना (Expulsion of a Partner)**—भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 33 (1) के अनुसार बहुमत निर्णय के आधार पर एक साझेदार को फर्म से निकाला जा सकता है परन्तु, किसी समझौते के अन्तर्गत अगर इस प्रकार के अधिकार दिये हुए हैं कि एक साझेदार को फर्म से निकाला जा सकता है तो ऐसे अधिकार का प्रयोग सद्भावना से करना चाहिये।

किसी साझेदार को उपर्युक्त नियमों का पालन करते हुए निकाला जा रहा है तो भी उसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार उसके विरुद्ध लगाए हुए दोषों की सूचना तथा बचाव के लिए अवसर देना चाहिये।

एक निष्कासित साझेदार के अधिकार एवं दायित्व वही होते है जो कि अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार के होते है। [धारा 33 (2)]

(6) **साझेदार का दिवालिया हो जाना (Insolvency of a Partner)**—किसी भी साझेदार को दिवालिया घोषित किये जाने पर भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 34 में वर्णित नियम लागू होंगे। इस धारा के अनुसार साझेदार के दिवालिया घोषित किये जाने पर निम्न प्रभाव होते हैं :—

(1) दिवालिया घोषित होने की तिथि से ऐसा व्यक्ति फर्म का साझेदार नही रहता।

(2) किसी अन्य समझौते के अभाव में किसी साझेदार के दिवालिया घोषित कर दिये जाने पर साझेदारी फर्म का विघटन हो जाता है।

(3) दिवालिया घोषित किये जाने के बाद ऐसे साझेदार की सम्पत्ति फर्म के उन कार्यों के लिए दायी नही है जिन्हें साझेदार के दिवालिया घोषित किये जाने के बाद किया गया है।

(4) ऐसे साझेदार के दिवालिया घोषित होने की तिथि के बाद के कार्यों के लिए फर्म बाध्य नहीं होती है।

(4) **साझेदार की मृत्यु हो जाने पर (Death of a Partner)**—साझेदार की मृत्यु पर अन्य समझौतो के अभाव में साझेदारी फर्म का समापन हो जाता है। साझेदार की मृत्यु की दशा में किसी सार्वजनिक सूचना देने की आवश्यकता नही होती।

(धारा 42)

अगर किसी समझौते के अन्तर्गत किसी साझेदार की मृत्यु पर फर्म का समापन नही किया जाता है तो मृतक साझेदार की सम्पत्ति उसकी मृत्यु के बाद किये गए फर्म के कार्यों के लिए दायी नही है। (धारा 35)

साझेदार की मृत्यु पर अगर फर्म का समापन किया जाना होता है तो शेष साझेदार फर्म के कार्यों के लिए फर्म की समाप्ति की सार्वजनिक सूचना की तिथि तक जिम्मेदार होते हैं। यह नियम जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है मृतक साझेदार की सम्पत्ति पर लागू नही होगा, चाहे फर्म का समापन हुआ है या नही। [धारा 45 (1)]

पृथक होने वाले साझेदार के अधिकार

(Rights of outgoing Partner)

एक साझेदारी फर्म के विभिन्न प्रकार से पृथक् होने वाले साझेदारों के दायित्वों का पीछे अध्ययन किया जा चुका है। पृथक् होने वाले साझेदार के अधिकार निम्नलिखित होते है :—

(क) प्रतियोगी व्यवसाय चलाने का अधिकार,

(ख) फर्म के आगे के लाभो मे हिस्सा लेने का अधिकार,

(1) प्रतियोगी व्यवसाय चलाने का अधिकार—भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 36 के अनुसार एक साझेदारी फर्म से अलग होने वाला साझेदार (निवृत, निष्कासित अथवा दिवालिया) व्यवसाय करने के लिए निम्न अधिकार रखता है :—

(1) वह फर्म के व्यवसाय के समान ही व्यवसाय प्रारम्भ कर सकता है।

(2) फर्म के व्यवसाय से वह प्रतिस्पर्धा कर सकता है।

(3) वह व्यवसाय का विज्ञापन भी करवा सकता है।

परन्तु, अन्य समझौतों के अभाव मे उसे निम्न अधिकार प्राप्त नही होते :—

(1) फर्म के नाम का प्रयोग करना।

(2) साझेदारी से पृथक् होने के बाद भी अपने आप को साझेदार के रूप में प्रदर्शित करना।

(3) फर्म से पृथक् होने के पूर्व के फर्म के ग्राहकों को अपने व्यवसाय की ओर आकर्षित करना।

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 36 (2) के अन्तर्गत वे आपस में यह भी समझौता कर सकते है कि उनमें से कोई भी साझेदार फर्म से पृथक् होने पर निम्न बातों का पालन करे :—

(1) एक निश्चित अवधि के भीतर उनमे से किसी भी फर्म के व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा मे कोई व्यवसाय नही करेगा।

(2) निश्चित स्थानीय सीमाओं के अन्दर उनमे से कोई भी फर्म के व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा मे व्यवसाय नही करेगा।

इस प्रकार के पृथक् होने वाले साझेदारों पर लगाए गए प्रतिबन्ध भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के अन्तर्गत वैध माने जाते है।

(2) फर्म के आगे के लाभों में हिस्सा लेने का अधिकार—फर्म से पृथक् होने वाला साझेदार (मृत्यु, निवृत्ति, दिवालिया या निष्कासन की परिस्थितियों में) निम्न परिस्थितियों में फर्म के उस लाभ में भी हिस्सा बँटाने का अधिकारी होता है जिसे फर्म ने साझेदार के पृथक् होने के बाद अर्जित किया है। (धारा 37)

(1) फर्म व अन्य साझेदारों ने किसी साझेदार के पृथक होने की तिथि पर न तो फर्म का हिसाब तैयार किया है और न ऐसे साझेदार के हिस्से का भुगतान किया है।

(2) किसी अन्य अनुबन्ध के अभाव में एक पृथक् साझेदार द्वारा उस लाभ को प्राप्त करने का अधिकार होता है जिसे फर्म द्वारा उसके हिस्से की सम्पत्ति से कमाया गया है।

(3) पृथक् साझेदार का हिसाब निपटाये बिना फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग फर्म के व्यवसाय के लिए चालू रखा गया है।

(4) पृथक् साझेदार चाहे तो लाभ में भाग लेने के बजाय उसके हिस्से की विनियोजित राशि पर 6% वार्षिक दर से ब्याज पाने का अधिकारी हो सकता है।

उपर्युक्त अधिकार लागू नहीं होते यदि बचे हुए साझेदारों ने किसी पूर्व समझौते के अन्तर्गत ये अधिकार प्राप्त कर रखा है कि वे मृतक अथवा पृथक् साझेदार का हिस्सा खरीद सकते हैं और उन्होंने अपने इस अधिकार को लागू कर दिया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साझेदारी फर्म के पुनर्गठन से क्या आशय है ? एक फर्म का पुनर्गठन किन-किन परिस्थितियों में होता है ?

   What is ment by reconstitution of a partnership firm ? In wha circumstances a firm is reconstitued ?

2. *निम्नलिखित के सम्बन्ध मे साझेदार की स्थिति का वर्णन कीजिये—*

   (i) साझेदार होने के पूर्व फर्म का दायित्व.
   (ii) निवृत्त हो जाने के पश्चात् उत्पन्न फर्म का दायित्व,
   (iii) उसके निवृत्त हो जाने के समय के फर्म के दायित्व।

   Explain the position of a partner with regards.

   (i) Liabilities existing prior to the time when he became partner,
   (ii) Liabilities incurred by the firm when he has retired.
   (iii) Liabilities at the time of his retiring.

3. निम्न परिस्थिति में भारतीय साझेदारी अधिनियम के अंतर्गत क्या प्रावधान हैं ?

   (i) नया साझेदार का प्रवेश,

   (ii) अवकाश प्राप्त करने वाला साझेदार और

   (iii) साझेदार का निष्कासन ।

   What are the provisions under Indian Partnership Act under following circumstances.

   (i) Incoming partner,

   (ii) Retiring partner and

   (iii) Expulsion of a partner.

□▣Ⓒ

23

साझेदारी फर्मों का पंजीयन

(Registration of Partnership Firms)

विषय-सामग्री—साझेदारी फर्म का पंजीयन ऐच्छिक, पंजीयन करवाने की विधि, पंजीयन के बाद वाले परिवर्तनों की सूचना, पंजीयित फर्मों की प्रतिलिपि का अधिकार, पंजीयन न कराने का प्रभाव, अपंजीयित फर्म के अधिकार, फर्म के पंजीयन से होने वाले लाभ।

साझेदारी फर्मों के पंजीयन सम्बन्धी नियम भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धाराओं 56–70 के अन्तर्गत दिये हुए हैं। इन नियमों को लागू दिनांक 1 अक्टूबर 1933 से किया गया है। इस अधिनियम की धारा 56 के अनुसार किसी भी प्रान्त व क्षेत्र में वहाँ की राज्य सरकार सूचना जारी करके फर्मों के पंजीयन हेतु एक पंजीयित अधिकारी जिसे 'रजिस्ट्रार ग्राफ फर्मस' भी कहा जाता है, की नियुक्ति और उसके कार्य क्षेत्र को परिभाषित करने का अधिकार रखती है। (धारा 57)

साझेदारी फर्म का पंजीयन का ऐच्छिक होना

साझेदारी फर्म का पंजीयन कराना अनिवार्य नहीं है, परन्तु, फर्म का पंजीयन नहीं कराने से कई प्रकार की गम्भीर असुविधाओं का सामना करना पड़ सकता है। फलस्वरूप इन असुविधाओं से बचने हेतु साझेदारी फर्में पंजीयन कराना पसन्द करती है।

साझेदारी फर्म का पंजीयन कराने की विधि

एक साझेदारी फर्म का पंजीयन कराने की विधि निम्नानुसार है :—

(1) पंजीयन सम्बन्धी नियम पत्र भरना—एक साझेदारी फर्म का पंजीयन कराने के लिये सबसे पहले फर्म के व्यवसाय स्थान वाले क्षेत्र में स्थापित पंजीयन अधिकारी के कार्यालय से नियम व प्रार्थना-पत्र प्राप्त किया जाता है। इस प्रार्थना-पत्र में निम्न विषयों से सम्बन्धित सूचना दी जाती है :—

(1) फर्म का नाम

(2) फर्म के व्यवसाय के स्थान अथवा मुख्य स्थान,

(3) उन स्थानों के नाम जहाँ पर फर्म द्वारा व्यवसाय किया जाता है

(4) साझेदारों द्वारा साझेदारी फर्म मे शामिल होने की तिथि

(5) समस्त साझेदारों के पूरे नाम व स्थायी पते,

(6) फर्म की अवधि।

फर्म के नाम का चुनाव करते वक्त बडी सावधानी की आवश्यकता है। नाम में वे शब्द जिनसे साझेदारी फर्म को सरकारी संरक्षण अथवा किसी विशेष प्रकार का राजकीय लाभ का आभास होता है, नहीं आने चाहिये। धारा 58 मे दिये हुये इन शब्दों का प्रयोग इसीलिये वर्जित है—सम्राट, राजाधिराज, साम्राज्य, राजन्, रानी, क्राउन, स्टेट, इम्पीरियल, रॉयल इत्यादि। अगर कोई फर्म इन शब्दो मे किसी शब्द को अपने नाम में सम्मिलित करना चाहती है तो उसे केन्द्रीय सरकार से इस सम्बन्ध में अनुमति लेनी होगी।

(2) प्रार्थना पत्र पर साझेदारों के हस्ताक्षर होना—प्रार्थना पत्र में उपरोक्त सूचना के साथ सभी साझेदारों अथवा उनके प्रतिनिधियों के द्वारा हस्ताक्षर किया जाना आवश्यक है। समस्त हस्ताक्षरकर्त्ताओं को इस बात को भी प्रमाणित करना होगा कि जो कुछ भी प्रार्थना-पत्र मे लिखा गया है वह सही है।

(3) नियत शुल्क जमा कराया जाना—प्रत्येक साझेदारी फर्म द्वारा नियत पंजीयन शुल्क जमा कराये बिना उसके पंजीयन हेतु प्रार्थना-पत्र पर विचार नही किया जाता।

अतः नियत शुल्क जमा करा कर पंजीयन अधिकारी से रसीद प्राप्त कर लेनी चाहिये। इस रसीद को प्रार्थना-पत्र के साथ लगाने पर ही प्रार्थना-पत्र पंजीयन अधिकारी कार्यालय द्वारा स्वीकार किया जावेगा।

(4) पंजीयक कार्यालय में प्रार्थना-पत्र जमा करवाना जाना—प्रार्थना-पत्र को नियत शुल्क रसीद के साथ सम्बन्धित क्षेत्र की फर्मों के पंजीयन अधिकारी के पास जमा कराना चाहिये।

(5) पंजीयन अधिकारी द्वारा जाँच-पड़ताल—पंजीयन अधिकारी द्वारा प्रार्थना-पत्र में दी हुई बातो की जाँच-पड़ताल की जाती है और यह पता लगाया जाता है कि फर्म ने उन सभी शर्तों को पूरा कर लिया है जो पंजीयन करने के पूर्व आवश्यक होती हैं।

(6) फर्मों के रजिस्टर में प्रविष्टि किया जाना—प्रार्थना-पत्र में दी हुई बातों की जाँच-पड़ताल करने के बाद जब पंजीयन अधिकारी पूर्ण सन्तुष्ट हो जाता है, तो उस प्रार्थना पत्र मे लिखे हुए फर्म के नाम को फर्मों के रजिस्टर मे लिख लेता है तथा प्रार्थना-पत्र और अन्य विवरण को फाइल में लगा देता है।

(7) पंजीयन का प्रमाण-पत्र जारी करना—फर्मों के रजिस्टर मे नाम लिखे जाने और पंजीयन के सबूत मे पंजीयन अधिकारी प्रार्थी फर्म को एक प्रमाण पत्र (Certificate of Registration) निर्गमित कर दिया जाता है। इस प्रमाण-पत्र में दी हुई तिथि से सम्बन्धित फर्म 'रजिस्टर्ड फर्म' कहलाने लगती है। (धारा 59)

यहाँ इस बात को ध्यान मे रखने की जरूरत है कि इस पंजीयन का आयकर विभाग द्वारा फर्मों के पंजीयन से कोई सम्बन्ध नहीं है। आयकर की छूटों का लाभ उठाने के लिए आयकर नियमों के अनुसार फर्म का पंजीयन अलग से करवाना होगा।

पंजीयन के बाद परिवर्तनों की सूचना

साझेदारी फर्म के पंजीयन के बाद निम्नलिखित परिवर्तनों की सूचना साझेदारो के हस्ताक्षर सहित नियत शुल्क के साथ पंजीयन अधिकारी के पास अवश्य भेजनी चाहिये :—

(1) पंजीयन फर्म के नाम और उसके व्यवसाय के मुख्य स्थान में परिवर्तन किया जाना। (धारा 60)

(2) पंजीयित फर्म के व्यवसाय-केन्द्र को बन्द कर दिया जाना अथवा किसी नये स्थान पर व्यवसाय केन्द्र खोला जाना। (धारा 61)

(3) फर्म के साझेदारों के नाम एवं उनके स्थाई पतों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन होना। (धारा 62)

(4) पंजीयित फर्म की बनावट में कोई परिवर्तन होना जैसे नये साझेदार का प्रवेश, पुराने साझेदार द्वारा अवकाश ग्रहण किया जाना इत्यादि। [धारा 63 (1)]

(5) जब कोई वयस्क फर्म मे साझेदारी के लाभों मे सम्मिलित कर लिया गया हो और वयस्क हो जाने पर वह फर्म का साझेदार बनाना या नही बनाना स्वीकार करता हो। [धारा 63 (2)]

पंजीयन अधिकारी उपर्युक्त परिवर्तनों से संतुष्ट हो जाने पर सम्बन्धित सूचना और उस पर आधारित परिवर्तन फर्मों के रजिस्टर में दर्ज कर लेता है।

भूल सुधार

धारा 64 के अन्तर्गत एक पंजीयन अधिकारी द्वारा फर्मों के रजिस्टर में निम्न दशाओं में, फर्म की भूल सुधार करना आवश्यक है—

(1) जब भी साझेदार या वे पक्ष जिन्होंने फर्म से सम्बन्धित पजीयन अधिकारी के पास जमा कराए गए प्रपत्रों पर दस्तखत किए है, किसी भूल को सुधारने का प्रार्थना-पत्र देते हैं।

(2) न्यायालय द्वारा भूल सुधारने के लिए निर्देश जारी किया जाना। (धारा 65)

फर्मों के रजिस्टर तथा सम्बन्धित प्रपत्रों का निरीक्षण

साझेदारी अधिनियम की धारा 66 के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति नियत शुल्क जमा कराने पर फर्मों के रजिस्टर तथा सम्बन्धित प्रपत्रों का निरीक्षण कर सकता है। धारा 67 के अनुसार वह नियत शुल्क जमा करा कर फर्म के पंजीयन सम्बन्धित किसी बात की प्रमाणित प्रतिलिपि भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ फर्म के पंजीयन तथा सम्बन्धित सूचनाओं का सबूत मानी जाती हैं। (धारा 68)

पंजीयन न कराने का प्रभाव

भारतीय साझेदारी अधिनियम 69 के अनुसार एक साझेदारी फर्म का पंजीयन नही कराने से निम्न प्रभाव होते हैं—

(1) साझेदार द्वारा वाद प्रस्तुत करने का अधिकार न होना—कोई भी साझेदार अपने अधिकारों को लागू करने के लिए अन्य साझेदारों एवं फर्म के प्रति वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।

जब तक फर्म का पंजीयन नहीं होता है, वाद प्रस्तुत करने वाले साझेदार का नाम पंजीयन अधिकारी के पास रखे गए 'रजिस्टर आफ फर्मस' में नहीं लिखा जाता। परिणाम स्वरूप ऐसे साझेदार साझेदारी अधिनियम अथवा विलेख के अन्तर्गत प्राप्त अपने अधिकार को लागू कराने के लिए अन्य साझेदारों (भूत अथवा वर्तमान) और साझेदारी फर्म के विरुद्ध मुकदमा करने का अधिकार नहीं रखते—

(2) अपंजीयित फर्म को साझेदारों के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होता—साझेदारी फर्म द्वारा पंजीयन न कराने पर फर्म द्वारा किसी भी साझेदार के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नही किया जा सकता क्योंकि उसका अपना पृथक वैधानिक अस्तित्व नहीं होता है।

(3) साझेदारी फर्म द्वारा तृतीय पक्ष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होना—तृतीय पक्ष के द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर पजीयित साझेदारी फर्म अथवा कोई भी साझेदार तृतीय पक्ष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नही रखता है।

(4) तृतीय पक्ष द्वारा फर्म के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होना—साझेदारी फर्म या किसी साझेदार द्वारा फर्म के लिए किए गए अनुबन्ध भंग करने पर अपंजीयित फर्म के विरुद्ध तृतीय पक्ष वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है।

(5) सौ रुपये तक राशि के लिए तृतीय पक्ष के विरुद्ध राशि की वसूली का फर्म का अधिकार रहना—फर्म का पजीयन नही होने पर भी वह तृतीय पक्षकारों के विरुद्ध सौ रुपये तक की घटोतरी अथवा बाकी राशि के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखती है।

अपंजीयित फर्म के अधिकार

एक फर्म द्वारा पंजीयन न कराने पर भी उसके निम्न अधिकार बने रहते है :—

(1) अपंजीयित फर्म के विघटन पर विघटित फर्म की सम्पत्ति बेचने के अधिकार को लागू करने के लिए कोई भी साझेदार न्यायालय मे वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है। [धारा 69 (3)]

(2) कोई साझेदार फर्म से सम्बन्ध-विच्छेद करने पर अथवा फर्म की समाप्ति हो जाने की दशा मे कानूनन हिसाब माँगने का अधिकारी होता है और इस सम्बन्ध में वह अपने अधिकार को लागू करवाने के लिए न्यायालय की शरण भी ले

(1) फर्म को लाभ—पंजीयन कराने से एक फर्म और उसके साझेदारो को तृतीय पक्ष द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर दीवानी अदालत में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त एक पंजीकृत फर्म अपने किसी भी साझेदार पर भी वाद प्रस्तुत करने की अधिकारी होती है।

(2) साझेदारों को लाभ—फर्म के पंजीयन से साझेदार अपने अधिकारों का उल्लंघन होने की दशा में अन्य साझेदारों, फर्म एवं अन्य पक्षो के विरुद्ध न्यायालय द्वारा न्याय प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

(3) ऋणदाताओं को लाभ—फर्म के पंजीयन से ऋणदाताओं के हितों की रक्षा होती है। पंजीयन के कारण फर्म के प्रत्येक साझेदार का नाम 'रजिस्टर ऑफ फर्म्स' में लिखा हुआ रहता है। परिणामस्वरूप एक साझेदार यह कह कर कि वह साझेदार नहीं है अपने साझेदारी के दायित्व से मुक्त नही हो सकता।

(4) नये साझेदार को लाभ—पंजीकृत फर्म में जब कोई नया साझेदार शामिल किया जाता है तो उसे अन्य साझेदारों के प्रति कानूनी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं तथा वह वाद भी प्रस्तुत कर सकता है। और अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायालय से न्याय प्राप्त करने का भी अधिकारी हो जाता है। इस प्रकार के लाभ एव अधिकार एक पंजीयित फर्म में प्रवेश करने वाले साझेदार को नही होते हैं और ऐसे साझेदार को अन्य साझेदारो की ईमानदारी व दया पर निर्भर रहना पड़ता है।

(5) अलग होने वाले साझेदार को लाभ—भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार निवृत्त साझेदार अथवा निष्कासित साझेदार फर्म के कार्यों के लिए उस समय तक उत्तरदायी रहता है जब तक कि वह निवृत्त अथवा निष्कासित होने की सार्वजनिक सूचना नही दे पाता। एक पंजीयित फर्म से पृथक् होने वाले साझेदार द्वारा सार्वजनिक सूचना की प्रतिलिपि, पंजीयन अधिकारी को दे देने की तिथि से वह पृथक् फर्म के किसी भी कार्य से उत्पन्न दायित्व से मुक्ति पा जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक साझेदारी फर्म का पंजीयन किस प्रकार किया जाता है ? फर्म के पंजीयन कराने के लाभ बतलाइये।

   How may partnership firm be registered ? Explain the advantanges of getting a firm registered.

2. क्या साझेदारी फर्म का पंजीयन अनिवार्य हैं ? फर्म का पंजीयन न कराने का प्रभाव समझाइये तथा फर्म के पंजीयन के लाभ भी बताइये।

   Is registration of a partnership firm compulsory ? Explain the effect of non-registration of a firm and also state the advantages of its registration. (जोधपुर वि. वि. 1977, 81)

(2) अपंजीयित फर्म को साझेदारों के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होता—साझेदारी फर्म द्वारा पंजीयन न कराने पर फर्म द्वारा किसी भी साझेदार के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका अपना पृथक वैधानिक अस्तित्व नहीं होता है।

(3) साझेदारी फर्म द्वारा तृतीय पक्ष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होना—तृतीय पक्ष के द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर पंजीयित साझेदारी फर्म अथवा कोई भी साझेदार तृतीय पक्ष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं रखता है।

(4) तृतीय पक्ष द्वारा फर्म के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होना—साझेदारी फर्म या किसी साझेदार द्वारा फर्म के लिए किए गए अनुबन्ध भंग करने पर अपंजीयित फर्म के विरुद्ध तृतीय पक्ष वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है।

(5) सौ रुपये तक राशि के लिए तृतीय पक्ष के विरुद्ध राशि की वसूली का फर्म का अधिकार रहना—फर्म का पंजीयन नहीं होने पर भी वह तृतीय पक्षकारों के विरुद्ध सौ रुपये तक की घटोतरी अथवा बाकी राशि के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखती है।

अपंजीयित फर्म के अधिकार

एक फर्म द्वारा पंजीयन न कराने पर भी उसके निम्न अधिकार बने रहते हैं :—

(1) अपंजीयित फर्म के विघटन पर विघटित फर्म की सम्पत्ति बेचने के अधिकार को लागू करने के लिए कोई भी साझेदार न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है। [धारा 69 (3)]

(2) कोई साझेदार फर्म से सम्बन्ध-विच्छेद करने पर अथवा फर्म की समाप्ति हो जाने की दशा में कानूनन हिसाब माँगने का अधिकारी होता है और इस सम्बन्ध में वह अपने अधिकार को लागू करवाने के लिए न्यायालय की शरण भी ले सकता है। [धारा 69 (3)]

(3) एक अपंजीयित फर्म सौ रुपये तक की बकाया राशि के लिए तीसरे पक्ष के विरुद्ध अभियोग चलाने का अधिकार रखती है। [धारा 69 (4)]

(4) अपंजीयित फर्म के दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति को वसूल करने का अधिकार किसी सरकारी प्रापक (official receiver) को ही होता है। [धारा 69 (3)]

(5) तृतीय पक्ष का फर्म या फर्म के किसी साझेदार के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार बना रहता है।

(6) अपंजीयन का प्रभाव उन फर्मों और उनके साझेदारों पर नहीं पड़ता है जिनके व्यवसाय का कोई स्थान भारत में नहीं है। [धारा 69 (4)]

फर्म के पंजीयन के लाभ

फर्मों का पंजीयन अनिवार्य नहीं होते हुए भी यह एक आवश्यकता है जो फर्म अपना पंजीकरण करवाती हैं उनको और उनके सम्पर्क में आने वाले पक्षों को इससे कई लाभ व अधिकार प्राप्त होते हैं। विभिन्न पक्षों को एक फर्म के पंजीकरण से होने वाले लाभों का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है :—

(1) फर्म को लाभ—पंजीयन कराने से एक फर्म और उसके साझेदारों को तृतीय पक्ष द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर दीवानी अदालत में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त एक पंजीकृत फर्म अपने किसी भी साझेदार पर भी वाद प्रस्तुत करने की अधिकारी होती है।

(2) साझेदारों को लाभ—फर्म के पंजीयन से साझेदार अपने अधिकारों का उल्लंघन होने की दशा में अन्य साझेदारों, फर्म एवं अन्य पक्षों के विरुद्ध न्यायालय द्वारा न्याय प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

(3) ऋणदाताओं को लाभ—फर्म के पंजीयन से ऋणदाताओं के हितों की रक्षा होती है। पंजीयन के कारण फर्म के प्रत्येक साझेदार का नाम 'रजिस्टर ऑफ फर्म्स' में लिखा हुआ रहता है। परिणामस्वरूप एक साझेदार यह कह कर कि वह साझेदार नहीं है अपने साझेदारी के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता।

(4) नये साझेदार को लाभ—पंजीकृत फर्म में जब कोई नया साझेदार शामिल किया जाता है तो उसे अन्य साझेदारों के प्रति कानूनी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं तथा वह वाद भी प्रस्तुत कर सकता है। और अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायालय से न्याय प्राप्त करने का भी अधिकारी हो जाता है। इस प्रकार के लाभ एव अधिकार एक पंजीयित फर्म मे प्रवेश करने वाले साझेदार को नहीं होते हैं और ऐसे साझेदार को अन्य साझेदारों की ईमानदारी व दया पर निर्भर रहना पड़ता है।

(5) अलग होने वाले साझेदार को लाभ—भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार निवृत्त साझेदार अथवा निष्कासित साझेदार फर्म के कार्यों के लिए उस समय तक उत्तरदायी रहता है जब तक कि वह निवृत्त अथवा निष्कासित होने की सार्वजनिक सूचना नहीं दे पाता। एक पंजीयित फर्म से पृथक् होने वाले साझेदार द्वारा सार्वजनिक सूचना की प्रतिलिपि, पंजीयन अधिकारी को दे देने की तिथि से वह पृथक् फर्म के किसी भी कार्य से उत्पन्न दायित्व से मुक्ति पा जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एक साझेदारी फर्म का पंजीयन किस प्रकार किया जाता है ? फर्म के पंजीयन कराने के लाभ बतलाइये।

   How may partnership firm be registered ? Explain the advantanges of getting a firm registered.

2. क्या साझेदारी फर्म का पंजीयन अनिवार्य है ? फर्म का पंजीयन न कराने का प्रभाव समझाइये तथा फर्म के पंजीयन के लाभ भी बताइये।

   Is registration of a partnership firm compulsory ? Explain the effect of non-registration of a firm and also state the advantages of its registration. (जोधपुर वि. वि. 1977, 81)

(2) अपंजीयित फर्म को साझेदारों के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होता—*साझेदारी फर्म द्वारा पंजीयन न कराने पर फर्म द्वारा किसी भी साझेदार के विरुद्ध* वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका अपना पृथक वैधानिक अस्तित्व नहीं होता है।

(3) साझेदारी फर्म द्वारा तृतीय पक्ष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होना—तृतीय पक्ष के द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर पंजीयित साझेदारी फर्म अथवा कोई भी साझेदार तृतीय पक्ष के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं रखता है।

(4) तृतीय पक्ष द्वारा फर्म के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होना—साझेदारी फर्म या किसी साझेदार द्वारा फर्म के लिए किए गए अनुबन्ध भंग करने पर अपंजीयित फर्म के विरुद्ध तृतीय पक्ष वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है।

(5) सौ रुपये तक राशि के लिए तृतीय पक्ष के विरुद्ध राशि की वसूली का फर्म का अधिकार रहना—फर्म का पंजीयन नहीं होने पर भी वह तृतीय पक्षकारों के विरुद्ध सौ रुपये तक की घटोतरी अथवा बाकी राशि के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखती है।

अपंजीयित फर्म के अधिकार

एक फर्म द्वारा पंजीयन न कराने पर भी उसके निम्न अधिकार बने रहते हैं :—

(1) अपंजीयित फर्म के विघटन पर विघटित फर्म की सम्पत्ति बेचने के अधिकार को लागू करने के लिए कोई भी साझेदार न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है। [धारा 69 (3)]

(2) कोई साझेदार फर्म से सम्बन्ध-विच्छेद करने पर अथवा फर्म की समाप्ति हो जाने की दशा में कानूनन हिसाब मांगने का अधिकारी होता है और इस सम्बन्ध में वह अपने अधिकार को लागू करवाने के लिए न्यायालय की शरण भी ले *सकता है।* [धारा 69 (3)]

(3) एक अपंजीयित फर्म सौ रुपये तक की बकाया राशि के लिए तीसरे पक्ष के विरुद्ध अभियोग चलाने का अधिकार रखती है। [धारा 69 (4)]

(4) अपंजीयित फर्म के दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति को वसूल करने का अधिकार किसी सरकारी प्रापक (official receiver) को ही होता है। [धारा 69 (3)]

(5) तृतीय पक्ष का फर्म या फर्म के किसी साझेदार के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार बना रहता है।

(6) अपंजीयन का प्रभाव उन फर्मों और उनके साझेदारों पर नहीं पड़ता है जिनके व्यवसाय का कोई स्थान भारत में नहीं है। [धारा 69 (4)]

फर्म के पंजीयन के लाभ

फर्मों का पंजीयन अनिवार्य नहीं होते हुए भी यह एक आवश्यकता है जो फर्म अपना पंजीकरण करवाती हैं उनको और उनके सम्पर्क में आने वाले पक्षों को इससे कई लाभ व अधिकार प्राप्त होते हैं। विभिन्न पक्षों को एक फर्म के पंजीकरण से होने वाले लाभों का *संक्षेप में विवरण इस प्रकार है :—*

(7) अन्य न्यायोचित आधार पर—अगर न्यायालय यह समझता है कि फर्म के साझेदार एक दूसरे के प्रति अविश्वास और असहयोग की भावना रखते हैं तथा फर्म का व्यवसाय चलाना ऐसी परिस्थितियों में कठिन है तो उसके द्वारा साझेदारी फर्म को भंग करने की आज्ञा दी जा सकती है। इस बात की पुष्टि लार्ड केयर्न्स के इस निर्णय से होती है—

'साझेदारी के सम्बन्ध में कभी ऐसी बात हो सकती है जिसके कारण आपसी सहयोग समाप्त हो जाता है तो ऐसी दशा में फर्म की समाप्ति करना उचित है।"

फर्म समापन के उपरान्त साझेदारों के अधिकार

(Rights of Partners after Dissolution of a Firm)

फर्म की समाप्ति के पश्चात् साझेदारों के निम्नलिखित अधिकार होते हैं :—

(1) सम्पत्ति को बाँटने के सम्बन्ध में—धारा 46 के अनुसार फर्म के समापन होने पर प्रत्येक साझेदार अथवा उसका प्रतिनिधि अन्य साझेदारों अथवा उनके प्रतिनिधियों को इस बात के लिए बाध्य करने का अधिकार रखता है कि प्रथमतः फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग फर्म के ऋणों को चुकाने और दायित्वों को निपटाने के लिए किया जाए और बाद में बची हुई सम्पत्ति को साझेदारों में उनके अधिकारों के अनुपात मे बाँट दिया जाए।

(2) फर्म-समापन सम्बन्धी कार्य के सम्बन्ध में- धारा 47 के अनुसार प्रत्येक साझेदार फर्म के समापन उपरान्त किये जाने वाले उन कार्यों को निपटाने का अधिकारी है जो फर्म के समापन पर अधूरे थे या जिन्हें समापन-क्रिया के अन्तर्गत किया जाना आवश्यक है।

(3) निजी लाभ के सम्बन्ध में—धारा 50 के अनुसार कोई भी साझेदार फर्म की ख्याति क्रय करने पर फर्म के नाम का प्रयोग करने का अधिकारी होता है तथा उससे प्राप्त होने वाले लाभों को अपना निजी लाभ मानने का अधिकारी है।

(4) अधिशुल्क (प्रीमियम) वापसी के सम्बन्ध में—धारा 51 के अनुसार यदि कोई साझेदार निश्चित अवधि के लिए साझेदारी मे प्रवेश लेता है और इस सम्बन्ध मे अधिशुल्क भी जमा कराता है तो वह निम्न परिस्थितियो मे अधिशुल्क अथवा उसके उचित अंश को पुनः प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

(1) अगर साझेदारी फर्म का समापन निश्चित अवधि के पूर्व ही किया जा रहा है,
(2) साझेदारी फर्म की समाप्ति ऐसे साझेदार के दुराचरण की वजह से नहीं हुई है,
(3) समाप्ति-अनुबन्ध में अधिशुल्क लौटाने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।
(4) साझेदारी फर्म की समाप्ति का कारण किसी साझेदार की मृत्यु का होना नहीं है।

(5) कपट या अन्यथा कथन की स्थिति में—धारा 52 के अनुसार यदि साझेदारी अनुबन्ध किसी पक्षकार के कपट अथवा अन्यथा कथन के कारण निरस्त कर दिया जाता है तो निरस्त करने वाले पक्षकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं—

(1) किसी ऐसे धन का ग्रहणाधिकार (lien) अथवा उसको रोके रखने का अधिकार, जो उसने पूँजी के रूप में अथवा फर्म में हिस्सा खरीदने के लिए दिया है।

(2) उसने फर्म का कोई ऋण चुकाया है, तो वह फर्म का ऋणदाता होने का अधिकार रखता है।

(3) उन साझेदारों से क्षतिपूर्ति कराने का वह अधिकारी है जो फर्म के विरुद्ध कपट अथवा अन्यथा कथन सम्बन्धी कार्यों के लिए दोषी पाये गए हों।

(6) फर्म के नाम और सम्पत्ति के उपयोग के सम्बन्ध में—धारा 53 के अनुसार जब तक किसी साझेदारी फर्म के कार्यों का समापन पूर्ण नहीं हो जाता तब तक अन्य कोई समझौता न होने पर प्रत्येक साझेदार या उसका प्रतिनिधि अन्य साझेदारों व उनके प्रतिनिधियों को फर्म के नाम से अथवा फर्म की सम्पत्ति के प्रयोग से लाभ कमाने पर रोक लगा सकता है।

यह अधिकार उस समय लागू नहीं होगा जब कोई साझेदार किसी अनुबन्ध के अनुसार फर्म के नाम और सम्पत्ति का उपयोग कर सकता है अथवा उसने फर्म की ख्याति खरीद ली है।

(7) फर्म की समाप्ति पर व्यापार पर रोक लगाने के सम्बन्ध मे—धारा 54 के अन्तर्गत साझेदारी फर्म की समाप्ति पर अथवा समापन की आशा मे साझेदार आपस मे एक ऐसा अनुबन्ध कर सकने के अधिकारी है कि उनमें से कुछ अथवा सभी साझेदार पूर्व निर्धारित सीमाओं अथवा अवधि के लिए फर्म के व्यवसाय से मिलता-जुलता व्यवसाय नही करेंगे।

(8) फर्म की साख के सम्बन्ध में—धारा 55 के अनुसार अन्य समझौते के अभाव में एक विघटित फर्म का साझेदार फर्म की साख बेचे जाने पर निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार नही रहता—

(1) फर्म के नाम का प्रयोग करना।

(2) ऐसा प्रदर्शन जिससे ये लगे कि उसने फर्म का व्यवसाय चालू रखा है।

(3) उन व्यक्तियो को आमन्त्रित करना जो फर्म के समापन के पूर्व फर्म से व्यवसाय कर रहे थे।

विघटित फर्म से साझेदारों को अन्य समझौते के अभाव में प्रतिस्पर्धात्मक व्यवसाय करने का अधिकार है और वे इस प्रकार के व्यवसाय का विज्ञापन भी कर सकते हैं।

फर्म के समापन के उपरान्त साझेदारों के दायित्व

(Obligation of Partners after dissolution of a firm)

फर्म के समापन के बाद साझेदारों के दायित्व निम्नानुसार है—

(1) फर्म की समाप्ति के बाद किये गए कार्यों के लिए सभी साझेदारों का दायित्व बना रहता है जब तक कि उनके द्वारा फर्म के समापन की सार्वजनिक सूचना नहीं दे दी जाती है। यह नियम मृतक साझेदार की सम्पत्ति या उसके उत्तराधिकारी, दिवालिया साझेदार तथा अवकाश-प्राप्त साझेदार पर लागू नहीं होगा। (धारा 45)

(2) तीसरे पक्ष के प्रति दायित्व—जब तक फर्म की समाप्ति की सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती है तब तक फर्म के साझेदार तीसरे पक्ष के प्रति उसी प्रकार से दायी होंगे जैसे वे फर्म की समाप्ति के पूर्व थे। (धारा 45)

(3) प्रत्येक साझेदार का दायित्व—फर्म के समापन सम्बन्धी कार्यों के लिए तथा अपूर्ण कार्यों के बारे में बना रहता है तब तक कि उन्हें पूरा न कर दिया जावें। (धारा 47)

साझेदारों के मध्य हिसाब-किताब का निपटाया जाना
(Mode of Settlement of Accounts between Partners)

धारा 48 के अनुसार समापन पर अन्य किसी समझौते के अभाव में हिसाब-किताब निपटाने की विधि निम्न होगी—

(1) हानि (पूँजी की कमी शामिल करते हुए) की पूर्ति या भुगतान सर्वप्रथम लाभों में से फिर पूँजी में से तथा आवश्यकता पड़ने पर व्यक्तिगत रूप से साझेदारों द्वारा उसी मात्रा में चुकाई जावेगी जिस अनुपात में वे लाभ के भागीदार थे।

(2) फर्म की सम्पत्ति, जिसमें साझेदारों द्वारा पूँजी को पूरा करने के लिए धन भी शामिल है, का उपयोग निम्न क्रम से किया जाना चाहिए—

(1) तृतीय पक्ष से प्राप्त ऋण के भुगतान में।
(2) साझेदारों से लिए गए ऋण के भुगतान में।
(3) प्रत्येक साझेदार को आनुपातिक हिसाब से उसकी पूँजी वापस करने में।
(4) शेष राशि साझेदारों में लाभ-विभाजन के अनुपात में।

(3) किसी साझेदार के दिवालिया होने पर और अपना अंशदान नहीं चुका पाने के कारण उसकी कमी को दूसरे साझेदार "गार्नर बनाम मुर्रे" में दिये हुए निर्णय के अनुसार पूरी करेंगे।

(4) किसी साझेदार के द्वारा व्यक्तिगत ऋण भी चुकाया जाना हो तो ऐसी हालत में फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग प्रथमतः फर्म के ऋणों को चुकाने के लिए किया जावेगा फिर बची हुई सम्पत्ति में से प्रत्येक साझेदार का हिस्सा उसके व्यक्तिगत ऋणों को चुकाने के लिए काम आयेगा। (धारा 49)

इसके विपरीत साझेदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति पहले उनके व्यक्तिगत ऋणों को चुकाने में और फिर यदि कुछ बचे तो वह फर्म के ऋण चुकाने में काम आती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1 (क) साझेदारी एवं फर्म की समाप्ति में अन्तर बताइये।
(ख) किन परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा एक साझेदारी फर्म का समापन किया जा सकता है।
(a) Differentiate between dissolution of a partnership and firm.
(b) Under what circumstances may a partnership be dissolved by a court.

(जोधपुर वि. वि. 1985)

2 फर्म की समाप्ति से क्या आशय है ? कैसे और किन परिस्थितियों में एक फर्म की समाप्ति हो जाती है ?

What do you understand by dissolution of a firm ? How and when a firm is dissolved.

(राज. वि. वि. 1979)

3. फर्म की समाप्ति और साझेदारी की समाप्ति में अन्तर स्पष्ट कीजिये। कैसे और किन परिस्थितियों के अन्तर्गत फर्म की समाप्ति की जा सकती है।

(राज. वि. वि. 1983)

4. साझेदारी फर्म की समाप्ति के बाद साझेदारों के अधिकार और दायित्व क्या हैं ?

What are the rights and obligations of partners after dissolution of partnership firm ?

5. साझेदारी फर्म की समाप्ति के बाद साझेदारों के मध्य हिसाब-किताब का निपटारा कैसे किया जा सकता है ?

How are accounts settled between partners after dissolution of partnership firm ?

यूनिट 3 पर चुने हुए व्यावहारिक प्रश्न तथा उनका हल

1. विकास और गौरव 5 वर्ष के लिए एक व्यापारिक साझेदारी प्रारम्भ करते हैं। दो वर्ष बाद विकास धोखा देने के उद्देश्य से रेल द्वारा बिना टिकट यात्रा करता हुआ पाया जाने का अपराधी घोषित किया जाता है। क्या न्यायालय गौरव द्वारा आवेदन पत्र देने पर फर्म की अवधि की समाप्ति के पहले ही फर्म का समापन कर देगा।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य

(1) विकास तथा गौरव 5 वर्षों के लिए एक व्यापारिक साझेदारी स्थापित करते हैं।

(2) विकास दो वर्ष बाद धोखा देने के उद्देश्य से रेल द्वारा बिना टिकट यात्रा करता हुआ पाया जाता है और अपराधी घोषित किया जाता है।

(3) गौरव द्वारा आवेदन पत्र देने पर क्या न्यायालय फर्म की अवधि के समाप्ति के पहले ही फर्म का समापन कर देगा ?

सम्बन्धित नियम एव निर्णय

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 44 (iii) के अनुसार कोई साझेदार यदि किसी ऐसे दुराचरण का दोषी हो जिसमे व्यापार के संचालन पर हानिकारक प्रभाव पडने की आशंका हो तो किसी दूसरे साझेदार द्वारा न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर फर्म के समापन के लिए आदेश दे सकता है। व्यवसाय का कार्य करते हुये दुराचरण किया जाये यह आवश्यक नहीं है।

निर्णय—प्रस्तुत विवाद मे विकास रेल में बिना टिकट यात्रा करने के कारण अपराधी घोषित कर दिया गया है, तो ऐसी स्थिति मे विकास का यह दुराचरण है। साझेदारी के व्यवसाय पर इस दुराचरण का विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। अत: विकास द्वारा आवेदन पत्र देने पर न्यायालय के पास फर्म के समापन का आदेश देने के लिए पर्याप्त आधार है और न्यायालय ऐसा आदेश दे देगा।

2. सोम, मगल और बुध एक निश्चित समय के लिए साझेदारी मे प्रविष्ट हुए। सोम फर्म के कार्यों में दुराचरण का दोषी है। क्या उसे फर्म से निकाला जा सकता है।

समस्या का हल

विवाद के तथ्य

(1) सोम, मंगल और बुध एक निश्चित समय के लिए साझेदारी में प्रविष्ट हुए।

(2) सोम फर्म के कार्यों में दुराचरण का दोषी है।

(3) क्या सोम को फर्म से निकाला जा सकता है?

निर्णय—प्रस्तुत समस्या में मंगल और बुध सोम को तभी निकाल सकते हैं जबकि अनुबन्ध द्वारा उन्हें यह अधिकार प्रदत्त है। सामान्यतया साझेदार को बहुमत से नही निकाला जा सकता।

3. शुक्र, शनि, रवि और सोम एक फर्म में साझेदार हैं। रवि की मृत्यु हो जाती है। शेष साझेदार पुराने नाम में ही कारोबार करते हैं। मंगल, रवि की मृत्यु के बाद फर्म को 5,000 रुपये का ऋण देता है। क्या रवि की सम्पत्ति मंगल के प्रति दायी है?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य

(1) शुक्र, शनि, रवि और सोम एक फर्म में साझेदार है।

(2) रवि की मृत्यु हो जाती है।

(3) शेष साझेदार पुराने नाम में ही कारोबार करते हैं।

(4) मंगल रवि की मृत्यु के बाद फर्म को 5000 रुपये का ऋण देता है।

(5) क्या रवि की सम्पत्ति मंगल के प्रति दायी है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 28 (2) की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत किसी भी साझेदार की मृत्यु पर सार्वजनिक सूचना देने की आवश्यकता नही अतः मृत्यु के समय से ही मृतक साझेदार फर्म में साझेदार नहीं रहता अतः रवि की सम्पत्ति दायी नही होगी क्योंकि मृत्यु की तिथि के बाद के ऋणों के लिए मृतक साझेदार की सम्पत्ति दायी नहीं होती हैं।

4. राम, श्याम और हरि एक फर्म में साझेदार हैं। हरि केवल नाम मात्र का साझेदार है। मोहन फर्म को ऋण देता है। क्या हरि का ऋण के लिए कोई दायित्व है?

समस्या का हल

विवाद के तथ्य

(1) राम, श्याम और हरि एक फर्म में साझेदार है।

(2) हरि केवल नाम मात्र का साझेदार है।

(3) मोहन फर्म को ऋण देता है।

(4) क्या हरि का ऋण के प्रति कोई दायित्व है?

निर्णय—हरि ऋण के लिए उसी प्रकार से दायी है जैसे कि एक साझेदार होता है। हरि केवल नाम मात्र का साझेदार है यह तथ्य फर्म में साझेदार की भाँति उसके दायित्व को कम नही करता।

□□□

25

भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम, 1930 : एक सामान्य अध्ययन

(The Indian Sales of Goods Act 1930 : A general study)

विषय-सामग्री—वस्तु-विक्रय अनुबन्ध—आशय व तत्त्व विक्रय और विक्रय के करार मे अन्तर, विक्रय और निक्षेप में अन्तर विक्रय तथा किराया खरीद मे अन्तर, माल का वर्गीकरण, माल का नष्ट होना, माल का मूल्य-निर्धारण।

परिचय

वस्तु-विक्रय अधिनियम, 1930 से वस्तु-विक्रय सम्बन्धी अनुबन्ध पर लागू होता है। सन् 1930 से पूर्व भारत में चल सम्पत्ति अथवा वस्तु-विक्रय सम्बन्धी नियमों का उल्लेख भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 76 से धारा 123 में था। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की ये व्यवस्थाएँ व प्रावधान वर्तमान जटिलतम व्यापारिक परिस्थितियों में अपर्याप्त सिद्ध हुईं। देश के वाणिज्य के विकास को ध्यान मे रखकर माल विक्रय से सम्बन्धित एक विस्तृत एवं स्वतन्त्र अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई। भारतीय संसद् ने भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम 1930, अंग्रेजी वस्तु-विक्रय अधिनियम 1893 के आधार पर भारतीय परिस्थितियों के अनुसार कुछ आवश्यक परिवर्तन एव संशोधन करके बनाया वस्तु-विक्रय अधिनियम 1 जुलाई 1930 से लागू किया गया।

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध की परिभाषा
(Definition of contract of Sale)

बेंजामिन (Benjamin)—के अनुसार, "मुद्रा के रूप में किसी मूल्य के बदले माल का पूर्ण अथवा साधारण स्वामित्व का हस्तान्तरण करना ही विक्रय कहलाता है।"

भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम 1930 की धारा 4 (1) व (2) के अनुसार, "वस्तु-विक्रय अनुबन्ध वह अनुबन्ध है जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को किसी वस्तु का स्वामित्व हस्तान्तरित करता है अथवा हस्तान्तरण करने का करार करता है। वस्तु-विक्रय अनुबन्ध शर्त-रहित अथवा शर्त सहित हो सकता है।"[1]

---

1. A Contract of sale of goods is a Contract when by the seller transfers or agrees to transfer the property in goods to the buyer for a price. A contract of sale may be absolute or conditional (Section 4 (1) and (ii)

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व
(Essentials of contract of sale of goods)

(1) क्रेता तथा विक्रेता का होना—विक्रय अनुबन्ध के लिए क्रेता तथा विक्रेता का होना अनिवार्य है इसके अभाव में विक्रय अनुबन्ध का निर्माण नही हो सकता है। एक ही व्यक्ति क्रेता और विक्रेता दोनों के रूप मे कार्य नही कर सकता है क्रेता से आशय उस पक्षकार से है जो माल खरीदता है अथवा खरीदने का करार करता है। विक्रेता से आशय उस पक्षकार से जो माल वेचता है या बेचने का करार करता है।

(2) पक्षकारों में अनुबन्ध करने की योग्यता का होना—एक वैध विक्रय अनुबन्ध के लिए आवश्यक है कि अनुबन्ध के पक्षकारो मे अनुबन्ध करने की योग्यता होनी चाहिये अर्थात्—

(1) पक्षकार वयस्क हों,
(2) स्वस्थ मस्तिष्क के हो व
(3) अन्य किसी प्रकार से अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित न किये गए हों।

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व

1. क्रेता तथा विक्रेता का होना।
2. पक्षकारो मे अनुबन्ध करने की योग्यता का होना।
3. विक्रय-अनुबन्ध की विषय-वस्तु माल या वस्तु हो सकती है।
4. मुद्रा प्रतिफल।
5. प्रस्ताव तथा उसकी सहमति का होना।
6. स्वामित्व का हस्तान्तरण।
7. विक्रय अनुबन्ध शर्त-सहित अथवा शर्त-रहित हो सकता है।
8. विक्रय अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है।
9. माल तथा मूल्य की सुपुर्दगी किस्तो मे होना।
10. विक्रय-अनुबन्ध मे विक्रय तथा भावी विक्रय दोनों ही सम्मिलित हैं।

(3) अनुबन्ध की विषय-वस्तु माल या वस्तु हो सकती है—विक्रय अनुबन्ध के लिए किसी भी प्रकार की चल वस्तुओं का होना आवश्यक है। माल से आशय केवल चल सम्पत्ति से है अचल सम्पत्ति अथवा सेवा के विक्रय के अनुबन्ध इस अधिनियम द्वारा अधिशासित नही होते है।

(4) मुद्रा प्रतिफल—विक्रय अनुबन्ध के लिए मुद्रा प्रतिफल होना आवश्यक है। माल के विक्रय के लिए प्रतिफल प्रचलित मुद्रा मे ही होना चाहिये। यह प्रतिफल वस्तु-विनिमय, उपहार आदि रूप में नही होना चाहिये।

(5) प्रस्ताव तथा उसकी स्वतन्त्र सहमति का होना—विक्रय अनुबन्ध में एक पक्षकार की ओर से माल खरीदने अथवा बेचने का प्रस्ताव होना चाहिये। और दूसरे पक्षकार की ओर से इस प्रस्ताव की स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिये। इस प्रकार वैध विक्रय-अनुबन्ध के लिए प्रस्ताव तथा उसकी स्वतन्त्र सहमति का होना आवश्यक है।

(6) स्वामित्व का हस्तान्तरण—विक्रय अनुबन्ध तभी माना जाता है जबकि इसके अन्तर्गत विक्रेता क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करें। केवल माल के अधिकार का हस्तान्तरण विक्रय नही हो सकता। अनुबन्ध करते समय ही जब माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हो जाता है तो इसे विक्रय कहते हैं। यदि माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उसी समय न होकर किसी भावी समय पर होता है तो इसे विक्रय की

करार कहते है । इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रय-अनुबन्ध के लिए स्वामित्व का हस्तान्तरण होना आवश्यक है चाहे वह अनुबन्ध के समय हो या बाद में ।

(7) विक्रय अनुबन्ध शर्त-सहित अथवा शर्त-रहित हो सकता है—अधिनियम की धारा 4 (2) के अनुसार वस्तु-विक्रय-अनुबन्ध शर्त रहित तथा शर्त सहित दोनों में से किसी भी प्रकार का हो सकता है ।

(8) विक्रय अनुबन्ध अभिव्यक्त अथवा गर्भित हो सकता है—विक्रय अनुबन्ध अभिव्यक्त रूप मे भी हो सकता है अथवा गर्भित रूप में किया जा सकता है ।

(9) माल तथा मूल्य की सुपुर्दगी किश्तों में होना—अधिनियम की धारा 5 (1) के अनुसार वस्तु-विक्रय-अनुबन्ध में माल की सुपुर्दगी अथवा और मूल्य का भुगतान किश्तों मे करने की व्यवस्था भी हो सकती है ।

(10) विक्रय अनुबन्ध में विक्रय तथा भावी विक्रय दोनों ही सम्मिलित हैं—विक्रय अनुबन्ध मे वर्तमान मे माल विक्रय करने के तथा भविष्य मे माल विक्रय करने के दोनों ही प्रकार के अनुबन्ध शामिल है, अत. इस प्रकार विक्रय अनुबन्ध का क्षेत्र विस्तृत है ।

विक्रय तथा विक्रय का करार
(Sale and Agreement to sell)

विक्रय अनुबन्ध मे निम्नलिखित दो बातों का समावेश होता है :—

(1) विक्रय

(2) विक्रय का करार

(1) विक्रय (Sale)—वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 4 (3) के अनुसार, "जब विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरण किया जाता है तो यह अनुबन्ध विक्रय कहलाता है ।"

(2) विक्रय का करार (Agreement to sell)—वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 4 के अनुसार, विक्रय का करार निम्नलिखित दो दशाओं में माना जाता है :—

(i) यदि किसी भावी समय पर माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण होना निश्चित होता है, अथवा

(ii) विक्रय अनुबन्ध के बाद कुछ शर्तों को पूरा करने पर माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित होना है ।

विक्रय और विक्रय के करार में अन्तर

(Distinction between Sale and Agreement to Sell)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	विक्रय का करार
1.	परिभाषा	वस्तु विक्रय से आशय ऐसे करार से है जिसके अन्तर्गत स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को तुरन्त हो जाता है।	जब माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण भविष्य में किसी तिथि को अथवा कुछ शर्तों के पालन होने के बाद किया जाना निश्चित होता है तो वह विक्रय का करार कहलाता है।
2.	स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय में क्रेता तुरन्त ही माल का स्वामी हो जाता है।	विक्रय के करार मे निर्धारित समय के पूरा हो जाने के बाद अथवा अनुबन्ध के आधीन शर्तों के पूरा हो जाने पर ही क्रेता माल का स्वामी होता है।
3.	माल का हस्तान्तरण	इसमें माल का हस्तान्तरण तुरन्त हो जाता है।	इसमें माल का हस्तान्तरण निश्चित अवधि समाप्त होने पर अथवा अनुबन्ध के अधीन निश्चित शर्तें पूर्ण होने पर होता है।
4.	मूल्य प्राप्त करने एवं क्षतिपूर्ति का अधिकार	इसमें यदि क्रेता माल की कीमत न चुकाये तो विक्रेता माल अपने अधिकार में होने पर भी मूल्य के लिए दावा कर सकता है।	इसमें मूल्य न चुकाने पर विक्रेता केवल हर्जाने के लिए ही वाद कर सकता है।
5.	जोखिम	इसमें विक्रय के बाद माल में होने वाली प्रत्येक प्रकार की हानि क्रेता की ही होती है, चाहे माल विक्रेता के पास ही हो।	इसमें जोखिम (जब तक कि विपरीत करार न हो) विक्रेता की ही होती है।
6.	शर्तें	विक्रय शर्त रहित होता है।	विक्रय का करार शर्त युक्त होता है।

क्र. सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	विक्रय का करार
7.	अधिकार	विक्रय मे क्रेता को अधिकार होता है कि वह अपनी इच्छानुसार उस माल का प्रयोग करे।	विक्रय के करार में विक्रेता माल सौंपने के लिए बाध्य नही है।
8.	क्रेता का दिवालिया होना	क्रेता के दिवालिया होने की दशा में विक्रेता को क्रेता द्वारा खरीदा हुआ माल उसके सरकारी रिसीवर को सौंपना होगा।	विक्रय के करार में विक्रेता माल सौंपने के लिए बाध्य नही है।
9.	विक्रेता का दिवालिया होना	इसमें विक्रेता के दिवालिया हो जाने पर क्रेता विक्रेता के सरकारी रिसीवर से खरीदा हुआ माल प्राप्त कर सकता है क्योंकि वही माल का स्वामी होता है।	इसमें विक्रेता के दिवालिया हो जाने पर क्रेता माल प्राप्त नही कर सकता वह केवल अपने अंश का दावा कर सकता है।
10.	विक्रेता द्वारा पुन. विक्रय	इसमें विक्रेता माल का पुनः विक्रय नही कर सकता है माल का स्वामित्व विक्रय के साथ ही क्रेता के पास चला जाता है।	इसमें विक्रेता माल का पुनः विक्रय कर सकता है। क्रेता हर्जाना अवश्य वसूल कर सकता है।
11.	अनुबन्ध की प्रकृति	विक्रय का अनुबन्ध वर्तमान अनुबन्ध होता है।	विक्रय का करार भावी अनुबन्ध होता है।
12.	परिणाम	विक्रय करार का परिणाम विक्रय होता है।	विक्रय का करार विक्रय का परिणाम नही है।
13.	निष्पादन	विक्रय एक निष्पादित अनुबन्ध होता है अर्थात् विक्रय मे अनुबन्ध का निष्पादन पहले ही हो जाता है।	विक्रय के करार मे निष्पादन होना शेष रहता है।
14.	विक्रय कर उत्पन्न होना	इसमें विक्रेता का विक्रय कर चुकाने का दायित्व उत्पन्न हो जाता है।	इसमें ऐसा कोई दायित्व उत्पन्न नहीं होता है।
15.	आदि व अन्त	विक्रय विक्रय करार का अन्त है।	विक्रय करार विक्रय का आरम्भ है।

विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर
(Distinction between sale and Bailment)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	निक्षेप
1.	उद्देश्य	इसका उद्देश्य माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को करना होता है।	किसी निश्चित उद्देश्य को पूरा करने के लिए माल की सुपुर्दगी करना होता है।
2.	स्वामित्व का हस्तान्तरण	इसमें माल का स्वामित्व हस्तान्तरण होता है।	इसमें स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं होता है।
3.	इच्छानुसार वस्तु का प्रयोग	इसमे क्रेता अपनी इच्छानुसार वस्तु का प्रयोग कर सकता है।	इसमें निक्षेप की शर्तों के अनुसार ही वस्तु का प्रयोग कर सकता है।
4.	प्रतिफल	इसमें प्रतिफल होना अनिवार्य है।	यह निःशुल्क भी हो सकता है।
5.	हस्तान्तरण का समय	विक्रय में वस्तु का स्थायी हस्तान्तरण होता है।	निक्षेप में वस्तु का कुछ समय के लिए हस्तान्तिरण होता है।
6.	पक्षकार	इसमें पक्षकार क्रेता एवं विक्रेता कहलाते हैं।	निक्षेप मे पक्षकार निक्षेपी तथा निक्षेप-गृहीता कहलाते हैं।
7.	अधिनियम	इसमें भारतीय वस्तु अधिनियम 1930 के प्रावधान लागू होते हैं।	इसमें भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 लागू होता है।
8.	वस्तु का अधिकार	इसमें विक्रेता का वस्तु पर विक्रय के बाद भी अधिकार हो सकता है।	इसमे निक्षेपी का वस्तु पर अधिकार नहीं रहता है। वह निक्षेप-गृहीता के पास चली जाती है।

विक्रय तथा किराया खरीद में अन्तर
(Distinction between Sale and Hire-Purchase Agreement)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	किराया खरीद
1.	भुगतान	इसमें प्रायः भुगतान तत्काल ही हो जाता है।	इसमें माल का भुगतान किश्तों मे होता है।

क्र. सं.	अन्तर का आधार	विक्रय	किराया खरीद
2	पूरा भुगतान न होने पर	इसमें विक्रेता को माल का पूरा भुगतान नहीं मिलने पर क्रेता पर वाद ही प्रस्तुत कर सकता है।	इसमें विक्रेता क्रेता से माल पुनः प्राप्त कर सकता है तथा किश्तों की राशि जब्त कर सकता है।
3.	अधिकार	इसमें क्रेता का स्वामी के रूप में अधिकार होता है।	इसमें क्रेता का माल पर एक निक्षेप-गृहीता की भाँति होता है, जब तक वह सम्पूर्ण किश्तों का भुगतान नहीं कर देता है।
4.	माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण	इसमें माल के स्वामित्व का तत्काल हस्तान्तरण हो जाता है।	इसमें केवल माल के अधिकार का हस्तान्तरण होता है। स्वामित्व का हस्तान्तरण सम्पूर्ण किश्तों के भुगतान के बाद होता है।

विक्रय-अनुबन्ध की विषय-वस्तु
(Subject matter of Contract of Sale)

विक्रय के अनुबन्ध की विषय-वस्तु माल (Goods) है। वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 2 (7) में माल की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"माल का आशय (अभियोग के योग्य दावे तथा मुद्रा को छोड़कर) प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है तथा माल के अन्तर्गत खड़ी फसल, उगती हुई घास, स्टॉक तथा शेयर्स और जमीन से लगी व जुड़ी हुई वस्तुएँ जिनको विक्रय से पहले अथवा विक्रय-अनुबन्ध के अधीन अलग कर दिया गया हो, सम्मिलित हैं।"

माल का वर्गीकरण
(Classification of goods)

माल का वर्गीकरण वस्तु-अधिनियम की धारा 6 के अनुसार निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—
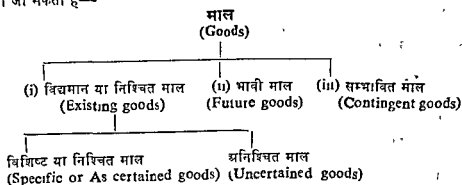
(1) विद्यमान माल (Existing goods)—विद्यमान माल का ग्राशय उस माल से है जो अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व या अधिकार में है तथा वास्तव मे विद्यमान है। विद्यमान माल का निर्माण करना शेप नहीं रहता है। विद्यमान माल निम्नलिखित दो प्रकार का हो सकता है :—

(i) विशिष्ट या निश्चित माल (Specific or As certained goods)—विशिष्ट अथवा निश्चित माल से ग्राशय ऐसे माल से है जो विक्रय-अनुबन्ध के समय ही अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा पहचान लिया अथवा निश्चित कर लिया गया है।

उदाहरण—रमेश, महेश से 50 बोरे चावल खरीदता है और चावलों के अनेको बोरों में से अपने 50 बोरे छांटकर अलग कर देता है। यह विशिष्ट व निश्चित माल के विक्रय का अनुबन्ध है।

(ii) अनिश्चित माल (Unascertained goods) —वह माल जो विक्रय के समय पक्षकारों द्वारा पहचाना व निश्चित नही किया जाता बल्कि उसके बेचने का अनुबन्ध केवल विवरण द्वारा किया गया हो तो ऐसा माल निश्चित माल कहलाता है।

उदाहरण—रमेश, महेश से 50 बोरे चावल खरीदने का अनुबन्ध करता है। रमेश अनुबन्ध करते समय यह निश्चित नही करता है कि कौन से 50 बोरे वह लेगा तो यह अनिश्चित माल के विक्रय का अनुबन्ध होगा।

(ii) भावी माल (Future goods)—वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 2 (6) के अनुसार, "भावी माल का ग्राशय ऐसे माल से है जो विक्रय-अनुबन्ध के बाद निर्मित अथवा उत्पादित किया जाना है या विक्रेता द्वारा कही से प्राप्त करना है।"

उदाहरण—लोकेश, हरीश को 100 सिलाई की मशीनें बेचने का करार करता है। विक्रय के समय लोकेश के पास सिलाई की मशीनें नहीं है बल्कि उसे उसका उत्पादन अपनी फैक्ट्री में करना है। यहाँ यह भावी माल के विक्रय का करार है।

(iii) सम्भावित माल (Contingent goods)—विक्रेता द्वारा जब माल प्राप्त करना किसी विशेष घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर होता है तो वह सम्भावित माल कहलाता है। ऐसी घटना घटित हो भी सकती है और घटित नहीं भी हो सकती है।

उदाहरण—मोहन, सोहन से कहता है कि यदि उसका साईकिल बनाने का कारखाना अगली जनवरी तक चालू हो गया तो वह उसे 500 साईकिल बेचेगा। यहाँ साईकिल सम्भावित माल है।

माल का नष्ट होना
(Distruction of goods)
(धराएं 7–8)

माल नष्ट हो जाने की निम्नलिखित परिस्थितियां हो सकती है :—

(1) विक्रय अनुबन्ध के पूर्व ही माल का नष्ट होना (Goods perishing before making of a contract)—वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, "यदि विक्रय अनुबन्ध विशिष्ट माल के विक्रय के लिए है और वह माल अनुबन्ध के समय अथवा उससे पहले विक्रेता की जानकारी के बिना नष्ट हो चुका है, या उसकी इतनी अधिक क्षति पहुँच

चुकी है कि वह उन तथ्यों, जिनका अनुवन्ध में उल्लेख किया गया था, मेल नही खाता तो ऐसा अनुवन्ध शून्य होगा।

उदाहरण—चन्द्रकान्त एक विशेष घोडा राधेकान्त से खरीदने का करार करता है। यह पता लगता है कि करार के समय ही विक्रेता की जानकारी के विना घोडा मर चुका था तो यह करार व्यर्थ है।

(2) विक्रय-अनुवन्ध से पूर्व किन्तु विक्रय करार के बाद माल नष्ट होना (Goods perishing before sale but after agreement to sell) (धारा 8)

वस्तु अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, "जब किसी विशिष्ट माल के विक्रय का करार किया गया है और क्रेता या विक्रेता की त्रुटि के विना माल नष्ट हो गया है या इतना खराब हो जाता है कि अपने उस वर्णन से जो कि करार में किया गया था, मेल नहीं खाता तो उस माल के विक्रय का अनुवन्ध शून्य हो जायेगा।

उदाहरण—संतोष अपना एक विशिष्ट घोड़ा नारायण को 1000 रुपये में 1 मार्च को वेचने का करार करता है। वह घोड़ा 25 फरवरी को ही मर जाता है। अनुवन्ध शून्य है।

मूल्य-निर्धारण
(Ascertainment of Price)
(धाराएँ 9–10)

मूल्य से आशय—वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 2 (10) के अनुसार "वस्तुओं के विक्रय के लिए मुद्रा रूपी प्रतिफल को ही मूल्य कहते हैं।" विक्रय अनुवन्ध मे विक्रेता का प्रतिफल मूल्य है। विना मूल्य के कोई विक्रय नही हो सकता। अतः विक्रय के लिए मूल्य का होना अति आवश्यक है। मूल्य का भुगतान कर दिया जाय यह आवश्यक नहीं है। भुगतान का वचन भी उतना ही प्रभावशाली होता है।

मूल्य का निर्धारण

विक्रय अनुबन्ध मे मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी नियमो का उल्लेख वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 9 और 10 में किया गया है।

(1) मूल्य अनुबन्ध द्वारा निश्चित हो सकता है—अनुवन्ध करते समय पक्षकार स्वतन्त्र होते हैं। पक्षकार अनुबन्ध में वस्तु का कुछ भी मूल्य निश्चित कर सकते हैं। निश्चित कीमत पर्याप्त है या नही न्यायालय इस बात पर ध्यान नही देता है।

(2) अनुबन्ध में निर्धारित विधि द्वारा—अनुबन्ध में मूल्य निर्धारण की यदि कोई विधि दे रखी है तो माल का मूल्य उसी विधि के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए।

(3) मूल्य पक्षकारों के आपसी व्यवहार द्वारा निश्चित किया जा सकता है—अनुवन्ध मे यदि कोई स्पष्ट मूल्य नही दिया है और उसको निश्चित करने की कोई विधि अनुवन्ध मे नही दी गयी है तो ऐसी दशा मे पक्षकारो के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

(4) उचित मूल्य—यदि मूल्य उपर्युक्त व्यवस्थाओं के अनुसार निर्धारित नहीं किया गया है, तो क्रेता, विक्रेता को एक उचित मूल्य का भुगतान करेगा। उचित मूल्य क्या है, यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

(5) किसी तीसरे पक्षकार द्वारा मूल्य का निर्धारण—यदि माल विक्रय का करार इस शर्त पर किया गया है कि माल के मूल्य का निर्धारण किसी तीसरे पक्षकार द्वारा किया जावेगा तो ऐसे तीसरे पक्षकार द्वारा निश्चित किया गया मूल्य ही मान्य होगा।

(6) किसी तीसरे पक्षकार द्वारा मूल्य निर्धारण करने में असमर्थता पर अनुबन्ध व्यर्थ—यदि तीसरा पक्षकार माल का मूल्य निश्चित नहीं करता अथवा नहीं कर सकता तो सम्पूर्ण अनुबन्ध ही शून्य हो जायेगा और दोनों पक्षकार अपने-अपने दायित्वों से मुक्त हो जायेंगे।

(7) सम्पूर्ण अथवा आंशिक माल की सुपुर्दगी हो जाने पर—यदि माल का मूल्य किसी तीसरे पक्षकार द्वारा निर्धारित करना तय होता है किन्तु ऐसा तीसरा पक्षकार माल का मूल्य निश्चित नहीं करता अथवा निश्चित नहीं कर सकता, और क्रेता ने समस्त माल या कुछ माल प्राप्त कर लिया है तो वह उसकी उचित कीमत देने को दायी होगा।

(8) यदि क्रेता या विक्रेता तीसरे पक्षकार को मूल्य-निर्धारण से रोक देता है—तो निर्दोष पक्ष दोषी पक्ष के विरुद्ध हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(9) मूल्य का भुगतान केवल देश की प्रचलित मुद्रा मे ही किया जा सकता है।

(10) चुंगी कर में वृद्धि या कमी का मूल्य-निर्धारण पर प्रभाव—यदि मूल्य निर्धारित होने के बाद किन्तु माल की सुपुर्दगी देने से पूर्व चुंगी कर में वृद्धि कर दी जाती है अथवा नया चुंगी कर लगा दिया जाता है तो विक्रेता को अधिकार है कि कर की इस वृद्धि को मूल्य में जोड़ दे। इसी प्रकार यदि चुंगी कर हटा दिया या कम कर दिया जाता है तो क्रेता को अधिकार है कि मूल्य मे से कम करवाले।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "वस्तु" के विक्रय अनुबन्ध को परिभाषित कीजिए। विक्रय तथा विक्रय के करार में अन्तर बतलाइए।
   Define a contract of sale distinguish between a sale and an agreement to sell.
   (राज. वि. वि. 1972, 74, 78, 81)
   (जोधपुर वि. वि. 1977)
2. वैध विक्रय अनुबन्ध के निर्माण के लिए कौन-कौन से आवश्यक तत्त्व हैं?
   What are the essentials to elements constitue a valid contract of sale of goods ?
3. विक्रय-अनुबन्ध के निर्माण के लिए कौन-कौन से तत्त्व आवश्यक हैं? वस्तु-विक्रय अनुबन्ध तथा निक्षेप मे अन्तर स्पष्ट कीजिए।

What are the essentials of a contract of sale ? Distinguish between contract of sale and bailment.

4. माल की परिभाषा दीजिए एवं उसका वर्गीकरण कीजिए । निम्न के अनुबन्ध पर प्रभाव बताइए—
(क) अनुबन्ध से पूर्व माल का नष्ट होना एवं
(ख) विक्रय से पूर्व किन्तु विक्रय के करार के बाद माल का नष्ट होना ।
Define Goods and give its classification, state the effect of the following on a contract—
(a) Goods perishing before making of contract, and
(b) Goods perishing before sale but after agreement to sell.
(उदयपुर वि. वि. 1985)

5. माल की परिभाषा दीजिए ? यह कितने प्रकार का होता है ? मूल्य-निर्धारण के नियमों की व्याख्या कीजिए ।
Define Goods ? What are its kinds ? Discuss the rule for the as certainment of price.

26

शर्तें तथा आश्वासन

(Conditions and Warranties)

(धाराएँ 11–17)

विषय-सामग्री—शर्त और आश्वासन की परिभाषा, भुगतान के समय से सम्बन्धित बन्धन, शर्त एवं आश्वासन में अन्तर, शर्त को आश्वासन-भंग समझा जाना, गर्भित शर्तें एवं आश्वासन, क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त।

शर्त की परिभाषा

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 12 (2) के अनुसार, 'शर्त एक ऐसा बन्धन है जो कि अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक होता है और जिसके भंग होने पर अनुबन्ध के परित्याग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।"

आश्वासन की परिभाषा

वस्तु अधिनियम की धारा 12 (3) के अनुसार, "आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक है और जिसके भंग होने पर केवल हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त होता है किन्तु माल को अस्वीकार करने तथा अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।'[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आश्वासन भंग होने पर क्रेता क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है अनुबन्ध भंग की नहीं है। किसी विक्रय अनुबन्ध में कोई बन्धन शर्त है अथवा आश्वासन प्रत्येक दशा में अनुबन्ध की बनावट पर निर्भर होता है।

आश्वासन में निम्नलिखित तत्त्व प्रमुख रूप में होते हैं :—

(1) विक्रय अनुबन्ध में आश्वासन एक बन्धन होता है।

(2) आश्वासन अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक होता है।

(3) आश्वासन-भंग की दशा में अनुबन्ध का परित्याग करने का अधिकार नहीं होता है।

(4) आश्वासन-भंग की दशा में केवल हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है।

---

1. "A warranty is a stipulation collateral the main Purpose of the contract the breach of which gives rise to a claim for damages but not a right to reject the goods and treat the contract as repudiated Indian Sale of Goods Act, [Sec. 12 (3)

उदाहरण—कमलेश अपना स्कूटर विमलेश को बेचता है और उससे कहता है, "वह स्कूटर एक लीटर पैट्रोल मे 40 किलो मीटर चलता है।" बाद में विमलेश को यह मालूम होता है कि स्कूटर एक लीटर पैट्रोल मे 30 किलोमीटर से अधिक नही चलता, कमलेश का वर्णन केवल एक आश्वासन है। विमलेश को अनुबन्ध परित्याग करने का अधिकार नही है, केवल क्षतिपूर्ति के लिए दावा कर सकता है। इसके विपरीत यदि विमलेश कमलेश से यह कहता है कि "मै स्कूटर नही खरीदूंगा यदि वह 1 लीटर पैट्रोल मे 40 किलोमीटर नही चलता है और इसके उत्तर मे यदि कमलेश यह कहता है कि, हाँ स्कूटर 1 लीटर मे 40 किलोमीटर चलता है तो उस दशा मे यह शर्त होती है और विमलेश को अनुबन्ध का परित्याग करने का अधिकार है।

भुगतान के समय से सम्बन्धित बन्धन
(Stipulation as to Time)

धारा 11 के अनुसार जब तक अनुबन्ध से कोई विपरीत आशय प्रकट नही होता, मूल्य भुगतान के समय से सम्बन्धित बन्धन विक्रय अनुबन्ध का सारतत्त्व नही समझे जाते। समय से सम्बन्धित अन्य कोई बन्धन अनुबन्ध के लिए अनुबन्ध का सारतत्त्व है या नही, यह अनुबन्ध की शर्तो पर निर्भर करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामान्य नियम यह है कि भुगतान से सम्बन्धित बन्धन अनिवार्यबन्धन नही होते किन्तु यदि अनुबन्ध से ज्ञात होता है कि भुगतान से सम्बन्धित बन्धन अनिवार्य बन्धन है तो समय को शर्त के रूप मे भी माना जा सकता है।

शर्त एवं आश्वासन में अन्तर
(Distinction between Condition and Warranty)

शर्त एवं आश्वासन मे अन्तर करते हुए एक लेखक ने लिखा है कि शर्त किसी भवन के मुख्य स्तम्भो की भाँति होती है जिस पर सम्पूर्ण भवन टिका होता है। इन मुख्य स्तम्भों मे से किसी एक के टूट जाने पर सम्पूर्ण भवन ही धराशायी हो जाता है। दूसरी ओर आश्वासन उन सहायक स्तम्भो की शृंखला (Chain) है जो किसी एक के टूटने से मुख्य स्तम्भ को कुछ भी हानि नही होती और भवन धराशायी नही होता, बल्कि थोड़ी हानि उठानी पडती है।

क्र. स	अन्तर का आधार	शर्त	आश्वासन
1.	परिभाषा	वस्तु-विक्रय अधिनियम की की धारा 12 (2) के अनुसार, "शर्त एक ऐसा बन्धन है जो कि अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है और जिसके भंग होने पर अनुबन्ध के परित्याग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।"	वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 12 (3) के अनुसार, "आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक है और जिसके भंग होने पर केवल हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत करने का

क्र. सं.	अन्तर का आधार	शर्त	आश्वासन
			अधिकार प्राप्त होता है किन्तु अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।"
2.	मुख्य उद्देश्य के लिए	शर्त अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिये आवश्यक है। अर्थात् अनुबन्ध मुख्यतः इसी पर आधारित होता है।	आश्वासन अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिये सहायक होता है अर्थात् अनुबन्ध पूर्णरूप से इस पर आधारित नहीं होता।
3.	स्वत्व का हस्तान्तरण	स्वत्व का हस्तान्तरण शर्त के पालन के बिना नहीं किया जा सकता है।	स्वत्व का हस्तान्तरण आश्वासन के पालन किये बिना किया जा सकता है।
4.	अनुबन्ध का त्याग	शर्त-भंग हो जाने पर क्रेता को अनुबन्ध परित्याग करने या क्षतिपूर्ति वसूल करने या दोनों ही अधिकार प्राप्त होते हैं।	आश्वासन के भग होने पर अनुबन्ध को समाप्त नहीं किया जा सकता वह केवल हर्जाना माग सकता है।
5.	शर्त-भग और आश्वासन-भंग	विशेष परिस्थितियों में शर्त-भंग को आश्वासन भंग समझा जा सकता है और अनुबन्ध को प्रवर्तित करवाया जा सकता है।	आश्वासन-भंग को शर्त-भंग नहीं समझा जा सकता।
6.	प्रतिफल पर प्रभाव	सम्पूर्ण प्रतिफल पर शर्त का प्रभाव पड़ता है।	आश्वासन का प्रतिफल के किसी एक भाग पर ही प्रभाव पड़ता है।
7.	अनुबन्ध का समर्थन	शर्त उन मुख्य स्तम्भों की भांति होती है जिस पर सम्पूर्ण भवन टिका हुआ है और जिसके टूटने से वह धराशायी हो जाता है।	आश्वासन तो केवल सहायक स्तम्भों की तरह है जिसके टूटने से भवन को कुछ क्षति हो सकती है। परन्तु वह धराशायी नहीं होता है।

क्र. सं.	अन्तर का आधार	शर्त	आश्वासन
8.	उपचार	शर्त भंग होने पर निर्दोष पक्षकार के दो अधिकार होते हैं :— (i) अनुबन्ध का परित्याग करना । (ii) अनुबन्ध को स्वीकार करके क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना ।	आश्वासन-भंग होने पर निर्दोष पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्ति नही पा सकता वह केवल क्षतिपूर्ति के लिए ही वाद प्रस्तुत कर सकता है ।

शर्त को आश्वासन-समझा जाना
(Condition treated as warranty)
(धारा 13)

शर्त-भंग को निम्नलिखित परिस्थितियों मे आश्वासन-भंग माना जा सकता है—

(1) जब क्रेता ने शर्त को त्याग दिया है—जहाँ विक्रय अनुबन्ध में कोई ऐसी शर्त है जिसका पालन विक्रेता को करना है तो ऐसी दशा मे क्रेता उस शर्त को त्याग सकता है अथवा उस शर्त को शर्त-भंग न समझकर. आश्वासन-भंग समझ लेता है जिसके फलस्वरूप अनुबन्ध को निरस्त न करके निष्पादन स्वीकार कर सकता है ।

उदाहरण—मनमोहन ने श्याम मोहन को 100 टन चावल 15 मार्च को सुपुर्द करने का अनुबन्ध किया । मनमोहन ने वह चावल 17 मार्च को सुपुर्द किया । श्याम मोहन यहाँ शर्त भंग को आश्वासन-भंग मानकर सुपुर्दगी ले सकता है । श्याम मोहन कुछ राशि क्षतिपूर्ति के रूप में ले सकता है ।

(2) क्रेता द्वारा माल की सुपुर्दगी स्वीकार करना—जहाँ विक्रय अनुबन्ध अलग-अलग हो सकने योग्य नही है तथा क्रेता ने माल अथवा उसके किसी भाग को स्वीकार कर लिया है अथवा अनुबन्ध विशिष्ट माल के सम्बन्ध मे है और माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो चुका है तो विक्रेता द्वारा पूरी की जाने वाली किसी शर्त का भंग केवल आश्वासन-भंग के रूप मान सकता है । किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव मे, क्रेता को न तो अनुबन्ध-भंग करने का अधिकार होगा और न माल को अस्वीकार करने का अधिकार होगा ।

यदि किसी राजनियम द्वारा असम्भव होना अथवा किसी घटना के कारण अनुबन्ध की शर्त या आश्वासन को पूरा करना माफ कर दिया गया है तो इस धारा का कोई प्रभाव नहीं होगा और अनुबन्ध शून्य होगा ।

गर्भित शर्तें व आश्वासन
(Implied Conditions and Warranties)

वस्तु विक्रय-अनुबन्ध की धारा 14-17 में वर्णित तथ्यों के अनुसार शर्तें व आश्वासन अभिव्यक्त अथवा गर्भित हो सकते हैं।

स्पष्ट शर्तें व आश्वासन

स्पष्ट शर्तें व आश्वासन वे बन्धन हैं जो क्रेता व विक्रेता ने अनुबन्ध करते समय स्वयं अभिव्यक्त रूप से निश्चित कर लिए हैं।

गर्भित शर्तें व आश्वासन

गर्भित शर्तें व आश्वासन वह है जो अनुबन्ध करते समय स्पष्ट रूप से बतलाई नहीं जाती वरन् जिनकी उपस्थिति राजनियम प्रत्येक विक्रय-अनुबन्ध में मानता है जब तक कि विक्रय-अनुबन्ध में इनके विपरीत कोई स्पष्ट बात न हो। पक्षकारों द्वारा इन्हें निश्चित करने की आवश्यकता नहीं होती।

गर्भित शर्तें
(Implied Conditions)

वस्तु विक्रय अनुबन्धों में निम्नलिखित शर्तें गर्भित हैं :—

(1) माल के अधिकार सम्बन्धी शर्त—वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 14 के अनुसार प्रत्येक विक्रय के अनुबन्ध में यह एक गर्भित शर्त है कि—

(i) विक्रय की दशा में विक्रेता को माल बेचने का अधिकार है, तथा

(ii) विक्रय के करार की दशा में विक्रेता को माल बेचने का अधिकार स्वामित्व के हस्तान्तरण के समय प्राप्त होगा।

उदाहरण—रमेश ने दिनेश से एक मोटर खरीदी और कुछ समय तक प्रयोग करने के बाद उसे मोटर वास्तविक स्वामी को लौटानी पड़ी। रमेश दिनेश को भुगतान की गई कीमत उससे वसूल कर सकता है।

(2) वर्णन सम्बन्धी शर्त—वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 15 के अनुसार जब माल का विक्रय वर्णन के आधार पर होता है तो यह गर्भित शर्त होती है कि माल वर्णन के अनुसार ही होगा।

उदाहरण—हेमकान्त ने मधुकान्त से एक मोटर खरीदी और उसको 4 माह तक प्रयुक्त किया। वह मोटर चुराई हुई थी। हेमकान्त को वह मोटर वास्तविक स्वामी को लौटानी पड़ी। हेमकान्त, मधुकान्त को भुगतान की गयी कीमत उससे वसूल कर सकता है। चाहे हेमकान्त ने मोटर का चार महीने तक प्रयोग कर लिया था।

(3) किसी विशेष आशय के लिए वस्तु की किस्म अथवा उपयुक्तता के विषय में—सामान्यतया वस्तुओं की किस्म व उपयुक्तता के सम्बन्ध में कोई गर्भित शर्त नहीं होती, क्योंकि क्रेता की सावधानी का नियम लागू होता है। परन्तु अधिनियम की धारा 16(1) के अनुसार इस सम्बन्ध में निम्न महत्त्वपूर्ण बातें हैं :—

(i) क्रेता द्वारा उस विशेष उद्देश्य को विक्रेता को अभिव्यक्त या गर्भित रूप प्रकट कर देना चाहिये जिसके लिए उसे माल चाहिये।

(ii) विक्रेता की कुशलता तथा निर्णय पर क्रेता द्वारा विश्वास किया जाना चाहिये।

(iii) माल ऐसा होना आवश्यक है जो विक्रेता द्वारा सामान्य रूप से बेचा जाता है।

(4) व्यापार योग्यता सम्बन्धी शर्त [धारा 16(2)]—जहाँ माल वर्णन द्वारा बेचा गया है और यह वर्णन से मेल खाता है फिर भी यह गर्भित शर्त होती है कि माल व्यापार के योग्य होगा।

उदाहरण —के लिए सीमेन्ट, जो पानी के प्रभाव से कड़ा हो गया है, व्यापार योग्य दशा में नहीं है।

(5) व्यापार की रीति सम्बन्धी शर्त [धारा 16(3)]—किसी विशेष आशय के लिए किस्म अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में कोई गर्भित शर्त व्यापार की रीति के अनुसार हो सकती है।

उदाहरण—के लिए यदि किसी वस्तु के उत्पादक को आदेश दिया जाता है तो यह गर्भित शर्त होगी कि माल उसी निर्माता द्वारा निर्मित होगा।

(6) नमूने द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में शर्त (धारा 17)—धारा 17 के अनुसार नमूने द्वारा विक्रय की दशा में तीन गर्भित शर्तें होती हैं :—

(i) सम्पूर्ण माल अथवा परिमाण किस्म में नमूने के साथ मेल खायेगा।

(ii) क्रेता को नमूने से माल मिलाने के लिए क्रेता को उचित अवसर मिलेगा।

(iii) माल में ऐसा कोई दोष नहीं होना चाहिये जिससे वह व्यापार योग्य किस्म का न रहे और जो नमूने की यथोचित निरीक्षण से स्पष्ट न हो सके।

गर्भित आश्वासन
(Implied warranties)

(1) शान्तिपूर्वक उपयोग का आश्वासन—क्रेता को प्रत्येक विक्रय अनुबन्ध में यह गर्भित आश्वासन दिया जाता है कि वह उस माल का शान्तिपूर्वक उपयोग कर सकेगा। यदि क्रेता को विक्रेता के दूषित अधिकार के परिणामों से कोई हानि होती है तो विक्रेता को आश्वासन-भंग के लिए क्षतिपूर्ति करनी होगी।

(2) वस्तु के भार मुक्त होने का गर्भित आश्वासन—माल किसी तीसरे पक्षकार के ऐसे प्रभाव अथवा भार से मुक्त होगा जोकि अनुबन्ध करने के पूर्व अथवा अनुबन्ध करते समय घोषित न किया गया हो अथवा जिसका क्रेता को ज्ञान न था।

(3) किस्म व उपयुक्तता के सम्बन्ध में आश्वासन—किसी विशेष आशय के लिए, किस्म अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में कोई गर्भित आश्वासन व्यापार की रीति के अनुसार हो सकता है। जैसे अच्छी हालत में मोटर के विक्रय से मोटर का अच्छी हालत में होना गर्भित आश्वासन होता है।

(4) विशेष सावधानी का गर्भित आश्वासन—खतरनाक माल के विक्रेता का यह कर्त्तव्य होता है कि वह क्रेता को इस सम्बन्ध में सचेत कर दे।

(5) गर्भित आश्वासन की उपस्थिति—कोई विक्रेता यदि अपने आपको गर्भित आश्वासनों से मुक्त रखने की घोषणा करता है तो वह गर्भित आश्वासनों से मुक्त नहीं हो सकता।

'क्रेता सावधान रहो' का सिद्धान्त
(Principle of Caveat emptor)
(धाराएँ 11–17)

माल के विक्रय से सम्बन्ध में साधारणतया "क्रेता की सावधानी" का नियम लागू होता है। इस सिद्धान्त का आशय है कि माल खरीदते समय क्रेता को सावधानी पूर्वक क्रय करना चाहिये। वह स्वयं माल की परीक्षा करे और उसकी किस्म, उपयुक्तता इत्यादि से सन्तुष्ट होने के बाद ही माल को खरीदे। यदि वह खराब, अनुपयुक्त व दोषयुक्त माल खरीद लेता है तो इसमें विक्रेता का कोई दोष नही है। विक्रेता का यह कर्तव्य नहीं है कि वह माल के दोषों को क्रेता को बतावे। (Jones V/s Just) के विवाद में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि कोई कपट नही किया गया है तो विक्रेता क्रेता द्वारा क्रय किये गये माल के दोषों के लिये दायी नहीं होगा चाहे वे दोष ऐसे हों जो कि वस्तु के निरीक्षण से प्रकट न हो सकते हों।

'क्रेता सावधान रहो' सिद्धान्त के अपवाद

भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम 1930 के अनुसार क्रेता सावधानी के नियम के निम्नलिखित अपवाद हैं :

'क्रेता सावधान रहो' सिद्धान्त के अपवाद
1. क्रेता द्वारा विशेष उद्देश्य बताना।
2. कुशलता तथा निर्णय पर विश्वास।
3. उत्पादक को आदेश।
4. माल का व्यापार योग्य होना।
5. व्यापार की परम्परा।
6. कपट की दशा में।
7. माल पर अधिकार।
8. नमूने द्वारा विक्रय।

(1) क्रेता द्वारा विशेष उद्देश्य बताना—किसी वस्तु के क्रय करने से पूर्व ही यदि क्रेता विक्रेता को उस वस्तु को खरीदने का उद्देश्य स्पष्ट कर देता है तो ऐसी स्थिति मे क्रेता की सावधानी का नियम क्रियाशील नही होता है।

उदाहरण—प्रीस्ट बनाम लास्ट (Priest V/s Last) के विवाद में A एक केमिस्ट B के पास जाकर कहता है कि उसे गर्म पानी भरने के लिये कांच की बोतल चाहिये। केमिस्ट विक्रेता B उसे ऐसी बोतल दे देता है जिसमें गर्म पानी भरना सम्भव नही है। A बोतल में पानी भरके रखता है तो वह बोतल फूट जाती है और A को चोट पहुँचती है केमिस्ट विक्रेता B ने शर्त भंग की है और वह क्रेता को पहुँची हानि के लिए हर्जाना देने के लिए बाध्य है क्योंकि क्रेता ने वस्तु को खरीदने के पूर्व ही विक्रेता को अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया था। ऐसी परिस्थिति मे क्रेता पर सावधानी का नियम लागू नही होता है।

(2) कुशलता तथा निर्णय पर विश्वास—माल के चुनाव में यदि क्रेता ने विक्रेता की कुशलता तथा निर्णय पर विश्वास किया है तो ऐसी स्थिति में क्रेता की सावधानी का नियम लागू नही होगा।

उदाहरण—हेमकुमार, राजेशकुमार से यह कहता है कि आप मुझे एक ऐसा स्टोव दीजिये जो भोजन के लिए उपयुक्त हो। राजेशकुमार यदि हेमकुमार को ऐसा स्टोव देता है

जो भोजन बनाने के अयोग्य है तो राजेशकुमार स्टोव की अनुपयुक्तता के लिए उत्तरदायी होगा।

(3) उत्पादक को आदेश—धारा 16 (3) के अनुसार कोई क्रेता यदि किसी माल के निर्माता से वस्तु-क्रय का अनुबन्ध करता है तो ऐसी स्थिति में यह माना जायेगा कि बेचा जाने वाला माल स्वयं निर्माता द्वारा तैयार किया हुआ है। इस सम्बन्ध में क्रेता की सावधानी का नियम लागू नही होता है।

(4) माल का व्यापार-योग्य होना—यदि माल विवरण द्वारा किसी ऐसे विक्रेता द्वारा बेचा जाता है जो उस विवरण के माल मे व्यापार करता है (चाहे वह उस वस्तु का निर्माता अथवा उत्पादक हो अथवा नही) तो ऐसी दशा मे यह गर्भित शर्त होगी कि माल व्यापार-योग्य दशा मे होगा। यदि विक्रेता इस शर्त को भंग करता है तो अनुबन्ध का परित्याग करता है तथा क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार क्रेता का होगा तथा क्रेता की सावधानी का नियम क्रियाशील नही होगा।

उदाहरण—(i) नारायण ने गौरव से कुछ दूध खरीदा। दूध में कुछ हानिकारक कीटाणु थे जिसके फलस्वरूप नारायण की पत्नी बीमार हो गयी। गौरव क्षतिपूर्ति के लिए दायी है क्योंकि दूध मे हानिकारक कीटाणु होने के कारण वह व्यापार-योग्य नही था।

(ii) राम ने एक शराब की बोतल अधिकृत विक्रेता श्याम से खरीदी। कॉर्क खोलते समय बोतल फट गयी और राम को चोट लग गयी। राम अधिकृत विक्रेता श्याम से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है क्योंकि वह शराब की बोतल व्यापार-योग्य किस्म की नही थी।

यदि क्रेता ने माल की भली-भाँति जाँच कर ली हो तो ऐसे दोषों के सम्बन्ध में विक्रेता का कोई दायित्व नही होता है जिनका सामान्य जाँच से पता लगाया जा सकता है।

(5) व्यापार की परम्परा या प्रथा—जहाँ कही कुछ शर्ते विक्रेता को व्यापारिक परम्परा के अनुसार पूरी करनी होगी वहाँ 'क्रेता सावधान रहो' का नियम लागू नहीं होगा।

(6) कपट की दशा में—विक्रेता द्वारा कपट करने पर भी क्रेता सावधान रहो नियम लागू नही होता है अर्थात—

(i) विक्रेता के अन्यथा कथन पर विश्वास करके क्रेता ने माल क्रय किया है।
अथवा

(ii) विक्रेता क्रेता से जानबूझकर ऐसे दोषो को छुपाता है जिसकी क्रेता सामान्य जाँच-पड़ताल से सत्यता का पता नही लगा पाया है।

(7) माल पर अधिकार—क्रेता को इस सम्बन्ध में सावधानी रखने की आवश्यकता नही है कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार है अथवा नहीं।

उदाहरण—सीताराम ने राधेश्याम से एक कार खरीदी व कुछ महीने प्रयोग में ली। वह कार चुराई हुई थी और वास्तविक स्वामी को लौटानी पडी। राधेश्याम ने माल के अधिकार सम्बन्धी शर्त को भंग किया है अतः सीताराम राधेश्याम से पूरा मूल्य प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

(8) नमूने द्वारा विक्रय—नमूने के आधार पर किये जाने वाले विक्रय अनुबन्ध मे क्रेता की सावधानी का नियम लागू नही होता है, क्योंकि विक्रेता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह नमूने के अनुसार ही माल भेजेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शर्त क्या है ? भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम के अनुसार कौनसी गर्भित शर्तें होती हैं। उदाहरण दीजिये।
What is a condition ? What are the implied condition according to Indian sale of Good Act. Give suitable examples.
(राज. वि. वि. 1980, 81)
2. शर्त किसे कहते हैं ? भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम के अनुसार कौन से गर्भित आश्वासन एवं गर्भित शर्तें होती है ? समुचित उदाहरण दीजिये।
What is a condition ? What are the implied warranties and conditions according to Indian sale of Goods Act ? Give suitable examples. (राज. वि. वि. 1977, 81)
3. वस्तु-विक्रय अनुबन्ध मे शर्तों व आश्वासन में अन्तर बतलाओं। वस्तु का क्रेता शर्त-भंग को आश्वासन-भंग कब मान सकता है ?
Distinguish between a condition and warranty in a contract of sale. When the buyer of goods can treat the breach of condition as a breach of warranty ? (जोधपुर वि. वि 1976, 84)
4. *'क्रेता सावधान रहो' के सिद्धान्त की व्याख्या करो और यह सिद्धान्त वस्तु-विक्रय* में कहाँ तक क्रियाशील होता है ? इसके क्या अपवाद हैं ?
Explain the doctrine of "Caveat Emptor" How Far it is applicable in sale of goods ? What are its exceptions ?
(उदयपुर वि. वि. 1985, जोधपुर वि. वि. 1985, राज. वि. वि. 1983)

27

विक्रेता एवं क्रेता के बीच स्वामित्व का हस्तान्तरण

(Transfer of Property or Ownership between Seller and Buyer)

विषय-सामग्री—विक्रेता एवं क्रेता के बीच स्वामित्व का हस्तान्तरण माल के स्वत्व के अधिकार का हस्तान्तरण, इसके अपवाद, माल की सुपुर्दगी से आशय, सुपुर्दगी के प्रकार।

माल की सुपुर्दगी से सम्बन्धित नियम और माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया गया है—

(1) निश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण।

(2) अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण।

(3) पसन्द अथवा वापसी की शर्त पर भेजे गये माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण।

(1) निश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण (Passing of property in ascertained goods) – निश्चित माल से आशय ऐसे माल से है जो कि विक्रय अनुबन्ध करते समय पक्षकारों द्वारा पहचान कर निश्चित कर दिया गया है। जैसे सुनील, अनिल से कहता है कि मैं वह सफेद कमीज खरीदूंगा जो आपकी दुकान की खिड़की पर रखी है। इस प्रकार दोनों पक्षकारों ने विक्रय-वस्तु को स्पष्ट रूप से पहिचान लिया है।

विक्रय वस्तु अधिनियम की धारा 19 के अनुसार निश्चित माल की दशा में माल का स्वामित्व क्रेता को उस समय हस्तान्तरित होता है जबकि अनुबन्ध के पक्षकारों का ऐसा अभिप्राय हो। पक्षकारों के अभिप्राय जानने के लिए अनुबन्ध की शर्तों पक्षकारों के आचरण तथा मामले की सब परिस्थितियों पर ध्यान रखना पड़ेगा। जब अभिप्राय स्पष्ट न हो तो सामान्यतः निम्न नियमों के अनुसार स्वामित्व के हस्तान्तरण का समय माना जाता है।

(क) सुपुर्दगी योग्य स्थिति में माल—धारा 20 के अनुसार, जब सुपुर्दगी योग्य स्थिति में निश्चित माल को बेचने का शर्त रहित अनुबन्ध किया गया है तो स्वामित्व क्रेता को उसी समय हस्तान्तरित हो जाता है जब अनुबन्ध किया गया है। स्वामित्व के हस्तान्तरण पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है कि मूल्य के भुगतान का समय या माल की सुपुर्दगी का समय या दोनों स्थगित कर दिये गये हैं।

उदाहरण—रामगोपाल, गिरधारी को गाय 500 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव करता है और गिरधारी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है सुपुर्दगी देने के पूर्व ही गाय मर जाती है। गिरधारी को मूल्य चुकाना पड़ेगा क्योंकि गाय का स्वामित्व रामगोपाल को उसी समय हस्तान्तरित हो गया था जिस समय अनुबन्ध हुआ था। गाय रामगोपाल के पास थी अथवा गिरधारी ने मूल्य नहीं चुकाया था, यह बात यहाँ महत्त्वहीन है।

(ख) माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाना है (धारा 21)—जहाँ विक्रय अनुबन्ध किसी ऐसे निश्चित माल के लिए है जिसको सुपुर्दगी योग्य स्थिति मे लाने के लिए विक्रेता को कुछ करना शेष है तो माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय तक नहीं होगा जब तक कि ऐसा कार्य न कर दिया जाय और उसकी सूचना क्रेता को न मिल गयी हो।

इस धारा के लागू होने के लिये निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

(i) विक्रय का अनुबन्ध किसी निश्चित माल का होना चाहिये।
(ii) माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नही होना चाहिये।
(iii) माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने के लिए विक्रेता को कुछ कार्य करना शेष है।
(iv) सुपुर्दगी के समय तक विक्रेता ने वह शेष सभी कार्य कर लिया है।
(v) इसकी सूचना क्रेता को दे दी गयी है।

ऐसे माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण जिस समय शर्तें पूरी हो जाती हैं, हुआ माना जाता है।

उदाहरण—मनमोहन ने श्याम मोहन से एक टेबिल खरीदने का अनुबन्ध किया जो टेबिल मनमोहन ने खरीदी उस पर पॉलिश नही हुई थी अतः टेबिल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने के लिए उस पर पॉलिश करानी थी। श्याम मोहन ने टेबिल पर पॉलिश करा दी तथा इसकी सूचना दे दी टेबिल का स्वामित्व मनमोहन को प्राप्त हो गया।

(ग) माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में हो किन्तु मूल्य निर्धारण सम्बन्धी कार्य शेष हो (धारा 22)—जहाँ विक्रय अनुबन्ध किसी ऐसे निश्चित माल के लिए है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है किन्तु मूल्य निश्चित करने के लिए विक्रेता को उसे तोलना, मापना, परीक्षण करना अथवा अन्य कोई कार्य करना है तो ऐसी दशा मे माल का स्वामित्व उस समय तक हस्तान्तरित नहीं होता जब तक कि ऐसा काम न कर दिया जाय तथा क्रेता को इसकी सूचना प्राप्त नहीं हो जाती।

इस धारा के लागू होने के लिये निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

(i) विक्रय अनुबन्ध निश्चित माल के लिए होता है।
(ii) माल सुपुर्दगी योग्य दशा में है।
(iii) मूल्य-निर्धारण के लिए विक्रेता को उसे तौलना, नापना, परीक्षण करना, अथवा कोई अन्य कार्य करना शेष है।
(iv) विक्रेता ने वह कार्य कर लिया है।
(v) इसकी सूचना क्रेता को दे दी है।

ऐसे माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण जिस समय में शर्तें पूरी हो जाती हैं हुआ माना जाता है।

उदाहरण—मुरली 100 पुस्तकें जगमोहन को बेचने का अनुबन्ध करता है। पुस्तकें मुरली की आलमारी मे रखी हुई हैं। मुरली को 100 पुस्तकें गिन कर अलग करनी है। जिनमें कि पूर्व ही पूरे माल मे आग लग जाती है। ऐसी दशा में हानि मुरली की ही रहेगी *क्योंकि जगमोहन को स्वामित्व का हस्तान्तरण नही हुआ।*

(2) अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण (धारा 18 व 23) (Passing of property in unascertained goods)—विक्रय-अनुवन्ध के समय यदि माल को पहचान कर निश्चित नही कर लिया गया है तो ऐसा माल अनिश्चित माल कहलाता है।

धारा 18 के अनुसार अनिश्चित माल के विक्रय अनुवन्ध में माल का स्वामित्व *क्रेता को उस समय तक हस्तान्तरित नही होता जब तक कि माल निश्चित न कर लिया जाये।*

उदाहरण—हरीश विभिन्न प्रकार के गेहूँ का व्यापारी है। नरेश उसके गोदाम में से 100 मन गेहूँ किसी निश्चित दर से खरीदने का अनुवन्ध करता है। तो ऐसी स्थिति में स्वामित्व उस समय तक हस्तान्तरण नही होगा, जब तक कि गेहूँ की किस्म निश्चित न कर ली जाये और उसमे से 100 मन गेहूँ तोल कर अलग न कर दिया जायें।

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 23 में निम्नलिखित नियम दिये गये हैं :—

(क) यदि माल का विक्रय वर्णन के अनुसार है [धारा 23 (1)]—जहाँ अनुबन्ध वर्णन द्वारा किसी अनिश्चित अथवा भावी माल के विक्रय के लिए किया गया है और वह माल की सुपुर्दगी योग्य स्थिति मे भी है या तो विक्रेता द्वारा क्रेता की सहमति से अथवा क्रेता द्वारा विक्रेता की सहमति से अनुवन्ध के अनुसार बिना किसी शर्त के कुल माल से अलग कर लिया जाता है तो ऐसा करते ही माल के स्वामित्व का क्रेता को हस्तान्तरण हो जाता है।

इस धारा के लागू होने के लिए निम्नलिखित बातों का पालन होना आवश्यक है—

(i) विक्रय अनुवन्ध अनिश्चित अथवा भावी माल का हुआ हो।
(ii) विक्रय माल के वर्णन के अनुसार हुआ हो।
(iii) वह माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में होना चाहिए।
(iv) कुल माल में से उस माल को पृथक् करना आवश्यक है।
(v) उस माल का शर्त रहित विनियोजन कर दिया गया हो।
(vi) ऐसा दोनों पक्षकारों की सहमति से होना चाहिए।
(vii) क्रेता विक्रेता की सहमति अभिव्यक्त या गर्भित हो सकती हैं।
(viii) ऐसी सहमति माल के विनियोजन के पहले अथवा बाद में दी जा सकती है।

अनिश्चित माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण तब पूरा हुआ माना जाता है, जब इन सभी शर्तों का पालन हो जाता है।

(ख) वाहक को माल की सुपुर्दगी [धारा 23 (2)]—जहाँ अनुबन्ध के अनुसार विक्रेता क्रेता को अथवा किसी वाहक को अथवा किसी निक्षेप-गृहीता को इस उद्देश्य से

माल सुपुर्द करता है कि वह माल क्रेता तक पहुँचा देगा और अपना अधिकार अपने ही पास सुरक्षित नहीं रखता है तो यह माना जाता है कि उसने अनुबन्ध के माल का शर्त-रहित विनियोजन कर दिया है और ऐसा करने से माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है।

इस धारा के लागू होने के लिए निम्नलिखित बातों का पूरा होना आवश्यक है :—

(i) विक्रेता किसी माल वाहक अथवा निक्षेप-ग्रहीता को माल इस उद्देश्य से दे कि वह उसे क्रेता तक पहुँचा दे।

(ii) विक्रेता अपना अधिकार माल पर सुरक्षित न रखे।

माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उसी समय पूरा हुआ माना जाता है जिस समय इन सब बातो को पूरा कर दिया गया हो।

(3) पसन्द अथवा वापसी की शर्त पर भेजे गये माल की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण (Passing of property in case of goods sent on approval or on sale or on return basis (धारा 24)—अनुमोदन पर या वापसी की शर्त पर विक्रय की दशा में स्वामित्व का हस्तान्तरण निम्नलिखित दशाओं में हो सकता है—

(i) विक्रेता को सूचित करना—विक्रेता जब माल पसन्दगी की शर्त पर भेजता है तो क्रेता अपना अनुमोदन या स्वीकृति विक्रेता को दे देता है या ऐसा कोई कार्य करता है जिससे मालूम हो कि उसने व्यवहार को स्वीकार कर लिया है तो सूचना देने के समय से ही माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरित हो जायेगा।

(ii) सूचना के अभाव में—यदि क्रेता अपना अनुमोदन अथवा स्वीकृति विक्रेता को प्रकट नही करता किन्तु स्वीकृति की सूचना दिये बिना ही माल को अपने पास रोक रखता है तो उसके समय के व्यतीत हो जाने पर अथवा यदि कोई समय निश्चित नहीं हुआ है तो उचित समय के समाप्त हो जाने के बाद ही माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जायेगा।

विक्रेता द्वारा माल के व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित करने पर स्वामित्व का हस्तान्तरण

(i) जहाँ किसी विशिष्ट माल को बेचने का अनुबन्ध है अथवा जब माल को अनुबन्ध के लिए बाद में नियोजन कर लिया जाता है तो विक्रेता अनुबन्ध अथवा विनियोजन की शर्तों के अनुसार माल के व्यवस्थापन का अधिकार उस समय तक अपने पास सुरक्षित रख सकता है, जब तक कुछ शर्तें पूरी न कर दी जायें। ऐसी दशा में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को उस समय तक नहीं होता जब तक कि विक्रेता द्वारा लगाई गई शर्तों को पूरा नही कर दिया जाये, चाहे माल की सुपुर्दगी क्रेता को अथवा किसी वाहन या निक्षेप-ग्रहीता को ही क्यो न सौंप दी गई हो। [धारा 25 (1)]

(ii) जबकि माल जहाज द्वारा भेजा जाता है और जहाजी रसीद के अनुसार माल विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट के आदेश पर सुपुर्द किया जा सकता है तो यह माना जायेगा कि विक्रेता ने सौंपने का अधिकार सुरक्षित रख लिया है।

(iii) यदि विक्रेता माल के मूल्य के लिए क्रेता पर एक विनिमय-पत्र लिखता है तथा बिल एवं जहाजी रसीद दोनों को एक साथ क्रेता के पास भेज देता है जिससे विनिमय-पत्र की स्वीकृति अथवा भुगतान प्राप्त हो तो ऐसी दशा में स्वामित्व क्रेता के पास उस समय तक नहीं जाता जब तक कि वह विनिमय-पत्र को स्वीकार नहीं कर लेता अथवा भुगतान नहीं कर देता और यदि वह दोषपूर्ण रूप से जहाजी रसीद को रोक रखता है तो माल का स्वामित्व उसको हस्तान्तरित नहीं होगा।

माल के स्वत्व अथवा स्वामित्व के अधिकार का हस्तान्तरण
(Transfer of title of Goods)
(धारा 27–30)

माल के अधिकार के हस्तान्तरण से आशय माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण से है। इस सम्बन्ध में लेटिन वाक्य "नेमो डेट क्वोड नॉन हैबेट" (Nemo dat quod non habet) एक सामान्य सिद्धान्त की व्याख्या करता है। इसके अनुसार, "माल का कोई विक्रेता माल में अपने से अच्छा स्वत्व क्रेता को नहीं दे सकता" भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम में भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। धारा 27 के अनुसार यदि माल किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा बेचा जाता है जो उसका स्वामी नहीं है और जो उस माल को उसके स्वामी के अधिकार अथवा सहमति से नहीं बेचता है तो क्रेता का अधिकार विक्रेता से अच्छा नहीं होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि विक्रेता का स्वत्व दोषपूर्ण है तो क्रेता का अधिकार भी दोषपूर्ण होगा। यदि विक्रेता का स्वत्व दोष-रहित है तो क्रेता का स्वत्वाधिकार भी दोष-रहित होगा।

उदाहरण—सोहन जिसके पास कुछ माल किराये पर है उस माल को मोहन के लिए बेच देता है। मोहन यद्यपि उसने सद्विश्वास से उसे खरीदा है, मोहन को माल पर सोहन के विरुद्ध स्वामित्व प्राप्त न होगा। मोहन अधिक से अधिक उतना हित रख सकता है, जितना कि किराये-पर लेने वाले अर्थात् सोहन का था।

नियम के अपवाद
(Exception to the rule)
(धाराएँ 27–30)

अधिनियम की धारा 27 के अनुसार साधारण नियम यह है कि क्रेता विक्रेता से अधिक अच्छा अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता परन्तु कुछ परिस्थितियों में क्रेता का अधिकार विक्रेता से अच्छा भी हो सकता है अर्थात् निम्न परिस्थितियों में एक विक्रेता अपने से अच्छा अधिकार क्रेता को हस्तान्तरित कर सकता है :—

(1) गत्यवरोध अथवा प्रदर्शन की दशा में (In case of Estoppel)—यदि माल का स्वामी अपने *आचरण द्वारा क्रेता को यह विश्वास करा देता है अथवा कर लेने* देता है कि विक्रेता को वस्तु बेचने का अधिकार है तो विक्रेता उस वस्तु पर क्रेता को अपने से अच्छा अधिकार प्रदान कर देता है।

उदाहरण—मंगल, सोम की मोटर शंकर को बेचता है। सोम विक्रय के समय उपस्थित था। वह या तो मौन रहता है या शंकर को मोटर खरीदने के लिए प्रेरित करता है। यहाँ सोम के आचरण से शंकर को विश्वास हो जाता है कि मंगल मोटर का स्वामी है। अतः शंकर को मंगल से अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाता है।

माल के स्वत्व के हस्तान्तरण सम्बन्धी नियम के अपवाद
1. गत्यवरोध अथवा प्रदर्शन की दशा में।
2. व्यापारिक एजेन्ट द्वारा विक्री।
3. संयुक्त स्वामियों में किसी एक के द्वारा विक्रय।
4. शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल रखने वाले व्यक्ति द्वारा विक्री।
5 विक्रय के बाद माल रखने वाले विक्रेता द्वारा विक्री।
6. माल पर अधिकार रखने वाले क्रेता द्वारा विक्रय।
7. अदत्त विक्रेता द्वारा विक्री।
8. *अन्य राजनियमों के प्रावधानों के अन्तर्गत विक्रय।*

(2) व्यापारिक एजेन्ट द्वारा विक्री (Sale by Mercentile agent) (धारा 27)—जब किसी व्यापारिक एजन्ट के पास स्वामी की सहमति से कोई माल अथवा माल के स्वत्व प्रपत्र हैं तो निम्नलिखित दशाओं में क्रेता को विक्रेता से अच्छा अधिकार प्राप्त होगा—

(i) व्यापारिक एजेन्ट का माल पर अधिकार हो,

(ii) व्यापारिक एजेन्ट का माल पर अधिकार स्वामी की सहमति से हो,

(iii) व्यापारिक एजेन्ट माल को एजेन्सी के सामान्य व्यापार के दौरान बेचता हो,

(v) *क्रेता ने सद्भावना के साथ क्रय किया हो,*

(vi) क्रेता को माल क्रय करने के समय इस बात की जानकारी नहीं होनी चाहिए कि एजेन्ट को माल बेचने का अधिकार नहीं है।

उदाहरण—राम ने एक व्यापारिक एजेन्ट श्याम को एक ट्रक इस आदेश से सुपुर्द किया कि उसे एक निश्चित मूल्य से कम पर न बेचा जाये। एजेन्ट ने मोहन को वह ट्रक निश्चित मूल्य से कम पर बेच दिया जिसे मोहन ने सद्भावना से खरीद लिया। मोहन इस ट्रक पर अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लेता है।

(3) संयुक्त स्वामियों में किसी एक के द्वारा विक्रय (Sale by one of joint owners) (धारा 28)—यदि माल के अनेक सह-स्वामी हैं और कई सह-स्वामियों में से कोई एक सह-स्वामी अन्य समस्त सह-स्वामियों की सहमति से माल पर अधिकार रखे हुए हैं तो माल का स्वामित्व किसी भी ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरित हो जाता है जो उसे सद्विश्वास के साथ तथा इस जानकारी के अभाव में कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार नहीं है, खरीदे।

उदाहरण—सुभाष और जवाहर किसी वस्तु के संयुक्त स्वामी हैं। सुभाष उस वस्तु को जवाहर के पास उसके अधिकार से रखने के लिए छोड़ देता है। जवाहर

समय के बाद उस वस्तु को मनोज को बेच देता है। मनोज सद्भावना व मूल्य के बदले खरीद लेता है तो ऐसी स्थिति में मनोज को वैध अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(4) शून्यकरणीय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल रखने वाले व्यक्ति द्वारा बिक्री (Sale by person in possesion under voidable contract)—यदि एक व्यक्ति ने शून्यकरणीय अनुबन्ध के अधीन किसी माल पर अधिकार प्राप्त कर लिया है तो क्रेता को वह उसका वैध स्वामित्व हस्तान्तरित कर सकता है। यदि :—

(1) अनुबन्ध विक्रय के समय तक भग नही हुआ है,

(2) क्रेता माल को सद्भावना से क्रय करता है,

(3) विक्रेता के दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी क्रेता को नही है।

उदाहरण – सुरेन्द्र एक गाय महेन्द्र से अनुचित प्रभाव द्वारा खरीद लेता है। महेन्द्र द्वारा अनुबन्ध भग करने के पूर्व ही सुरेन्द्र उसी गाय को जोगेन्द्र को बेच देता है। जोगेन्द्र उस गाय को सद्भावना से खरीदता है। जोगेन्द्र गाय का वैध स्वामी हो जाता है। महेन्द्र केवल सुरेन्द्र से क्षतिपूर्ति करवा सकता है, जोगेन्द्र से गाय वापस नहीं ले सकता।

(5) विक्रय के बाद माल रखने वाले विक्रेता द्वारा बिक्री [धारा 30 (1)]—

जब किसी विक्रेता के पास अपना माल बेच देने के पश्चात् माल अथवा उससे सम्बन्धित अधिकार पत्र उसी के पास रहते हैं और विक्रेता या उसका एजेन्ट उस माल को किसी अन्य व्यक्ति को पुन. बेच देता हैं, और यदि ऐसा व्यक्ति माल की सुपुर्दगी सद्विश्वास मे तथा पिछले विक्रय की सूचना के बिना प्राप्त करता है तो वह अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लेता है।

इस धारा के क्रियाशील होने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :—

(क) माल का एक बार विक्रय हो चुका हो।

(ख) विक्रेता के पास माल फिर भी पडा हो।

(ग) उस माल को क्रेता सद्भावना से खरीदता हो।

(घ) पूर्व विक्रय की सूचना क्रेता को न हो।

उदाहरण—लोकेश ने एक आलमारी हरीश से खरीदी और मूल्य चुका दिया तथा हरीश को कह दिया कि वह आलमारी 5 दिन में ले जायेगा। हरीश ने वह आलमारी नरेश को बेच दी, नरेश को पूर्व विक्रय की जानकारी नही थी अतः उसने सद्भावना से आलमारी खरीद ली, नरेश ने उस आलमारी पर हरीश से अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया है।

(6) माल पर अधिकार रखने वाले क्रेता द्वारा विक्रय [धारा 30 (2)] (Sale by buyer in possession)—जब किसी क्रेता को विक्रेता की सहमति से माल का स्वामित्व हस्तान्तरित होने से पहले प्राप्त हो जाता है तथा इसके पश्चात् वह उस माल को किसी तीसरे व्यक्ति को बेच दे अथवा बन्धक रख दे अथवा अन्य प्रकार से निपटारा कर दे और यदि ऐसा तीसरे व्यक्ति ने सद्विश्वास के साथ तथा मूल विक्रेता के माल पर पूर्वाधिकार अथवा अन्य कोई अधिकार की जानकारी के अभाव में माल की सुपुर्दगी प्राप्त करता है तो वह माल पर अपने विक्रेता की अपेक्षा अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लेता है।

(7) अदत्त विक्रेता द्वारा बिक्री (Sale by unpaid seller) (धारा 54)—यदि किसी विक्रेता को वस्तु का मूल्य प्राप्त नही हुआ है और जिसके पास विक्रय किया हुआ माल पड़ा है तो वह उस माल को किसी अन्य व्यक्ति को पुन: बेच देता है तो ऐसी स्थिति में क्रेता विक्रता से अच्छा स्वामित्व प्राप्त कर नेता है।

(8) अन्य राजनियमों के प्रावधानों के अन्तर्गत विक्रय (Sale under the Provis ons of other laws)

(क) यदि गिरवी रखने वाला उचित समय में ऋण का भुगतान नही करता है तो उसे उचित सूचना देकर गिरवी रख लेने वाला गिरवी रखे हुए माल को वेचकर अपने ऋण की राशि प्राप्त करने का अधिकारी होता है। ऐसी स्थिति में क्रेता विक्रेता से अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लेता है। (धारा 176)

(ख) यदि माल पाने वाला माल के स्वामी के न आने पर माल का वैध रूप से विक्रय करता है तो ऐसी स्थिति में क्रेता को अच्छा स्वत्व प्राप्त हो जाता है। (धारा 169)

(ग) यदि राजकीय प्रापक दिवालिया की सम्पत्ति वेचता है तो वह इस सम्पत्ति के क्रेता को अच्छा अधिकार प्रदान कर सकता है।

(घ) सद्भावना के साथ तथा मूल्य के लिए पाने वाला व्यक्ति किसी विनिमय-साध्य विलेख पर अच्छा अधिकार प्राप्त करता है चाहे उसके वेचान करने वाले व्यक्ति का अधिकार दोषपूर्ण था।

विक्रय अनुबन्ध का निष्पादन
(Performance of a contract of sale)

विक्रेता तथा क्रेता के कर्त्तव्य (धारा 31)—विक्रय-अनुबन्ध के निष्पादन के लिए यह आवश्यक है कि विक्रेता तथा क्रेता दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूरा करें। विक्रेता का कर्त्तव्य है कि अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल की सुपुर्दगी करे तथा क्रेता उस माल को स्वीकार कर के भुगतान करे।

भुगतान एवं सुपुर्दगी (धारा 32)—यदि अनुबन्ध से कोई विपरीत आशय प्रकट न हो, माल की सुपुर्दगी तथा मूल्य का भुगतान एक ही साथ पूरा करने वाली शर्ते है अर्थात् एक विक्रेता को मूल्य के बदले माल सुपुर्दगी के देने तथा क्रेता को माल के बदले उसका मूल्य देने को तैयार व इच्छुक रहना चाहिए।

माल की सुपुर्दगी (Delivery of goods)—वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 2 (2) के अनुसार, 'एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक अधिकार का हस्तान्तरण ही सुपुर्दगी कहलाती हैं।

सुपुर्दगी के प्रकार
(Kinds of delivery)

(1) वास्तविक सुपुर्दगी (Actual delivery) वास्तविक सुपुर्दगी का आशय ऐसी सुपुर्दगी से है जबकि विक्रेता माल को वास्तविक रूप में क्रेता को हस्तान्तरित कर दे।

(2) रचनात्मक सुपुर्दगी (Constructive delivery—रचनात्मक सुपुर्दगी में माल तो विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट अथवा किसी तीसरे पक्षकार के पास रहता है लेकिन वह क्रेता के पास रखने का प्रभाव रखता है अर्थात्, माल को क्रेता के पास हस्तान्तरित हुआ मान लिया जाता है।

(3) सांकेतिक सुपुर्दगी (Symbolic delivery)—जब माल की वास्तविक सुपुर्दगी न देकर किसी संकेत द्वारा दी जाती है। इस प्रकार की सुपुर्दगी में आचरण के आधार पर ही माल की सुपुर्दगी हुई मानी जाती है जैसे रेलवे रसीद, जहाजी बिल्टी, गोदाम की चाबी देकर गोदाम के माल की सुपुर्दगी दे देना आदि।

माल की सुपुर्दगी सम्बन्धित नियम
(Rules as to delivery of goods)

(1) क्रेता का माल पर नियन्त्रण—कोई भी ऐसा कार्य करके सुपुर्दगी की जा सकती है जिसके प्रभाव से माल पर क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि का नियन्त्रण व अधिकार उत्पन्न हो जाय। (धारा 33)

(2) आंशिक सुपुर्दगी (धारा 34)—*माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण के उद्देश्य से सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी के दौरान की गई आंशिक सुपुर्दगी का वही प्रभाव होता जो सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी का होता है।* किन्तु यदि आंशिक माल की सुपुर्दगी शेष माल से अलग है तो वह उसी अंश की सुपुर्दगी मानी जायेगी वह शेष माल की सुपुर्दगी का प्रभाव नही रखती।

उदाहरण—सीताराम 5 टन कोयला राधेश्याम को बेचता है। राधेश्याम की मोटर एक समय मे एक टन कोयला ले जा सकती है। इसलिए सीताराम शेष को सुपुर्द करने की प्रगति मे पहले एक टन कोयला सुपुर्द करता है ऐसी दशा में एक टन की सुपुर्दगी देने का- प्रभाव पूरे माल की सुपुर्दगी देना है।

माल की सुपुर्दगी सम्बन्धित नियम

1. क्रेता का माल पर नियन्त्रण।
2. आंशिक सुपुर्दगी।
3. सुपुर्दगी के लिए क्रेता द्वारा आवेदन।
4. सुपुर्दगी का दायित्व।
5. सुपुर्दगी का स्थान।
6. सुपुर्दगी का समय।
7. तीसरे पक्षकार के पास रखा माल।
8. सुपुर्दगी की मांग।
9. सुपुर्दगी के व्यय।
10. किस्तों मे माल की सुपुर्दगी।
11. गलत मात्रा मे सुपुर्दगी।
12. वाहक को सुपुर्दगी।
13. किसी अन्य स्थान पर माल की सुपुर्दगी।
14. सुपुर्दगी के पूर्व माल जाँचने का अधिकार।
15. सुपुर्द माल की स्वीकृति।

(3) सुपुर्दगी के लिए क्रेता द्वारा आवेदन (धारा 35)—यदि इस सम्बन्ध मे कोई स्पष्ट अनुबन्ध नही हुआ हो तो यह आवश्यक है कि क्रेता सुपुर्दगी के लिए आवेदन करे तभी विक्रेता सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य होगा, अन्यथा नही।

(4) सुपुर्दगी का दायित्व—क्रेता को माल की सुपुर्दगी प्राप्त करना है अथवा विक्रेता का उस माल को क्रेता के पास भिजवाने का दायित्व है यह दोनो पक्षकारों के मध्य *अभिव्यक्त अथवा गर्भित अनुबन्ध पर आधारित है।*

(5) सुपुर्दगी का स्थान (धारा 36)—सुपुर्दगी का स्थान अनुबन्ध में स्पष्ट रूप से हो सकता है। किन्तु यदि अनुबन्ध में ऐसा न हो तो बेचे हुए माल की सुपुर्दगी उसी स्थान पर होगी जहाँ पर वह माल विक्रय-अनुबन्ध करने के समय था और वह माल जिसके लिए विक्रय का करार किया गया है उसकी सुपुर्दगी उस स्थान पर होगी जहाँ विक्रय के करार का समय है या यदि माल करार के समय अस्तित्व में नही है तो सुपुर्दगी उस स्थान पर होगी जहाँ पर वह बनाया जाता है।

(6) सुपुर्दगी का समय [धारा 36(2)]—विक्रय-अनुबन्ध के अन्तर्गत जब विक्रेता क्रेता के पास माल भेजने के लिए बाध्य है परन्तु उसको भेजने के लिए कोई समय निश्चित नही हुआ है तो विक्रेता माल को उचित समय के अन्दर भेजने के लिए बाध्य होता है।

(7) तीसरे पक्षकार के पास रखे माल की सुपुर्दगी [धारा 36 (3)]—यदि विक्रय के समय माल किसी अन्य व्यक्ति के पास है, तो विक्रेता द्वारा क्रेता को सुपुर्दगी होना उस समय तक नहीं माना जायेगा जब तक तीसरे पक्षकार उस माल को क्रेता की ओर से रखना स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार की सुपुर्दगी रचनात्मक सुपुर्दगी होती है अधिकार विलेखों का हस्तान्तरण भी माल की सुपुर्दगी के सदृश है।

(8) सुपुर्दगी की माँग [धारा 36(4)] – क्रेता को सुपुर्दगी की माँग या विक्रेता द्वारा सुपुर्दगी का निष्पादन उचित समय पर किया जाना चाहिये अन्यथा यह निष्फल समझा जा सकता है। उचित समय प्रत्येक मामले की शर्तों व परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

(9) सुपुर्दगी के व्यय [धारा 36 (5)]—माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति मे लाने से सम्बन्धित समस्त व्यय जब तक कि कोई विपरीत करार न हो जाय, विक्रेता को वहन करने होंगे।

(10) किस्तों में माल की सुपुर्दगी (धारा 38)—कोई भी विक्रेता सामान्यत: अपने क्रेता को माल की सुपुर्दगी किश्तो मे लेने के लिये बाध्य नहीं कर सकता है परन्तु पक्षकारो ने यदि आपसी समझौते से माल की सुपुर्दगी किश्तो मे करने का निश्चय किया है तो फिर किश्तों मे माल सुपुर्द किया जा सकता है।

(11) गलत मात्रा में सुपुर्दगी (धारा 37)—गलत मात्रा मे सुपुर्दगी की दशा में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं :—

(क) कम मात्रा में सुपुर्दगी [धारा 37(1)]—यदि विक्रेता क्रेता को उस मात्रा से कम मात्रा मे माल सुपुर्द करता है तो क्रेता माल को अस्वीकार अथवा स्वीकार कर सकता है परन्तु यदि क्रेता इस प्रकार सुपुर्द किये गये माल को स्वीकार कर लेता है तो उसको अनुबन्ध की दर से उसके मूल्य का भुगतान करना पड़ेगा।

(ख) अधिक मात्रा में सुपुर्दगी [धारा 37(2)]—यदि विक्रेता क्रेता को अनुबन्ध द्वारा निश्चित माल से अधिक माल सुपुर्द करता है तो क्रेता अनुबन्ध मे सम्मिलित माल स्वीकार कर सकता है तथा शेष माल को लौटा सकता है अथवा समस्त माल को स्वीकार कर सकता है। यदि क्रेता इस प्रकार सुपुर्द किये गये समस्त माल को स्वीकार कर लेता है तो उसे अनुबन्ध की दर से माल का मूल्य चुकाना पड़ेगा।

(ग) भिन्न वर्णन के माल के साथ सुपुर्दगी [धारा 37(3)]—यदि विक्रेता क्रेता को अनुबन्ध में वर्णित माल के साथ-साथ ऐसा माल भी सुपुर्द करता है जो अनुबन्ध द्वारा निश्चित नहीं है तो क्रेता उस माल को स्वीकार कर सकता है जो कि अनुबन्ध के अनुसार है तथा शेष माल को लौटा सकता है अथवा सम्पूर्ण माल को अस्वीकार कर सकता है।

(घ) यदि व्यापार की प्रथा अथवा पक्षकारों के बीच किसी करार अथवा उनके व्यवहार के अन्तर्गत कोई अन्य बात हो तो इस धारा की उपर्युक्त व्यवस्थायें लागू न होंगी। (धारा 37)

(12) वाहक को सुपुर्दगी (धारा 39)—वाहक को सुपुर्दगी से सम्बन्धित निम्नलिखित नियम हैं :—

(क) विक्रय-अनुबन्ध के अनुसार यदि विक्रेता को क्रेता के लिए माल भेजना है तो क्रेता के पास माल पहुँचाने के अभिप्राय से किसी वाहक को सुपुर्दगी देना क्रेता को सुपुर्दगी के समान समझा जाता है।

(ख) क्रेता के विपरीत आदेश के अभाव मे विक्रेता का कर्त्तव्य है कि वह क्रेता की ओर से वाहक से ऐसा अनुबन्ध करे जो माल की प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए तथा अन्य परिस्थितियों को देखते हुए उचित हो। यदि विक्रेता ऐसा नही करता है और मार्ग मे माल नष्ट हो जाता है अथवा कोई हानि होती है, तो क्रेता ऐसी सुपुर्दगी को अपने लिए मानने से इन्कार कर सकता है अथवा ऐसी हानि के लिए विक्रेता को दायी ठहरा सकता है।

(ग) किसी विपरीत करार के अभाव मे यदि माल सामुद्रिक रास्ते से ले जाया जाता है और माल का सामान्य रूप से बीमा कराया जाता है तो विक्रेता को चाहिये कि वह क्रेता को ऐसी सूचना दे जिससे कि क्रेता माल का बीमा करा सके, और यदि विक्रेता ऐसा नही करता, तो रास्ते मे माल उसकी जोखिम पर होगा।

(13) किसी अन्य स्थान पर माल की सुपुर्दगी (धारा 40)—जब विक्रेता माल की सुपुर्दगी उस स्थान के अतिरिक्त जहाँ पर माल का विक्रय किया गया है किसी अन्य स्थान पर अपनी ही जोखिम पर करने को सहमत हो जाता है तो मार्ग मे होने वाली माल की स्वाभाविक क्षति को क्रेता ही वहन करेगा। यदि माल सम्पूर्ण रूप से खो जाता है तो जोखिम विक्रेता की होगी।

(14) सुपुर्दगी के पूर्व माल जाँचने का अधिकार (धारा 41)—जब माल क्रेता को सुपुर्द किया जाता है जिसकी कि उसने पहले जाँच नही की है तो माल की सुपुर्दगी तब तक हुई नहीं मानी जाती है जब तक कि क्रेता को माल जाँचने का यथोचित अवसर न मिल जाय कि माल अनुबन्ध के अनुसार है अथवा नही। ऐसा अवसर देने के बाद भी यदि क्रेता माल की जाँच नही करता तो माल क्रेता द्वारा स्वीकृत समझा जायेगा।

(15) सुपुर्द माल की स्वीकृति (धारा 42)—निम्नलिखित परिस्थितियो में यह माना जायेगा कि क्रेता ने माल स्वीकार कर लिया है :—

(क) जब वह विक्रेता को माल स्वीकार करने की सूचना देता है।

(ख) जब क्रेता को माल सुपुर्द किया गया है और क्रेता उस माल के सम्बन्ध में कोई ऐसा कार्य करता है जो विक्रेता के हितों के प्रतिकूल हो जैसे माल का

उपयोग करना, माल का पुनः विक्रय करना आदि ।

(ग) जब उचित समय व्यतीत हो जाने पर भी माल को अपने पास ही रखता है और विक्रेता को कोई सूचना नहीं भेजता है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निश्चित तथा "अनिश्चित" माल के क्या अर्थ है ? माल के विक्रय अनुबन्ध में विक्रेता से क्रेता के पास माल का स्वामित्व व जोखिम कब हस्तान्तरित होता है ?

   What is the meaning of "Specific" and unascertained goods ? In a contract for the sale of goods when does the properly or the risks in the goods pass from the seller to the buyer ?

   (राज. वि. वि. 1979,83,84 जोधपुर वि. वि. 1979)

2. "कोई विक्रेता माल में अपने से अच्छा स्वत्व क्रेता को प्रदान नहीं कर सकता ।" विवेचना कीजिये । क्या इस नियम के कोई अपवाद है ?

   Explain the rule that no seller can give to the buyer of goods a *better title than what he himself has are there any exceptions to* this rule ?

   (राज. वि वि. 1977, 78, 79, 81, 83, जोधपुर वि. वि. 1985)

3. वस्तु-विक्रय अधिनियम में सुपुर्दगी से क्या तात्पर्य है ? सुपुर्दगी तथा मूल्य के भुगतान सम्बन्धी नियम बतलाइये ।

   What do you understand by the term 'delivery' under the sale of goods Act ? state the Law regurding delivery and Payment of price (राज. वि. वि. 1982)

4. (क) माल की गलत मात्रा की सुपुर्दगी के क्या वैधानिक परिणाम होते हैं ?

   (ख) किश्तों मे सुपुर्दगी के सम्बन्ध मे क्या नियम हैं ?

   Writes short notes on :—

   (a) What are the Legal effects of wrong delivery of goods ?

   (b) What is the Law in respect of instalment delivery ?

□□□

28
अदत्त विक्रेता
(Unpaid Seller)

विषय सामग्री —अदत्त विक्रेता से आशय, विशेषताएँ, अदत्त विक्रेता के अधिकार, माल के विरुद्ध अधिकार, विक्रेता के विरुद्ध अधिकार, क्रेता के विरुद्ध अधिकार, विक्रेता के विरुद्ध क्रेता के अधिकार, नीलाम द्वारा विक्रय, अभ्यासार्थ प्रश्न।

अदत्त विक्रेता से आशय

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 45 के अनुसार एक माल का विक्रेता निम्न-लिखित दो परिस्थितियों में अदत्त विक्रेता माना जाता है :—

(1) जबकि उसे विक्रय किये गये माल का सम्पूर्ण मूल्य नहीं चुकाया गया है अथवा प्रस्तुत नहीं किया गया है, अथवा

(2) जब उसे मूल्य के भुगतान में कोई विनिमय-पत्र या कोई अन्य विनिमय साध्य विलेख दे दिया गया है, किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया है।

अदत्त विक्रेता की विशेषताएँ

एक अदत्त विक्रेता की सामान्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :—

(1) ऐसा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को माल बेचता है। उसने माल की सुपुर्दगी क्रेता को दी है या नहीं इसका कोई महत्त्व नहीं है।

(2) विक्रेता को विक्रय किये गये माल के सम्पूर्ण मूल्य का भुगतान नहीं किया गया हो।

(3) वह विक्रेता भी अदत्त विक्रेता हो सकता है जिसे मूल्य के एक भाग का भुगतान प्राप्त करना हो।

(4) विक्रेता को यदि विक्रय किये गये माल के भुगतान में विनिमय बिल, चैक, हुण्डी अथवा प्रतिज्ञा-पत्र दिया गया हो किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया है।

(5) एक बार अदत्त विक्रेता भी पुनः अदत्त बन जाता है यदि उस विक्रेता को दिया विनिमय साध्य विलेख पत्र अप्रतिष्ठित हो गया हो।

अदत्त विक्रेता के अधिकार
(Rights of unpaid seller)

अदत्त विक्रेता को दो प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं :—

(1) माल से विरुद्ध अधिकार। (धाराएँ 46–54)

(2) क्रेता के विरुद्ध अधिकार। (धाराएँ 55–56)

(1) अदत्त विक्रेता के माल के विरुद्ध अधिकार (धाराएँ 46–54)—वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 46 के अनुसार माल के अदत्त विक्रेता को माल के विरुद्ध निम्नलिखित तीन अधिकार प्राप्त हैं :—

(1) माल पर ग्रहणाधिकार (Lien on goods) (धाराएँ 47–49)

(2) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार (Right of stoppage in transit) (धाराएँ 50–52)

(3) माल के पुन: विक्रय का अधिकार (Right to resale) (धारा 54)

(1) माल पर ग्रहणाधिकार (धाराएँ 47-49) (Right of Lien)—अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार मे माल है उस समय तक माल को अपने पास रोक रख सकता है जब तक कि अदत्त विक्रेता को मूल्य का भुगतान न कर दिया जाय अथवा प्रस्तुत न किया जाये। निम्नलिखित परिस्थितियो में अदत्त विक्रेता द्वारा ग्रहणाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है—

(क) जब माल नकद बेचा गया हो—अदत्त विक्रेता को ग्रहणाधिकार तभी प्राप्त हो सकता है जबकि माल नकद बेचा गया हो।

(ख) माल उधार बेचा गया हो—जहाँ माल उधार बेचा गया है किन्तु उधार की अवधि समाप्त हो चुकी है। जब तक अवधि समाप्त नही होती माल पर विक्रेता ग्रहणाधिकार नही रख सकता।

(ग) माल का क्रेता दिवालिया हो गया हो—क्रेता दिवालिया हो जाय और यदि माल उधार पर बेचा गया हो तो अदत्त विक्रेता माल पर ग्रहणाधिकार उधार को अवधि मे भी रख सकता है।

(घ) अदत्त विक्रेता क्रेता के एजेन्ट अथवा निक्षेप गृहीता होने की परिस्थिति में—यदि अदत्त विक्रेता के पास माल क्रेता के एजेन्ट अथवा निक्षेपगृहीता की स्थिति में रहकर कार्य करता है तो वह भी ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(ङ) व्यक्तिगत अधिकार—ग्रहणाधिकार का अधिकार स्वय विक्रेता द्वारा अथवा उसके प्रतिनिधि द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है। किसी अन्य व्यक्ति को यह अधिकार हस्तान्तरित नही किया जा सकता।

(च) आंशिक सुपुर्दगी—यदि विक्रेता ने क्रेता को सम्पूर्ण माल में से आंशिक माल की सुपुर्दगी दे दी है तो भी अदत्त विक्रेता शेष माल पर ग्रहणाधिकार रख सकता है।

ग्रहणाधिकार की परिस्थितियाँ

1. जब माल नकद बेचा गया हो।
2. माल उधार बेचा गया हो।
3. माल का क्रेता दिवालिया हो गया हो।
4. अदत्त विक्रेता का क्रेता के एजेन्ट अथवा निक्षेप-गृहीता होने की परिस्थिति में।
5. व्यक्तिगत अधिकार।
6. आंशिक सुपुर्दगी।
7. अविभाज्य अधिकार।
8. मूल्य के लिये।
9. माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण।
10. अदत्त विक्रेता का माल पर अधिकार होना चाहिये।

(छ) अविभाज्य अधिकार—ग्रहणाधिकार एक अविभाज्य अधिकार है। यदि किसी अदत्त विक्रेता का माल पर ग्रहणाधिकार है और क्रेता उस माल का आधा मूल्य चुका देता है तो उस आधे भाग की सुपुर्दगी के लिए भी क्रेता बाध्य नहीं कर सकता है।

(ज) मूल्य के लिये—अदत्त विक्रेता केवल माल के मूल्य के लिए ही ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है। खर्चों की बकाया राशि के लिए वह इस अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

(झ) माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण—अदत्त विक्रेता का माल पर तभी ग्रहणाधिकार हो सकता है जबकि माल के स्वामित्व का विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरण हो गया हो तथा माल अदत्त विक्रेता या उसके एजेन्ट के अधिकार में हो।

(ञ) अदत्त विक्रेता का माल पर अधिकार होना चाहिये—ग्रहणाधिकार तभी हो सकता है जबकि माल पर अदत्त विक्रेता या उसके एजेन्ट के अधिकार में हो। यदि माल पर क्रेता या उसके एजेन्ट का अधिकार हो जाता है तो ऐसी स्थिति में अदत्त विक्रेता का यह अधिकार समाप्त हो जायेगा।

ग्रहणाधिकार का अन्त या समाप्ति
(Termination of Lien)

निम्नलिखित दशाओं मे अदत्त विक्रेता माल पर अपने ग्रहणाधिकार को खो देता है :—

(क) वाहक को माल सौंपना—जब वह माल की सुपुर्दगी किसी वाहक या निक्षेप-गृहीता को क्रेता के पास माल पहुँचाने के लिए देता है तो माल के निपटारे का अधिकार सुरक्षित नहीं रखता है।

(ख) क्रेता को माल मिल जाने पर—जब क्रेता अथवा उसका एजेन्ट वैधानिक तरीको से माल को प्राप्त कर लेता है।

(ग) विक्रेता द्वारा ग्रहणाधिकार का परित्याग करना—ग्रहणाधिकार का अन्त विक्रेता द्वारा अपने ग्रहणाधिकार के अधिकार का परित्याग करके भी कर सकता है।

(घ) आंशिक सुपुर्दगी—यदि विक्रेता ने आंशिक सुपुर्दगी क्रेता को इस ढंग से दी है जिससे यह प्रकट होता है कि उसने ग्रहणाधिकार का परित्याग कर दिया है तो भी वह ग्रहणाधिकार को खो देता है।

(ङ) प्रदर्शन की दशा में—अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार प्रदर्शन द्वारा भी समाप्त हो जाता है।

ग्रहणाधिकार का अन्त

(क) वाहक को माल सौंपना।
(ख) क्रेता को माल मिल जाने पर।
(ग) विक्रेता द्वारा ग्रहणाधिकार का परित्याग करना।
(घ) आंशिक सुपुर्दगी।
(ङ) प्रदर्शन की दशा में।
(च) मूल्य का भुगतान प्राप्त हो जाने पर।
(छ) भुगतान अस्वीकार करने पर
(ज) विक्रेता द्वारा माल की सुपुर्दगी देने से अनुचित रूप से मना करना।

(च) मूल्य का भुगतान प्राप्त हो जाने पर—अदत्त विक्रेता को यदि माल का मूल्य मिल जाता है तो ऐसी स्थिति में भी ग्रहणाधिकार का अन्त हो जाता है।

(छ) भुगतान अस्वीकार करने पर— क्रेता यदि अदत्त विक्रेता को उचित समय मे एवं उचित रूप से मूल्य का भुगतान करता है और विक्रेता उसको स्वीकार नहीं करता है तो ऐसी परिस्थिति में भी ग्रहणाधिकार का अन्त हो जाता है।

(ज) विक्रेता द्वारा माल की सुपुर्दगी देने से अनुचित रूप से मना करना—विक्रेता जब क्रेता को सुपुर्दगी देने से अनुचित रूप से मना कर देता है तो विक्रेता के इस प्रकार मना करने से विक्रय अनुबन्ध भंग हो जाता है।

(2) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार (धाराएँ 50 से 52)—जब माल का क्रेता दिवालिया हो जाता है तो अदत्त विक्रेता जिसने माल को अपने से पृथक् कर दिया है उसको मार्ग में रोकने का अधिकार रखता है। माल विक्रेता के पास भी नहीं है और अभी क्रेता के पास भी नहीं पहुँचा है तो ऐसी दशा मे माल को मार्ग मे माल माना जाता है।

निम्नलिखित दशाओं मे विक्रेता का मार्ग मे माल रोकने का अधिकार प्राप्त होता है :—

(क) विक्रेता को माल का सम्पूर्ण या आंशिक मूल्य न मिला हो अर्थात् विक्रेता अदत्त विक्रेता हो।

(ख) माल विक्रेता के अधिकार मे न हो।

(ग) क्रेता दिवालिया हो गया हो।

(घ) विक्रेता को क्रेता के दिवालिया होने की सूचना प्राप्त हो गई हो।

(ङ) माल क्रेता या उसके एजेन्ट के अधिकार मे नहीं पहुँचा हो।

(च) माल मार्ग में ही हो।

(छ) इस अधिनियम या अन्य अधिनियम द्वारा विक्रेता का यह अधिकार समाप्त न कर दिया गया हो।

(ज) माल का स्वामित्व विक्रेता के पास से क्रेता को हस्तान्तरित हो गया हो।

ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर

(Distinction between lien and right of stoppage)

क्र.सं	अन्तर का आधार	ग्रहणाधिकार	मार्ग में रोकने का अधिकार
1.	माल पर अधिकार	ग्रहणाधिकार का प्रयोग केवल उसी माल पर किया जा सकता है जो विक्रेता के अधिकार में हो।	मार्ग में रोक रखने के अधिकार का प्रयोग उस समय किया जाता है जब माल विक्रेता के अधिकार से बाहर हो गया हो।

क्र सं	अन्तर का आधार	ग्रहणाधिकार	मार्ग में रोकने का अधिकार
2.	ग्रहणाधिकार की उत्पत्ति	ग्रहणाधिकार अदत्त विक्रेता को दो दशाओं में प्राप्त होता है। (i) क्रेता जब दिवालिया हो जाता है अथवा (ii) क्रेता जब मूल्य चुकाने की स्थिति में है, लेकिन चुकाता नहीं है।	अदत्त विक्रेता को मार्ग में माल रोकने का अधिकार उस समय प्राप्त होता है जब क्रेता दिवालिया हो गया हो।
3	उद्देश्य	ग्रहणाधिकार का उद्देश्य उस माल को जो विक्रेता के अधिकार में है, भुगतान होने तक रोके रखा जाना है।	मार्ग में माल रोकने का उद्देश्य माल को पुनः अधिकार में लेना होता है। यह माल पहले विक्रेता के अधिकार में था। और अब तीसरे पक्ष के अधिकार में है।
4.	प्रारम्भ व अन्त	जब ग्रहणाधिकार का अन्त हो जाता है उसके बाद ही माल को मार्ग में रोकने का अधिकार उत्पन्न हो जाता है।	जब माल को मार्ग में रोकने का अधिकार प्रारम्भ होता है तब माल पर ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।
5.	समाप्ति पर अधिकार	विक्रेता को ग्रहणाधिकार समाप्त होने पर माल के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं मिलता है।	विक्रेता को माल को मार्ग में रोक लेने की स्थिति में माल पर ग्रहणाधिकार पुनः मिल जाता है।

माल क्रेता के अधिकार में कब आता है ?
(When does buyer acquire possession ?)

अथवा

माल के मार्ग में रहने की अवधि
(Duration of goods in transit)

निम्नलिखित दशाओं में माल मार्ग में ही माना जाता है :—

(1) क्रेता ने वाहक से सुपुर्दगी न ली हो—विक्रेता ने यदि क्रेता तक माल पहुँचाने के लिए उसकी सुपुर्दगी किसी वाहक या निक्षेप-गृहीता को दे दिया है तो जब तक क्रेता अथवा उसका एजेन्ट वैधानिक रूप से वह वाहक अथवा निक्षेप-गृहीता से उसकी सुपुर्दगी न लेवे माल मार्ग में ही रहा माना जाता है।

(2) निश्चित स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही क्रेता द्वारा सुपुर्दगी—माल के निश्चित स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही यदि क्रेता या उसका एजेन्ट उस माल की सुपुर्दगी ले लेता है तो माल का मार्ग में रहना समाप्त माना जायेगा।

(3) वाहक द्वारा क्रेता की ओर से माल रखना—यदि माल के नियत स्थान पर पहुँचने के बाद, वाहक अथवा निक्षेप-गृहीता क्रेता अथवा उसके एजेन्ट से स्वीकार कर लेता है तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जायेगा।

(4) क्रेता द्वारा सुपुर्दगी से मना करना—क्रेता यदि माल को अस्वीकार कर देता है और वाहक या निक्षेप-गृहीता के अधिकार में है तो माल का मार्ग में रहना समाप्त नहीं होता चाहे विक्रेता ने भी उस माल को वापस लेने से मना कर दिया हो।

माल के मार्ग में रहने की अवधि
1. क्रेता ने वाहक से सुपुर्दगी न ली हो।
2. निश्चित स्थान पर पहुँचने से पूर्व ही क्रेता द्वारा सुपुर्दगी।
3. वाहक द्वारा क्रेता की ओर से माल रखना।
4. क्रेता द्वारा सुपुर्दगी से मना करना।
5. क्रेता के जहाज को सुपुर्दगी
6. माल वाहक की त्रुटि की दशा में।
7. आंशिक सुपुर्दगी।

(5) क्रेता के जहाज को सुपुर्दगी—जब क्रेता द्वारा किराये पर लिये हुए जहाज पर विक्रेता ने माल सुपुर्द कर दिया है तो जहाज के कप्तान के पास माल वाहक की तरह है या क्रेता के एजेन्ट की तरह इसका निर्धारण प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर होगा।

(6) माल वाहक की त्रुटि की दशा में—यदि वाहक अथवा निक्षेप गृहीता ने दोषपूर्ण तरीके से माल की सुपुर्दगी क्रेता को देने से मना कर दिया है तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हुआ माना जाता है।

(7) आंशिक सुपुर्दगी—जब माल के कुछ भाग की क्रेता को सुपुर्दगी दे दी गई हो तो शेष माल को मार्ग में रोक दिया जा सकता है। परन्तु यदि आंशिक सुपुर्दगी ऐसी परिस्थितियों में की गई है जिसमें सम्पूर्ण माल को देने का करार प्रकट होता है तो माल का मार्ग मे होना समाप्त हो जायेगा और शेष माल को मार्ग मे नहीं रोका जा सकता।

माल किस प्रकार मार्ग में रोका जाता है ?

माल को मार्ग में रोकने की दो विधियाँ हैं:—

(क) वास्तविक अधिकार प्राप्त करके—माल को विक्रेता वाहक या निक्षेप-गृहीता से प्राप्त करके उसको अपने वास्तविक अधिकार में रख सकता है।

(ख) माल वाहक अथवा निक्षेप-गृहीता को माल रोकने की सूचना देकर माल को मार्ग में रुकवा सकता है।

पुनः विक्रय का अधिकार
(Right of resale)
(धारा 54)

यदि क्रेता ने मूल्य का भुगतान नही किया है तो ऐसी स्थिति मे विक्रेता को माल पुन. विक्रय का अधिकार भी है। माल के पुन: विक्रय के सम्बन्ध मे निम्नलिखित नियम क्रियाशील होते हैं—

(1) जब माल नाशवान प्रकृति का हो—क्रेता द्वारा त्रुटि करने पर विक्रेता ऐसे माल का पुन: विक्रय कर सकता है।

(2) विक्रेता द्वारा क्रेता को बेचने की सूचना देना—यदि अदत्त विक्रेता ने ग्रहणाधिकार या मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग कर लिया है तथा माल को पुनः बेच देने के अपने इरादे की सूचना के उचित समय के अन्दर भुगतान न करने पर विक्रेता उस माल को बेच सकता है और अनुबन्ध भंग से होने वाली हानि को मूल क्रेता वहन करेगा परन्तु लाभ पर विक्रेता का ही अधिकार होगा।

(3) पुन. विक्रय अदत्त विक्रेता की इच्छा पर—अदत्त विक्रेता को मूल क्रेता माल के पुनः विक्रय के लिए बाध्य नही कर सकता है।

माल का पुन विक्रय सम्बन्धी नियम या शर्तें
1. जब माल नाशवान प्रकृति का हो।
2. विक्रेता द्वारा क्रेता को बेचने की सूचना देना
3. पुनः विक्रय अदत्त विक्रेता की इच्छा पर
4. नये क्रेता का अच्छा अधिकार।
5. माल का पुनः विक्रय के बाद मूल विक्रय अनुबन्ध निरस्त माना जाता है।

(4) नये क्रेता का अच्छा अधिकार—एक अदत्त विक्रेता यदि माल का पुनः विक्रय करता है तो नया क्रेता मूल क्रेता के विरुद्ध अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेता है चाहे मूल क्रेता को पुनः विक्रय की सूचना नही दी गई हो।

(5) माल का पुनः विक्रय के बाद मूल विक्रय अनुबन्ध निरस्त माना जाता है।

क्रेता के विरुद्ध अदत्त विक्रेता के अधिकार (धाराएँ 55-60)

एक अदत्त विक्रेता को क्रेता के विरुद्ध निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :—

(1) मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करना (धारा 55)

(क) जब विक्रय अनुबन्ध के अनुसार माल का स्वामित्व क्रेता के पास चला गया है और क्रेता अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार मूल्य चुकाने में दोषपूर्ण तरीको से उपेक्षा करता है अथवा मूल्य नही चुकाता तो ऐसी स्थिति में विक्रेता उस पर माल के मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ख) यदि अनुबन्ध के अनुसार मूल्य किसी निश्चित दिन पर देना है, चाहे माल की सुपुर्दगी दी गयी हो अथवा नहीं और क्रेता दोषपूर्ण रूप से मूल्य चुकाने में उपेक्षा करता है अथवा मूल्य नही चुकाता तो विक्रेता क्रेता के विरुद्ध मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है अर्थात् यद्यपि माल का स्वामित्व अभी क्रेता को हस्तान्तरित नहीं हुआ है।

(2) क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार (धारा 56)—जब क्रेता माल को स्वीकार करने तथा उसका मूल्य चुकाने में दोषपूर्ण रीति से अपेक्षा करता है अथवा मना करता है तो विक्रेता क्रेता के विरुद्ध हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(3) ब्याज पाने का अधिकार—एक अदत्त विक्रेता क्रेता द्वारा मूल्य के भुगतान मे त्रुटि करने की दशा में क्रेता से उचित दर से ब्याज पाने का अधिकारी है। ब्याज की राशि की गणना माल प्रस्तुत करने की या मूल्य देय होने की तिथि से की जायेगी।

(4) विशेष क्षति पाने का अधिकार— किसी अधिनियम के अन्तर्गत यदि विक्रेता को क्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग करने पर कोई विशिष्ट क्षति होती है अनुबन्ध के अन्तर्गत यदि विशिष्ट क्षति पाने का अधिकार है तो वह क्रेता से विशिष्ट क्षति प्राप्त कर सकता है।

विक्रेता के विरुद्ध क्रेता के अधिकार

विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग कर देने पर क्रेता को विक्रेता के विरुद्ध निम्न अधिकार प्राप्त हैं :—

(1) हर्जाने के लिए वाद (धारा 57)—वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 57 के अनुसार यदि विक्रेता दोषपूर्ण तरीके से क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने मे उपेक्षा की है अथवा मना कर देता है तो क्रेता सुपुर्दगी न मिलने के कारण होने वाली क्षति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(2) निर्दिष्ट निष्पादन के लिए वाद (धारा 58)—विक्रेता के विरुद्ध क्रेता विक्रय अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। निर्दिष्ट निष्पादन की मांग तभी की जा सकती है जबकि—

(i) अनुबन्ध विशिष्ट एवं निश्चित माल के विक्रय के लिए है,

(ii) ऐसे अनुबन्ध के खण्डन का हर्जाना पर्याप्त उपचार नहीं है,

(iii) माल अनोखा तथा मूल्यवान हो।

(3) आश्वासन-भंग के लिए वाद—जब विक्रेता द्वारा कोई आश्वासन भंग किया जाता है अथवा कोई शर्त भंग कर दी है किन्तु क्रेता उसे आश्वासन भंग मान लेता है तो क्रेता विक्रेता के विरुद्ध आश्वासन भंग के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

नीलामी द्वारा विक्रय
(Sale by auction)

नीलामी द्वारा विक्रय मे नीलामी कर्त्ता जनता के बीच सबसे अधिक मूल्य लगाने वाले व्यक्ति को माल बेचता है प्राय: नीलाम करने से पूर्व सार्वजनिक सूचना दी जाती है जिससे अधिक से अधिक लोग बोली लगाने के लिए निश्चित स्थान पर पहुँच सकें। नीलामी द्वारा विक्रय के सम्बन्ध मे निम्नलिखित नियम हैं :—

(1) पृथक्-पृथक् भागों में माल का विक्रय—यदि माल अनेक भागों मे बेचा जाता है तो प्रत्येक भाग का विक्रय एक पृथक् अनुबन्ध की विषय वस्तु समझी जाती है।

(2) विक्रय पूर्ण होने का समय—नीलामी द्वारा विक्रय उस समय पूरा हो जाता है जब नीलाम करने वाला हथौड़ा गिराकर या किसी अन्य प्रचलित रीति से उसका पूरा होना घोषित कर दे। घोषित करने के पूर्व तक बोली लगाने वाला बोली वापस ले सकता है।

(3) विक्रेता द्वारा बोली लगाने का अधिकार—विक्रेता स्वयं अथवा स्वयं अपनी ओर से बोली लगाने का अधिकार स्पष्ट रूप से सुरक्षित कर लिया है तो वह नीलाम मे बोली लगा सकता है।

(4) बोली लगाने का अधिकार सुरक्षित न रखने पर विक्रेता नीलाम में बोली नहीं लगा सकता।

(5) सुरक्षित मूल्य—वस्तु का विक्रय नीलाम में एक सुरक्षित मूल्य के अधीन किया जा सकता है जब तक सुरक्षित मूल्य के बराबर या उससे अधिक राशि की बोली नही लगाई जाती तो यह माल बेचा नही जाता।

(6) बनावटी बोली—यदि विक्रेता मूल्य बढ़ाने के लिए बनावटी बोली का प्रयोग करता है तो ऐसा विक्रय क्रेता की इच्छा पर शून्यकरणीय होगा।

(7) अधिक बोली न लगाने के करार—यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति नीलामकर्त्ता को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से आपस में करार कर लेते हैं कि वे एक दूसरे के विरुद्ध अधिक बोली नही लगायेंगे। यह अवैधानिक नही है वरन् वैधानिक है। विक्रेता इससे रक्षा प्राप्त करने के लिए सुरक्षित मूल्य रख सकता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में गर्भित आश्वासन

(1) नीलामकर्त्ता को माल बेचने का अधिकार है।

(2) क्रेता द्वारा माल का मूल्य चुकाने पर वह क्रेता को माल का अधिकार प्रदान करेगा।

(3) नीलामकर्त्ता को माल के स्वामित्व के सम्बन्ध में अपने स्वामी के दूषित स्वत्वाधिकार के विषय में कुछ नही जानता है।

(4) माल पर किसी प्रकार का कोई भार नही है।

(5) क्रेता माल पर शान्तिपूर्ण अधिकार कर सकेगा तथा अपने अधिकार में माल को रख सकेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अदत्त विक्रेता का क्या अर्थ है ? उसके द्वारा विक्रय किये हुए माल के सम्बन्ध में उसके क्या अधिकार हैं ?

   What is meant by unpaid seller ? what are his rights in respect of goods sold by him ? (राज. वि. वि. 1981, जोधपुर वि. वि. 1979)

2. क्या एक अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार मे माल है माल को अपने अधिकार में रोके रख सकता है ? यदि ऐसा है, तो किन परिस्थितियो मे ? उन पर वह अपना ग्रहणाधिकार कब खो देता है ?

   Can an unpaid seller, who has the possession of goods, exercise the right of lien ? If so, under what circumstances ? When he losses his rights of lien ? (राज. वि. वि. पूरक 1982)

3. अदत्त विक्रेता कौन है ?

   (i) माल तथा

   (ii) स्वयं क्रेता के विरुद्ध उसके अधिकारों का उल्लेख कीजिये।

   (जोधपुर वि. वि. 1981)

What is an unpaid seller ? Mention his rights against.

(i) The goods and

(ii) The buyer personalls.

4 अदत्त विक्रेता के ग्रहणाधिकार एवं मार्ग में माल रोकने के अधिकारों में क्या अन्तर होता है ? विक्रेता वस्तुओं का पुनः विक्रय कब कर सकता है ?
Distinguish between unpaid seller's lien and his rights of stopped of goods in transit when can the seller re-sell the goods ?
(राज. वि. वि 1978, 80, 81, 82 जोधपुर वि. वि. 1976)

5. अदत्त विक्रेता से क्या आशय है ? एक अदत्त विक्रेता के अधिकारों को स्पष्ट कीजिये।
What is meant by 'unpaid seller' ? Explain the rights of an unpaid seller.

6. अनुबन्ध भंग करने की दशा में क्रेता तथा विक्रेता के अधिकार बताइये।
Discu s the rights of seller and buyer in case of breach of contract. (राज. वि. वि. 1982 पूरक)

7. नीलाम द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिये।
Discuss the legal provisions related to the auction sale.
(राज वि वि. पूरक 1981)
(जोधपुर वि. वि. 1977, 1985)

□□□

यूनिट 4 पर चुने हुए व्यावहारिक प्रश्न तथा उनका हल

शर्तें एवं आश्वासन

1. हेमकान्त ने राधेश्याम से उसके द्वारा प्रदत्त नमूने के अनुरूप ययूवा चीनी बेचने का अनुबन्ध किया। सुपुर्दगी की चीनी नमूने के अनुरूप थी किन्तु ययूवा चीनी नही थी। राधेश्याम के पास क्या उपचार है?

समस्या का हल

विवाद के महत्वपूर्ण तथ्य

(i) हेमकान्त ने राधेश्याम को चीनी बेचने का अनुबन्ध किया जिसका राधेश्याम को नमूना भी दिखा दिया।

(ii) हेमकान्त ने राधेश्याम को चीनी की सुपुर्दगी कर दी।

(iii) चीनी नमूने के अनुसार थी लेकिन ययूवा चीनी नही थी।

(iv) राधेश्याम के हेमकान्त के विरुद्ध क्या उपचार है यह निश्चित करना है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 15 के अनुसार यदि माल नमूने तथा वर्णन दोनों के द्वारा ही बेचा गया हो तो यह पर्याप्त नही है कि माल नमूने के अनुसार मेल खाये। इसमें यह गर्भित शर्त है कि माल नमूने तथा वर्णन दोनो के अनुसार ही हो।

निर्णय—(i) हेमकान्त ने गर्भित शर्त को भंग किया है क्योंकि हेमकान्त ने जो चीनी राधेश्याम को दी है वह नमूने के अनुसार तो थी परन्तु विवरण के अनुसार नहीं थी।

(ii) राधेश्याम के पास दो उपचार हैं—

(क) राधेश्याम चीनी को अस्वीकार कर सकता है तथा हेमकान्त के विरुद्ध अनुबन्ध-भंग के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ख) राधेश्याम इसे गर्भित आश्वासन-भंग मान कर हेमकान्त पर हर्ज़ाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण

2. सीताराम राधेश्याम की गाय 1,000 रुपये मे क्रय करने का अनुबन्ध करता है। गाय की सुपुर्दगी से पूर्व गाय मर जाती है। इस हानि के लिए कौन दायी है?

समस्या का हल

विवाद के महत्त्वपूर्ण तथ्य

(1) सीताराम ने राधेश्याम की गाय 1,000 रुपये में खरीदने का प्रस्ताव किया।
(2) राधेश्याम ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।
(3) गाय सुपुर्दगी होने से पूर्व मर जाती है।
(4) इस हानि को कौन वहन करेगा यह निश्चित करना।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 20 के अनुसार जब विक्रय किसी निश्चित माल के लिए है जो कि सुपुर्दगी योग्य स्थिति मे है तो क्रेता को माल का स्वामित्व उसी समय हस्तान्तरित हुआ माना जाता है। जब अनुबन्ध किया जाता है। मूल्य चुकाने तथा सुपुर्दगी देने का समय महत्त्वहीन है।

निर्णय—प्रस्तुत समस्या मे जिस समय गाय के विक्रय का अनुबन्ध हुआ गाय सुपुर्दगी योग्य स्थिति में थी। अतः स्वामित्व का हस्तान्तरण उसी समय हुआ माना जावेगा जिस समय वह अनुबन्ध हुआ है। अतः गाय की मृत्यु से होने वाली हानि सीताराम की ही होगी।

3. सोहन, मोहन को पसन्द या वापसी पर कुछ आभूषण देता है। पसन्द न आने पर आभूषण लौटाने का कोई समय निश्चित नही है। मोहन अपनी पसन्दगी या स्वीकृति की सहमति प्रकट किये बिना आभूषण अपने पास रोक रखता है। एक माह उपरान्त आभूषण चोरी हो जाते है। क्या सोहन, मोहन से आभूषण का मूल्य वसूल कर सकता है।

समस्या का हल

विवाद के महत्त्वपूर्ण तथ्य

(1) सोहन, मोहन को पसन्दगी की शर्त पर कुछ आभूषण देता है।
(2) पसन्द न आने पर आभूषण लौटाने का कोई समय निश्चित नही है।
(3) मोहन स्वीकृति की सूचना दिये बिना ही आभूषण अपने पास रोक लेता है।
(4) एक माह बाद मोहन के मकान से आभूषण चोरी चले जाते हैं।
(5) क्या सोहन आभूषण के मूल्य के लिए मोहन पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

धारा 24 के अनुसार प्रस्तुत समस्या का समाधान स्वतः ही हो जाता है। इसमें मोहन ने पसन्दगी की शर्त पर आभूषण प्राप्त किया तथा उचित समय व्यतीत होने के बाद भी उन्हें बिना अस्वीकृति की सूचना दिये, अपने पास रोके रखा। इसका आशय यह हुआ कि उन आभूषणों का स्वामित्व मोहन को हस्तान्तरित हुआ माना जायेगा। अतः सोहन, मोहन से मूल्य वसूल कर सकता है।

4. राम श्याम से विशिष्ट माल खरीदने का आदेश देता है। श्याम ने आदेशित माल के साथ-साथ अन्य माल भी भेज देता है। राम को क्या करना चाहिए।

समस्या का हल

विवाद के महत्वपूर्ण तथ्य

(1) राम, श्याम को कुछ निर्दिष्ट माल भेजने का आदेश देता है।

(2) श्याम ने आदेश के अनुसार माल भेजा लेकिन माल में कुछ माल आदेश से भिन्न है।

(3) राम को क्या करना चाहिए।

सम्बन्धित नियम एवं निर्णय

भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 37 (3) के अनुसार गलत माल की सुपुर्दगी होने की दशा में क्रेता आदेशित माल को स्वीकार करके शेष को अस्वीकार कर सकता है अथवा समस्त माल को अस्वीकार कर सकता है।

5. 1-1-84 को मनमोहन, श्याममोहन को 5,000 रुपये का माल बेचता है जिसके लिए श्याममोहन 2,500 रुपये नकद देता है और शेष राशि का एक प्रतिज्ञा-पत्र देता है। 15-1-1984 को जब माल मनमोहन के अधिकार में है—श्याममोहन दिवालिया हो जाता है। माल के सम्बन्ध में मनमोहन के क्या अधिकार हैं।

समस्या का हल

विवाद के महत्वपूर्ण तथ्य

(1) 1-1-84 को मनमोहन, श्याममोहन को माल बेचता है।
(2) श्याममोहन 2,500 रुपये नकद देता है।
(3) श्याममोहन दिवालिया हो जाता है।
(4) माल मनमोहन के अधिकार मे है।
(5) माल के सम्बन्ध मे मनमोहन के क्या अधिकार हैं।

(i) माल पर मनमोहन का अधिकार है इसलिए मनमोहन को माल पर ग्रहणाधिकार प्राप्त है।

(ii) मनमोहन माल को तब तक रोक कर रख सकता है, जब तक कि श्याममोहन माल का मूल्य नही देता है।

(iii) मनमोहन जो कि अदत्त विक्रेता है, यदि चाहे तो उचित सूचना देकर माल का पुनः विक्रय भी कर सकता है।

पंच-निर्णय-अधिनियम
(Arbitration Act)

विषय-वस्तु—पंच-निर्णय, करार की परिभाषा, विशेषताएँ, विषय को पंच-निर्णय के लिए कौन प्रस्तुत कर सकता है ? पंच-निर्णय की विषय वस्तु, पंच-निर्णय के लिए किन विषयों को प्रस्तुत नही किया जा सकता है ? प्रस्तुतीकरण से आशय, पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत करने की विधियाँ, पंच व मध्यस्थ की नियुक्ति, पंच या मध्यस्थ के अधिकार पंचों, अथवा मध्यस्थों के कर्त्तव्य, पंच को अपने पद से हटाना, पंचों के अधिकारों को निरस्त करना, परि-निर्णय का आशय, वैध परि-निर्णय के आवश्यक तत्त्व, परि-निर्णय को प्रस्तुत करना, परि-निर्णय के सम्बन्ध मे न्यायालय के अधिकार ।

परिचय
(Introduction)

साधारण व्यापारिक क्रियाओं के सम्बन्ध में दो पक्षकारों के मध्य किसी विषय पर आपसी विवाद हो जाने पर न्यायालय में न्याय की प्रार्थना करना सरल व सस्ता नही है । ऐसी दशा मे पक्षकार आपसी पारस्परिक विवाद को पंच-निर्णय द्वारा दूर कर सकते हैं ।

पंच-निर्णय सम्बन्धी अधिनियम सबसे पहले सन् 1899 में व्यवस्थापित किया गया । इसमें जो कमी रह गयी थी उसकी पूर्ति भिन्न-भिन्न हाईकोर्टों के नियमों द्वारा की गयी । सन् 1940 मे इन सबको रद्द करके एक नया पंच-निर्णय अधिनियम पास किया गया । यह जम्मू और कश्मीर को छोड कर समस्त भारत में लागू होता है । यह अधिनियम भारत मे 1 जुलाई, 1940 से लागू किया गया ।

परिभाषा
(Definition)

पंच-निर्णय अधिनियम में निम्न कुछ परिभाषाएँ दी गयी हैं—

(1) पंच-निर्णय करार (Arbitration agreement)–भारतीय पंच-निर्णय अधिनियम की धारा 2 (a) के अनुसार, "पंच-निर्णय करार का आशय उस लिखित करार से है जिसके अनुसार वर्तमान या भावी विवाद को पंच-निर्णय के समक्ष प्रस्तुत करते हैं चाहे उसमें पंच का नाम लिखा गया है अथवा नही।"[1]

---

1. "Arbitration agreement" means a written agreement to submit Present or Future difference to arbitration. whether an arbitrator is named therein or not." Indian Arbitration Act 1899 [Sec. 2 (a)]

पंच-निर्णय करार की विशेषताएँ
(Characteristics of Arbitration Agreement)

एक पंच-निर्णय करार के निम्नलिखित मुख्य लक्षण हैं :—

पंच निर्णय करार की विशेषताएँ
1. लिखित में होना आवश्यक ।
2. वर्तमान या भावी विवाद का होना।
3. हस्ताक्षर आवश्यक नहीं है ।
4. पंच का नाम लिखना आवश्यक नहीं है ।
5. वैध अनुबन्धों से सम्बन्धित मतभेद ।
6. प्रतिफल आवश्यक नहीं है ।
7. किसी अन्य व्यक्ति से निपटारा करवाना ।
8. भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध होनी चाहिए ।
9. पक्षकारों का अभिप्राय परि-निर्णय को स्वीकार करना हो ।
10. केवल दीवानी मामले ही पंच-निर्णय की विषय-वस्तु ।

(1) पंच-निर्णय का करार लिखित में होना आवश्यक है (Written agreement)—पंच-निर्णय के करार का लिखित में होना आवश्यक है। मौखिक करार पंच-निर्णय करार नहीं माना जा सकता है उन्हें पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

(2) वर्तमान या भावी विवाद का होना (Present or future dispute)—पंच-निर्णय करार के लिए पक्षकारों में किसी मतभेद का होना आवश्यक है। मतभेद वर्तमान या भावी हो सकता है। वर्तमान मतभेद के लिए पंच-निर्णय करार निर्देश की भाँति होता है। यदि भावी मतभेदों या विवादों के सम्बन्ध में पंच-निर्णय करार किया जाता है तो इसको पंच-निर्णय वाक्य (Arbitration clause) माना जाता है।

(3) हस्ताक्षर आवश्यक नहीं है—विवादों को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत करने के करार पर एक पक्षकार या दोनों पक्षकारों के हस्ताक्षर हों, यह आवश्यक नहीं है ऐसा करार लिखित हो यही पर्याप्त है और इस बात को सिद्ध कर दिया जाये कि इस करार के प्रति पक्षकारों ने सहमति प्रदान कर दी थी।

(4) पंच-निर्णय करार में पंच का नाम लिखना आवश्यक नहीं है—भारतीय पंच-निर्णय अधिनियम की धारा 2 (a) में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि ऐसे करार में पंच का नाम यदि चाहें तो दे सकते हैं किन्तु नाम देना अनिवार्य नहीं है।

(5) केवल वैध अनुबन्धों से सम्बन्धित मतभेद ही पंच-निर्णय के समक्ष रखे जा सकते हैं—पंच-निर्णय के लिए अवैधानिक व्यवहारों से सम्बन्धित विवाद प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं।

(6) पंच-निर्णय करार में प्रतिफल आवश्यक नहीं है—पंच-निर्णय के करार में प्रतिफल का विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। पंच-निर्णय के पक्षकारों की सहमति ही पंच-निर्णय करार का प्रतिफल माना जाता है।

(7) किसी अन्य व्यक्ति से निपटारा करवाना—किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी विवाद का निपटारा करवाने का करार पंच-निर्णय का करार होता है।

(8) भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध होनी चाहिए—पंच-निर्णय करार की भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध होनी चाहिये जिससे यह जाना जा सके कि मतभेद क्या हैं अथवा पक्षकारों ने क्या चीज पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत की है।

(9) पक्षकारों का अभिप्राय पंच-निर्णय करार करते समय यह होना चाहिये कि वे परि-निर्णय को स्वीकार करेंगे।

(10) केवल दीवानी मामले ही पंच-निर्णय के समक्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं फौजदारी के मामले पंच-निर्णय की सीमा के बाहर हैं।

(11) पंच-निर्णय करार के लिए पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता, स्वतन्त्र सहमति, न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य आदि एक वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण होने चाहियें।

पंच-निर्णय के लिए विषय कौन प्रस्तुत कर सकता है ?

(Who may refer to arbitration)

निम्नलिखित व्यक्ति किसी भी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं :—

पंच निर्णय के लिए विषय कौन प्रस्तुत कर सकता है ?
1. अनुबन्ध की क्षमता रखने वाले पक्षकार
2. एजेन्ट
3 साझेदार
4. राजकीय प्रापक
5. कम्पनी
6. किसी संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्ता
7. किसी हिन्दू परिवार की विधवा स्त्री
8. वकील या एडवोकेट
9. निगम

(1) अनुबन्ध करने की क्षमता रखने वाले पक्षकार (Parties Competent to contract)—केवल वह व्यक्ति पंच-निर्णय के लिए निर्देश कर सकता है जो अनुबन्ध करने की क्षमता रखता हो। पागल व्यक्ति तथा अवयस्क पंच-निर्णय के लिए निर्देश नहीं कर सकते हैं इसका कारण अनुबन्ध करने की क्षमता न होना है किन्तु अवयस्क तथा पागल व्यक्ति का संरक्षक निर्देश कर सकता है बशर्ते वह सद्विश्वास व उनके लाभों के लिए ऐसा करे।

(2) एजेन्ट (Agent)—यदि किसी एजेन्ट को अपने नियोक्ता द्वारा ऐसा लिखित या गर्भित अधिकार है तो वह विषय पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है। एजेन्ट को विषय पंच-निर्णय के लिए नियोक्ता के नाम में ही प्रस्तुत करना चाहिये अन्यथा वह उस पर व्यक्तिगत रूप से दायी होगा।

(3) साझेदार (Partner)—कोई साझेदार अन्य साझेदारों की सम्मति से विषय को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है। एक साझेदार के गर्भित अधिकारों में पंच निर्णय के लिए प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होता है।

(4) राजकीय प्रापक (Official Receiver)—यदि कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित हो तो एक राजकीय प्रापक न्यायालय की अनुमति से दिवालिया सम्बन्धी मुकदमें को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(5) कम्पनी (Company)—कम्पनी एक कृत्रिम व वैधानिक व्यक्ति है अतः कम्पनी भी अपने तथा किसी अन्य व्यक्ति के मध्य विवाद उत्पन्न हो जाने पर पंच-निर्णय के लिए सौंपने का लिखित करार कर सकती है।

(6) किसी संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्त्ता—किसी संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्त्ता किसी विषय को सद्विश्वास के साथ या परिवार के हित के लिए पंच-निर्णय के विषय को प्रस्तुत कर सकता है।

(7) किसी हिन्दू परिवार की विधवा स्त्री—किसी हिन्दू परिवार की विधवा स्त्री निष्कपट भाव से तथा विश्वास के साथ विषय को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकती है और पंच के निर्णय से उसकी सम्पत्ति के हकदार बाध्य होंगे।

(8) वकील या एडवोकेट (Advocate)—कोई भी वकील मुवक्किल का विवाद उसकी प्रकट सम्मति से निर्णय के लिए पंच के पास प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु एक वकील किसी भी विवाद को अपने मुवक्किल की सम्मति के बिना पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

(9) निगम (Corporation)—वैधानिक व्यवस्थाओं के अधीन निगम अपने विवादों को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(10) पंच-निर्णय की विषय-वस्तु—वैधानिक व्यवस्थाओं के अधीन निगम अपने विवादों को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

पंच-निर्णय की विषय-वस्तु
(Subject matter of arbitration)

पंच-निर्णय की विषय-वस्तु निम्न प्रकार है :—

(1) साधारणतः वे सभी बातें जो किसी अनुबन्ध की विषय-वस्तु हो सकती है, पंच-निर्णय के लिए निर्देशित की जा सकती हैं।

(2) ऐसे सभी विषय या विवाद जो कि नागरिक या अर्द्ध-नागरिक प्रकृति के हैं और जो न्यायालय में विचाराधीन हैं, पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(3) वैवाहिक विवाद पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(4) सम्मान तथा प्रतिष्ठा के विवाद भी पंच-निर्णय की विषय-वस्तु होते हैं।

(5) दिवालिया व्यक्ति और उसके ऋणदाताओं के बीच चल रहे विवाद को केवल राजकीय प्रापक द्वारा पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

(6) ऐसे ऋण जो परिसीमन (लिमिटेशन) अधिनियम के प्रभाव से समय-व्याधित हैं विशेष दशाओं में पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(7) आपस में बँटवारों या पृथक्करण के विवाद भी पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पंच-निर्णय के लिए किन विषयों को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है ?
(Matters Can not be referred)

पंच-निर्णय के लिए निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित मामले नहीं सौंपे जा सकते हैं :—

(1) अपराध पूर्ण तथा दण्डनीय विषय पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं।

(2) प्रबंध व्यवहारो से सम्बन्धित विवाद भी पंच-निर्णय को प्रस्तुत नही किये जा सकते हैं ।

(3) दिवालिया सम्बन्धी कार्यवाही पंच निर्णय को प्रस्तुत नही की जा सकती ।

(4) तलाक सम्बन्धी मामले को भी पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नही किया जा सकता ।

(5) सार्वजनिक दान धन पर ट्रस्टी या पद ग्रहण करने के लिए यदि झगड़ा हो, तो ऐसे मतभेद के विषय भी पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नही किये जा सकते ।

(6) दाम्पत्याधिकार के झगड़ों का निपटारा पंचो द्वारा नही कराया जा सकता है ।

(7) वसीयत की वैधता सम्बन्धी सभी विवाद पंच-निर्णय के समक्ष प्रस्तुत नही किये जा सकते है।

(8) पागलपन की कार्यवाही भी पंच-निर्णय का विषय नही हो सकती, क्योंकि पागल के संरक्षण का विशेषाधिकार सरकार को प्राप्त है ।

(9) एक अवयस्क के संरक्षक की नियुक्ति से सम्बन्धित मामले भी पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नही किये जा सकते है ।

(10) मृत्यु लेख (death will) सम्बन्धी कार्यवाही भी पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नहीं की जा सकती ।

(11) कुर्की के सम्बन्धित मामले भी नही आते है ।

पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत करने के ढंग
(Modes of Submission)

प्रस्तुतिकरण से आशय (Meaning of Submission)

वर्तमान अथवा भावी मतभेदों को पंच-निर्णय के प्रस्तुत करने के लिखित करार को ही प्रस्तुतीकरण कहा जाता है ।

पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत करने की विधियाँ
(Methods of Submission)

पंच-निर्णय अधिनियम 1940 के अनुसार किसी विवाद को निम्नलिखित रीतियों मे से किसी भी रीति से प्रस्तुत किया जा सकता है :—

(1) बिना न्यायालय के हस्तक्षेप पंच निर्णय (Arbitrations without intervention of court)—ऐसी दशा में पंच-निर्णय विवाद के पक्षकारों के परस्पर करार द्वारा, न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना ही होता है । इस विधि के अन्तर्गत विवाद के पक्षकारों द्वारा ही पंचों की नियुक्ति की जाती है पंच न्यायालय के द्वारा नियुक्त नहीं किये जाते हैं परन्तु ऐसी दशा में भी परि-निर्णय को प्रवर्तनीय कराने के लिए न्यायालय की सहायता ली जा सकती है ।

न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना पंच-निर्णय करार में निम्नलिखित गर्भित बातें मानी जाती हैं :—

पंच-निर्णय करार की गर्भित शर्तें

पंच-निर्णय अधिनियम 1940 की धारा 3 के अनुसार, एक पंच-निर्णय करार में, जब तक कि उसमें कोई भिन्न आशय प्रकट नहीं किया गया है तो निम्न शर्तों को समाविष्ट करने वाला समझा जायेगा :—

(क) यदि स्पष्ट रूप से इसके विपरीत नहीं दिया गया है तो पंच-निर्णय सम्बन्धी निर्देश केवल एक ही पंच को दिया जायेगा।

(ख) निर्देश के पंचों की संख्या सम होने की दशा में तो वे पंच अपनी नियुक्ति की अन्तिम तिथि के एक माह के भीतर पर एक मध्यस्थ नियुक्त करेंगे। मध्यस्थ ऐसा व्यक्ति होता है जो पंचों में मतभेद होने पर अपना निर्णय देगा जो अन्तिम माना जायेगा।

(ग) पंचों को चाहिए कि निर्देश की प्राप्ति के बाद 4 माह के अन्तर्गत या न्यायालय द्वारा उक्त समय में वृद्धि कर देने पर बढ़े समय के अन्दर अपना फैसला अवश्य दे दें।

(घ) यदि पंच निर्धारित समय में परि-निर्णय नहीं देते या वे पंच-निर्णय करार के किसी पक्षकार को या समस्त पक्षकारों को लिखित सूचना दे देते कि वे एकमत नही हो सकते तो उस समय से पंचों के स्थान पर मध्यस्थ ही उस निर्देश के सम्बन्ध में विचार करेगा।

(ङ) मध्यस्थ को चाहिए कि वह विवाद पर विचार करने के लिए प्रवेश होने के दिन से दो महीने के अन्दर या न्यायालय द्वारा बढ़ाई गयी अवधि के अन्दर अपना फैसला अवश्य दे दे।

(च) निर्देश के पक्षकार तथा समस्त पक्षकार तथा उनके अन्तर्गत सभी दावेदार व्यक्ति पंचों या मध्यस्थ के सम्मुख परीक्षा के लिए उपस्थित होंगे तथा माँग करने पर अपने पास रखे हुए लेखों तथा दस्तावेजों को प्रस्तुत करेंगे।

(छ) पंचों या मध्यस्थ द्वारा दिया गया परि-निर्णय अन्तिम फैसला समझा जायेगा व पक्षकारों पर बाध्य होगा।

(ज) निर्देश तथा परि-निर्णय सम्बन्धी व्यय पक्षकारों द्वारा पंचों के आदेशानुसार देने होंगे।

(झ) परि-निर्णय का लिखित होना व पंचों द्वारा हस्तान्तरित होना अनिवार्य है।

(2) न्यायालय के हस्तक्षेप से पंच-निर्णय जब कोई वाद चालू नहीं है (Arbitration with intervention of a court when there is no suit pending)— न्यायालय के समक्ष विचार करने के लिए किसी वाद को प्रस्तुत करने के पहले पंच-निर्णय के लिए कोई करार किया है तो कोई भी या सभी पक्षकार न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है कि करार न्यायालय में प्रस्तुत किया जावे। ऐसी स्थिति में पंच-निर्णय इस रीति के अनुसार होगा।

आवश्यक नियम इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हैं :—

(1) न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने के पूर्व यदि पक्षकारों ने किसी विषय को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत करने का करार किया है और इस करार के सम्बन्ध में

पक्षकारों में मतभेद उत्पन्न हो गया है तो ऐसी दशा में कोई भी पक्षकार न्यायालय में निवेदन कर सकता है कि न्यायालय में करार प्रस्तुत किया जाये। इसी परिस्थिति में *न्यायालय द्वारा बतलाई गई रीति के अनुसार पंच-निर्णय होगा।*

(2) एक वाद के रूप में यह प्रार्थना-पत्र लिखित होगा तथा इसकी रजिस्ट्री भी होगी।

(3) न्यायालय में ऐसा प्रार्थना-पत्र प्राप्त करने के पश्चात् प्रार्थी के अतिरिक्त समस्त पक्षकारों को इसकी सूचना देगा और न्यायालय पक्षकारों से यह कारण पूछेगा कि पंच-निर्णय न्यायालय मे क्यों प्रस्तुत किया जाये।

(4) न्यायालय यदि इसके लिए उपयुक्त कारण प्राप्त नहीं तो करार को प्रस्तुत करने के लिए आदेश देगा तथा पक्षकारों द्वारा नियुक्त पंचों को निर्देश देगा। यदि पंचों की नियुक्ति से पक्षकार सहमत नही हैं तो न्यायालय द्वारा नियुक्त पंच को निर्देश की आज्ञा दी जायेगी।

(5) पंच-निर्णय सम्बन्धी कार्यवाही इसके उपरान्त इस अधिनियम की सम्बन्धित धाराओं के अनुसार शुरू होगी।

(3) पंच-निर्णय जब कि वाद न्यायालय में चालू है *(Arbitration in suits)*—पक्षकारों के मध्य कोई वाद यदि न्यायालय में चालू है तो समस्त पक्षकार इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि वाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर दिया जाय। न्यायालय का निर्णय घोषित होने से पहले किसी भी समय न्यायालय से ऐसे निर्देश के लिए उन पंचों को सौंप देता है पक्षकार जिन्हें नियुक्त करते हैं। वाद पंचों को सौंपने के बाद न्यायालय उस पर विचार करना छोड़ देता है।

(1) जब किसी वाद से सम्बन्धित सभी पक्षकार यह करार करते हैं कि उनके बीच मुकदमें का कोई भी विवादग्रस्त विषय पंच-निर्णय के लिए निर्देशित किया जाये तो वे न्यायालय के निर्णय होने से पूर्व किसी भी समय न्यायालय से ऐसे निर्देश की आज्ञा के लिए आवेदन कर सकते हैं। (धारा 21)

(2) पंच की नियुक्ति उस ढंग से होगी जैसा कि पक्षकारों मे तय हो जाये। (धारा 22)

(3) न्यायालय अपनी आज्ञा द्वारा पंच को ऐसे मतभेद का विषय निर्देशित कर देगा जो कि उसको तय करना है, और ऐसा समय निर्दिष्ट कर देगा जो कि वह परिनिर्णय देने के लिए उचित समझता है। न्यायालय वाद में उस विषय पर विचार नही करेगा। (धारा 23)

(4) इसके उपरान्त इस अधिनियम की अन्य व्यवस्थाएँ जहाँ तक कि वे सम्बन्धित हो सकती हैं इस प्रकार पंच-निर्णय के सम्बन्ध में भी लागू होंगी। (धारा 25)

(4) किसी अन्य राजनियम के अन्तर्गत पंच-निर्णय (Arbitration under other acts)—विवादों के निवटारे के लिए कुछ राजनियम पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुति आवश्यक करते हैं। जैसे प्रान्तीय दिवाला अधिनियम 1920, सरकारी समितियाँ अधिनियम आदि के अन्तर्गत कुछ विशेष विवादों को पंच-निर्णय द्वारा तय कराना आवश्यक है।

पंच से आशय
(Meaning of Arbitrator)

पंच उस व्यक्ति को कहते हैं जिसे दो से अधिक पक्षकार आपस के समझौते द्वारा आपसी विवाद को निपटाने के लिए नियुक्त करते है ।

भारतीय पंच-निर्णय अधिनियम 1940 के अनुसार, "वह व्यक्ति पंच कहलाता है जिसे दो या अधिक पक्षकारो के बीच उपस्थित होने वाले विवादों के सम्बन्ध में पूरी छानबीन करने के बाद विवाद निपटाने के उद्देश्य से निम्न रूप से निर्णय देने के लिए नियुक्त किया जाता है ।

मध्यस्थ
(Umpire)

जब पंचों की नियुक्ति सम संख्या (2, 4, 6, आदि) में की जाय, और करार में यदि यह व्यवस्था हो, तो नियुक्त पच अपनी नियुक्ति के एक महीने के अन्दर एक मध्यस्थ नियुक्त करते हैं । मध्यस्थ पंचो के परस्पर मतभेद होने की स्थिति में अपना निर्णायक मत देता है ।

पंच तथा मध्यस्थ की योग्यता

कोई भी व्यक्ति चाहे वह अनुबन्ध करने की क्षमता रखता हो या नही पंच के रूप मे नियुक्त किया जा सकता है किन्तु निम्नांकित व्यक्ति पच नियुक्त नही हो सकते :—

(i) विवाद में व्यक्तिगत हित रखने वाला व्यक्ति ?

(ii) विवाद के किसी पक्षकार से द्वेष रखने वाला व्यक्ति ?

(iii) जिस व्यक्ति की ईमानदारी सदेहात्मक हो आदि ?

पंच तथा मध्यस्थ की नियुक्ति
(Appointment of an Arbitrator or an umpire)

पंचों अथवा मध्यस्थों की नियुक्ति निम्नलिखित विधियों से होती हैं :—

(1) पक्षकारों द्वारा (By Parties)—इस विधि के अनुसार विवाद के पक्षकार स्वयं ही आपसी करार द्वारा पंचों को नियुक्त करते हैं ।

(अ) दो पंचों की नियुक्ति (Appointment of two arbitrators)—करार में यदि यह व्यवस्था है कि दो पचों की नियुक्ति की जानी है जिसमें प्रत्येक पक्षकार द्वारा एक-एक पंच नियुक्त किया जाता है जब तक करार से कोई विपरीत आशय प्रकट न हो :—

(क) नियुक्त किये गये पंचों में से यदि कोई एक

(अ) कार्य करने मे उपेक्षा करता है या

(ब) कार्य करने से मना करता है या

(स) कार्य करने के अयोग्य है या

(द) मर जाता है तो इस पंच को नियुक्त करने वाला पक्षकार व दूसरे पक्षकार इसके स्थान पर एक नया पंच नियुक्त कर सकते हैं ।

(ii) यदि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार द्वारा पंच नियुक्त करने की लिखित सूचना देने के 15 दिन मे पंच की नियुक्ति नही करता तो वह पक्षकार जिसने ऐसी सूचना देने से पहले अपना पंच नियुक्त कर दिया है, उसे एकल पंच के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर सकता है। दोनों ही पक्षकार इस पंच के परिनिर्णय द्वारा उसी प्रकार बाध्य होंगे जैसे कि वह सहमति से नियुक्त किया गया था।

न्यायालय एकल पंच की नियुक्ति को अस्वीकार कर सकता है तथा पर्याप्त कारण के आधार पर या तो त्रुटि करने वाले पक्षकार को एक पंच नियुक्त करने की आज्ञा दे सकता है या अन्य कोई भी आदेश जो न्यायालय उचित समझे, दे सकता है।

(ब) तीन या अधिक पंचों की नियुक्ति (Appointment of three or more arbitrations)—

(i) जब करार में यह व्यवस्था है कि निर्देश या प्रस्तुति तीन पचो की जायेगी और तीन पंचों में से दोनों पक्षकारो को एक-एक पच नियुक्त करना हो तथा एक पंच दोनो पंचों द्वारा नियुक्त किया जाना है तो पचों द्वारा तीसरा पंच मध्यस्थ ही कहलाता है।

(ii) यदि करार में यह व्यवस्था है कि निर्देश तीन पंचों का होगा जिनकी नियुक्ति उपर्युक्त विधि के अनुसार नही करके अन्य प्रकार से होगी तो यदि पंच-निर्णय करार में कोई विपरीत आशय प्रकट न हो तो बहुमत द्वारा दिया गया निर्णय मान्य होगा।

(iii) पंच-निर्णय करार में यदि तीन से अधिक पंचों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है तो बहुमत का निर्णय मान्य होगा अथवा यदि पंच अपनी राय मे बराबर-बराबर बँट जाते हैं तो मध्यस्थ का परिनिर्णय मान्य होगा जब तक पंच-निर्णय करार में कोई विपरीत आशय प्रकट नहीं।

(2) तीसरे पक्ष द्वारा नियुक्ति (By third party)—किसी पंच-निर्णय करार के पक्षकार यह करार कर सकते हैं कि पंच अथवा पंचों की नियुक्ति किसी तृतीय पक्षकार द्वारा होगी जिसका नाम व पद करार में दिया जा सकता है।

उदाहरण—विश्वविद्यालय के किसी विभाग मे दो प्रोफेसरों अ और ब में कोई विवाद उत्पन्न होता है। वे उस विवाद को किसी पच-निर्णय के लिए प्रस्तुत करने का करार करते हैं और करार में यह व्यवस्था करते है कि पंच की नियुक्ति विभागाध्यक्ष द्वारा की जायेगी तो यहाँ पर पंच की नियुक्ति तीसरे पक्षकार द्वारा हुई मानी जायेगी।

(3) न्यायालय द्वारा नियुक्ति (By Court)—न्यायालय द्वारा निम्नलिखित परिस्थितियों में पंच की नियुक्ति की जा सकती है :—

(i) जब पंच निर्णय करार में यह लिखा हुआ हो कि निर्देश एक या एक से अधिक पंचो के पास प्रस्तुत किया जायेगा तथा नियुक्ति समस्त पक्षकारों की सहमति से की जायेगी और सभी पक्ष नियुक्ति के सम्बन्ध में सहमत नहीं हो या

(ii) जब कोई भी नियुक्त किया हुआ पंच

(अ) काम की उपेक्षा करता हो या

(ब) काम करने से मना करता हो अथवा

(स) काम करने के अयोग्य, या

(द) उसकी मृत्यु हो जाती है और करार के पक्षकारों की इच्छा रिक्त-स्थान की पूर्ति करने की नहीं थी और फिर भी ऐसे पंच या मध्यस्थ के स्थान पर कोई दूसरा पंच या मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया गया हो।

(11) जब पक्षकारों या पंचो को एक मध्यस्थ नियुक्त करना हो परन्तु वे उसकी नियुक्ति की सूचना पाने के 15 दिन के अन्दर मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं करते हैं तो न्यायालय इसकी नियुक्ति कर सकता है।

पंच या मध्यस्थ के अधिकार
(Powers of arbitrator or umpire)

(1) पक्षकारों तथा गवाहों को शपथ दिलाना

(2) न्यायालय की राय जानने के लिये कोई कानूनी प्रश्नों को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करना।

(3) पंच-निर्णय को शर्त वाला या वैकल्पिक बनाना।

(4) परि-निर्णय की किसी लेखे की त्रुटि या आकस्मिक भूल में सुधार करना व उसको ठीक करना।

(5) पच-निर्णय सम्बन्धी आवश्यक प्रश्नों को किसी पक्षकार से पूछना।

(6) अन्तरिम परिनिर्णय देने का अधिकार।

(7) निर्देश या निर्णय के लिए किये गये व्ययों का निर्णय देना।

(8) पंच-निर्णय करार के पक्षकारों के कानूनी उत्तराधिकारी या कानूनी प्रतिनिधि निश्चित करना।

(9) साझेदारी के अवसान का आदेश देना।

(10) कानूनी सलाह के लिए वकील नियुक्त करना।

पंचों अथवा मध्यस्थों के कर्त्तव्य
(Duties of arbitrator or umpire)

पंचों या मध्यस्थों के निम्नलिखित कर्त्तव्य होते हैं :—

(1) न्यायपूर्ण कार्य करना (To act Judicially)—जिस प्रकार अदालत में झगड़ों का फैसला होता है उसी प्रकार पंचों को भी निर्णय करना चाहिये। प्रत्येक पक्षकार को विवाद की सुनवाई के लिए स्थान तथा समय-सम्बद्ध सूचना देनी चाहिये। सूचना की कमी होने से यह गैर-कानूनी होता है।

(2) निष्पक्ष भाव से कार्य करना (To act unpartially)—दोनों पक्षों के प्रति पंचों को निष्पक्षता से कार्य करना चाहिये। पंचों को किसी एक पक्षकार के प्रति झुकाव नहीं रखना चाहिये। एक पक्षकार की ओर से मिली गवाही को पंच दूसरे पक्षकार को न बताये ताकि दूसरा पक्षकार भी उसका ठीक उत्तर दे सके।

(3) वकील नियुक्त करने का अवसर देना (To give opportunity to oppoint a pleader)—अपनी सुविधा एवं अपने पक्ष को ठीक प्रकार से प्रस्तुत करने के लिए पक्षकारों द्वारा वकील की नियुक्ति की जा सकती है। जब एक पक्षकार अपने

विवाद का प्रतिनिधित्व किसी वकील के द्वारा करता है तो पंच का कर्त्तव्य होता है वह दूसरे पक्षकार को भी माँग करने पर वकील नियुक्त करने का मौका दे।

(4) सभी विवादास्पद विषयों का फैसला करना (To decide all the disputed matter)—सभी विवादास्पद विषयों के सम्बन्ध में पूर्ण तथा अन्तिम परि-निर्णय देना पंचों का कर्त्तव्य है।

(5) स्वयं व्यक्तिगत रूप से कार्य करना (To act himself)—पंच को चाहिये कि वह सभी कार्य स्वयं व्यक्तिगत रूप से करे क्योंकि पंच की नियुक्ति उसकी योग्यता, अनुभव तथा सद्भावना के कारण होती है। ये सभी गुण उसके व्यक्तिगत गुण माने जाते हैं।

(6) अधिकार के बाहर कार्य नहीं करना—पंचों को अपने अधिकार के बाहर कार्य नहीं करना चाहिये यदि पंच अपने अधिकारों के बाहर कार्य करता है तो उसके द्वारा दिये गये परि-निर्णय को निरस्त किया जा सकता है।

(7) किसी पक्षकार के लिए प्रतिनिधि की कार्यवाही न करना (Not to act as agent for any party)—पंच को चाहिये कि वह किसी पक्षकार के लिए, चाहे उसकी नियुक्ति उसी पक्षकार ने की हो उसकी ओर से प्रतिनिधि के रूप मे कार्य नही करना चाहिये।

पंचों अथवा मध्यस्थों के कर्त्तव्य

1. न्यायपूर्ण कार्य करना।
2. निष्पक्ष भाव से कार्य करना
3. वकील नियुक्त करने का अवसर देना
4. सभी विवादास्पद विषयों का फैसला करना।
5. स्वयं व्यक्तिगत रूप से कार्य करना
6. अधिकार के बाहर कार्य नही करना।
7. किसी पक्षकार के लिए प्रतिनिधि की कार्यवाही न करना।
8. विवाद का विषय पंच-निर्णय के क्षेत्र में हो।
9. समस्त कार्यवाही पक्षकारो अथवा उनके वैध प्रतिनिधियों की उपस्थिति मे हो।
10. पंच-निर्णय पर हस्ताक्षर करना।
11. पक्षकारों की सुविधा का ख्याल रखना।
12. न्याय के आधारभूत सिद्धान्तों का पालन करना।
13. पंच-निर्णय की प्रतिनिधि तथा अन्य दस्तावेजों को न्यायालय मे प्रस्तुत करना।
14. शुल्क तथा खर्च की देयता।

(8) विवाद का विषय पंच निर्णय के क्षेत्र में हो—विवाद का विषय पंच-निर्णय क्षेत्र में है या नही यह देखना भी पंच का कर्त्तव्य है। फौजदारी के मामले पंच-निर्णय के क्षेत्र में नहीं आते हैं।

(9) समस्त कार्यवाही पक्षकारों अथवा उनके वैध प्रतिनिधियों की उपस्थिति में ही करना—पंच को चाहिये कि दोनो पक्षकारों की उपस्थिति में ही विवाद की सुनवाई कार्यवाही करे परन्तु जब सूचना देने पर भी कोई पक्षकार उपस्थित नही होता है तो नियमानुसार एक-तरफा निर्णय दे सकता है।

(10) पंच-निर्णय पर हस्ताक्षर करना—पंचों को परिनिर्णय पर हस्ताक्षर भी करना चाहिये। यदि परि-निर्णय पर अपने हस्ताक्षर नहीं करता है तो उस परि-निर्णय का कोई महत्व नहीं होता है।

(11) पक्षकारों की सुविधा का ख्याल रखना—जहाँ तक सम्भव हो पंचों को विवाद की सुनवाई के लिए उचित एवं सुविधाजनक स्थान तथा समय निश्चित करे और सम्बन्धित पक्षकारों को उनकी सूचना भी भेजें।

(12) न्याय के आधारभूत सिद्धान्तों का पालन करना—पंचों को विवाद का निर्णय करते समय न्याय के प्रमुख सिद्धान्तों तथा सन्नियमों का पालन करना चाहिये अतः पंचों को किसी एक पक्षकार की अनुपस्थिति में दूसरे पक्षकार से जानकारी प्राप्त करने, किसी पक्षकार के गवाह से बयान लेने और दूसरे पक्षकार का अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है यदि पंच इस प्रकार का दुराचरण करे तो परि-निर्णय अवैध हो जायेगा।

(13) पंच-निर्णय की प्रतिलिपि तथा अन्य दस्तावेजों को न्यायालय में प्रस्तुत करना– किसी भी पक्षकार की प्रार्थना पर तथा उचित फीस देने पर या यदि न्यायालय ऐसा आदेश करे तो पंचों या मध्यस्थ के साक्षियों के बयान तथा अन्य सम्बन्धित कागज परि-निर्णय के साथ अथवा परि-निर्णय की प्रतिलिपि के साथ न्यायालय में प्रस्तुत कर देना चाहिये।

(14) शुल्क तथा खर्चों की देयता—कौनसा पक्षकार किस अनुपात में शुल्क तथा व्ययों का भुगतान करेगा इसका निर्धारण करना भी पंचों का कार्य है।

पंच को अपने पद से हटाना

निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा पंच-निर्णय के करार के किसी पक्षकार के आवेदन पत्र देने पर किसी भी पंच को अपने पद से हटाया जा सकता है :—

(i) जब विवाद को समझने एव तत्सम्बन्धी कार्यवाही करने या निर्णय देने में उचित शीघ्रता से पंच ने काम न किया हो।

(ii) जब कोई गलत कार्य या कपटपूर्ण कार्य करने के लिए पंच को दोषी पाया गया हो।

इस प्रकार हटाये गये पंच या मध्यस्थ को अपने कार्यों के लिए पारिश्रमिक पाने का अधिकार नही होता है।

पंचों के अधिकारों का प्रतिसंहरण करना
(Revocation of authority)

(1) न्यायालय की आज्ञा बिना प्रतिसंहरण नहीं—पंच-निर्णय करार का आशय जब तक विपरीत न हो पंचों तथा मध्यस्थों के अधिकारों को न्यायालय की अनुमति के बिना प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता। अगर न्यायालय पंचों तथा मध्यस्थ के अधिकारों को समाप्त करता है तो ऐसी स्थिति में न्यायालय को ऐसा करने के उचित आधार बतलाने पड़ेंगे।

(2) पंच निर्णय करार के अन्तर्गत—यदि पंच-निर्णय करार के अन्तर्गत कोई प्रावधान हो तो उसके अन्तर्गत पंचों के अधिकार को निरस्त किया जा सकता है।

निम्नलिखित परिस्थितियों में निरस्त नहीं किया जा सकता है :—

(1) पंच-निर्णय करार के एक पक्षकार की यदि मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में पंचों के अधिकारों में कोई परिवर्तन नहीं होता है और मृतक के वैधानिक उत्तराधिकारी पर भी यह करार लागू होगा।

(2) पंच-निर्णय करार का पक्षकार यदि दिवालिया हो जाता है और सरकारी प्रापक उस करार को स्वीकार कर ले तो उस पर पंच-निर्णय करार लागू होगा।

परि-निर्णय या पंच-निर्णय
(The award)

परि-निर्णय का आशय

परि-निर्णय पंचों द्वारा दिये गये अन्तिम और लिखित निर्णय को कहते हैं। परि-निर्णय को एक फंसले की तरह ही लिखा जाय यह आवश्यक नही है। परि-निर्णय में फंसले की तरह कारण देना आवश्यक नहीं है।

वैध परि-निर्णय के आवश्यक तत्त्व

वैधानिक रूप से अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए एक परि-निर्णय के लिए यह आवश्यक है कि वह निम्नलिखित बातों को पूरा करता हो :—

(1) परि-निर्णय लिखित होना चाहिये केवल मौखिक परि-निर्णय मान्य नही होता है।

(2) परि-निर्णय एक प्रलेख होता है।

(3) परि निर्णय पूर्ण एवं अन्तिम होना चाहिये।

(4) परि-निर्णय समस्त पंचों या मध्यस्थ द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिये। समस्त पंच एक ही समय व एक ही स्थान पर परि-निर्णय पर हस्ताक्षर करें यह भी आवश्यक है।

(5) परि-निर्णय का प्रारूप निश्चित नहीं होने के कारण यह किसी भी रूप में हो सकता है।

(6) परि-निर्णय देते समय सभी पंच उपस्थित हों, यह आवश्यक है अर्थात् परि-निर्णय सभी की उपस्थिति में ही तय किया जाना चाहिये।

(7) परि-निर्णय निपटारे करने के उद्देश्य से सौंपे गये सभी मामलों से सम्बन्धित होना चाहिये।

(8) परि-निर्णय अनिश्चित अर्थ वाला या अस्पष्ट न होकर निश्चित, अर्थ वाला होना चाहिये।

(9) परि निर्णय की सूचना पक्षकारों को दी जानी चाहिए।

(10) परि-निर्णय पूर्ण किये गये अनुबंध का परिणाम होता है, न कि स्वयं कोई अनुबन्ध।

परिनिर्णय को प्रस्तुत करना (Filing of award)

(1) पंचो अथवा मध्यस्थों का कर्तव्य है कि वह उचित समय में परि-निर्णय दें।

(2) जब परि-निर्णय तैयार हो जाता है तो उन्हें उस पर अपना-अपना हस्ताक्षर कर देना चाहिये तथा पक्षकारों को इसकी सूचना देते हैं। परि-निर्णय में उनकी फीस तथा अन्य व्यय का भी उल्लेख होता है।

(3) न्यायालय में प्रस्तुत करना—परि-निर्णय को न्यायालय में प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं है केवल निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय के समक्ष परि-निर्णय प्रस्तुत किया जायेगा।

(1) पक्षकार जब इसके लिए प्रार्थना करें।

(2) पंच जब इसे विशेष मामले के रूप में न्यायालय की सम्मति के लिए प्रस्तुत करना चाहे।

(3) न्यायालय जब आज्ञा दें।

परि-निर्णय के सम्बन्ध में न्यायालय के अधिकार
(Powers of court in connection with the award)

जब न्यायालय में परि-निर्णय प्रस्तुत किया जाता है तो न्यायालय को उस परि-निर्णय के सम्बन्ध मे निम्नलिखित अधिकार होते हैं :—

(1) परि-निर्णय को संशोधित करना (Modification of award) (धारा 15)

(2) परि-निर्णय को पुन: विचार के लिये भेजना (Remission of award) (धारा 16)

(3) परि-निर्णय को निरस्त करना (Setting aside the award) (धारा 30)

(4) परि-निर्णय के अनुसार अपना निर्णय देना (Judgement in terms of award) (धारा 17)

(1) परि-निर्णय को संशोधित करना—परि-निर्णय को न्यायालय अपने आदेश द्वारा निम्नलिखित दशाओं में संशोधित कर सकता है :—

(i) जबकि ऐसा मालूम होता है कि परि-निर्णय का कोई भाग किसी ऐसे विषय से सम्बन्धित है जो पंच-निर्णय के लिए निर्देशित नही किया गया था और वह भाग अन्य भाग से परि-निर्णय पर कोई प्रभाव नही डाले सरलता से अलग किया जा सकता है।

(ii) जबकि परि-निर्णय का प्रारूप अपूर्ण है या उसमें कोई ऐसी स्पष्ट त्रुटि है जिसे बिना परि-निर्णय में परिवर्तन किये संशोधित किया जा सकता है।

(iii) जबकि परि-निर्णय में लिपिक की कोई गलती अथवा आकस्मिक भूल के कारण कोई गलती त्रुटि रह गयी है। (धारा 15)

(2) परि-निर्णय का पुन: विचार के लिए भेजना—निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय फिर से विचार करने के लिए पंच अथवा मध्यस्थ के पास निर्णय को वापस भेज सकता है—

(i) जबकि परि-निर्णय मे निर्देशित विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दिया है अथवा निर्णय मे अनिर्देशित विषय के सम्बन्ध मे कोई

निर्णय नहीं दिया है अथवा निर्णय में अनिर्देशित विषय का निर्णय दिया गया है और इस निर्णय को पृथक करने से निर्देशित विषय के सम्बन्ध में दिये गये निर्णय प्रभावित होते है ।

उदाहरण—राम, श्याम और मोहन संयुक्त परिवार के सदस्य हैं और वे व्यापार करते हैं । एक बार राम ने श्याम और मोहन से पिछले वर्षों का हिसाब-किताब यह कहते हुए मांगा कि यह व्यापार साझेदारी का है सयुक्त परिवार का नही है । व्यापार साझेदारी का है यह तय करने के लिए इन लोगों ने मामले को पचायत में भेजा । राम को हिसाब-किताब देखने का अधिकार है पचों ने फैसला दिया । पर यह नही बतलाया कि व्यापार साझेदारी का है या संयुक्त परिवार का । अत न्यायालय पचो के पास फिर से फैसला देने के लिए वापस कर सकता है ।

(ii) जब परि-निर्णय इतना अनिश्चित हो कि वह कार्यान्वित नही किया जा सकता है ।

उदाहरण—जोगेन्द्र और जर्नादन दो भाई अपने पिता की सम्पत्ति का बंटवारा करते समय विवाद हो गया और उन्होने इस विवाद को पचायत मे भेजा पंचों ने यह फैसला दिया कि नदी के उत्तर मे जितनी भी जमीन है वह जोगेन्द्र ले ले और दक्षिणी की सारी जमीन जर्नादन को दी जाय । फैसला अनिश्चित एवं अस्पष्ट है इसलिए ऐसे फैसले को न्यायालय अधिक निश्चित और सही बनाने के लिए वापस कर सकता है ।

(iii) जब निर्णय को देखने से ही यह साथ विदित हो कि वैधानिक दृष्टि से आपत्ति-जनक मालूम होता है

उपर्युक्त आधारों पर जब न्यायालय किसी परि निर्णय को पुनर्विचार के लिए भेजा जाता है तो न्यायालय पच या मध्यस्थ के निर्णय के लिए समय निश्चित कर देता है और पंचों को निर्णय एक निश्चित अवधि के भीतर ही देना होता है ।

यदि पंचों या मध्यस्थ द्वारा इसको पुनर्विचार करने तथा अपने निर्णय को निर्धारित अवधि के अन्दर देने में असमर्थ रहते हैं तो परि-निर्णय शून्य हो जाता है ।

(3) परि-निर्णय को निरस्त करना—निम्नलिखित परिस्थितियों मे न्यायालय पच निर्णय को रद्द कर सकता है ।

(i) यदि किसी पंच ने या मध्यस्थ ने स्वयं कोई दुराचरण किया है ।

(ii) यदि किसी पंच या मध्यस्थ ने कार्यवाही के संचालन में दुराचरण किया हो ।

(iii) यदि पंच या मध्यस्थ ने अपना निर्णय न्यायालय द्वारा पंचायत कार्यवाही को गैर कानूनी घोषित कर देने के बाद दिया हो अथवा

(iv) यदि परि-निर्णय अनुचित रूप से उपलब्ध किया गया है अथवा अन्य किसी कारणों से अवैध है ।

(v) यदि उसने कार्यवाही को अवतरित किया है अर्थात् वह विधि अविचार का दोषी है ।

(4) परि-निर्णय के अनुसार अपना निर्णय देना—भारतीय पंच-निर्णय अधिनियम 1940 की धारा 17 के अनुसार न्यायालय निम्न परिस्थितियों में, परि-निर्णय की शर्तों के अनुसार अपना निर्णय दे सकता है :—

(i) परि-निर्णय में संशोधन की आवश्यकता नहीं है अथवा
(ii) परि-निर्णय को पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत करने का कोई कारण नहीं है या
(iii) परि-निर्णय को निरस्त करने के लिए प्रार्थना-पत्र देने की अवधि समाप्त हो गई है या
(iv) परि-निर्णय की वैधता को चुनौती देने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया गया है या
(v) यदि पक्षकार ने परि-निर्णय निरस्त करने के लिए प्रार्थना-पत्र दे दिया गया है और वह प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिया गया है।

न्यायालय का निर्णय डिक्री का रूप धारण करता है और इसके विरुद्ध किसी प्रकार की अपील नहीं की जा सकती है। यदि निर्णय परि-निर्णय के बाहर है या उसके अनुसार नहीं है तो इस निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पंच करार की परिभाषा दीजिये। कौन-कौनसी बातें पंचायत के लिए निर्देशित नहीं की जा सकती हैं ?
   Define an "Arbitration agreement" what matters cannot be referred to arbitrators ?
2. पंच-निर्णय के लिए कौन से मामले सुपुर्द किये जा सकते हैं ? पंच-निर्णय के लिये कौन सुपुर्द करने का अधिकारी है ?
   What are the matters that can be referred to arbitration ? Who may refer to arbitration ?
3. पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुतिकरण से क्या आशय है ? प्रस्तुतिकरण के विभिन्न ढंग क्या है ?
   What is 'submission to arbitration' ? Explain the different modes of submission. (जोधपुर वि. वि. 1981)
4. पंच-निर्णय करार क्या है ? पंच-निर्णय करार में गर्भित शर्तें कौन कौनसी हैं ? उन विभिन्न विधियों को समझाइये जिनसे किसी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। (जोधपुर वि. वि. 1985)
   What is an arbitration agreement ? What are the implied conditions in an arbitration agreement ? State the different ways in which dispute can be submitted to arbitration.
5. पंच-निर्णायक कौन होता है ? उसे कैसे नियुक्त किया जाता है ? उसका अधिकार कैसे समाप्त किया जा सकता है ?
6. पंच-निर्णायक के अधिकारों और कर्तव्यों की पूर्ण विवेचना कीजिये।
   Discuss fully powers and duties of an arbitrator.

7. पंच करार क्या है ? एक सामान्य पंच करार के आवश्यक लक्षण क्या हैं।
(जोधपुर वि. वि. 1977, 1980, 1982)
8. पंच-निर्णय करार क्या है ? पच-निर्णय के लिए विषय कौन प्रस्तुत कर सकता है और वे कौन से विषय है जो पच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं।
(जोधपुर वि. वि. 1979, 1984)
9 परि-निर्णय क्या है जब परि-निर्णय न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया जाता है तो न्यायालय के क्या अधिकार होते हैं।
What is an award ? What are the powers of the court when an award is filed with it ?
10. परि निर्णय से आप क्या समझते है ? परि-निर्णय के प्रति न्यायालय के क्या अधिकार होते हैं ?
What do you mean by award ? What are the powers of the court regarding the award ?
11. किन परिस्थितियो मे न्यायालय
(i) परि-निर्णय का रूपान्तर या सशोधन कर सकता है।
(ii) परि-निर्णय को पुनर्विचार के लिए वापस करना।
(iii) परि-निर्णय को रद्द कर सकता है।
(जोधपुर वि. वि. 1978)

30
भारतीय दिवालिया अधिनियम
(Indian Insolvency Act)

विषय-सामग्री--परिचय, दिवालिया का आशय, दिवालियापन से आशय, दिवालिया घोषित होने के परिणाम, अयोग्यताएँ, दिवालिया कौन घोषित किया जा सकता है, दिवालियापन का कार्य, दिवालिया घोषित किये जाने के लिए आवेदन पत्र, आवेदन कौन दे सकता है—आवेदन पत्र का विवरण, आवेदन पत्रों की वापसी, आवेदन पत्र की स्वीकृति के बाद की कार्यवाही, अधिनिर्णयादेश से आशय, प्रभाव, समझौता तथा सयोग की योजना, दिवालिया की मुक्ति, मुक्ति की आज्ञा का प्रभाव, अधिनिर्णयादेश के बाद की कार्यवाही, अधिनिर्णयादेश को निरस्त करना, दिवालिया घोषित करने की आज्ञा को निरस्त करने का प्रभाव, भूल सम्बन्धी सिद्धान्त, परित्यक्त स्वामित्व का सिद्धान्त, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

परिचय
(Introduction)

भारतवर्ष में दिवालिया सम्बन्धी दो प्रकार के कानून लागू किये जाते हैं—

(1) प्रेसीडेन्सी नगरो का दिवालिया सम्बन्धी अधिनियम, 1909 (The Presidency Town Insolvency Act, 1909) यह अधिनियम बम्बई, कलकत्ता और मद्रास मे लागू होता है ।

(2) प्रान्तीय दिवालिया सम्बन्धी अधिनियम, 1920 (The Provincial Insolvency Act, 1920) यह अधिनियम बम्बई, कलकत्ता व मद्रास के अतिरिक्त शेष भारत पर लागू होता है ।

दिवालिया
(Insolvent)

दिवालिया शब्द की परिभाषा भारतीय दिवालिया सम्बन्धी अधिनियमों में नही दी गई है । भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम 1930 के अनुसार,. कोई व्यक्ति उस समय दिवालिया कहा जाता है जबकि वह व्यापार की साधारण प्रगति मे अपने ऋण चुकाना बन्द कर देता है, अथवा देय होने पर अपने ऋण चुकाने में असमर्थ है, चाहे उसने दिवालियापन का कोई कार्य किया था अथवा नही ।"

प्रस्तुत अधिनियम के अन्तर्गत कोई व्यक्ति उस समय दिवालिया कहा जाता है :

(1) जबकि उसने दिवालिया का कोई कार्य किया है, तथा
(2) जब न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया जाता है।

दिवालियापन
(Insolvency)

ब्लैक स्टोन (Black stone) के अनुसार, 'दिवालियापन एक ऐसी कार्यवाही है, जिसके द्वारा जब कोई ऋणी अपने ऋणो का भुगतान अथवा दायित्वों का निपटारा नही कर सकता अथवा जब वह अपने ऋणदाताओं के दावो को पूरा नहीं कर सकता तो कुछ परिस्थितियो मे सरकार किसी नियुक्त अधिकारी द्वारा उसकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेती है, तथा इस प्रकार की सम्पत्ति बेच दी जाती है और उसके ऋणदाताओ के बीच मे समान अनुपात में बाट दी जाती है।"[1]

दिवालिया घोषित होने के परिणाम
(Consequences of Insolvency)

(1) ऋणी अपने लेनदारों द्वारा कानूनी कार्यवाही के विरुद्ध सुरक्षा पा जाता है।
(2) ऋणी की सम्पत्ति सरकार के अधिकार मे चली जाती है।
(3) कुछ शर्तों का पालन करने पर, ऋणी पुन: अपना नया जीवन प्रारम्भ कर सकता है।
(4) प्रापक इस प्रकार प्राप्त की गई सम्पत्ति को बेच देता है।
(5) इस सम्पत्ति को बेचने से जो राशि प्राप्त होती है, उसे समस्त लेनदारो को एक न्यायोचित रीति से बाँट देता है।

अयोग्यताएँ
(Disqualifications)

जब कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो उसे निम्नलिखित नागरिक अधिकारो को खोना पड़ता है :—

(1) वह मजिस्ट्रेट नियुक्त नही किया जा सकता।
(2) वह किसी स्थानीय पद के लिए अपना मत भी नही दे सकता।
(3) स्थानीय अधिकारी के किसी पद के लिए उसका चुनाव नही हो सकता है।
(4) भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के अनुसार कोई दिवालिया किसी कम्पनी का संचालक या प्रबन्धक अभिकर्ता नहीं हो सकता।

---

1. "Bankruptcy is a proceeding by which when a debtor can not pay his debts or discharge his liabilities, can not obtain satisfaction of their claims the state in certain circumstances taken possession of his property by an officer appointed for the purpose and such property is seleased and distributed in equal proportions among the persons to whom the debtor ower money or has, incurred pearniary liabilities." (Black-Stone)

दिवालिया कौन घोषित किया जा सकता है ?
(Who may be adjudged Insolvent ?)

प्रत्येक मनुष्य जो अनुबन्ध करने योग्य है अर्थात् वयस्क है तथा सही दिमाग का है दिवालिया घोषित किया जा सकता है परन्तु इसके अतिरिक्त दिवालिया सन्नियम के अनुसार निम्नलिखित दो शर्तों का पूरा होना भी आवश्यक है :

(1) उस व्यक्ति को ऋणी होना चाहिए तथा

(2) उसने दिवालियापन का कोई कार्य किया हो।

इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित व्यक्तियों का अध्ययन करेंगे :—

दिवालिया कौन घोषित किया जा सकता है ?

1. अवयस्क
2. पागल
3. साझेदार
4. विवाहित स्त्री
5. संयुक्त हिन्दू परिवार
6. संयुक्त पूँजी कम्पनी
7. विदेशी
8. मृतक
9. मृतक का वैधानिक प्रतिनिधि
10. संयुक्त देनदार

(1) अवयस्क (Miror)—अवयस्क व्यक्तिगत रूप से अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नही रहता इसलिए साधारण तरीके से वह दिवालिया घोषित नही किया जा सकता है। कोई अवयस्क वयस्क होने पर भी आवश्यकता के समय किये गये करारों का पुष्टिकरण नही कर सकता। यदि अवयस्क को अन्य साझेदारो द्वारा साझेदारी के लाभों मे सम्मिलित किया गया है तो ऐसी स्थिति में साझेदारी सम्पत्ति में केवल उसका भाग ही फर्म के ऋणों के लिए उत्तरदायी होता है।

इस प्रकार एक अवयस्क को दिवालिया घोषित नही किया जा सकता और यदि कोई अवयस्क दिवालिया घोषित कर दिया गया है तो ऐसी घोषणा रद्द करनी पड़ेगी।

(2) पागल (Lunatics)—यदि कोई व्यक्ति पागल है तो सही दिमाग के समय लिये गये ऋणों के लिए उसे दिवालिया घोषित किया जा सकता है परन्तु यदि उसने अस्वस्थ मस्तिष्क के होने की अवस्था में ऋण लिया है तो ऐसे ऋण के लिए वह दिवालिया घोषित नही किया जा सकता हैं।

(3) साझेदार (Partner)—किसी भी फर्म के साझेदार को अकेले या सामूहिक तरीके से दिवालिया घोषित कराने के लिए सम्मिलित करने के लिए ऋणदाता याचिका प्रस्तुत कर सकता है। यदि फर्म में अवयस्क को लाभों मे सम्मिलित करने के लिए प्रवेश दिया है तो वह अवयस्क साझेदार किसी भी हालत में दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है इस प्रकार स्पष्ट है कि फर्म के साझेदार दिवालिया घोषित किये जा सकते हैं।

(4) विवाहित स्त्री (Married Woman)—किसी वयस्क विवाहिता स्त्री में (चाहे वह हिन्दू, पारसी, मुसलमान, ईसाई अथवा किसी भी धर्म की हो) अनुबन्ध करने

की क्षमता होती है। अतः वे समस्त विवाहित स्त्रियाँ अपनी पृथक् सम्पत्ति के ऊपर लिये गये ऋण के लिए दिवालिया घोषित की जा सकती है।

(5) संयुक्त हिन्दू परिवार (Joint Hindu Family)—जब किसी हिन्दू परिवार के सदस्य किसी संयुक्त ऋण के लिए संयुक्त रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हों तो ऋणदाता के द्वारा न्यायालय में आवेदन पत्र पेश कर उन्हें दिवालिया घोषित किया जा सकता है। परन्तु जब संयुक्त हिन्दू परिवार का व्यवसाय केवल कर्त्ता ही करता है तो अन्य सदस्य व्यक्तिगत रूप से दायी न होंगे ऐसी स्थिति में केवल कर्त्ता या मैनेजर ही दिवालिया घोषित किया जा सकता है। संयुक्त हिन्दू परिवार का अवयस्क सदस्य किसी भी दशा में दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता।

(6) संयुक्त पूँजी कम्पनी (Joint stock company)—संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी दिवालिया अधिनियम के अनुसार दिवालिया घोषित नहीं की जा सकती है। ऐसी कम्पनी का समापन भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(7) विदेशी (Foreigners)—किसी विदेशी को भारतवर्ष में किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता जब तक कि दिवालियापन का कार्य उसने भारतवर्ष में ही न किया हो। अतः कोई विदेशी तभी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित किया जा सकता है जब वह :—

(1) दिवालिया अधिनियम के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार करता है,

(2) दिवालियापन का कोई कार्य उसने किया हो,

(3) वह भारत का निवासी हो।

धारा 11 बी के अनुसार यदि वह व्यक्ति किसी प्रतिनिधि के द्वारा भी भारतवर्ष में व्यापार करता हो तो भी दिवालिया घोषित किया जा सकता है।

(8) मृतक (Deceased)—किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसे दिवालिया घोषित करने के लिए आवेदन पत्र देने पर न्यायालय उसे दिवालिया घोषित नहीं कर सकता। यदि किसी ऋणी की मृत्यु दिवालिया घोषित करने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत करने के बाद होती है तो यदि न्यायालय इसके विपरीत आज्ञा नहीं दे तो कार्यवाही यह मानकर की जावेगी मानों वह जीवित था।

(9) मृतक का वैधानिक प्रतिनिधि (Legal representative of deceased)—किसी ऋणी के उत्तराधिकारी को दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है।

(10) संयुक्त देनदार (Joint Debtors) - अगर दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने मिलकर संयुक्त रूप से कोई ऋण लिया है और यदि प्रत्येक ऋणी दिवालियापन का कार्य करता है तो उन्हें दिवालिया घोषित किया जा सकता है।

दिवालियापन के कार्य
(Acts of Insolvency)
(धारा 6)

प्रेसीडेन्सी टाउन्स इन्सालवेन्सी एक्ट 1909 की धारा 9 तथा प्रान्तीय दिवाला अधिनियम 1920 की धारा 6 (संशोधन अधिनियम 1978 के द्वारा संशोधित) के अनुसार

यदि ऋणी द्वारा निम्नलिखित कार्यों में से कोई भी कार्य किया गया है तो वह दिवालियापन का कार्य माना जावेगा :—

(1) यदि किसी ऋणदाता ने ऋणी के विरुद्ध कोई राशि के भुगतान प्राप्त करने का आदेश अथवा डिक्री प्राप्त कर ली है तथा उसने ऋणी को ऐसा भुगतान करने के लिए नोटिस दे दिया है और ऋणी उस नोटिस का उसमें वर्णित अवधि में पालन नहीं करता है।

ऋणी ने यदि उस नोटिस को निरस्त करने के लिए न्यायालय में आवेदन किया है तथा न्यायालय द्वारा इस आवेदन को स्वीकार कर लिया गया है तो ऋणी का दिवालियेपन का कार्य नहीं समझा जायेगा। न्यायालय द्वारा यदि ऋणी के इस आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है तो ऋणी का दिवालियेपन का कार्य उस आवेदन को अस्वीकार करने की तिथि या नोटिस में वर्णित अवधि के समाप्त होने की तिथि, जो दोनों में से बाद में हो, उस तिथि से माना जायेगा।

कोई ऋणी यदि स्थायी या अस्थायी रूप से भारत के बाहर रहता है तो उपरोक्त नोटिस उसे तब तक नहीं दिया जायेगा जब तक कि ऋणदाता द्वारा न्यायालय से अनुमति न ले ली गयी हो।

(2) यदि वह भारत में या अन्यत्र अपनी समस्त सम्पत्ति अथवा सम्पत्ति का अधिकांश भाग अपने ऋणदाताओं में हित के लिए किसी तीसरे पक्ष को हस्तान्तरित करता है।

(3) यदि वह अपने ऋणदाताओं के हित का विनाश अथवा उसको विलम्ब करने के उद्देश्य से—

(क) वह भारतवर्ष से चला जाता है या भारत के बाहर रहता है।
(ख) जब वह अपने निवास स्थान से या व्यापार के सामान्य स्थान से चला जाता है अथवा वहाँ से अनुपस्थित रहता है अथवा
(ग) वह अपने को इस प्रकार छिपा लेता है कि उसके लेनदार उससे सम्पर्क स्थापित करने के साधनों से वंचित हो जायें।

(4) यदि वह भारत से या अन्यत्र अपनी सम्पत्ति का अथवा उसके किसी भाग का हस्तान्तरण अपने ऋणदाताओं के हित का विनाश या विलम्ब करने के उद्देश्य से करता है।

(5) यदि वह भारत में या अन्यत्र अपनी सम्पत्ति अथवा उसके किसी भाग का हस्तान्तरण इस प्रकार करता है कि अगर वह दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो इस नियम के अनुसार या अन्य किसी अधिनियम के अनुसार यह हस्तान्तरण कपटपूर्ण प्राथमिकता होने के कारण शून्य होता।

(6) जब किसी न्यायाधीश की डिक्री को नियान्वित करने के उद्देश्य से उसकी या कम से कम 21 दिन के लिए कुड़क (Attach) कर ली गई है।

(7) यदि वह अपने ऋणदाताओं में से किसी भी ऋणदाता को यह सूचना देता है कि उसने अपने ऋणों का भुगतान स्थगित कर दिया है अथवा उनका भुगतान स्थगित करने वाला है।

(8) यदि वह किसी राशि के भुगतान के लिए न्यायालय द्वारा दी गई डिक्री के निष्पादन के सम्बन्ध में उसको कैद कर लिया गया है।

दिवालिया घोषित किये जाने के लिए आवेदन पत्र

आवेदन पत्र या याचिका (Petition)

किसी व्यक्ति के विरुद्ध दिवालिया सम्बन्धी कार्यवाही के लिए सबसे पहला कार्य दिवालिया सम्बन्धी न्यायालय में इस आशय के लिए एक आवेदन प्रस्तुत करना है। यह आवेदन पत्र किसी लेनदार द्वारा अथवा ऋणी द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसी याचिका पर न्यायालय उसे दिवालिया घोषित करने की आज्ञा जिसे अधिनिर्णयादेश (order of adjudication) कहते हैं, दे सकता है।

धारा 8 के अनुसार किसी कम्पनी अथवा रजिस्टर्ड संस्था के विरुद्ध कोई आवेदन पत्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

आवेदन पत्र कौन दे सकता है ?
(Who can file petition ?)

(1) ऋणदाता (Creditor) की ओर से आवेदन पत्र की शर्तें—निम्नलिखित दशाओं में कोई भी ऋणदाता ऋणी के विरुद्ध दिवालिया घोषित कराने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत कर सकता है—

(i) यदि वह ऋण द्वारा जो आवेदन पत्र प्रस्तुत करने वाले ऋणदाता को अथवा अन्य ऋणदाताओं के साथ मिल कर याचिका प्रस्तुत करता है तो वह सब ऋण जो कि ऋणी द्वारा आवेदन पत्र प्रस्तुत करने वाले समस्त लेनदारों को देना है, 500 रुपये या उससे अधिक होना चाहिए।

(ii) ऋण ऐसी निश्चित राशि हो जो शीघ्र ही अथवा भविष्य में किसी निश्चित समय पर देय है।

(iii) दिवालियेपन का कार्य जिसके आधार पर आवेदन पत्र दिया जाता है आवेदन पत्र देने के तीन माह के भीतर ही हुआ है।

कोई भी सुरक्षित लेनदार दिवालिया घोषित कराने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत नहीं कर सकता है जब तक कि वह अपने आपको असुरक्षित लेनदार की श्रेणी में नहीं कर लेता।

(2) ऋणी की ओर से आवेदन पत्र की शर्तें (Conditions of debtor's petition)—कोई भी ऋणी अपने आपको दिवालिया घोषित कराने के लिए आवेदन पत्र केवल उसी दशा मे प्रस्तुत कर सकता है जबकि वह अपने ऋण चुकाने में असमर्थ है तथा निम्नलिखित शर्तों मे से कोई भी शर्त पूरी करता हो—

(i) यदि उसका ऋण कम से कम 500 रुपये हो या

(ii) यदि किसी न्यायालय के निर्णय के निष्पादन में किसी धन के भुगतान हेतु वह गिरफ्तार कर लिया गया हो अथवा कैद कर लिया गया हो अथवा

(iii) इस प्रकार की डिक्री को कार्यान्वित करने के लिए ऋणी की सम्पत्ति के विरुद्ध कुर्की की आज्ञा जारी कर दी गयी है और जो अब भी है।

आवेदन पत्र कहाँ प्रस्तुत किया जाय ?

प्रत्येक ऐसा आवेदन पत्र केवल ऐसे दिवालिया सम्बन्धी न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना चाहिए :—

(i) जिसके अधिकार क्षेत्र के स्थान में ऋणी रहता है अथवा

(ii) जिसके अधिकार क्षेत्र में ऋणी अपना कारोबार करता है अथवा

(iii) यदि वह गिरफ्तार या कैद कर लिया गया है तो उस स्थान के न्यायालय में जहाँ वह कैद हो।

आवेदन पत्र का विवरण
(Contents of Petition)
(धारा 13)

ऋणी द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र

किसी भी ऋणी द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रत्येक आवेदन पत्र में निम्नलिखित विवरण होने चाहिए :—

(1) एक ऐसा वर्णन कि ऋणी अपने ऋण चुकाने में असमर्थ है।

(2) वह स्थान जहाँ ऋणी साधारणतया रहता है अथवा व्यवसाय करता है अथवा लाभ के लिए स्वयं कार्य करता है अथवा यदि वह गिरफ्तार या कैद कर लिया गया है तो वह स्थान जहाँ वह कैद है।

(3) वह न्यायालय जिसकी आज्ञा से वह गिरफ्तार या कैद किया गया है अथवा वह न्यायालय जिसके द्वारा उसकी सम्पत्ति कुर्क करने की आज्ञा दी गई है उस डिक्री का वर्णन भी जिसके कारण ऐसी कोई आज्ञा दी गयी है।

(4) लेनदारों के नाम व पते तथा उसके विरुद्ध धन सम्बन्धी समस्त दावों की राशि तथा विवरण।

(5) उसकी सम्पत्ति सम्बन्धित निम्नलिखित विवरण—

(i) रुपये को छोड़कर उसकी समस्त सम्पत्ति का मूल्यांकन।

(ii) ऐसी सम्पत्ति का स्थान जहाँ पर वह स्थित है।

(iii) इस आशय की एक घोषणा कि वह अपनी समस्त सम्पत्ति को न्यायालय के अधिकार में रखने के लिए इच्छुक है।

(6) इस तरह का विवरण कि क्या उसने पहले कभी दिवालिया घोषित किये जाने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया है, और यदि ऐसा आवेदन पत्र प्रस्तुत किया है तो—

(i) यदि वह रद्द कर दिया गया है तो उसके कारण अथवा

(ii) यदि उसे दिवालिया घोषित कर दिया गया हो तो उसका संक्षिप्त विवरण।

ऋणदाता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र (Petition by Creditor)—किसी लेनदार

या लेनदारों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रत्येक आवेदन पत्र में निम्नलिखित विवरण होने चाहियें :—

(1) वह स्थान जहाँ ऋणी रहता है अथवा व्यवसाय करता है अथवा लाभ के लिए स्वयं कार्य करता है अथवा यदि वह गिरफ्तार अथवा कैद कर लिया गया हो तो वह स्थान जहाँ पर वह कैद में है।

(2) ऐसे ऋणी द्वारा किया गया दिवालियापन का कार्य तथा ऐसे कार्य को किये जाने की तिथि।

(3) ऐसे ऋणी के विरुद्ध अपने धन सम्बन्धी दावे या दावों की रकम तथा विवरण।

आवेदन पत्रों की वापसी (Withdrawal of Petitions)—कोई भी आवेदन पत्र चाहे वह ऋणी द्वारा या ऋणदाता द्वारा किया गया हो बिना न्यायालय की आज्ञा के वापस नहीं लिया जा सकता है और न्यायालय को दूसरे पक्षकारों को सूचना दिये बिना और जब तक कि वह इस बात से सन्तुष्ट न हो जाय कि उससे दूसरे पक्षकारों को हानि नहीं होगी, ऐसी वापसी की आज्ञा नहीं देनी चाहिये। (धारा 14)

आवेदन पत्र की स्वीकृति के बाद की कार्यवाही
(Procedure on admission of Petition)

(1) **सुनवाई की तिथि निश्चित करना** *(Fixing the date of hearing)*—जब दिवालिया सम्बन्धी कोई आवेदन पत्र स्वीकार कर लिया जाता है, तब न्यायालय आवेदन पत्र की सुनवाई के लिए एक तारीख निश्चित करता है। इस तारीख की सूचना विपक्षी को दी जावेगी।

(2) **अन्तरिम प्रापक की नियुक्ति (Appointment of interim receiver)**—एक अन्तरिम प्रापक की नियुक्ति न्यायालय कर सकता है और उसे ऋणी की सम्पत्ति अथवा उसके किसी भाग को अपने अधिकार में ले लेगा। अगर अन्तरिम प्रापक इस प्रकार नियुक्त नहीं किया जाता है तो न्यायालय किसी भी समय अधिनिर्णयादेश देने के पूर्व उसकी नियुक्ति कर सकता है।

(3) **ऋणी के विरुद्ध अन्तरिम कार्यवाही (Interim proceedings against debtor)**—आवेदन पत्र की स्वीकृति की आज्ञा करते समय अथवा अधिनिर्णयादेश देने से पूर्व किसी भी समय न्यायालय या तो अपनी ही ओर से या किसी ऋणदाता की प्रार्थना पर निम्नलिखित आज्ञाओं में से एक अथवा अधिक आज्ञा कर सकता है।

(i) **जमानत मांगना**—न्यायालय उस समय तक के लिए जब तक कि अन्तिम निर्णय न हो जाय, ऋणी को न्यायालय में उपस्थित होने के लिए, या उचित जमानत देने के लिए आज्ञा दे सकता है और यह भी आदेश दे सकता है कि ऐसी जमानत न देने पर उसे दीवानी कारागार में कैद रखा जायेगा।

(ii) **कुर्की की आज्ञा**—न्यायालय ऋणी की समस्त सम्पत्ति अथवा उसके किसी भाग की कुर्की की आज्ञा भी दे सकता है।

(iii) **वारंट जारी करने की आज्ञा**—न्यायालय ऋणी को कैद करने के लिए वारंट जारी करने की आज्ञा दे सकता है और यह आदेश दे सकता है कि या तो

उसे आवेदन पत्र के अन्तिम निर्णय तक दीवानी जेल में बन्द रखा जावे अथवा उसे जमानत सम्बन्धी ऐसी शर्तों पर छोड़ दिया जावे जो कि उचित और आवश्यक हों।

यह याद रखने योग्य है कि बाद की दो आज्ञाएँ उस समय तक नहीं दी जा सकती जब तक कि न्यायालय को यह सन्तोष न हो जाये कि ऋणी ने अपने ऋणदाता को पराजय अथवा विलम्ब करने अथवा न्यायालय की कार्यवाही से बचने के लिए कोई कार्य किया हो।

(4) ऋणी के कर्तव्य (Duties of debtor)—ऋणी के आवेदन पत्र को स्वीकार करने की आज्ञा के बाद निम्नलिखित कर्तव्य होंगे :—

(i) वह अपनी समस्त हिसाब-किताब की पुस्तकें प्रस्तुत करेगा।

(ii) उसे अपनी कुल सम्पत्ति की सूची तथा अपने देनदारों एवं ऋणियों की सूची देनी होगी।

(iii) अपनी सम्पत्ति तथा अपने लेनदारों के सम्बन्ध में जाँच के लिए उपस्थित होगा।

(iv) जब आवश्यकता हो तो न्यायालय तथा राजकीय प्रापक के सम्मुख उपस्थित होगा।

(v) आवश्यक विलेख लिखेगा।

(vi) अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसे समस्त कार्य करेगा जो न्यायालय अथवा प्रापक उसे आदेश दें।

ऋण के समस्त लेनदारों के सामने न्यायालय ऋणी की जाँच करेगा और ऐसी जाँच के समय कोई भी लेनदार उस ऋणी से कुछ भी प्रश्न कर सकता है।

(5) आवेदन पत्र को रद्द करना (Dismissal of petition)—न्यायालय निम्नलिखित दशाओं में किसी लेनदार द्वारा आवेदन पत्र प्रस्तुत किये जाने की स्थिति में आवेदन पत्र को रद्द कर देगा :—

(i) यदि न्यायालय सन्तुष्ट हो कि लेनदारों को आवेदन पत्र प्रस्तुत करने का अधिकार नही है।

(ii) यदि ऋणी को आवेदन पत्र की सूचना नही दी गई है।

(iii) ऋणी ने दिवालियापन का कोई कार्य नही किया है। यदि न्यायालय इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है।

(iv) यदि न्यायालय सन्तुष्ट हो जावे कि ऋणी अपने ऋण चुकाने में समर्थ है।

(v) अन्य किसी कारण से दिवालिया घोषित करने की आज्ञा नही देनी चाहिये।

यदि उपरोक्त आधारों में से किसी आधार पर आवेदन पत्र खारिज किया जाता है तो न्यायालय ऋणी के प्रार्थना पत्र पर ऐसे लेनदार के विरुद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में उचित जुर्माना कर सकता है जो कि 1000 रु. से ज्यादा नही होना चाहिये।

अधि-निर्णयादेश या दिवालिया घोषित करने की आज्ञा
(Order of adjudication)
(धाराएँ 27–30)

अधिनिर्णयादेश से आशय

अधिनिर्णयादेश एक ऐसी आज्ञा है जिसके द्वारा वह ऋणी जिसने अथवा जिसके विरुद्ध आवेदन पत्र प्रस्तुत किया गया था, अपने ऋणों को चुकाने के लिए वैधानिक रूप से असमर्थ मान लिया जाता है।

न्यायालय यदि आवश्यक प्रमाणों से सन्तुष्ट है और आवेदन पत्र को खारिज नही करता तो वह ऋणी को दिवालिया घोषित करने के उद्देश्य से आज्ञा देता है जिसे अधि-निर्णयादेश कहते हैं। न्यायालय ऐसी आज्ञा में वह समय भी निश्चित कर देगा जिसके भीतर ऋणी अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना पत्र दे सकता है। न्यायालय मुक्ति के लिए निश्चित समय की अवधि बढ़ा सकता है, यदि उचित कारण प्रस्तुत किये जाएँ।

अधिनिर्णयादेश की सूचना का प्रकाशन - निम्नलिखित विवरण के सहित अधि-निर्णयादेश की सूचना राजकीय गजट में प्रकाशित होनी चाहिये :—

(1) दिवालिया का नाम, पता तथा अन्य विवरण
(2) दिवालिया घोषित होने की तारीख
(3) आवेदन पत्र जिस तिथि को प्रस्तुत किया गया था।
(4) उस न्यायालय का नाम जिसने उसे दिवालिया घोषित किया है।
(5) वह अवधि जिसके भीतर ऋणी अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना-पत्र देगा।

अधिनिर्णयादेश का प्रभाव
(Effect of an order of adjudication)
या
दिवालिया घोषित करने की आज्ञा का प्रभाव

निम्नलिखित वैधानिक प्रभाव होते हैं :—

(1) न्यायालय को या प्रापक को दिवालिया की समस्त सम्पत्ति सौंप दी जावेगी जो लेनदारों में बाँटने योग्य हो जावेगी।

(2) दिवालिया अपनी सम्पत्ति के विक्रय में तथा प्राप्त राशि को लेनदारों मे बाँटने में यथाशक्ति पूर्ण सहायता करेगा।

(3) दिवालिया सम्बन्धी कार्यवाही चालू रहते हुए कोई भी लेनदार ऋण के सम्बन्ध में दिवालिया की सम्पत्ति के विरुद्ध कोई अन्य वैधानिक कार्यवाही आरम्भ नहीं कर सकता। लेकिन निम्नलिखित परिस्थितियो में दिवालिये व्यक्ति पर दावा किया जा सकता है :—

(i) जब ऋणदाता सुरक्षित ऋणदाता है।
(ii) जब न्यायालय से वाद चलाने की आज्ञा प्राप्त कर ली गयी हो।

निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय वाद की आज्ञा देता है—

(क) अगर दिवालिया घोषित किये जाने के समय वाद का अन्त हो रहा हो।
(ख) वाद नहीं चलाने से जब उसके प्रमाण के नष्ट होने की सम्भावना हो।

(ग) वाद चलाने के अधिकार की जय अवधि समाप्त होने के कारण ऋण के नष्ट होने की सम्भावना हो।

(4) दिवालिया घोषित होने पर दिवालिया अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई व्यवहार करने का अधिकार नही रखता। प्रापक ही सम्पत्ति के सम्बन्ध में व्यवहार कर सकता है और केवल वह ही क्रेता को अधिकार प्रदान कर सकता है।

(5) अधिनिर्णयादेश का प्रभाव उस तिथि से होगा जिस दिन दिवालिया घोषित करने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था।

(6) जब तक दिवालिया व्यक्ति न्यायालय द्वारा मुक्त नही कर दिया जाता है तब तक वह निम्नांकित पदों के अयोग्य माना जाता है—

(क) मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त होने अथवा कार्य करने

(ख) किसी स्थानीय अधिकारी के पद पर निर्वाचित होने तथा

(ग) किसी कम्पनी का संचालक बनने

(घ) किसी स्थानीय प्राधिकरण के सदस्य के रूप में निर्वाचित होना, सदन में बैठना अथवा मतदान करना।

उपरोक्त अयोग्यताओं के होते हुए भी दिवालिया आम चुनावों में अपने सामान्य मताधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(7) *दिवालिया घोषित होने के तीन महीने पहले दिवालिया व्यक्ति ने किसी एक ऋणदाता को अन्य ऋणदाताओं के ऊपर कपट पूर्ण लाभ देने के उद्देश्य से किसी सम्पत्ति का हस्तान्तरण कर दिया हो तो वह निरस्त हो जाता है।*

(8) वह न्यायालय जिसमें ऋणी के विरुद्ध कोई दावा अथवा अन्य कार्यवाही विचाराधीन है इस बात का प्रमाण होने पर कि उसके विरुद्ध अधिनिर्णयादेश जारी कर दिया गया या तो कार्यवाही को रोक देगा या ऐसे प्रतिबन्धों पर उसको जारी रहने दे सकता है।

(9) *कभी-कभी न्यायालय द्वारा संरक्षण-आज्ञा दी जाती है जिसके अनुसार दिवालिया व्यक्ति को न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न बन्दी ही बनाया जा सकता है। यदि वह पहले से गिरफ्तार है तो उसे छोड़ दिया जाता है।*

(10) जब दिवालिया घोषित करने के बाद ऋणी कैद से मुक्त कर दिया गया हो तो इसके रद्द होने के साथ ही उसे फिर से कारावास दे दिया जाता है तथा मुक्त करने के पूर्व जो भी आदेश उसके विरुद्ध लागू किया गया था उसे फिर से लागू किया जायेगा।

समझौता तथा संयोग की योजना
(Composition and scheme of arrangement)

समझौता (Composition)—*ऋणी तथा उसके लेनदारों के मध्य एक ऐसे* समझौते से है जिसके द्वारा ऋणी अपने लेनदारो को उनके दिये गये ऋणों के एक निश्चित अनुपात में कुछ धन पाने के प्रतिफल में अपने ऋणो का कुछ भाग त्यागने के लिए पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाते हैं।

संयोग की योजना
(Scheme of Arrangement)

इस योजना के अनुसार ऋणी अपनी सम्पत्ति लेनदारों के हित में एक ट्रस्टी को सौंप देता है।

लेनदारों को वास्तविक भुगतान समझौते के अन्तर्गत उसी समय कर दिया जाता है जबकि संयोग की योजना के अनुसार लेनदारों को वास्तविक राशि का भुगतान उचित समय के बाद किया जाता है। लेनदारों को उनके ऋणों की पूरी राशि का भुगतान दोनो में ही नही होता।

दिवालिया की मुक्ति
(Discharge of Insolvent)

अधिनिर्णयादेश जारी होने के बाद दिवालिया किसी भी समय परन्तु न्यायालय द्वारा नियत समय के भीतर मुक्ति के लिए न्यायालय में आवेदन पत्र प्रस्तुत कर सकता है। न्यायालय ऐसे आवेदन पत्र तथा उससे सम्बन्धित विरोधों की सुनवाई के लिए एक तिथि निश्चित करेगा और उसकी सूचना समस्त लेनदारो एवं सम्बन्धित व्यक्तियों को देगा।

न्यायालय आवेदन कर्त्ता, लेनदारों एव प्रापक (यदि उसकी नियुक्ति की गई है) के द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के बाद निम्नलिखित में से कोई आज्ञा प्रदान कर सकता है—

(1) पूर्ण मुक्ति की आज्ञा प्रदान कर सकता है अथवा उसके लिए इन्कार कर सकता है अथवा

(2) मुक्ति की आज्ञा को निश्चित समय के लिए कार्यान्वित होने से स्थगित कर सकता है अथवा

(3) मुक्ति की आज्ञा ऐसी शर्तों के अधीन दे सकता है जो दिवालिया की भविष्य की आय अथवा भविष्य में प्राप्त सम्पत्ति से सम्बन्ध रखती हो।

पूर्ण मुक्ति न देने की दशाएं

न्यायालय निम्नलिखित दशाओ मे पूर्ण मुक्ति की आज्ञा प्रदान नहीं करेगा:—

(1) यदि दिवालिया की सम्पत्ति इतने मूल्य की भी नहीं है कि असुरक्षित लेनदारों को रुपये में आठ आने भी दिया जा सके। किन्तु यदि दिवालिया न्यायालय को इस बात से सन्तुष्ट कर दे कि ऐसी स्थिति किन्ही ऐसे कारणों से हुई है, जिसके लिए वह उचित रूप से उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता, तो उसे मुक्ति मिल सकती है।

(2) यदि दिवालिये ने दिवालियापन का कार्य करने के तीन साल पहले तक का उचित तथा सामान्य लेखा नही रखा हो लेखा पुस्तकें नहीं रखने के कारण ठीक-ठीक आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता।

(3) जब दिवालिया व्यक्ति ने इस बात को जानने के बाद भी कि वह दिवालिया है व्यापार करना चालू रखा हो।

(4) जब दिवालिया ने ऋण लेने के समय ऋण का भुगतान करने की कोई आशा न होने पर तथा अपने को ऋण का भुगतान करने के योग्य न समझने पर भी ऋण लिया हो।

(5) यदि दिवालिया सम्पत्ति की किसी हानि अथवा कमी का जिससे वह ऋण चुका सकता था सही प्रकार न समझा सके।

(6) निम्नलिखित कारणों से यदि ऋणी ने अपने को दिवालिया घोषित करवाया हो—

(i) हानि पहुँचाने वाले ढंग से कार्य करने से जैसे सट्टा आदि से या
(ii) दैनिक जीवन की आवश्यकताओं से अधिक व्यय से या
(iii) जुआ खेलने से अथवा
(iv) अपने व्यवसाय को अत्यधिक लापरवाही से करने से।

(7) जब दिवालिये ने आवेदन-पत्र देने से तीन महीने पहले किसी लेनदार को अनुचित प्राथमिकता दी है।

(8) अगर दिवालिया पहले कभी और दिवालिया घोषित किया गया हो।

(9) जब दिवालिया ने अपनी सम्पत्ति अथवा उसका कोई भाग छिपा दिया हो अथवा वह किसी अन्य कपट का दोषी है।

मुक्ति की आज्ञा का प्रभाव
(Effect of an order of discharge)

निम्नलिखित प्रभाव होते हैं :—

(1) मुक्ति की आज्ञा दिवालिया को निम्नलिखित ऋणों के अतिरिक्त समस्त ऐसे ऋणों से मुक्त कर देगी जो कि इस अधिनियम के अधीन प्रमाण योग्य हैं—

(क) ऐसा कोई ऋण जो दिवालिया व्यक्ति को सरकार को देय है।
(ख) ऐसा कोई ऋण अथवा दायित्व जो दिवालिया व्यक्ति ने कपट द्वारा लिया था।
(ग) ऐसा कोई ऋण अथवा दायित्व जिसके सम्बन्ध में दिवालिये ने किसी कपट द्वारा क्षमा प्राप्त कर ली है। अथवा
(घ) निर्वाह सम्बन्धी कोई दायित्व।

(2) मुक्ति की आज्ञा किसी ऐसे व्यक्ति को मुक्त नही करेगी जो कि आवेदन-पत्र की तिथि पर दिवालिया था।

(क) साझेदार
(ख) सह-निक्षेपधारी
(ग) सह-अनुबन्धक
(घ) प्रतिभू।

(3) जब किसी दिवालिया ने दण्डनीय अपराध किया हो तो उससे वह मुक्ति नहीं पा सकता है।

अधिनिर्णयादेश के बाद की कार्यवाही
(Proceedings Consequent to adjudication)

संरक्षण आज्ञा (Protection order)

न्यायालय द्वारा दी गई वह आज्ञा है जिसके द्वारा दिवालिये को गिरफ्तार करने अथवा कैद रखने से बचाया जा सकता है। इस प्रकार की संरक्षण-आज्ञा द्वारा ऋणी को उसके लेनदारों द्वारा परेशान करने से बचाया जाता है।

अधिनिर्णयादेश को निरस्त करना
(Annualment or Cancellation of Adjudication)
या
दिवालिया घोषित करने की आज्ञा रद्द करना

न्यायालय को निम्नलिखित परिस्थितियों में दिवालिया घोषित करने की आज्ञा रद्द करने का अधिकार है :—

(1) यदि न्यायालय के विचार से ऋणी को दिवालिया घोषित करना उचित प्रतीत नहीं होता हो जैसे यदि वह अवयस्क हो।

(2) जब न्यायालय को इस बात का विश्वास हो जाय कि दिवालिया के समस्त ऋणों का भुगतान कर दिया गया हो। अतः ब्याज सहित यदि समस्त रकम चुका दी गयी हो तो ऐसी आज्ञा रद्द की जा सकती है।

(3) जब दिवालिया घोषित करने की आज्ञा ऋण के आवेदन पत्र पर दी गयी हो।

(4) जब दिवालिया घोषित करने के लिए न्यायालय से पूर्ण आज्ञा लेनी आवश्यक थी किन्तु स्वीकृति प्राप्त न की गयी हो।

(5) जब दिवालिया घोषित करने की आज्ञा किसी एक न्यायालय द्वारा दी गयी हो और उसी ऋणी के विरुद्ध किसी अन्य दूसरे न्यायालय में दिवालियापन की कार्यवाही चल रही हो तो ऐसी स्थिति में प्रथम न्यायालय अपने अधिनिर्णयादेश को रद्द कर सकता है यदि न्यायालय यह समझे कि दूसरा न्यायालय ऋणी की सम्पत्ति को अधिक सुविधा से वितरित कर सकता है।

(6) न्यायालय ऋणी द्वारा कोई योजना का कोई समझौता प्रस्तुत किये जाने पर इसे स्वीकार कर ले।

(7) दिवालिया जब निर्धारित समय के अन्दर अपनी मुक्ति का आवेदन-पत्र नहीं देता हो या आवेदन-पत्र की सुनवाई के दिन उपस्थित नहीं होता है।

दिवालिया घोषित करने की आज्ञा को रद्द करने का प्रभाव
(Effect of Annualment)

(1) जब न्यायालय या राजकीय प्रापक ने आज्ञा रद्द करने के पूर्व किये गये सम्पत्ति-सम्बन्धी समस्त विक्रय, विक्रय का भुगतान किया हो तो उसे वैध माना जाता है।

(2) दिवालिया व्यक्ति की सम्पत्ति किसी ऐसे व्यक्ति को सौंप दी जायेगी जिसको न्यायालय नियुक्त करे अथवा यदि ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो तो ऋणी का उस सम्पत्ति में अधिकार है। दिवालिया व्यक्ति को ऐसी शर्तों पर जो न्यायालय घोषित करे, वापस कर दी जावेगी।

पूर्व सम्बद्धता का सिद्धान्त या भूत सम्बन्धी सिद्धान्त
(Doctrine of relation back)

भूत सम्बन्धी सिद्धान्त यह बताता है कि किसी ऋणी के दिवालिया घोषित हो जाने पर दिवालिया घोषित करने की आज्ञा किस समय से अथवा कितने दिन पूर्व से लागू होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार वे समस्त व्यवहार जो दिवालिया आवेदन पत्र के प्रस्तुत करने की तिथि और दिवालिया घोषित करने की आज्ञा की तिथि के बीच किये जाते है उनको संरक्षण प्रदान किया जाता है।

जब तक न्यायालय किसी ऋणी को दिवालिया घोषित नही करता है तब तक उसे दिवालिया नही कहा जा सकता है तथा उसकी सम्पत्ति राजकीय प्रापक के अधिकार मे उस समय तक नहीं आती जब तक न्यायालय द्वारा ऐसी आज्ञा दे दी जाय।

दिवालिया घोषित करने की आज्ञा पास हो जाने पर दिवालिये की सम्पत्ति पर राजकीय प्रापक का अधिकार दिवालिया आरम्भ होने के दिन से ही हो जाता है अधि-निर्णयादेश की तिथि से नही इसे ही भूत सम्बन्धी सिद्धान्त या पूर्व सम्बद्धता का सिद्धान्त कहा जाता है।

अंग्रेजी अधिनियम के अनुसार दिवालियापन शुरू होने तथा आज्ञा-पत्र पाने के बीच दिवालिये के साथ किये गये सभी व्यवहार निम्नलिखित परिस्थितियो मे सुरक्षित होते हैं :—

(1) दिवालियेपन की कोई भी सूचना उस व्यक्ति को प्राप्त न हो तथा सद्भावना के साथ व्यवहार किया गया हो।
(2) किन्तु वे व्यक्ति जिनको दिवालियेपन की सूचना हो दिवालिये के साथ किसी तरह का व्यवहार नही कर सकते हैं।

भूत सम्बन्धी सिद्धान्त यह बताता है कि जो दिवालिया घोषित किया जा चुका है उसकी सभी सम्पत्ति दिवालियेपन का पहला कार्य करने के दिन से ही ऐसा काम करने के तीन महीने के अन्दर दिवालियापन की धरोहर मे निहित हो जाती है।

भारतीय अधिनियम के अनुसार दिवालिया होने के दिन से लेकर दिवालिया घोषित करने की आज्ञा पाने के दिन तक के सभी व्यवहार निम्नलिखित परिस्थितियों से सुरक्षित होते हैं :—

(1) दिवालियापन के आवेदन को प्रस्तुति के विषय मे उक्त व्यक्ति को किसी प्रकार की जानकारी न हो तथा
(2) सद्भावना के साथ कार्य करता हो।

अत: दिवालियापन के कार्य की सूचना दिवालिये के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्ति को प्राप्त होने वाली सुरक्षा से वंचित नही रखती है किन्तु अंग्रेजी अधिनियम में ऐसी बात नही है।

भूत सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रभाव

इस सिद्धान्त का यह प्रभाव होता है कि आवेदन पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात् अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में ऋणी कोई ऐसा व्यवहार नही कर सकता जो राजकीय प्रापक को बाध्य करे।

सम्पत्ति प्राप्त स्वामित्व का सिद्धान्त

दिवालिये व्यक्ति की वह सब सम्पत्ति जिसका वह वास्तविक स्वामी है लेनदारों में उसके ऋण के अनुपात मे बांटने के लिए राजकीय प्रापक को सौंप दी जाती है परन्तु वस्तुओं अर्थात् चल सम्पत्ति के सम्बन्ध में केवल वस्तुएँ ही नही जिनका वास्तविक स्वामी दिवालिया है वरन् ऐसी वस्तुएँ भी जिनका दिवालिया व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से तो स्वामी मालूम पड़ता है परन्तु वास्तविक स्वामी नहीं है राजकीय प्रापक को सौंप दी जायेगी और दिवालिया के लेनदारों में बांटने योग्य होगी ।

उदाहरण—व्यापारी से कुछ वस्तुएँ खरीदता है और उनका मूल्य चुका देता है लेकिन वस्तुएँ उसी के अधिकार में छोड़ देता है विक्रेता बाद मे दिवालिया हो जाता है । ये वस्तुएँ प्रापक को सौंप दी जायेगी और दिवालिया के लेनदारों में बांटने योग्य होगी ।

परित्यक्त स्वामित्व के मुख्य लक्षण

(1) सम्पत्ति केवल चल सम्पत्ति होनी चाहिए ।

(2) सम्पत्ति दिवालिया व्यक्ति के अधिकार, आशा तथा व्यवस्थापन मे होनी चाहिए ।

(3) दिवालिया द्वारा ऐसी सम्पत्ति को व्यापार या उद्योग के लिए अपने अधिकार में रखना चाहिए ।

(4) दिवालिया के पास सम्पत्ति ऐसी स्थिति मे होनी चाहिए कि प्रत्यक्ष रूप से वह वास्तविक स्वामी मालूम पड़े ।

(5) उस सम्पत्ति का दिवालिया वास्तविक स्वामी न हो बल्कि सम्पत्ति किसी दूसरे व्यक्ति की हो ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. दिवालिया शब्द की परिभाषा दीजिए । साधारणतः कौन-कौन व्यक्ति दिवालिया घोषित होने के योग्य है और क्यों ?

   (क) क्या एक अवयस्क

   (ख) एक पागल

   (ग) भारत निवासी शत्रु तथा

   (घ) एक विवाहिता स्त्री दिवालिया घोषित की जा सकती है ?

   Define the 'insolvent.' State generally who are the persons capable of being adjudged insolvent can.

   (a) an Infant,

   (b) a Lunatic,

(c) a resident alien, and
(d) a married woman be adjudicated insolvent ?
(जोधपुर वि. वि. 1977, 1980, 1981)

2. किन परिस्थितियों में ऋणदाता ऋणी को दिवालिया घोषित करवाने के लिए प्रार्थना पत्र देने का अधिकारी होता है।
State the circumstances under which a creditor can apply for the insolvency of his debtor. (जोधपुर वि. वि. 1984)

3. अधिनिर्णयादेश की परिभाषा दीजिए। इसके वैधानिक प्रभाव क्या हैं ?
What is an order of adjudication ? State fully the effects of such an order. (जोधपुर वि. वि. 1978, 1983)

4 विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए कि किन कार्यों को दिवालियेपन का कार्य माना जाता है।
(जोधपुर वि. वि. 1978, 1981)

5. "सरकारी प्रतिपुरुष जो दिवालिया की जगह ग्रासन्न होता है, कानून के दौरान स्वयं ऋणी से ज्यादा तथा विस्तृत अधिकार रखता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
"The official assignee stepping into the shoes of the insolvent has by operation of law, large and vide powers than the debtor himself has" Discuss (जोधपुर वि. वि. 1982)

6. परित्यक्त स्वामित्व के सिद्धान्त को समझाइए।
Explain the doctrine of repudiated ownership.
(जोधपुर वि. वि. 1985)

□□□

31

माल वाहन सम्बन्धी नियम

(Law Relating to Carriage of Goods)

विषय-सामग्री – वाहक का आशय, वाहक के भेद, सार्वजनिक वाहक का आशय, विशेषताएँ, सार्वजनिक वाहक कौन है, सार्वजनिक वाहक के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व, सार्वजनिक वाहक के अधिकार, दायित्व, निजी असार्वजनिक वाहक का आशय व विशेषताएँ, सार्वजनिक या लोक वाहक एव निजी या असार्वजनिक वाहक मे अन्तर, रेलवे द्वारा माल का वहन या रेलवे सार्वजनिक वाहक के रूप मे, समुद्र द्वारा माल का वहन, चार्टर पार्टी, जहाज का कप्तान के कर्तव्य व अधिकार जहाजी रसीद की विशेषताएँ, जहाजी रसीद व चार्टर पार्टी में अन्तर, क्या जहाजी रसीद विनिमय साध्य विलेख है ? जहाजी रसीद एक स्वत्व अधिकार का प्रपत्र।

वाहक का आशय
(Meaning of Carrier)

माल वाहक से आशय किसी भी ऐसे व्यक्ति अथवा संस्था से है जो माल या यात्रियों को शुल्क के बदले में अथवा बिना शुल्क के स्थल मार्ग द्वारा, जलमार्ग द्वारा अथवा वायुमार्ग द्वारा ले जाता है। सामान की ढुलाई से सम्बन्धित नियम को तीन भागों मे बांटा जा सकता है—

(1) स्थल मार्ग द्वारा माल वहन (Land Carriers)

(i) वाहक नियम, 1865 (The Carriers Act 1865)

(ii) रेल्वे नियम, 1890 (The Railway Act 1890)

(2) समुद्र मार्ग द्वारा माल वहन (Sea-water carriers)

(i) भारतीय वहन-पत्र नियम, 1856 (The Indian Bill of Lading Act, 1856)

(ii) समुद्र द्वारा माल-परिवहन नियम, 1925 (The carriage of goods by Sea Act 1925)

(3) वायु मार्ग द्वारा माल वहन (Carriage of Good by Air)

वायु द्वारा परिवहन नियम 1934

इन नियमों का क्षेत्र अधिक विस्तृत नही है अतः आवश्यकता पड़ने पर "English Common law तथा English Carriage Act 1830" क्रियाशील होते हैं।

वाहक के भेद
(Kinds of Carriers)

वाहक दो भागों में बांटा जा सकता है—

सार्वजनिक या लोक-वाहक
(Common/Public Carriers)
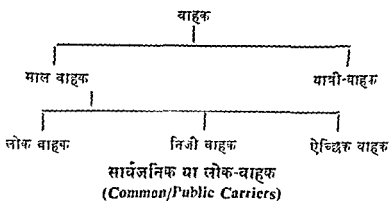
भारतीय वस्तु वाहक नियम 1965 की धारा 2 के अनुसार, "सार्वजनिक वाहक, सरकार के अतिरिक्त एक ऐसा व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह है जिसका समामेलन हुआ हो या नहीं, जो सभी तरह के लोगों के लिए बिना किसी भेदभाव के स्थल-मार्ग अथवा अन्तर्देशीय जलमार्ग द्वारा किराये पर एक जगह से दूसरी जगह सामान स्थानान्तरित करता है।"[1]

सार्वजनिक वाहक की विशेषताएं

(1) सार्वजनिक वाहक व्यक्ति अथवा साझेदारी अथवा एक संयुक्त पारिवारिक संस्था अथवा एक कम्पनी हो सकती है। साझेदारी फर्म की स्थिति में इसके सभी साझेदार प्रत्येक देनदारी के लिए सम्मिलित रूप से उत्तरदायी होते हैं।

(2) सार्वजनिक वाहक केवल माल या सम्पत्ति का स्थानान्तरण करता है व्यक्तियों का नहीं।

(3) यह माल का स्थानान्तरण का कार्य व्यापार के रूप में करता है, न कि आकस्मिक पेशे के रूप में।

(4) यह सभी व्यक्तियों के माल बिना किसी भेदभाव के ढोता है।

(5) यह माल ढोने का कार्य किराये के प्रतिफल में करे, मुफ्त में नहीं।

(6) सार्वजनिक वाहक माल के स्थानान्तरण का कार्य-स्थल मार्ग या अन्तर्देशीय जलमार्ग द्वारा करता है।

(7) यह सरकार (Government) न हो।

सार्वजनिक वाहक कौन है (Who are Common Carriers)—निम्नलिखित लोक वाहक में सम्मिलित है :—

(i) रेलवे कम्पनियाँ

(ii) जहाजी कम्पनियाँ

(iii) भाड़े पर माल ले जाने वाले जहाज का स्वामी

(iv) नाव के स्वामी तथा अन्य जो किसी व्यक्ति के माल को भाड़े पर ले जाते है।

---

1. A common carrier has been defined under sec 2 of the Indian carriers Act, 1865 as a person including any association or body of Person whether incorported or not other then Govt. engaged in the business of transporting for hire property from place to place by land or inland navigation for all person, Indiscriminately."

(v) बजरे के स्वामी (Barge owners) जो किसी भी व्यक्ति के माल को भाड़े पर ले जाते हैं।

निम्नलिखित सार्वजनिक वाहक नहीं हैं

(1) पोस्ट मास्टर जनरल

(2) ऐसे वाहक जो कभी-कभी या किसी विशिष्ट अनुबन्ध के अन्तर्गत माल स्थानान्तरण करते हैं।

(3) घाट-वाल (Wharfingers) जो अपने ग्राहकों के माल को जहाज से घाट तक पहुँचाते हैं।

(4) ऐसे वाहक जो माल का स्थानान्तरण करने अथवा न करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखते हैं।

(5) केवल यात्रियों को ही ले जाने वाला वाहक।

सार्वजनिक वाहक के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व
(Duties and Liabilities of Common Carrier)

सार्वजनिक वाहक के निम्नलिखित कर्तव्य हैं :—

(1) निश्चित किराया पाने पर माल को ढोना—सार्वजनिक वाहक का कर्तव्य है कि वह ऐसे सभी व्यक्तियों का माल ले जाये जो कि माल के स्थानान्तरण का उचित शुल्क देते हैं किन्तु निम्नलिखित में सार्वजनिक वाहक का ऐसा कर्तव्य नहीं है—

(i) अगर वस्तु इस प्रकार की है जिसे वह ले जाने का आदी नहीं है।

(ii) अगर वह खतरनाक वस्तु है जिससे कि और वस्तुएँ बरबाद हो सकती है।

(iii) अगर माल के लिए वाहन में जगह नहीं हो।

(iv) यदि माल, यात्रा प्रारम्भ होने से बहुत पहले लाया गया है या बाद मे लाया गया है।

(2) प्रचलित मार्ग से जाना (To follow the customary route)—सार्वजनिक वाहक का कर्तव्य है कि वह माल साधारणतया प्रचलित मार्ग द्वारा ही ले जावे। वह किसी दूसरे मार्ग द्वारा माल ले जाने का अधिकारी है यदि माल को सुरक्षित ले जाने के लिए आवश्यक है।

(3) निश्चित स्थान पर निश्चित समय में पहुँचा देना (To deliver at distination within the fixed time)—सार्वजनिक वाहक का यह कर्तव्य है कि जिस समय माल पहुँचाने का वादा करे उसे उस समय माल निर्दिष्ट स्थान पर अवश्य पहुँचा देना चाहिये। यदि कोई समय निश्चित नहीं हैं तो प्रत्येक मामले की दशाओं का ध्यान रखते हुए उचित समय में माल पहुँचा दें।

(4) सुपुर्दगी में अनावश्यक विलम्ब के लिए हर्जाना देना (To pay damage for unressonable delay)—यदि माल की सुपुर्दगी देने मे अनुचित विलम्ब हो तो सार्वजनिक को हर्जाना देना पड़ेगा। किसी विशेष समझौते के द्वारा माल की सुपुर्दगी देने में सार्वजनिक वाहक होने वाले विलम्ब के दायित्व से बरी हो सकता है।

(5) माल स्वीकार करते ही दायित्व शुरू हो जाता है (The responsibility starts as soon as he accepts the goods) - जिस समय सार्वजनिक वाहक व्यक्त रूप से अथवा उपलक्षण द्वारा माल को ढुलाई के लिए स्वीकार कर लेता है दायित्व उसी समय से शुरू हो जाते हैं। वह इन वस्तुओं को सुरक्षित रूप से ढोने के लिए बाध्य है।

पार्सल या पैकेज की हानि, विनाश या क्षय के लिए उत्तरदायी नही है जिसका वर्णन द्वितीय सूची में हो (जैसे सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, आभूषण, घड़ियाँ, प्रतिभूतियाँ आदि) और जिनका मूल्य 100 रुपये से अधिक है जब तक कि माल भेजने वाले व्यक्ति ने ढुलाई के लिए रेल्वे कम्पनी को सुपुर्दगी देते समय पार्सल मे रखी हुई वस्तु का नाम तथा मूल्य घोषित न कर दिया हो रेल्वे कम्पनी ऐसे माल को ले जाने के लिए अतिरिक्त शुल्क ले सकती है।

(2) यात्रियों के सामान के सम्बन्ध में—रेल्वे किसी यात्री के सामान की हानि, विनाश अथवा क्षय के लिए उस समय तक उत्तरदायी नही होगी जब तक कि रेल्वे कर्मचारी ने सामान बुक करके उसकी रसीद न दी हो।

(3) पशुओं का वहन—रेल्वे को जब किसी पशु को वहन करने के लिए सुपुर्द किया जाता है तो ऐसे पशु खो जाने पर, मर जाने अथवा क्षय होने पर रेल्वे कम्पनी का दायित्व एक निश्चित मूल्य तक ही सीमित है। रेल्वे का दायित्व अधिनियम की अनुसूची के अनुसार विभिन्न पशुओं के सम्बन्ध मे रेल्वे का अधिकतम आर्थिक दायित्व निम्न प्रकार है :—

प्रत्येक हाथी के लिए 1,500 रुपये
,, घोड़े ,, ,, 750 ,,
,, खच्चर, ऊँट व सींग
वाले पशु के लिए 200 रुपये
प्रत्येक कुत्ते, गधे, बकरे, भेड़ें, चिड़िया और अन्य पशु 30 रुपये।

उपर्युक्त मूल्य से यदि कोई व्यक्ति भेजे जाने वाले पशु का मूल्य अधिक घोषित करता है तो ऐसी स्थिति में रेल्वे इस अतिरिक्त जोखिम के लिए अधिक दर से शुल्क वसूल कर सकती है।

(4) स्वामी की जोखिम पर माल का वहन—जब कोई माल या पशु स्वामी की जोखिम पर जाते हैं तो रेल्वे ऐसे माल की किसी प्रकार की हानि या विनाश के लिए उत्तरदायी नहीं होगी यदि रेल्वे या उसके किसी कर्मचारी की लापरवाही या दुराचरण के कारण हानि या विनाश हुई है तो यह प्रमाणित करने पर रेल्वे उसके लिए दायी होगी।

(5) दोषपूर्ण दशा में माल का वहन—जब रेल्वे को वहन के लिए दिये गये माल की पैकिंग दोषपूर्ण रूप में की गई है या माल दोषपूर्ण दशा में है और इस बात को फार्वर्डिंग नोट में उल्लेख कर दिया गया हो तो ऐसी दशा में रेल्वे उसकी किसी प्रकार की हानि के लिए दायी नही होगी परन्तु यदि रेल्वे या उसके किसी कर्मचारी की लापरवाही या दुराचरण के कारण हानि हुई है तो ऐसी स्थिति मे यह प्रमाणित करने पर रेल्वे उत्तर-दायी होगी।

(6) हानि की दशा में सिद्ध करने का भार—पशु या माल को हानि होने की दशा में वाद प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित दो बातें सिद्ध करनी पड़ती हैं :—

(i) माल रेल्वे को ले जाने के लिए सौंपा गया था।

(ii) माल की हानि वहन की अवधि मे हुई है।

हानि किस प्रकार हुई उसे यह सिद्ध नहीं करना पड़ता है। यदि अपने दायित्व से

उसके नियन्त्रण मे कार्य करते हैं। जहाज का कप्तान स्वामी का एजेन्ट ही नहीं होता है वरन् माल के स्वामियों का भी प्रतिनिधि होता है। कप्तान जहाज पर लदे हुए माल का कस्टोडियन (Custodian) होता है।

कप्तान के कर्त्तव्य व अधिकार

जहाज के कप्तान के निम्नलिखित कर्त्तव्य व अधिकार होते हैं :—

(1) जहाज या माल की यात्रा की अवधि में उचित रक्षा करना कप्तान का कर्त्तव्य है।

(2) आवश्यकता के समय माल व जहाज की रक्षा के लिए उचित व्यय करने का अधिकार है।

(3) जहाजी-रसीद के निर्गमन के सम्बन्ध में कप्तान का कर्तव्य होता है कि पैकेजों व बण्डलों की सख्या की पुष्टि करे तथा यह देखें कि माल बाहरी रूप से अच्छी दशा में है।

(4) जहाज के कप्तान को जोखिम की दशा में माल फेंक देने का अधिकार है।

(5) अत्यधिक आवश्यकता के समय वह माल को बीच के किसी बन्दरगाह पर बेच सकता है।

(6) अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार कप्तान को नहीं है।

(7) कुछ दशाओं में जहाज का कप्तान जहाज, किराया तथा माल को बन्धक रख सकता है और ऋणपत्रों के आधार पर ऋण ले सकता है।

(8) यदि जहाज को इतनी हानि हुई है कि वह ठीक नहीं किया जा सकता तो कप्तान को अधिकार है कि वह माल को नियत स्थान पर पहुँचाने के लिए किसी दूसरे जहाज को सौंप दे।

कप्तान द्वारा ऋण लेना

कप्तान जहाज के स्वामी का एजेन्ट होता है और यदि कप्तान स्वामी से सम्बन्ध स्थापित करने में असफल हो जाये तो ऐसी स्थिति में उसका कर्त्तव्य है कि जहाज और माल की सुरक्षा के लिए और शेष यात्रा पूरी करने के लिए आवश्यक और उपयुक्त उपायों को प्रयोग में लाये। जहाज का कप्तान ऋण दो प्रकार से ले सकता है।

(1) जहाजी बन्धक द्वारा (Bottomry Bond)—जहाज के कप्तान को यदि यात्रा में ऋण की आवश्यकता पड़े तो जहाज व किराये दोनों को ही बन्धक रखकर निम्नलिखित परिस्थितियों में किसी भी बन्दरगाह पर ऋण ले सकता है :—

(i) ऋण के बिना आगे यात्रा करना असम्भव हो।

(ii) जहाज के स्वामी से सहायता प्राप्त करने के लिए उसका संवहन करना असम्भव है।

(iii) ऋण इससे अनुकूल शर्तों पर अथवा किसी अन्य रीति से प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

(6) भाड़े से सम्बन्धित वाक्य—भाड़ा कब और किस प्रकार, और किसको देय है अनुबन्ध में एक ऐसा भी वाक्य होता है।

वर्जित जोखिमें
(Excepted Perils)

ऐसी वर्जित जोखिमें जो कि चार्टर पार्टी में उल्लिखित होती हैं निम्नलिखित होती हैं :—

(1) सामुद्रिक जोखिमें (Perils of the sea)—सामुद्रिक जोखिमें सामुद्रिक यात्रा की उन साधारण दुर्घटना या जोखिम को कहते हैं जो कप्तान की उपेक्षा या असावधानी के कारण नही होती हैं जैसे तेज आँधी जिसके कारण जहाज मे पानी का भुराना आदि।

(2) दैवी प्रकोप (Act of God)—जो प्राकृतिक शक्ति के फलस्वरूप होती हैं उसे दैवी प्रकोप जोखिम कहते हैं। यह मनुष्य के नियन्त्रण से बाहर होती है।

(3) राजाओं द्वारा रोक लगाने पर (Restraint of princes and Rulers)—किसी राजा के द्वारा, जिसके राज्य में से होकर जहाज गुजर रहा हो, द्वारा किसी प्रकार की रुकावट डालने के कारण ऐसी हानि हुई हो।

(4) टक्कर लग जाना (Collision)—जब एक जहाज से दूसरे जहाज की टक्कर हो जाने से या वायु-वेग, तूफान इत्यादि के कारण जहाज क्षतिग्रस्त हो जाता है तो इसे टक्कर लग जाना कहते हैं। असावधानी या उपेक्षा के कारण यदि टक्कर होती है तो इसे वर्जित जोखिम नहीं समझा जा सकता।

(5) राज्य के शत्रु (Government Enemies)—यदि राज्य के शत्रु ने जहाज को पकड़ लिया अथवा माल व जहाज को हानि पहुँचाई हो।

(6) कपटपूर्ण व्यवहार (Barratry)—कप्तान द्वारा जान बूझकर किये गये उन सभी कपट को कहते हैं जो वह अपनी भलाई के लिए जहाज के स्वामी का ख्याल न करते हुए करता है जैसे बिना बन्दरगाह की फीस दिये जहाज को ले जाना।

(7) माल फेंकना (Jettison)—कभी-कभी जहाज की रक्षा के उद्देश्य से, जहाज पर लदे हुए किसी माल अथवा वस्तु या जहाज के किसी अन्य सामान को फेंक देना है। परन्तु उपेक्षा द्वारा फेंकी गयी वस्तुएँ वर्जित जोखिम नही समझी जा सकती हैं।

(8) हड़तालें व ताले-बन्दियाँ (Striks and lockouts)—कभी-कभी जहाज का स्वामी तालाबन्दी कर देता है या नाविक हड़ताल कर देते हैं जिसके कारण भी हानि हो सकती है।

(9) सामुद्रिक डाकू और चोर (Pirates, Robbers and thieves)—सामुद्रिक डाकू, लुटेरे तथा चोर भी कभी-कभी जहाज पर लदे हुए माल को लूट लेते हैं।

जहाज का कप्तान
(Master of Ship)

जहाज को यात्रा में प्रायः जहाज का स्वामी नहीं ले जाते हैं और उसका प्रबन्ध जहाज के कप्तान को सौंप दिया जाता है। कप्तान जहाज का प्रधान अधिकारी होता है जहाज पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जहाज चलने व रुकने का आदेश देता है। समस्त नाविक

उसके नियन्त्रण मे कार्य करते है। जहाज का कप्तान स्वामी का एजेन्ट ही नहीं होता है वरन् माल के स्वामियों का भी प्रतिनिधि होता है। कप्तान जहाज पर लदे हुए माल का कस्टोडियन (Custodian) होता है।

कप्तान के कर्त्तव्य व अधिकार

जहाज के कप्तान के निम्नलिखित कर्त्तव्य व अधिकार होते हैं :—

(1) जहाज या माल की यात्रा की अवधि मे उचित रक्षा करना कप्तान का कर्त्तव्य है।

(2) आवश्यकता के समय माल व जहाज की रक्षा के लिए उचित व्यय करने का अधिकार है।

(3) जहाजी-रसीद के निर्गमन के सम्बन्ध मे कप्तान का कर्त्तव्य होता है कि पैकेजों व वण्डलों की सख्या की पुष्टि करे तथा यह देखें कि माल बाहरी रूप से अच्छी दशा में है।

(4) जहाज के कप्तान को जोखिम की दशा मे माल फैंक देने का अधिकार है।

(5) अत्यधिक आवश्यकता के समय वह माल को बीच के किसी बन्दरगाह पर बेच सकता है।

(6) अनुबन्ध की शर्तों मे परिवर्तन करने का अधिकार कप्तान को नहीं है।

(7) कुछ दशाओं में जहाज का कप्तान जहाज, किराया तथा माल को बन्धक रख सकता है और ऋणपत्रों के आधार पर ऋण ले सकता है।

(8) यदि जहाज को इतनी हानि हुई है कि वह ठीक नही किया जा सकता तो कप्तान को अधिकार है कि वह माल को नियत स्थान पर पहुँचाने के लिए किसी दूसरे जहाज को सौंप दे।

कप्तान द्वारा ऋण लेना

कप्तान जहाज के स्वामी का एजेन्ट होता है और यदि कप्तान स्वामी से सम्बन्ध स्थापित करने में असफल हो जाये तो ऐसी स्थिति में उसका कर्त्तव्य है कि जहाज और माल की सुरक्षा के लिए और शेष यात्रा पूरी करने के लिए आवश्यक और उपयुक्त उपायों को प्रयोग में लाये। जहाज का कप्तान ऋण दो प्रकार से ले सकता है।

(1) जहाजी बन्धक द्वारा (Bottomry Bond)—जहाज के कप्तान को यदि यात्रा में ऋण की आवश्यकता पड़े तो जहाज व किराये दोनों को ही बन्धक रखकर निम्नलिखित परिस्थितियों में किसी भी बन्दरगाह पर ऋण ले सकता है :

(i) ऋण के बिना आगे यात्रा करना असम्भव हो।

(ii) जहाज के स्वामी से सहायता प्राप्त करने के लिए उसका संवहन करना असम्भव है।

(iii) ऋण इससे अनुकूल शर्तों पर अथवा किसी अन्य रीति से प्राप्त करना सम्भव नही है।

(6) भाड़े से सम्बन्धित वाक्य—भाड़ा कब और किस प्रकार, और किसको देय है अनुबन्ध में एक ऐसा भी वाक्य होता है।

वर्जित जोखिमें
(Excepted Perils)

ऐसी वर्जित जोखिमें जो कि चार्टर पार्टी में उल्लिखित होती हैं निम्नलिखित होती हैं :—

(1) सामुद्रिक जोखिमें (Perils of the sea)—सामुद्रिक जोखिमें सामुद्रिक यात्रा की उस साधारण दुर्घटना या जोखिम को कहते हैं जो कप्तान की उपेक्षा या असावधानी के कारण नहीं होती हैं जैसे तेज आँधी जिसके कारण जहाज में पानी का घुसना आदि।

(2) दैवी प्रकोप (Act of God)—जो प्राकृतिक शक्ति के फलस्वरूप होती है उसे दैवी प्रकोप जोखिम कहते हैं। यह मनुष्य के नियन्त्रण से बाहर होती है।

(3) राजाओं द्वारा रोक लगाने पर (Restraint of princes and Rulers)—किसी राजा के द्वारा, जिसके राज्य में से होकर जहाज गुजर रहा हो, द्वारा किसी प्रकार की रुकावट डालने के कारण ऐसी हानि हुई हो।

(4) टक्कर लग जाना (Collision)—जब एक जहाज से दूसरे जहाज की टक्कर हो जाने से या वायु-वेग, तूफान इत्यादि के कारण जहाज क्षतिग्रस्त हो जाता है तो इसे टक्कर लग जाना कहते हैं। असावधानी या उपेक्षा के कारण यदि टक्कर होती है तो इसे वर्जित जोखिम नहीं समझा जा सकता।

(5) राज्य के शत्रु (Government Enemies)—यदि राज्य के शत्रु ने जहाज को पकड़ लिया अथवा माल व जहाज को हानि पहुँचाई हो।

(6) कपटपूर्ण व्यवहार (Barratry)—कप्तान द्वारा जान बूझकर किये गये उन सभी कपट को कहते हैं जो वह अपनी भलाई के लिए जहाज के स्वामी का ख्याल न करते हुए करता है जैसे बिना बन्दरगाह की फीस दिये जहाज को ले जाना।

(7) माल फेंकना (Jettison)—कभी-कभी जहाज की रक्षा के उद्देश्य से, जहाज पर लदे हुए किसी माल अथवा वस्तु या जहाज के किसी अन्य सामान को फेंक देना है। परन्तु उपेक्षा द्वारा फेंकी गयी वस्तुएँ वर्जित जोखिम नहीं समझी जा सकती हैं।

(8) हड़तालें व तालेबन्दियाँ (Striks and lockouts)—कभी-कभी जहाज का स्वामी तालाबन्दी कर देता है या नाविक हड़ताल कर देते हैं जिसके कारण भी हानि हो सकती है।

(9) सामुद्रिक डाकू और चोर (Pirates, Robbers and thieves)—सामुद्रिक डाकू, लुटेरे तथा चोर भी कभी-कभी जहाज पर लदे हुए माल को लूट लेते हैं।

जहाज का कप्तान
(Master of Ship)

जहाज की यात्रा में प्रायः जहाज का स्वामी नहीं ले जाते हैं और उसका प्रबन्ध जहाज के कप्तान को सौंप दिया जाता है। कप्तान जहाज का प्रधान अधिकारी होता है जहाज पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जहाज चलने व रुकने का आदेश देता है। समस्त नाविक

उसके नियन्त्रण मे कार्य करते हैं। जहाज का कप्तान स्वामी का एजेन्ट ही नहीं होता है वरन् माल के स्वामियों का भी प्रतिनिधि होता है। कप्तान जहाज पर लदे हुए माल का कस्टोडियन (Custodian) होता है।

कप्तान के कर्त्तव्य व अधिकार

जहाज के कप्तान के निम्नलिखित कर्त्तव्य व अधिकार होते हैं :—

(1) जहाज या माल की यात्रा की अवधि मे उचित रक्षा करना कप्तान का कर्त्तव्य है।

(2) आवश्यकता के समय माल व जहाज को रक्षा के लिए उचित व्यय करने का अधिकार है।

(3) जहाजी-रसीद के निर्गमन के सम्बन्ध में कप्तान का कर्त्तव्य होता है कि पैकेजों व बण्डलों की संख्या की पुष्टि करे तथा यह देखें कि माल बाहरी रूप से अच्छी दशा में है।

(4) जहाज के कप्तान को जोखिम की दशा में माल फेंक देने का अधिकार है।

(5) अत्यधिक आवश्यकता के समय वह माल को बीच के किसी बन्दरगाह पर बेच सकता है।

(6) अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार कप्तान को नहीं है।

(7) कुछ दशाओं मे जहाज का कप्तान जहाज, किराया तथा माल को बन्धक रख सकता है और ऋणपत्रों के आधार पर ऋण ले सकता है।

(8) यदि जहाज को इतनी हानि हुई है कि वह ठीक नही किया जा सकता तो कप्तान को अधिकार है कि वह माल को नियत स्थान पर पहुँचाने के लिए किसी दूसरे जहाज को सौंप दे।

कप्तान द्वारा ऋण लेना

कप्तान जहाज के स्वामी का एजेन्ट होता है और यदि कप्तान स्वामी से सम्बन्ध स्थापित करने में असफल हो जाये तो ऐसी स्थिति में उसका कर्त्तव्य है कि जहाज और माल की सुरक्षा के लिए और शेष यात्रा पूरी करने के लिए आवश्यक और उपयुक्त उपायों को प्रयोग में लाये। जहाज का कप्तान ऋण दो प्रकार से ले सकता है।

(1) जहाजी बन्धक द्वारा (Bottomry Bond)—जहाज के कप्तान को यदि यात्रा में ऋण की आवश्यकता पड़े तो जहाज व किराये दोनों को ही बन्धक रखकर निम्नलिखित परिस्थितियों में किसी भी बन्दरगाह पर ऋण ले सकता है :

(i) ऋण के बिना आगे यात्रा करना असम्भव हो।

(ii) जहाज के स्वामी से सहायता प्राप्त करने के लिए उसका संवहन करना असम्भव है।

(iii) ऋण इससे अनुकूल शर्तों पर अथवा किसी अन्य रीति से प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

(6) भाड़े से सम्बन्धित वाक्य—भाड़ा कब और किस प्रकार, और किसको देय है अनुबन्ध में एक ऐसा भी वाक्य होता है।

वर्जित जोखिमें
(Excepted Perils)

ऐसी वर्जित जोखिमें जो कि चार्टर पार्टी में उल्लिखित होती हैं निम्नलिखित होती हैं :—

(1) सामुद्रिक जोखिमें (Perils of the sea)—सामुद्रिक जोखिमें सामुद्रिक यात्रा की उस साधारण दुर्घटना या जोखिम को कहते हैं जो कप्तान की उपेक्षा या असावधानी के कारण नही होती हैं जैसे तेज आंधी जिसके कारण जहाज में पानी का घुसना आदि।

(2) देवी प्रकोप (Act of God)—जो प्राकृतिक शक्ति के फलस्वरूप होती हैं उसे देवी प्रकोप जोखिम कहते हैं। यह मनुष्य के नियन्त्रण से बाहर होती है।

(3) राजाओं द्वारा रोक लगाने पर (Restraint of princes and Rulers)—किसी राजा के द्वारा, जिसके राज्य में से होकर जहाज गुजर रहा हो, द्वारा किसी प्रकार की रुकावट डालने के कारण ऐसी हानि हुई हो।

(4) टक्कर लग जाना (Collision)—जब एक जहाज से दूसरे जहाज की टक्कर हो जाने से या वायु-वेग, तूफान इत्यादि के कारण जहाज क्षतिग्रस्त हो जाता है तो इसे टक्कर लग जाना कहते हैं। असावधानी या उपेक्षा के कारण यदि टक्कर होती है तो इसे वर्जित जोखिम नही समझा जा सकता।

(5) राज्य के शत्रु (Government Enemies)—यदि राज्य के शत्रु ने जहाज को पकड़ लिया अथवा माल व जहाज को हानि पहुँचाई हो।

(6) कपटपूर्ण व्यवहार (Barratry)—कप्तान द्वारा जान बूझकर किये गये उन सभी कपट को कहते हैं जो वह अपनी भलाई के लिए जहाज के स्वामी का ख्याल न करते हुए करता है जैसे बिना बन्दरगाह की फीस दिये जहाज को ले जाना।

(7) माल फेंकना (Jettison)—कभी-कभी जहाज की रक्षा के उद्देश्य से, जहाज पर लदे हुए किसी माल अथवा वस्तु या जहाज के किसी अन्य सामान को फेंक देना है। परन्तु उपेक्षा द्वारा फेंकी गयी वस्तुएँ वर्जित जोखिम नही समझी जा सकती हैं।

(8) हड़तालें व ताले-बन्दियाँ (Striks and lockouts)—कभी-कभी जहाज का स्वामी तालाबन्दी कर देता है या नाविक हड़ताल कर देते हैं जिसके कारण भी हानि हो सकती है।

(9) सामुद्रिक डाकू और चोर (Pirates, Robbers and thieves)—सामुद्रिक डाकू, लुटेरे तथा चोर भी कभी-कभी जहाज पर लदे हुए माल को लूट लेते हैं।

जहाज का कप्तान
(Master of Ship)

जहाज को यात्रा में प्राय: जहाज का स्वामी नही ले जाते हैं और उसका प्रबन्ध जहाज के कप्तान को सौंप दिया जाता है। कप्तान जहाज का प्रधान अधिकारी होता है जहाज पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जहाज चलने व रुकने का आदेश देता है। समस्त नाविक

उसके नियन्त्रण मे कार्य करते हैं । जहाज का कप्तान स्वामी का एजेन्ट ही नहीं होता है वरन् माल के स्वामियों का भी प्रतिनिधि होता है । कप्तान जहाज पर लदे हुए माल का कस्टोडियन (Custodian) होता है ।

कप्तान के कर्त्तव्य व अधिकार

जहाज के कप्तान के निम्नलिखित कर्त्तव्य व अधिकार होते हैं :—

(1) जहाज या माल की यात्रा की अवधि में उचित रक्षा करना कप्तान का कर्त्तव्य है ।

(2) आवश्यकता के समय माल व जहाज की रक्षा के लिए उचित व्यय करने का अधिकार है ।

(3) जहाजी-रसीद के निर्गमन के सम्बन्ध मे कप्तान का कर्त्तव्य होता है कि पैकेजों व वण्डलों की संख्या की पुष्टि करे तथा यह देखें कि माल बाहरी रूप से अच्छी दशा में है ।

(4) जहाज के कप्तान को जोखिम की दशा में माल फेंक देने का अधिकार है ।

(5) अत्यधिक आवश्यकता के समय वह माल को बीच के किसी बन्दरगाह पर बेच सकता है ।

(6) अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार कप्तान को नहीं है ।

(7) कुछ दशाओं में जहाज का कप्तान जहाज, किराया तथा माल को बन्धक रख सकता है और ऋणपत्रों के आधार पर ऋण ले सकता है ।

(8) यदि जहाज को इतनी हानि हुई है कि वह ठीक नही किया जा सकता तो कप्तान को अधिकार है कि वह माल को नियत स्थान पर पहुँचाने के लिए किसी दूसरे जहाज को सौंप दे ।

कप्तान द्वारा ऋण लेना

कप्तान जहाज के स्वामी का एजेन्ट होता है और यदि कप्तान स्वामी से सम्बन्ध स्थापित करने में असफल हो जाये तो ऐसी स्थिति में उसका कर्त्तव्य है कि जहाज और माल की सुरक्षा के लिए और शेष यात्रा पूरी करने के लिए आवश्यक और उपयुक्त उपायों को प्रयोग में लाये । जहाज का कप्तान ऋण दो प्रकार से ले सकता है ।

(1) जहाजी बन्धक द्वारा (Bottomry Bond)—जहाज के कप्तान को यदि यात्रा में ऋण की आवश्यकता पड़े तो जहाज व किराये दोनों को ही बन्धक रखकर निम्नलिखित परिस्थितियों में किसी भी बन्दरगाह पर ऋण ले सकता है :—

(i) ऋण के बिना आगे यात्रा करना असम्भव हो ।

(ii) जहाज के स्वामी से सहायता प्राप्त करने के लिए उसका संवहन करना असम्भव है ।

(iii) ऋण इससे अनुकूल शर्तों पर अथवा किसी अन्य रीति से प्राप्त करना सम्भव नही है ।

(2) माल बन्धक (Respondentia Bond)—कभी-कभी सिर्फ माल को ही बन्धक रखकर जहाज का कप्तान ऋण प्राप्त कर लेता है इसके लिए कप्तान को माल की जमानत का प्रपत्र भरना पड़ता है उसे माल बन्धक कहते हैं। कप्तान निम्नलिखित परिस्थितियों में माल बन्धक रखकर ऋण ले सकता है :—

(i) माल की सुरक्षा के लिए जब ऋण लेना आवश्यक हो।
(ii) माल को बेच देने के अलावा दूसरा कोई उपाय धन-प्राप्ति का न होना।
(iii) संभव होने पर माल के स्वामियों की अनुमति प्राप्त कर लेना।

जहाजी बन्धक व माल बन्धक के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य

(1) जहाजी बन्धक तथा माल बन्धक के आधार पर लिया गया ऋण केवल उसी दशा मे भुगतान किया जाता है जब जहाज अपने निश्चित बन्दरगाह पर पहुँच जाये। यदि वह अपने निश्चित स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही रास्ते में जहाज व माल नष्ट हो जाता है तो ऐसे ऋण वापस नहीं लौटाये जाते हैं।

(2) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कप्तान को जहाज के बन्धक पर ही एक से अधिक बार ऋण लेना पड़ता है तो सबसे अन्तिम ऋणदाता को सर्वप्रथम ऋण व ब्याज का भुगतान किया जाता है। इस नियम का आधार यह है कि अन्तिम ऋणदाता ऋण नहीं देता तो जहाज अपने निश्चित स्थान पर कभी नहीं पहुँच पाता और उस दशा में पहले के ऋणदाताओं के ऋण भी डूब जाते।

(3) ये ऋण के बन्धक लिखित होने चाहिए।

(4) जोखिम की अधिकता के कारण ऐसे ऋण की ब्याज दर बहुत ऊँची होती है।

जहाजी रसीद
(Bill of Lading)

जहाजी रसीद दस्तावेज के रूप में माल को जहाज पर लादने की रसीद होती है जिस पर जहाज के स्वामी या उसके एजेन्ट के हस्ताक्षर होते हैं तथा जिसमें वे सभी शर्तें होती हैं जिनके आधार पर माल को ढोने का करार हुआ है।

जहाजी रसीद के लक्षण
(Characteristics of Bill of Lading)

(i) यह एक लिखित विलेख है।
(ii) इस पर जहाज के स्वामी या उसके प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।
(iii) इसमें माल ले जाने की शर्तों का वर्णन रहता है।
(iv) जहाज पर लादे गये माल की स्वीकृति पत्र के रूप में होती है।
(v) यह ढुलाई के लिए माल पाने की रसीद है।
(vi) इसमे माल के हस्तान्तरण का भी संकेत होता है।

जहाजी रसीद व चार्टर पार्टी में अन्तर
(Difference between bill of lading and Charter Party)

(1) जहाजी रसीद जहाज पर लादे गये माल की स्वीकृति पत्र के रूप में होती है जबकि चार्टर पार्टी केवल एक अनुबन्ध मात्र ही होता है।

(2) जहाजी रसीद स्वत्वाधिकार का प्रपत्र होती है जबकि चार्टर पार्टी ऐसा प्रपत्र नही है।

(3) जब चार्टर पार्टी का अनुबन्ध पट्टे के रूप मे होता है तो चार्टर करने वाला उस निश्चित समय के लिए जहाज का स्वामी बन जाता है, जहाजी रसीद में ऐसा होने का प्रश्न ही नही उठता।

(4) जहाज रसीद का प्रयोग सामान्य जहाज द्वारा माल भेजने के समय किया जाता है जबकि चार्टर पार्टी का व्यवहार सम्पूर्ण जहाज द्वारा माल के समय किया जाता है।

क्या जहाजी रसीद विनिमय साध्य विलेख है ?
(Is bill of Lading Negotiable Instrument)

जहाज रसीद कुछ बातों में विनिमय साध्य विलेख के समान ही है जैसे :—

(1) जहाज रसीद का हस्तान्तरण विनिमय साध्य विलेख के समान ही सुपुर्दगी द्वारा हो सकता है।

(2) जहाजी रसीद का धारक अपने नाम से मुकदमा चला सकता है।

(3) भूत प्रतिफल मान्य होता है।

(4) किसी भी दायी व्यक्ति को हस्तान्तरण की सूचना देना जरूरी नहीं है।

(5) विनिमय साध्य विलेख की भाँति जहाजी रसीद स्वत्वाधिकार का प्रपत्र है।

(6) कुछ अवस्थाओं में हस्तान्तरण के अधीन हस्तान्तरिती हस्तान्तरण कर्त्ता से भी अधिक अधिकार प्राप्त कर सकता है।

निम्नलिखित कारणों से जहाजी रसीद विनिमय साध्य विलेख नहीं है :—

(1) जहाजी रसीद का धारक अपने अधिकार से अच्छा अधिकार दूसरे को नहीं दे सकता है किन्तु बिल का यथाविधिधारी जो बिल को प्रतिफल के बदले मे तथा पूर्ण सद्विश्वास से प्राप्त किया करता है, हस्तान्तरक के अधिकार में दोष होते हुए भी माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर सकता है।

(2) जहाजी रसीद को विनिमय साध्य विलेख की परिभाषा में सम्मिलित नहीं किया गया है।

अतः जहाजी रसीद को अर्द्ध-विनिमय साध्य विलेख कह सकते हैं।

जहाजी रसीद स्वत्व अधिकार का प्रपत्र

जहाजी-रसीद पर अधिकार होना वास्तव में माल पर अधिक होने के समान है उसका धारक उसके प्रस्तुत करने पर माल की सुपुर्दगी लेने का अधिकारी है। अतः जहाज

का स्वामी जहाजी रसीद के धारी को माल सुपुर्द कर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।
यदि जहाज के स्वामी ने सद्विश्वास से किया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सार्वजनिक वाहक से आप क्या समझते हैं ? भारत मे उनके अधिकारों कर्तव्यों एवं दायित्वों की व्याख्या कीजिए।
What is meant by a common carrier ? Discuss his rights, obligations and liabilities in India.
(जोधपुर वि. वि 1978, 1980, 1981, 1983, 1985)

2. सार्वजनिक वाहक कौन हैं ? उनके उत्तरदायित्व क्या हैं ? भारत मे रेल्वे किस अश तक सार्वजनिक वाहक के उत्तरदायित्व से छुटकारा पाने का दावा कर सकती है ?
What are common carriers ? What are their liabilities ? To what extent can railways in India claim exemption from the liabilities of common carriers ?

3. लोक वाहक कौन होते हैं ? उनके कर्तव्य एवं दायित्व क्या है ? भारतीय रेल्वे कहाँ तक लोक वाहक नियम द्वारा नियन्त्रित होती है।
Who are the common carriers ? What are their duties and liabilities To what extent are railways in India governed by the law of common carriers ?
(जोधपुर वि. वि. 1976)

4. लोक वाहक तथा निजी वाहक मे अन्तर बतलाइये। लोक वाहक के अधिकार, कर्तव्य व दायित्व क्या हैं ?
Ditinguish between common carriers and Private carriers. Discuss common carriers rights, obligations and liabilities.
(जोधपुर वि. वि. 1982)

5. (i) सामान्य वाहक और निजी वाहक मे क्या अन्तर है ?
(ii) चार्टर पार्टी क्या होती है ? चार्टर पार्टी और जहाजी बिल्टी में अन्तर बतलाइये।
(जोधपुर वि. वि. 1977)

6. लोक वाहक किसे कहते हैं ? इस कथन का क्या अर्थ है कि सामान्य कानून के अनुसार वह माल का बीमा-कर्ता होना है। भारतीय कानून ने किसी सीमा तक उसकी अनुबन्ध करने की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित किया है।
(जोधपुर वि. वि. 1982)

□□□

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955
(Essential Commodities Act)

विषय-सामग्री—परिचय, परिभाषाएँ, उद्देश्य, सरकार की शक्तियाँ, आदेश जारी करना और तामील करना, आदेश के प्रभाव, अभिग्रहण तथा अधिग्रहण मे अन्तर, अभिग्रहण योग्य वस्तुएँ, अभिग्रहण की रिपोर्ट, अभिगृहीत वस्तु का निरीक्षण, अभिग्रहण आदेश जारी करना, अभिगृहीत वस्तु का विक्रय, विक्रय से प्राप्त राशि का व्यवस्थापन, अधिग्रहण के पूर्व कारण बताओ नोटिस, अधिग्रहण आदेश के विरुद्ध अपील, अधिग्रहण आदेश के संशोधन अथवा निरस्तीकरण का प्रभाव, अधिग्रहण के सम्बन्ध मे जिलाधीश की शक्तियाँ, विशेष न्यायालयों का गठन, विशेष न्यायालयों के न्यायाधीश, न्यायाधीश की योग्यताएँ, विशेष न्यायालय द्वारा विचारण योग्य अपराध, विशेष न्यायालय की शक्तियाँ, लोक सेवकों पर अभियोजन, आदेश का उल्लंघन करने पर दण्ड, आदेश के उल्लंघन से आशय, अन्यथा कथन, कम्पनियों द्वारा अपराध, अभ्यास के लिए प्रश्न।

परिचय

व्यापारी-वर्ग की अनुचित कार्यवाहियों (जैसे जमाखोरी, कालाबाजारी, कृत्रिम अभाव आदि) के कारण जनसाधारण को अपनी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा मे उचित मूल्य पर तथा सरलता से उपलब्ध नही हो पाती। अतः सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए सरकार ने आवश्यक वस्तु अधिनियम सन् 1955 मे पारित किया। आवश्यक वस्तु अधिनियम सम्पूर्ण भारत वर्ष पर लागू होता है।

परिभाषाएँ
(Definitions)

(1) आवश्यक वस्तु (Essential Commodities)—आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 की धारा 2 (a) के अनुसार आवश्यक वस्तुओं से तात्पर्य निम्नलिखित में से किसी भी वर्ग की वस्तु से है :—

(i) पशुओं का चारा, खली एवं अन्य सारकृत चारे।

(ii) कोयला जिसमें कोक तथा कोयले से उत्पन्न या प्राप्त अन्य वस्तुएँ सम्मिलित हैं।

(iii) यन्त्रचालित गाड़ियों के संघटक भाग तथा सहायक सामग्री, जैसे टायर आदि।

(iv) सूती, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र व धागा ।

(v) औषधियाँ—इसमें केवल दवाइयाँ ही सम्मिलित नहीं हैं, किन्तु वे चीजें जो मनुष्य तथा पशुओं के इलाज में काम मे आती हैं, सम्मिलित हैं ।

(vi) खाद्य पदार्थ जिनमें खाद्य तिलहन और खाद्य तेल भी सम्मिलित है । गेहूँ तथा गेहूँ से निर्मित वस्तुएँ, गन्ना तथा शक्कर, चना, तूर या अन्य दालें, चावल, पैडी, हल्दी, कत्था, मसाले आदि सभी खाद्य पदार्थ में सम्मिलित हैं । बम्बई राज्य बनाम जे. के. पटेल के मामले में सूखे तथा तरल दूध को आवश्यक वस्तु माना गया है । मध्य प्रदेश सरकार बनाम सेठ पारसमल के मामले के आधार पर तिलहो, मूंगफली, अलसी, सरसों के तेल को भी खाद्य पदार्थ में सम्मिलित किया गया है परन्तु बिनौले के तेल को खाद्य पदार्थ में सम्मिलित नहीं किया है ।

(vii) लोहा व इस्पात एवं इनसे बने सामान ।

(viii) कागज जिसमें अखबारी कागज, पेपर बोर्ड तथा गत्ते भी सम्मिलित हैं । सुप्रीम कोर्ट ने महाराजा बुक डिपो बनाम गुजरात सरकार 1979 के मामले मे अभ्यास पुस्तिकाओं को भी आवश्यक वस्तु माना है ।

(ix) पैट्रोलियम तथा पैट्रोलियम पदार्थों के उत्पादन ।

(x) रुई चाहे वह धुनी हुई हो या न हो ।

(xi) कच्चा पटसन ।

(xii) वस्तुओं का अन्य कोई वर्ग जिसे केन्द्र सरकार किसी अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के अन्तर्गत आवश्यक वस्तु मानने की घोषणा कर देती है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से आवश्यक वस्तु अधिनियम के निम्नलिखित उद्देश्य स्पष्ट होते हैं :—

(1) वस्तुओं के मूल्यों मे वृद्धि की प्रवृत्ति को रोकना ।

(2) आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना ।

(3) आवश्यक वस्तुओं के समान वितरण को सम्भव बनाना ।

(4) आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि करना ।

(5) आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी, मुनाफाखोरी एवं कालाबाजारी पर रोक लगाना ।

(2) चीनी (Sugar)—चीनी तथा गन्ना दोनों ही आवश्यक वस्तुओं के वर्ग में आते हैं । इस अधिनियम के अनुसार चीनी से आशय है—

(i) किसी भी प्रकार की चीनी जिसमें नब्बे प्रतिशत से अधिक भाग "ईख" की चीनी का हो । मिश्री भी इसमें सम्मिलित है ।

(ii) खण्डसारी चीनी, बूरा चीनी या पिसी हुई चीनी या

(iii) चीनी कारखाने मे प्रक्रियाधनी चीनी या उसमें उत्पादित कच्ची चीनी ।

(3) संहिता या कोड (Code)—इस अधिनियम में कोड का तात्पर्य "दण्ड प्रक्रिया संहिता" Code of Criminal Procedures 1973 (2 of 1974) से है ।

(4) खाद्य फसलें (Food Crops)—गन्ने की फसल भी इस शब्द में सम्मिलित है।

(5) अधिसूचित आदेश (Notified order)—अधिसूचित आदेश से आशय उस आदेश से है जिसे शासकीय राजपत्र में अधिसूचित कर दिया गया है।

(6) आदेश (Order)—आदेश के अन्तर्गत जारी किये गये निर्देश भी आदेश में सम्मिलित हैं।

(7) कलक्टर (Collector)—कलक्टर के अन्तर्गत अतिरिक्त कलक्टर तथा ऐसा अन्य अधिकारी भी सम्मिलित है जो उपखण्ड अधिकारी से नीचे के पद पर न हो और जो आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन कलक्टर के कर्त्तव्यों का पालन और उसकी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कलक्टर द्वारा प्राधिकृत किया जाये।

(8) राज्य सरकार (State Government)—किसी संघीय क्षेत्र के सम्बन्ध में जब इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, तो इसका आशय उसके प्रशासक से होता है।

सरकार की शक्तियाँ
(Powers of the Government)

आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण को नियन्त्रित करने तथा काला बाजारी एवं मुनाफाखोरी को रोकने के लिए आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3, 4 व 5 में केन्द्र सरकार को प्राप्त शक्तियों का वर्णन किया गया है। उन शक्तियों को निम्न-लिखित शीर्षकों में अध्ययन कर सकते हैं :—

(1) आदेश प्रसारित करने की शक्ति (Powers to issue order) [धारा 3(1)] केन्द्र सरकार जब भी आवश्यक एवं उपयुक्त समझे, आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति को बनाये रखने, बढ़ाने, वितरण, सुनिश्चित करने, उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने आदि के सम्बन्ध मे आदेश प्रसारित कर सकती है।

कुछ विशेष परिस्थितियाँ निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं—

(i) किसी आवश्यक वस्तु का जब समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो,

(ii) किसी आवश्यक वस्तु की जब आपूर्ति को बनाये रखने अथवा बढाने के लिए आवश्यक एवं उपयुक्त हो,

(iii) भारत रक्षा के लिए जब किसी आवश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए आवश्यक हो अथवा

(iv) सैनिक क्रियाओं के कुशलतापूर्ण संचालन के लिए किसी आवश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए आवश्यक हो।

(v) किसी आवश्यक वस्तु की जब उचित मूल्य पर उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो।

(2) लाइसेन्सों तथा परिमिटों का नियमन करने की शक्ति [धारा 3(2) (a)]—किसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन अथवा निर्माण का लाईसेन्सों, परिमिटों अथवा किसी प्रकार से केन्द्र सरकार नियमन कर सकती है।

(3) खाद्य-फसलों के उत्पादन का नियमन करने की शक्ति (Power to regulate production) [धारा 3(2)(b)]—केन्द्र सरकार सामान्य या विशिष्ट खाद्य फसलों को

उगाने या वृद्धि के लिए आदेश प्रसारित कर सकती है तथा कृषि खाद्य फसलों के उत्पादन का नियमन कर सकती है।

(4) मूल्य नियन्त्रण करने की शक्ति (Power to control prices) [धारा 3(2) (c)]—केन्द्र सरकार एक आदेश प्रसारित कर किसी भी आवश्यक वस्तु के किसी भी स्तर पर (अर्थात् थोक या फुटकर व्यापार के स्तर पर) उस मूल्य को निर्धारित कर सकती है। जिस मूल्य पर वह वस्तु बेची या खरीदी जा सकती है।

(5) भण्डारण एवं वितरण को नियमन करने की शक्ति [धारा 3(2) d]—केन्द्र सरकार किसी आवश्यक वस्तु के संग्रहण, परिवहन, वितरण, व्यवस्थापन, अर्जन, उपयोग अथवा उपभोग का लाइसेन्सों, परमिटों द्वारा या किसी प्रकार के आदेश द्वारा नियमित कर सकती है।

इस शक्ति के अन्तर्गत सरकार किसी व्यापारी को एक निश्चित मात्रा से अधिक का स्टॉक नहीं रखने का नियन्त्रण लगाती है। मई 1981 में राजस्थान सरकार ने इस अधिकार के अन्तर्गत एक अधिसूचना निकाली थी जिसके अनुसार कोई भी व्यापारी एक समय पर 200 क्विंटल से अधिक कोई स्टॉक में नहीं रख सकेगा। सूरजमल कैलाशचन्द्र नाम की फर्म ने इस अधिसूचना को न्यायालय में चुनौती इस आधार पर दे दी कि यह संविधान की धारा 14 तथा 19 के प्रतिकूल है। इस अधिसूचना को उच्चतम न्यायालय ने वैध माना तथा स्टॉक रखने की सीमा को निर्धारित करने का अधिकार माना।

(6) स्टॉक का विक्रय न करने पर निषेध लगाने की शक्ति [धारा 3 (2) (e)]—सामान्यतः विक्रय के लिए रखी जाने वाली किसी आवश्यक वस्तु के विक्रय को रोक रखने या स्टॉक में रखने पर निषेध लगाने का केन्द्र सरकार अधिकार रखती है।

(7) आवश्यक वस्तु के बेचने का आदेश देने की शक्ति [धारा 3(2)(f)]—किसी भी व्यक्ति से जिसके पास किसी आवश्यक वस्तु का स्टॉक है अथवा उसका उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय करता है केन्द्र सरकार एक आदेश जारी कर यह अपेक्षा कर सकती है कि वह—

(i) अपने स्टॉक में रखे हुए अथवा उसके द्वारा उत्पादित अथवा प्राप्त सम्पूर्ण या विनिर्दिष्ट भाग का अथवा

(ii) किसी ऐसी वस्तु की दशा में जिसका उत्पादन होने या उसके प्राप्त होने की सम्भावना है तो उस सम्पूर्ण वस्तु अथवा उसके विनिर्दिष्ट भाग का निम्न-लिखित को विक्रय करेगा—

(क) केन्द्र सरकार को अथवा

(ख) किसी राज्य सरकार को अथवा

(ग) ऐसी सरकार (केन्द्र सरकार एवं किसी राज्य सरकार) के नियन्त्रण के अधीन या स्वामित्वाधीन किसी निगम को अथवा

(घ) किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी वर्ग को।

(8) जनहित की सुरक्षा करने की शक्ति [धारा 3 (2) (g)]—खाद्य पदार्थों एवं सूती वस्त्रों से सम्बन्धित व्यावसायिक या आर्थिक व्यवहारों को नियमित करने के लिए केन्द्र सरकार ऐसे आदेश जारी कर सकती है जो कि आदेश देने वाले अधिकारी की राय में

यह आदेश लोक-हित मे हो अथवा उसका नियमन नहीं किया जाय तो वह लोक-हित के लिए हानिप्रद हो सकते हैं।

(9) सूचनाएँ संकलित करने की शक्ति (Powers to collect information) [धारा 3 (2) (h)]—विभिन्न विषयों के नियमित करने की दृष्टि से यदि सूचनाएँ एवं तथ्यों को एकत्रित करना आवश्यक है तो इसके लिए आवश्यक आदेश प्रसारित करने की भी केन्द्र सरकार को शक्ति प्राप्त है।

किसी आवश्यक वस्तु के व्यापार एवं वाणिज्य में लगे व्यक्ति या व्यक्तियों को अपने कारोबार से सम्बन्धित सभी पुस्तकें एवं अभिलेख रखने तथा उन्हें निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करने के लिए केन्द्र सरकार बाध्य कर सकती है। [धारा 3 (2) (1)]

(10) तलाशी एवं अभिग्रहण करने की शक्ति (Power of search and seizure) [धारा 3 (2) (1)]—केन्द्र सरकार आदेश द्वारा किसी अधिकारी को अधिकृत कर सकती है जो किसी भी भवन के परिसर, वाहक, जलयान एवं वायुयान मे प्रवेश कर सके, तलाशी ले सके तथा ऐसी वस्तु या लेखों एव पुस्तकों का अभिग्रहण कर सकें जिसके सम्बन्ध में उसे परमिटों या लाइसेन्स के प्रतिकूल कार्य करने का विश्वास है।

(11) मूल्य निर्धारण करने की शक्ति [धारा 3 (3)]—कोई व्यक्ति किसी आवश्यक वस्तु को यदि केन्द्र सरकार द्वारा जारी किये गये किसी आदेश के अन्तर्गत विक्रय करता है तो केन्द्र सरकार उस वस्तु का मूल्य निर्धारित कर सकती है।

(12) सामान्य जनता को विक्रय किये जाने वाले खाद्य पदार्थों का मूल्य निर्धारित करने की शक्ति (Power to fix prices of food stuff being sold to general public) [धारा 3 (3) (A)]—यदि केन्द्र सरकार यह महसूस करे कि किसी परिक्षेत्र मे खाद्य पदार्थों के मूल्य बढ रहे हैं और जिनको रोकना आवश्यक है तो सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना जारी करके यह निर्देश दे सकती है कि उस परिक्षेत्र मे खाद्य पदार्थों का विक्रय इस धारा के प्रावधानो के अनुसार ही किया जावेगा।

(13) खाद्यान्नों, खाद्य-तिलहन एवं खाद्य तेलों का मूल्य निर्धारित करने की शक्ति (Power to fix prices of food grains edible oil seeds and oils) [धारा 3(3) (B)]—खाद्यान्नों खाद्य तिलहनो एवं खाद्य तेलो का मूल्य केन्द्र सरकार निर्धारित कर सकती है यदि सरकार ऐसा आदेश जारी करना जनहित मे आवश्यक समझे।

(14) चीनी का मूल्य निर्धारित करने की शक्ति (Power to fix prices for Sugar) [धारा 3(3)(C)]—केन्द्र सरकार चीनी का मूल्य निर्धारित कर सकती है। निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार चीनी का मूल्य निर्धारित करेगी :—

(i) यदि गन्ने का न्यूनतम मूल्य निर्धारित किया गया है तो उस न्यूनतम मूल्य को ध्यान में रखकर।

(ii) निर्माण लागत (चीनी की) को ध्यान में रखकर।

(iii) चीनी पर चुकाये गये अथवा चुकाये जाने वाले शुल्क या कर की राशि को ध्यान में रखकर।

(iv) व्यवसाय में लगी हुई पूँजी (चीनी निर्माण में) पर उचित प्रत्याय को सुरक्षित करके।

या किया जाने वाला है तो यह व्यक्ति ऐसी वस्तुओं तथा ऐसे पैकेजों, आवरणों या पात्रों का अभिग्रहण कर सकता है।

(2) ऐसी वस्तुओं के ले जाने में काम आने वाले विमानों, जलयानों, गाड़ियों अथवा अन्य सवारी साधनों अथवा पशुओं को तब अभिग्रहण किया जा सकता है जबकि उसके पास यह विश्वास करने का आधार है कि ऐसा वायुयान, जलयान, वाहन या सवारी का साधन इस अधिनियम की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत अपहरण करने योग्य है।

(3) अभिग्रहण ऐसी लेखा पुस्तकों या दस्तावेजों का किया जा सकता है जो उसकी राय में इस अधिनियम के अधीन किसी भी कार्यवाही के लिए उपयोगी या इससे सुसंगत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अभिग्रहण पैकेजों, आवरणों, एवं पात्रों, वस्तुओं को ले जाने के लिए काम आने वाले वाहनों लेखा पुस्तकों तथा दस्तावेजों का किया जा सकता है।

अभिग्रहण की रिपोर्ट
(Report of Seizure)

आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत दिये गये आदेश का जब कोई प्राधिकृत व्यक्ति पालन करते हुए किसी आवश्यक वस्तु का अभिग्रहण करता है तो बिना किसी अनुचित विलम्ब के उसकी रिपोर्ट उस जिले अथवा प्रेसीडेन्सी नगर, जिसमें ऐसी आवश्यक वस्तु का अभिग्रहण किया जाता है के जिलाधीश को प्रस्तुत की जावेगी चाहे कोई अभियोजन ऐसे आदेश के विरोध में प्रस्तुत किया गया हो अथवा नहीं।

अभिगृहीत वस्तु का निरीक्षण
(Inspection of Seized Commodities)

यदि जिलाधीश अभिग्रहण की रिपोर्ट के आधार पर उपयुक्त समझता है तो वह इस प्रकार अभिगृहीत आवश्यक वस्तु को निरीक्षण के लिए अपने समक्ष प्रस्तुत किये जाने का निर्देश दे सकता है।

अधिगृहण आदेश जारी करना
(Issuing Confiscation order)
[धारा 6 (A)]

आवश्यक वस्तु अधिनियम की [धारा 6A(i)] के अनुसार एक जिलाधीश इस अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत दिये गये आदेश का पालन करते हुए निम्न वस्तुओं के अधिग्रहण का आदेश दे सकता है यदि वह इससे सन्तुष्ट है कि इस आदेश का उल्लंघन किया गया है :—

(अ) अभिगृहीत की गई वस्तु का।

(ब) ऐसे पैकेज, आवरणों या पात्र का जिसमे ऐसी आवश्यक वस्तुएँ पायी जायें।

(स) ऐसी आवश्यक वस्तु को ले जाने में प्रयुक्त किसी पशु, गाड़ी जलयान अथवा अन्य कोई साधन जिसे ऐसी आवश्यक वस्तु को ले जाने मे काम लिया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी अभिग्रहीत आवश्यक वस्तु पंकेज, आवरण या पात्र, पशु, जलयान आदि का अधिग्रहण किया जा सकता है।

अपवाद

इस धारा के दो अपवाद हैं जहाँ पर अधिग्रहण का ऐसा आदेश जारी नहीं किया जा सकता है :—

(1) उत्पादक के सम्बन्ध में अपवाद—किसी उत्पादक से उसके द्वारा उत्पादित खाद्यान्नों अथवा खाद्य तिलहनों का अभिग्रहण किया गया है तो उत्पादक से इन वस्तुओं का इस धारा के अन्तर्गत अधिग्रहण नहीं किया जा सकेगा।

(2) भाड़े पर वाहन चलाने वालों के सम्बन्ध में अपवाद—यदि पशु, वाहन जलयान या सवारी का अन्य साधन भाड़े पर माल या यात्री ले जाता है तो ऐसे वाहनों के मालिकों को यह विकल्प दिया जायेगा कि वे इन वाहनों के अधिग्रहण के बदले ले जायी जाने वाली आवश्यक वस्तु के बाजार मूल्य के बराबर जुर्माना दे।

अभिगृहीत वस्तु का विक्रय
(Sale of Seized Commodity)
[धारा 6 A(2)]

इस धारा के अन्तर्गत जब्त किये गये माल के सम्बन्ध में जिलाधीश द्वारा रिपोर्ट प्राप्त करने पर या ऐसे माल का उसके द्वारा निरीक्षण करने पर यदि उसकी राय में कि वह माल शीघ्रता से प्राकृतिक रूप से नष्ट होने वाले स्वभाव का है अथवा अन्य किसी कारण से लोकहित में उसका विक्रय करना आवश्यक है तो वह उस वस्तु के विक्रय के सम्बन्ध में निम्नलिखित में से कोई भी आदेश दे सकता है :—

(1) यदि ऐसी आवश्यक वस्तु का इस अधिनियम के या उस समय अन्य प्रभावशील कानून के द्वारा निश्चित किये गये नियन्त्रित मूल्य पर विक्रय करने की आज्ञा दे सकता है।

(2) जहाँ इस प्रकार का कोई मूल्य निश्चित नहीं किया गया है तो ऐसे माल को सार्वजनिक नीलामी द्वारा बेचने की आज्ञा दे सकता है।

किन्तु इस प्रकार आवश्यक वस्तु का फुटकर विक्रय मूल्य इस अधिनियम के अन्तर्गत या किसी अन्य प्रचलित अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार या केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किया गया है तो कलेक्टर उस वस्तु के समान वितरण तथा उचित मूल्य पर उपलब्धि के लिए उस वस्तु का उस निर्धारित मूल्य पर उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से विक्रय किये जाने का आदेश दे सकता है।

विक्रय से प्राप्त राशि का व्यवस्थापन
(Disposal sale proceeds)
[धारा 6 A(3)]

जब कलेक्टर के आदेश से अभिगृहीत आवश्यक वस्तु का विक्रय किया जाता है तो उस वस्तु के विक्रय से प्राप्त राशि में से ऐसे विक्रय-व्यय, नीलामी व्यय या अन्य सम्बन्धित व्ययों की कटौती करके शेष धनराशि का भुगतान उस वस्तु के स्वामी अथवा उस व्यक्ति को कर दिया जायेगा जिससे उस वस्तु का अभिग्रहण किया गया है। परन्तु वस्तु के विक्रय से प्राप्त शेष राशि का भुगतान तभी किया जायेगा :—

(1) जब कलेक्टर द्वारा जब्त की गई वस्तु के सम्बन्ध में कोई आदेश अन्तिम

रूप से जारी नहीं किया गया हो।

(2) जब अपील की गई हो और अपील के निर्णय में ऐसा आदेश दिया गया हो।

(3) यदि ऐसे आदेश जिसके अधीन अधिग्रहण का आदेश जारी किया गया है, के विरोध के लिए लगाये गये अभियोजन के अन्तर्गत व्यक्ति को दोष-मुक्त कर दिया गया हो।

अधिग्रहण से पूर्व कारण बताओ नोटिस
(Show Cause notice before Confiscation)
[धारा 6(B)]

आवश्यक वस्तु पैकेज, आवरण पात्र, वाहन आदि को अधिग्रहण करने के लिए उसके स्वामी को आदेश तब तक जारी नहीं किया जा सकता है जब तक निम्नलिखित शर्तें पूरी नहीं की जाती हैं :—

(1) अधिग्रहण की सूचना का लिखित में होना आवश्यक है,

(2) सूचना मे उन आधारों का उल्लेख करना आवश्यक है जिन पर उनके अधिग्रहण का विचार है।

(3) अधिग्रहण के आधारों के विरुद्ध उसे अपना अभ्यावेदन (Representation) प्रस्तुत करने का अवसर भी दिया जाना चाहिये।

इस सन्दर्भ में दयालचन्द गगाराम बनाम राजस्थान राज्य (1981) का मामला उल्लेखनीय है जिसमें अधिग्रहण का वह आदेश जो कि सूचना में दिये गये आधारों से भिन्न आधारों पर था अवैध घोषित किया गया।

अधिग्रहण आदेश के विरुद्ध अपील
(Appeal against the order of Confiscation)
[धारा 6 C (1)]

जब किसी व्यक्ति को उसकी वस्तु के अधिग्रहण से सम्बद्ध आदेश प्राप्त होता है तो वह पीड़ित पक्ष ऐसी जब्ती के आदेश प्राप्त होने की तिथि से एक माह के भीतर सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किसी न्यायिक अधिकारी के समक्ष उस जब्ती के आदेश के विरुद्ध अपील कर सकता है। राज्य सरकार अपील को अपनी बात कहने का एक अवसर देने के बाद अधिग्रहण के आदेश को—

(i) पुष्ट कर सकता है।

(ii) संशोधन कर सकता है या

(iii) निरस्त कर सकता है।

अधिग्रहण आदेश के संशोधन अथवा निरस्तीकरण का प्रभाव
(Effects of modified or Annualment of the Confiscation order)
[धारा 6 C (2)]

यदि किसी वस्तु के अधिग्रहण के आदेश के विरुद्ध पीड़ित पक्षकार द्वारा अपील की जाती है और उस आदेश में राज्य सरकार कुछ संशोधन कर देती है अथवा उस आदेश को निरस्त कर देती है अथवा अधिग्रहण आदेश के विरुद्ध चलाये गये अभियोजन मे उसे

दोष-मुक्त कर दिया गया है तो ऐसी स्थिति में उसे वह वस्तु पुनः प्राप्त करने का अधिकार होगा।

अभिग्रहण के सम्बन्ध में जिलाधीश की शक्तियाँ
(Powers of Collector with regards Seizure)

आवश्यक वस्तु अधिनियम की यदि धारा 3 के अन्तर्गत जारी किये गये आदेश का पालन करते हुए कोई प्राधिकृत व्यक्ति किसी आवश्यक वस्तु का अधिग्रहण करता है तो अभिगृहीत वस्तु के सम्बन्ध में जिलाधीश को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं :—

(1) अभिग्रहण की रिपोर्ट प्राप्त करना
(2) अभिगृहीत वस्तु का निरीक्षण करना
(3) अभिगृहीत वस्तु के विक्रय का आदेश देना
(4) अभिगृहीत वस्तु के अधिग्रहण से पूर्व कारण [illegible]
(5) अभिगृहीत वस्तु के अधिग्रहण का आदेश देना
(6) विक्रय से प्राप्त राशि का व्यवस्थापन करना

इन सबका विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।

विशेष न्यायालयों का गठन
(Constitution of Special Courts)
[धारा 12 (1)]

राज्य सरकार आवश्यक वस्तु अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले अपराधों पर शीघ्र विचार करने के उद्देश्य से राज्य पत्र में अधिसूचना प्रसारित कर जितने आवश्यक हो उतने ही विशेष न्यायालयों का गठन कर सकती है।

विशेष न्यायालयों के न्यायाधीश
(Judges in the Special Courts)
[धारा 12 (2) तथा (3)]

किसी भी विशेष न्यायालय में एक ही न्यायाधीश होगा राज्य सरकार की प्रार्थना पर इस न्यायाधीश की नियुक्ति उच्च न्यायालय (High Court) द्वारा की जावेगी।

[धारा 12 (2)A(3)]

न्यायाधीश की योग्यताएँ
(Qualifications)

विशेष न्यायालय का न्यायाधीश किसी भी व्यक्ति को तभी नियुक्त किया जा सकता है जबकि उसमें निम्नांकित योग्यताएँ हों :—

(i) किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में वह व्यक्ति नियुक्त होने योग्य हो अथवा

(ii) कम से कम एक वर्ष के लिए वह व्यक्ति सत्र न्यायाधीश अथवा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के पद पर रह चुका हो। [धारा 12 A(3)]

विशेष न्यायालयों द्वारा विचारण योग्य अपराध
(Offences triable by Special Courts)

(1) आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन आने वाले सभी अपराधों का विचारण

या परीक्षण केवल उस विशेष न्यायालय द्वारा ही किया जायेगा जो उस अपराध वाले क्षेत्र के लिए गठित किया हुआ है। परन्तु किसी क्षेत्र के लिए जहाँ एक से अधिक विशेष न्यायालय गठित किये गये हैं तो उस विशेष न्यायालय द्वारा अपराध का विचारण या परीक्षण किया जायेगा जिसे इस सम्बन्ध मे उच्च न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट कर दिया गया है।

(2) इस अधिनियम के अन्तर्गत यदि कोई व्यक्ति अभियुक्त पाया जाता है अथवा अपराध करने का संदेह उस व्यक्ति पर किया जाता है और उस व्यक्ति को दण्डप्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2(a) अथवा धारा 167 (2)(b) के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के पास भिजवाया गया है तो जैसा वह मजिस्ट्रेट उचित समझे उसकी अभिरक्षा (Custody) मे कुल मिलाकर अधिक से अधिक 15 दिन तक रोक रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है किन्तु ऐसा मजिस्ट्रेट न्यायिक मजिस्ट्रेट होना चाहिये। ऐसा मजिस्ट्रेट यदि कार्यकारी मजिस्ट्रेट है तो अधिक से अधिक कुल मिलाकर सात दिनों तक रोक रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है।

यदि ऐसा कोई मजिस्ट्रेट इस अवधि के समाप्त होने के पहले यह धारणा बनाता है कि इसका रोके रखना अनावश्यक है तो वह उस व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने का आदेश दे सकता है यदि वह सन्तुष्ट नही हो पाता है तो वह उस विशेष न्यायालय में भिजवाने के आदेश दे देगा जिसके अधिकार-क्षेत्र में वह आता है।

विशेष न्यायालय की शक्तियाँ
(Powers of Special Courts)

आवश्यक वस्तु अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले अपराध पर शीघ्र विचार करने के उद्देश्य से विशेष न्यायालय को कुछ विशिष्ट शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। ये शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(1) भिजवाये गये अभियुक्त के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेट की शक्तियों के प्रयोग की शक्ति —विशेष न्यायालय अपने पास भिजवाये गये व्यक्तियों के सम्बन्ध में उन सभी शक्तियों (खण्ड के प्रावधानों को छोड़ कर) का प्रयोग कर सकता है जो ऐसे ही मामले के सम्बन्ध में किसी मजिस्ट्रेट को प्राप्त हो सकती है।

(2) अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने का अधिकार—आवश्यक वस्तु अधिनियम के अन्तर्गत जिस व्यक्ति पर अपराध करने का सन्देह है उसे केवल जमानत पर रिहा करने का अधिकार विशेष न्यायालय के अतिरिक्त किसी भी न्यायालय को नही होगा।

(3) विशेष न्यायालय द्वारा अपराध के संज्ञान से सम्बन्धित शक्ति—इस अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों का संज्ञान विशेष न्यायालय इसके तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट देखकर अपराधी का विचारण किये बिना ही कर सकता है।

(4) संक्षिप्त विचारण की शक्ति—विशेष न्यायालय द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन आने वाले अपराध का संक्षिप्त रूप से विचारण किया जा सकता है और संक्षिप्त विचारण में कोई अपराध सिद्ध होता है तो उसे 2 वर्ष तक के कारावास की सजा विशेष न्यायालय दे सकता है।

(5) अपराध में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित व्यक्ति को क्षमा करना—इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति जिस पर अपराध में प्रत्यक्ष या परोक्ष

रूप से सम्बन्धित होने या उसका गुप्त भेद रखने का संदेह है, तो गवाही पा लेने के लिए विशेष न्यायालय उसे इस शर्त पर क्षमा कर सकता है कि वह अपराध चाहे मालिक के रूप में हो या ऐसा अपराध करने के लिए प्रेरित करने वाले के सम्बन्ध में जो भी बातें उसकी जानकारी में हैं, पूर्णतया सत्य रूप से प्रकट कर देता है।

राजकीय या लोक सेवकों पर अभियोजन
(Prosecution of Public servants)
[धारा 15 (A)]

कोई व्यक्ति यदि लोक-सेवक हो और वह धारा 3 के अधीन दी गयी आज्ञा के पालन में अपना कर्तव्य पालन करते हुए या करने को प्रस्तुत होते हुए, किसी अपराध को करने में अभियुक्त हो तो निम्नलिखित की पूर्व अनुमति के कोई न्यायालय मामले को नहीं सुन सकेगा—

(i) वह व्यक्ति यदि केन्द्र सरकार मे नियुक्त है या तथाकथित अपराध के घटित होने के समय केन्द्र सरकार में नियुक्त था, तो केन्द्रीय सरकार से पूर्व न्यायालय को अनुमति लेनी पड़ेगी।

(ii) वह व्यक्ति यदि किसी राज्य सरकार मे नियुक्त है या कथित अपराध किये जाने के समय राज्य सरकार में नियुक्त था, तो न्यायालय को सम्बन्धित राज्य सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

आदेश का उल्लंघन करने पर दण्ड
(Penalties on Contravention of Order)
(धारा 7)

आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार आदेश जारी कर सकती है। आदेश के उल्लंघन के सम्बन्ध मे प्रमुख दण्ड-प्रावधान निम्नानुसार हैं—

(1) आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3(2)(b) तथा (1) के अन्तर्गत जारी आदेश का यदि कोई व्यक्ति उल्लंघन करता है तो उसे एक वर्ष तक का कारावास दिया जा सकता है और वह जुर्माने के लिए भी दायी होगा।

(2) आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 की यदि किसी अन्य उपधारा के अन्तर्गत जारी आदेश का उल्लघन किया जाता है तो कम से कम तीन माह का तथा अधिक से अधिक सात वर्ष तक का उसे कारावास दिया जा सकता है और वह जुर्माने के लिए भी दायी होगा। [धारा 7(1)(a)]

(3) आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत यदि जारी किये गये आदेश का उल्लंघन किया जाता है तो सरकार के पक्ष में उस आदेश से सम्बन्धित सम्पत्ति का अपहरण कर लिया जायेगा। [धारा 7(1) (b)]

(4) न्यायालय यदि आदेश देता है तो आदेश में वर्णित सम्पत्ति के अपहरण के साथ-साथ निम्नलिखित चीजों का अपहरण किया जा सकेगा।

(i) ऐसा कोई भी पैकेज, आवरण जिसमे ऐसी सम्पत्ति पायी जाती है तथा

(ii) ऐसा कोई भी पशु गाड़ी, जलयान अथवा अन्य कोई सवारी साधन जो सम्पत्ति को ले जाने के लिए प्रयोग में लाया गया है। [धारा 7 (1) (C)

(i) प्राधिकृत नियन्त्रक (Authorized controller)

(ii) अभिग्रहण योग्य वस्तुएँ (Seizable commodities)

(iii) अधिग्रहण योग्य वस्तुएँ (Confiscation commodities)

(iv) लोक-सेवकों का अभियोजन (Prosecution of Public servants)

(v) शक्तियों का प्रत्यायोजन (Delegation of powers)

(vi) आदेश जारी करना तथा तामील करना (Issuance and service of order)

(vii) अपील तथा पुनरीक्षण (Appeal and revision)

(viii) मिथ्या-कथन (False statement)

(ix) कम्पनियों द्वारा अपराध (Offences by companies)

(x) निर्धारित हर्जाना एवं दण्ड (Liquidated damages and penalty)

8. आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये। इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य क्या है ? स्पष्ट कीजिये।
Give the main provions of the essential Commodities Act 1955. What are the main objectives of this Act ? Explain.

9. आवश्यक वस्तु अधिनियम में सरकार की आवश्यक वस्तु को जब्त करने की शक्ति एवं विधि बतलाइये।
Describe the powers and procedure of confiscation of an essential commodity under the Essential Commodities Act ?
(राज. वि. वि. 1983)

10. आवश्यक वस्तु अधिनियम में विशेष न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या, नियुक्ति तथा योग्यताओं के सम्बन्ध में व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिये। कौन से अपराध विशेष न्यायालय द्वारा विचारण के योग्य हैं ? स्पष्ट करें।
State the provisions of the Essential Commodities Act regarding number, appointment and qualifications of Judges of special courts What are the offences triable by special courts ? Explain.
(राज. वि. वि. 1984)

11. (i) क्या अधिग्रहण करने से पूर्व लिखित में नोटिस देना अनिवार्य है ?
(ii) क्या वस्तु के स्वामी को, जिसकी वस्तु का अधिग्रहण किया गया है, न सुनना आदेश को अवैध बना देता है।
(iii) क्या अधिग्रहण के आदेश के विरुद्ध 6 माह पश्चात् अपील की जा सकती है ?
(i) Is it obligatory to issue a notice in writing to the party before the goods seized ?
(ii) Is the non-issuing of a notice in writing to the party whose goods have been seized makes the order illegal ?
(iii) Can an appeal be made against the seizure of goods after six months ?

□□□

33

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम, 1881

(Indian Negotiable Instrument Act 1881)

विषय-सामग्री – परिचय, विनिमय साध्य विलेख से आशय, विशेषताएँ, वैधानिक मान्यताएँ विनिमय-पत्र की परिभाषा, विशेषताएँ, नमूना पक्षकार, भेद, अपूर्ण-विलेख, संदिग्ध विलेख, संदिग्ध एवं अपूर्ण विलेख में अन्तर, परिपक्वता सम्बन्धी नियम, प्रतिज्ञा-पत्र विशेषताएँ, प्रारूप विनिमय पत्र तथा प्रतिज्ञा पत्र में अन्तर, धारक से आशय, यथा विधिधारी से आशय, विशेष अधिकार, मूल्यार्थधारी, यथाविधि धारी व मूल्य के लिए धारी में अन्तर, धारी और यथाविधि धारी में अन्तर, यथाविधि भुगतान के तत्व, बैंक ड्राफ्ट या माँग प्रपत्र, चैक की परिभाषा, चैक तथा विनिमय बिल में अन्तर, प्रारूप, प्रकार, रेखांकन के प्रकार, रेखांकन कौन कर सकता है ? किन परिस्थितियों में बैंक चैक का भुगतान करने से इन्कार कर सकता है ? किन परिस्थितियों में चैक के भुगतान का तिरस्कार करना आवश्यक है, परक्रामण या हस्तान्तरण का आशय परक्रामण कौन कर सकता है ? परक्रामण की विधि पृष्ठांकन अथवा बेचान का आशय प्रकार, पक्षकारों की क्षमता से आशय, विनिमय-साध्य विलेख के अयोग्य पक्षकारों की स्थिति, पक्षकारों का दायित्व, प्रस्तुति से आशय, स्वीकृति के लिए प्रस्तुति कौन करे, प्रस्तुति किसको की जाय ? समय, स्थान विनिमय बिल जिन्हें स्वीकृति के लिए प्रस्तुति की आवश्यकता नहीं, बिल की स्वीकृति से आशय, प्रकार, भुगतान के लिए प्रस्तुति सम्बन्धी नियम, भुगतान के लिए प्रस्तुति कब आवश्यक है ? पक्षकारों की दायित्व से मुक्त होने की रीतियाँ, महत्त्वपूर्ण परिवर्तन, विलेख का अनादरण या अप्रतिष्ठा से आशय, अनादरण की सूचना अनादरण की सूचना कब अनावश्यक है ? नोटिंग से आशय, प्रोटेस्ट से आशय, हुण्डियों से आशय, प्रकार, अभ्यास के लिए प्रश्न ।

परिचय

विनिमय-साध्य विलेखों से सम्बन्धित नियम भारत में विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 में समाविष्ट किये गये हैं। यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत मे लागू होता है । इस अधिनियम में प्रतिज्ञापत्र, विनिमय पत्र तथा चैकों के केवल निर्गमन एवं विनिमय-साध्यता सम्बन्धी नियमों का ही उल्लेख किया गया है ।

विनिमय-साध्य विलेख से आशय
(Meaning of Negotiable Instrument)

भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 13(1) के अनुसार,

"एक विनिमय साध्य विलेख से आशय किसी प्रतिज्ञा-पत्र या चैंक से है जिसकी लिखित रकम आदेशित व्यक्ति या वाहक का देय होती है।"[1]

विश्लेषण (1) विनिमय साध्य विलेख की परिभाषा अत्यन्त संकुचित है इसके अन्तर्गत केवल प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र चैंक के अतिरिक्त अन्य विनिमय साध्य-विलेख जैसे हुण्डी आदि सम्मिलित नहीं किये जा सकते।

(2) विनिमय साध्य विलेखों के स्वभाव एवं विशेषताओं को अधिनियम की परिभाषा व्यक्त नही करती।

न्यायाधीश विलीस (willis) के अनुसार "विनिमय साध्य-विलेख वह है जिसमे स्वामित्व उस व्यक्ति को जो उसे सद्भावना से तथा मूल्य के बदले मे प्राप्त करता हो, भले ही जिस व्यक्ति से यह पाया गया है उसके स्वामित्व में कोई दोष क्यों न हो।"[2]

विनिमय साध्य विलेख की विशेषताएँ

(1) स्वामित्व का हस्तान्तरण—विनिमय साध्य विलेख का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को केवल सुपुर्दगी द्वारा (यदि वह वाहक है) अथवा बेचान व सुपुर्दगी द्वारा (यदि वह आदेशित है) हस्तान्तरित हो जाता है। इस विशेषता के कारण विनिमय-साध्य विलेख को ऋणो के भुगतान के लिए सुगमतापूर्वक हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(2) विनिमय साध्य विलेख वाहक अथवा आदेशित हो सकता है—विनिमय साध्य-विलेख वाहक भी हो सकता है या आदेशित भी हो सकता है।

(3) स्वत्वाधिकार—विनिमय-साध्य विलेख के यथा विधिदारी (Holder in due course) के स्वामित्व पर विलेख के हस्तान्तरक या किसी अन्य पूर्व स्वामी के स्वामित्व मे पाये जाने वाले दोष का कोई कुप्रभाव नही पडता है। यदि हस्तान्तरिती ने सद्भावना के साथ मूल्य के बदले विनिमय साध्य-विलेख को प्राप्त किया है तो वह उसका वास्तविक स्वामी हो जाता है चाहे हस्तान्तरक का अधिकार दूषित ही क्यों न रहा हो।

(4) वाद प्रस्तुत करना—विनिमय साध्य विलेख का धारक स्वयं अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है। उस विलेख के भुगतान के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को विलेख के हस्तान्तरण की सूचना देने की कोई आवश्यकता नही होती है।

(5) प्रतिफल (Consideration)—प्रत्येक विनिमय साध्य विलेख के लिए मूल्यवान् प्रतिफल का होना माना जाता है। अतः उसको विलेख मे लिखने की आवश्यकता नहीं होती है। प्रतिफल के आधार पर जो व्यक्ति विलेख की वैधता को सही नहीं बतलाता है उसी पर प्रतिफल के न होने की बातों को साबित करने का दायित्व होता है।

---

1. "A negotiable instrument means a Promissory note, Bill of exchange, or chequ Payable either to order or to bearer."
(Negotiable instruments Act 1881 Sec. 13)

2. "A negotiable instrument is one the Property in which is acquired by every person who takes it bonafide and for value not with standing any defect of title in the person from whom he took it." (Justice willis.)

(6) समन्याय (Equity)—यह हस्तान्तरिती को ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिस पर न्याय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरणार्थ कोई कपट, जिसमें यथाविधि-धारी शामिल नहीं रहा हो।

(7) मुद्रा की भाँति यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हस्तान्तरित होता है और अनेक कार्य मुद्रा के करता है।

विनिमय-साध्य विलेखों से सम्बद्ध वैधानिक मान्यताएँ
(Presumptions as to negotiable Instruments)
(धारा 118, 119)

विनिमय-साध्य विलेख अधिनियम की धारा 118 के अनुसार, विनिमय-साध्य विलेख के सम्बन्ध में जब तक कि इसके विरुद्ध सिद्ध नही कर दिया गया है निम्नलिखित सात वैधानिक मान्यताओं का होना माना जाता है :—

(1) विनिमय-साध्य विलेख प्रतिफल के लिए लिखा, स्वीकृत, पृष्ठांकित अथवा हस्तान्तरित किया गया है।

(2) प्रत्येक विनिमय-साध्य विलेख अंकित दिन को ही लिखा गया है।

(3) प्रत्येक विनिमय-साध्य विलेख लिखे जाने के बाद किन्तु उसकी परिपक्वता के पूर्व स्वीकार किया गया है।

(4) विनिमय-साध्य विलेख का प्रत्येक हस्तान्तरण उसके परिपक्व होने से पहले किया गया है।

(5) विनिमय-साध्य विलेख पर अंकित पृष्ठांकन उसी क्रम से किये गये थे जिस क्रम में उस विलेख पर लिखे गये हैं।

(6) कोई विलेख यदि खो गया है तो यह मान लिया जाता है कि उस पर यथोचित टिकट लगे हुए थे।

(7) विनिमय-साध्य विलेख का धारक यथाविधि धारक है।

विनिमय-पत्र
(Bill of Exchange)

विनिमय-पत्र की परिभाषा

अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, "विनिमय-साध्य पत्र एक शर्तहीन, आज्ञा सहित, लेखक द्वारा हस्ताक्षरित एवं लिखित प्रलेख है जिसके द्वारा लिखाने वाला किसी निश्चित व्यक्ति को यह आज्ञा देता है कि वह एक निश्चित राशि का किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार अथवा उसके वाहक को भुगतान कर दे।"[1]

---

1. "A Bill of exchange is an instrument in writing containing an unconditional order signed by the maker directing a certain Person to Pay a certain sum of money only to or to the order of, a certain Person or to the bearer of the instrument." [Negotiable instruments Act 1881 Sec. (5)]

विनिमय बिल की विशेषताएँ

(1) विनिमय बिल सदैव लिखित में होता है ।

(2) विनिमय बिल एक प्रकार का आज्ञा-पत्र होता है जिसे लेनदार अपने देनदार पर लिखता है ।

(3) विनिमय बिल शर्त-रहित होता है ।

(4) विनिमय बिल पर लेखक के हस्ताक्षर होते हैं ।

(5) विनिमय बिल में एक निश्चित राशि भुगतान करने का आदेश होता है ।

(6) विनिमय बिल में किसी विशेष व्यक्ति को दी हुई रकम चुकाने की आज्ञा रहती है ।

(7) निश्चित रकम का भुगतान निश्चित समय के अन्दर होना आवश्यक है ।

(8) विनिमय बिल की राशि का भुगतान बिल का लेखक स्वयं ले सकता है या अपनी आज्ञा से भुगतान लेने का अधिकार किसी अन्य दे सकता है अथवा बिल वाहक को भी भुगतान प्राप्त करने का आदेश दिया जा सकता है ।

(9) यह यथोचित रूप से मुद्रांकित होता है ।

विनिमय बिल का नमूना

टिकट

जोधपुर
15 मई, 1985

500/-

उपर्युक्त तिथि के तीन महीने बाद मुझे या मेरे आदेशित व्यक्ति को पाँच सौ रुपये का भुगतान कीजिए जिसका मूल्य प्राप्त हो गया है ।

श्री श्याम
बाल बाड़ी
जयपुर

रमेश जैन

Stamp	Jodhpur May15, 1985

Rs. 500/–

Three months after date pay to me or order the sum of Rupees Five hundred only for value received.

To, Ramesh Jain

Shri Shyam,
Bala Bari,
Jaipur.

विनिमय विल के पक्षकार-6

(1) निर्माता—विनिमय विल जो व्यक्ति लिखता है तथा अपने हस्ताक्षर करता है, वह निर्माता कहलाता है।

(2) देनदार—जिस व्यक्ति के ऊपर बिल लिखा जाता है उसे देनदार कहा जाता है।

(3) स्वीकर्त्ता—विनिमय बिल को स्वीकार करने वाले को स्वीकर्त्ता कहते हैं।

(4) लेनदार—विनिमय बिल की राशि का भुगतान प्राप्त करने का अधिकार जिस व्यक्ति को होता है, वह लेनदार कहलाता है।

(5) धारक—विनिमय बिल का जो व्यक्ति अधिकारी होता है उसे धारक कहते हैं।

(6) पृष्ठांकन कर्त्ता—विनिमय विल को जब धारक अन्य किसी व्यक्ति के नाम पृष्ठांकित कर देता है तो वह पृष्ठांकन कर्त्ता हो जाता है।

(7) पृष्ठांकनी—विनिमय बिल जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठांकित किया जाता है उसे पृष्ठांकनी कहते हैं।

विनिमय बिलों के भेद
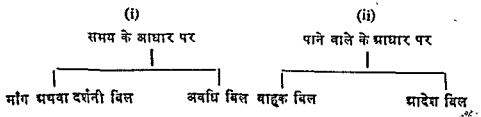
तिथि विलेख की तिथि से मेल खानी चाहिए जैसे यदि विलेख 30 अगस्त को लिखा गया है तीन माह बाद उसका भुगतान होना है तो 30 नवम्बर इसकी देय तिथि होगी।

प्रतिज्ञा पत्र
(Promissory Note)

अधिनियम की धारा 4 के अनुसार, "प्रतिज्ञा पत्र लेखक द्वारा हस्ताक्षरित एक लिखित विलेख है (बैंक नोट और करेंसी को छोड़कर) जिसमे लिखाने वाला उसमे दिये हुए किसी व्यक्ति को अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को अथवा उसके वाहक को, बिना किसी शर्त के उसमें लिखी हुई एक निश्चित रकम का भुगतान कर देगा।"[1]

उदाहरण—"मैं रमेश को अथवा आदेशित व्यक्ति को 1000 रुपये देने का वचन देता हूँ।" यह प्रतिज्ञा-पत्र है।

प्रतिज्ञा-पत्र की विशेषताएँ

(1) लिखित होना—प्रतिज्ञा पत्र का लिखित होना आवश्यक है।

(2) प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने की प्रतिज्ञा होनी चाहिए—प्रतिज्ञा पत्र के लिए भुगतान करने का स्पष्ट वचन या प्रतिज्ञा होना आवश्यक है।

(3) लेखक के हस्ताक्षर होना आवश्यक है—प्रतिज्ञा पत्र पर जब लेखक हस्ताक्षर नहीं करता तब तक प्रतिज्ञा पत्र अपूर्ण माना जाता है अगर लेखक हस्ताक्षर नही कर सकता तब वह किसी तरह के चिन्ह या अंगूठे के निशान द्वारा हस्ताक्षर कर सकता है।

(4) भुगतान का वचन बिना शर्त होना चाहिए—प्रतिज्ञा-पत्र किसी शर्त के अधीन नही होना चाहिए अर्थात् प्रतिज्ञा-पत्र शर्त रहित होना चाहिए।

प्रतिज्ञा-पत्र की विशेषताएँ

1. लिखित होना।
2. प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने की प्रतिज्ञा होनी चाहिए।
3. लेखक के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।
4. भुगतान का वचन बिना शर्त होना चाहिए।
5. लेखक निश्चित होना चाहिए।
6. निश्चित रकम।
7. भुगतान प्राप्त करने वाला निश्चित होना चाहिए।
8. देय राशि केवल मुद्रा के रूप मे होनी चाहिए।
9. प्राप्तकर्ता व लेखक अलग-अलग हो।
10. भुगतान का स्थान, तिथि व प्रतिफल को लिखना आवश्यक नही।

(5) लेखक निश्चित होना चाहिए—प्रतिज्ञा-पत्र लिखने वाला एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए प्रतिज्ञा-पत्र कोई एक व्यक्ति लिख सकता है या बहुत से व्यक्तियों द्वारा मिल कर लिखा जाता है।

---

1. A Promissory note is an instrument in writing (not being a bank note or a curency note) containing an un conditional undertaking, signed by the maker to pay a certain sum of money only to, or to the order of a certain Person, or the bearer of the instrument." [Negotiable instruments Act, 1881 Sec (4)]

(6) निश्चित रकम—प्रतिज्ञा-पत्र में भुगतान की जाने वाली रकम निश्चित होनी चाहिए उसमें वृद्धि या कमी नहीं होनी चाहिए।

(7) भुगतान प्राप्त करने वाला निश्चित होना चाहिए—प्रतिज्ञा-पत्र मे उस पक्षकार का स्पष्ट नाम होना चाहिए, जिसको भुगतान किया जाना है।

(8) देय राशि केवल मुद्रा के रूप में होनी चाहिए—प्रतिज्ञा-पत्र के लिए यह आवश्यक है कि राशि का भुगतान केवल मुद्रा में ही होना चाहिए।

(9) प्राप्तकर्ता व लेखक अलग-अलग हों—ऐसा प्रतिज्ञा पत्र जो एक स्वयं लेखक को ही देय हो शून्य होता है अतः प्राप्तकर्ता व लेखक अलग-अलग होना आवश्यक है।

(10) भुगतान का स्थान, तिथि व प्रतिफल को लिखना आवश्यक नहीं—भुगतान का स्थान, तिथि और प्रतिफल का वर्णन प्रतिज्ञा-पत्र मे करना आवश्यक नहीं है।

प्रतिज्ञा-पत्र का प्रारूप

टिकट

जोधपुर
15 मई, 1985

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उपर्युक्त तिथि के तीन माह बाद रमेश को अथवा आदेशित व्यक्ति को केवल पाँच सौ रुपये दे दूँगा।

हस्ताक्षर
महेश

विनिमय-पत्र तथा प्रतिज्ञा-पत्र में अन्तर
(Distinction between a Bill and a Promissory Note)

क्र. सं.	विनिमय-पत्र	प्रतिज्ञा-पत्र
1.	इसमें लेखक, देनदार व लेनदार अर्थात् तीन पक्षकार होते हैं।	इसमें लेखक व लेनदार अर्थात् दो पक्षकार होते हैं।
2.	विनिमय पत्र में लेखक व लेनदार एक ही व्यक्ति हो सकता है।	प्रतिज्ञा-पत्र में लेखक, लेनदार नहीं बन सकता। हाँ वह देनदार होता है।

क्र.सं.	विनिमय-पत्र	प्रतिज्ञा-पत्र
3.	विनिमय बिल की प्रतिष्ठा होने पर धारक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह लेखक तथा पृष्ठांकन कर्ताओं को सूचना दे।	प्रतिज्ञा-पत्र में इस प्रकार की सूचना की जरूरत नहीं होती।
4.	विनिमय-बिल लेखक का स्वीकर्ता से सीधा सम्बन्ध होता है, प्राप्तकर्ता से नहीं।	प्रतिज्ञा-पत्र में लिखने वाले का सम्बन्ध ही सीधे स्वीकर्ता या देनदार से रहता है।
5.	विनिमय बिल की स्वीकृति आवश्यक है।	प्रतिज्ञा-पत्र मे स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।
6.	विनिमय बिल के अप्रतिष्ठित होने पर इसका प्रोटेस्ट कराया जाता है।	प्रतिज्ञा-पत्र में इसकी आवश्यकता नहीं होती है।
7.	विनिमय बिल जब तक स्वीकार न हो जाय लेखक का मूल प्रमुख दायित्व रहता है। परन्तु स्वीकार होते ही लेखक का दायित्व गौण व प्रतिभू की भांति हो जाता है।	प्रतिज्ञा-पत्र में लेखक का दायित्व प्रमुख और शर्त-रहित होता है।
8.	विनिमय बिल में देनदार के लिए लेखक की आज्ञानुसार भुगतान करने की शर्त-रहित आज्ञा होती है।	प्रतिज्ञा-पत्र में लेखक द्वारा लेनदार या उसके आदेशित व्यक्ति को भुगतान करने की शर्त-रहित प्रतिज्ञा होती है।

धारक के आशय
(Holder)

अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, "किसी प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र अथवा चैक का धारक वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से देय रकम प्राप्त करने का अधिकार है। जब कोई प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र, अथवा चैक खो भी गया है अथवा नष्ट हो गया है तो भी उसका धारक वही व्यक्ति होता है जो ऐसी हानि या विनाश के समय इसका अधिकारी था।"[1]

1. The holder of a promissory note, bill of exchange or cheque means any person entitled in his own name to the possession there of, and to receive or recover the amount due there on from the parties there to where the note, *bill or cheque is lost or destroyed, its holder is the person so entitled* at the time of such loss or destruction."

[Negotiable Instruments Act 1881 Sec 8]

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि धारक होने के लिए निम्न दो अधिकारों का होना आवश्यक है :—

(1) अपने नाम में ही उसे विलेख रखने का अधिकार होना चाहिये यह अधिकार चाहे उसे प्राप्तकर्ता, पृष्ठांकिती या वाहक के रूप से ही प्राप्त हुआ हो।

(2) अपने नाम मे ही उसे विलेख का रुपया प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये। अतः एक चोर धारक नहीं हो सकता क्योंकि न तो अपने नाम में उसको रख सकता है और न उसका रुपया अपने नाम में प्राप्त कर सकता है।

यथाविधिधारी से आशय
(Holder In due Course)

अधिनियम की धारा 9 के अनुसार यथाविधिधारी वह व्यक्ति होता है जो किसी विनिमय-साध्य विलेख को निम्नलिखित परिस्थितियों में प्राप्त करता है—

(1) वह विलेख का अधिकारी हो। वह व्यक्ति जब तक धारी नहीं होगा वह यथाविधिधारी नहीं हो सकता।

(2) वह किसी प्रतिफल के विनिमय मे प्राप्त किया गया हो।

(3) वह विलेख में लिखित राशि के देय होने से पूर्व ही उसका धारी हुआ हो।

(4) उसे इस बात का सन्देह होने की जरा भी आशंका न रही हो कि जिस व्यक्ति से उसने स्वत्वाधिकार प्राप्त किया है उसके स्वत्वाधिकार में कोई दोष था।

(5) विलेख का परिपूर्ण दशा में होना आवश्यक है वह उसका तभी यथाविधिधारी होगा, अन्यथा नहीं।

यथाविधि-धारी के विशेष अधिकार

यथाविधि धारी के विशेष अधिकार

1. अपूर्ण स्टाम्प युक्त लेख पत्र।
2. पूर्व पक्षकारों का दायित्व।
3. कल्पित अथवा झूठे नाम की दशा मे।
4. विलेख खोने की दशा में।
5. धारक द्वारा यथाविधि धारी से अधिकार प्राप्त किया जाना।
6. विनिमय-साध्यता द्वारा
7. आदाता के बेचान करने की क्षमता असंदिग्ध होना।
8. विलेख की प्रामाणिकता असंदिग्ध होना।

(1) **अपूर्ण स्टाम्प युक्त लेख पत्र**— जो व्यक्ति हस्ताक्षर करके स्टाम्प लगा हुआ, किन्तु अपरिपक्व विलेख किसी दूसरे को हस्तान्तरित कर देता है तो वह यथा-विधि धारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता कि वह विलेख उसके द्वारा दिये गये निर्देशों या अधिकारों के अनुसार पूरा नहीं किया गया है यदि स्टाम्प विलेख की राशि के लिए पर्याप्त है।

(2) **पूर्व-पक्षकारों का दायित्व**— विनिमय-साध्य विलेख का प्रत्येक पूर्व-पक्षकार यथाविधिधारी के प्रति तब तक दायी रहता है जब तक कि विलेख पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर दिया जाता।

(3) **कल्पित अथवा झूठे नाम की दशा में**—यदि कोई बिल किसी कल्पित नाम के द्वारा भुगतान करने को आदेशित किया गया हो और यथाविधि धारी के लिए पृष्ठांकित किया जाता है तो स्वीकार-कर्ता यथाविधि-धारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता कि वह नाम कल्पित था।

(4) विलेख खोने की दशा में—किसी विनिमय-साध्य विलेख पर दायी कोई पक्षकार यथाविधि धारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता कि विलेख उससे खो गया था अथवा उससे कपट द्वारा अथवा किसी अन्य अपराध द्वारा अथवा अवैध प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया गया था।

(5) धारक द्वारा यथाविधि धारी से अधिकार प्राप्त किया जाना—किसी विनिमय-साध्य विलेख का वह धारी जो यथाविधिधारी से स्वत्व प्राप्त करता है उस विलेख का यथाविधिधारी माना जाता है।

(6) विनिमय-साध्यता द्वारा—जब कोई विलेख किसी यथाविधि धारी को बेचान किया गया हो तो उससे सम्बन्धित अन्य पक्षकार अपने दायित्व से इस आधार पर नहीं बचा सकते कि विलेख की सुपुर्दगी सप्रतिबन्ध अथवा किसी विशेष उद्देश्य के लिए की गयी थी।

(7) आदाता के बेचान करने की क्षमता असंदिग्ध होती है—प्रतिज्ञापत्र लिखने वाले तथा आज्ञा पर देय विनिमय पत्र के स्वीकर्ता, यथाविधि धारी वाद प्रस्तुत करने पर यह नही कह सकता कि प्रतिज्ञा-पत्र या विनिमय-विपय लिखने की तिथि पर उसको पृष्ठांकन करने की आदाता की क्षमता को अस्वीकार नही कर सकते।

(8) विलेख की प्रामाणिकता असंदिग्ध होती है—यथाविधि धारक द्वारा भुगतान के लिए मुकदमा चलाने पर प्रतिज्ञा-पत्र का प्रतिज्ञाकर्ता विनिमय पत्र या चैक का कोई लेखक तथा निर्माता की प्रतिष्ठा लिए विलेख की प्रामाणिकता को अस्वीकार नही कर सकता।

मूल्यार्थ धारी
(Holder for Value)

यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे विनिमय-साध्य विलेख का धारक है जिसका मूल्य पहले किसी समय दिया जा चुका है परन्तु यह आवश्यक नही है कि उस धारी ने चुकाया हो तो वह मूल्यार्थधारी कहलाता है।

उदाहरण—महेश को उसके ऋणी से 1000 रुपये का चैक प्राप्त होता है। महेश उस चैक को एक कालेज के सचिव को दान में दे देता है। यहां चैक का प्रतिफल महेश ने दिया था, कालेज के सचिव ने नहीं। अतः कॉलेज का सचिव मूल्य के लिए धारक है।

यथाविधि धारी व मूल्य के लिए धारी में अन्तर

अन्तर का आधार	यथाविधि धारी	मूल्य के लिए धारी
1. मूल्य चुकाना	यथाविधि धारी विलेख के बदले में स्वयं मूल्य चुकाता है।	इसमें ऐसा आवश्यक नहीं है।
2. वाद प्रस्तुत करना	विलेख के अप्रतिष्ठित हो जाने पर हस्तान्तरण कर्ता के विरुद्ध यथाविधि धारी वाद प्रस्तुत कर सकता है।	हस्तान्तरण कर्ता के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

अन्तर का आधार	यथाविधि धारी	मूल्य के लिए धारी
3. स्वत्वाधिकार	हस्तान्तरण कर्ता की अपेक्षा यथाविधिधारी अच्छा स्वत्व पाता है। अर्थात् यदि हस्तान्तरण कर्ता का स्वत्व दूषित भी हो इसका स्वत्व श्रेष्ठ होता है।	हस्तान्तरण कर्ता के समान ही मूल्य के लिए धारक का स्वत्व होता है। अर्थात् यदि हस्तान्तरणकर्ता का स्वत्व दूषित है तो उसका स्वत्व भी दूषित होता है।

धारी और यथाविधिधारी में अन्तर
(Difference between Holder and Holder in due Course)

क्र.सं.	अन्तर का आधार	धारक	यथाविधि धारी
1.	प्रतिफल	प्रतिफल का इसमें होना आवश्यक नही है।	प्रतिफल का इसमें होना आवश्यक है।
2.	आवश्यकता	प्रत्येक धारक के लिए यह अनिवार्य नही है कि वह यथाविधि धारी हो।	प्रत्येक यथाविधि धारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह धारी हो।
3.	अधिकार	धारक का अधिकार प्रायः विलेख के हस्तान्तरण कर्ता की ही भांति होता है।	इसमे यथाविधिधारी का अधिकार हस्तान्तरण कर्ता से श्रेष्ठ हो सकता है।
4.	विशेषाधिकार	धारक को वे सब विशेषाधिकार नहीं होते जो कि यथाविधि धारी को प्राप्त होते हैं।	यथाविधि धारी को कई विशेषाधिकार प्राप्त है।
5.	परिपक्वता से पूर्व	धारक बनने के लिए यह आवश्यक नही है कि पत्र को परिपक्वता से पूर्व प्राप्त किया जाय।	प्रत्येक यथा विधिधारी के लिए यह आवश्यक है कि वह विलेख को परिपक्वता से पूर्व प्राप्त करें।
6.		विलेख के अप्रतिष्ठित हो जाने पर हस्तान्तरणकर्ता के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का सदैव अधिकार प्राप्त नही होता है।	विलेख के अप्रतिष्ठित हो जाने पर हस्तान्तरण कर्ता के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

यथाविधि भुगतान
(Payment in due Course)
(धारा 10)

अधिनियम की धारा 10 के अनुसार, "यथाविधि भुगतान से आशय उस भुगतान से जो विलेख की स्पष्ट अवधि के अनुसार, सद्भावना मे तथा बिना लापरवाही किये विलेख पर कब्जा रखने वाले व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में किया जाय जिनमें यह सन्देह उत्पन्न न हो कि वह व्यक्ति विलेख भुगतान पाने का अधिकारी नही है।"

यथाविधि भुगतान होने के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक हैं—

(1) यथाविधि भुगतान के लिए यह आवश्यक है कि भुगतान विलेख की स्पष्ट अवधि के अनुसार होना चाहिये।

(2) भुगतान ईमानदारी से इस विश्वास के साथ किया जाना चाहिये कि भुगतान मागने वाला व्यक्ति ही उसका वैधानिक अधिकारी है।

(3) लापरवाही से भुगतान नही होना चाहिये अर्थात् उसे यह देखना चाहिये कि वह भुगतान सही व्यक्ति को कर रहा है।

(4) यथाविधि भुगतान तभी माना जायेगा जबकि भुगतान विलेख के धारक को किया जाय।

(5) यथाविधि भुगतान विलेख के स्पष्ट निर्देशों के अनुसार होना चाहिये।

(6) भुगतान सन्देहात्मक परिस्थितियों मे नही किया जाना चाहिये।

(7) विलेख के दायी पक्षकार द्वारा भुगतान न होना चाहिये।

बैंक ड्राफ्ट या मांग प्रपत्र
(Bank draft and Demand draft)

बैंक ड्राफ्ट भी एक विनिमय पत्र है क्योंकि यह एक बैंक द्वारा अपनी दूसरी किसी शाखा पर लिखा जाता है। बैंक इसमे अपनी दूसरी शाखा को इसमें लिखित एक निश्चित राशि एक निश्चित प्राप्तकर्ता को या उसके आदेशानुसार देने का निर्देश देती है।

चैक
(Cheque)

चैक की परिभाषा

"भारतीय विनिमय-साध्य विलेख अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, "चैक एक ऐसे विनिमय-पत्र को कहते हैं जो एक विशेष बैंक के ऊपर लिखा जाता है और जिसका भुगतान स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकता।"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि चैक भी विनिमय बिल की भांति होता है। अन्तर केवल यह है कि चैक किसी बैंक पर लिखा जाता है और सदैव मांगने पर देय होता है अतः सभी चैक विनिमय बिल होते हैं किन्तु सभी विनिमय बिल चैक नही होते।

---

1. "A cheque is a bill of exchange drawn upon a specified banker and payable on demand."

[Negotiable Instruments Act 1881 Sec. 6]

चैक एक विनिमय बिल की भाँति होता है इसलिए चैक में वे समस्त विशेषताएँ होती हैं जो विनिमय बिल मे होती हैं। चैक में निम्नलिखित दो विशेषताएँ और होती हैं—

(1) चैक सदैव बैंक पर लिखा जाता है।

(2) चैक मांग पर तुरन्त देय होता है।

चैक तथा विनिमय बिल में अन्तर

क्र. सं.	चैक	विनिमय बिल
1.	चैक सदैव बैंक पर लिखा जाता है।	विनिमय बिल किसी भी व्यक्ति पर लिखा जा सकता है।
2.	चैक में स्वीकृति होना आवश्यक नही होता।	विनिमय बिल मे स्वीकृति होना आवश्यक है।
3.	चैक सदैव मांग पर ही देय होता है।	विनिमय बिल दर्शनी तथा अवधि सापेक्ष दोनों होते हैं।
4.	चैक प्रायः देशी होता है।	विनिमय बिल देशी और विदेशी दोनों हो सकते हैं।
5.	चैक को रेखांकित किया जा सकता है।	विनिमय बिल को रेखांकित नही किया जा सकता है।
6.	चैक पर कोई स्टाम्प लगाने की आवश्यकता नही है।	विनिमय बिल पर स्टाम्प लगाना आवश्यक है।
7.	चैक में अनुग्रह के दिन नही दिये जाते हैं।	विनिमय बिल के भुगतान के लिए तीन दिनों की अनुग्रह अवधि दी जाती है।
8.	चैक मे अनादरण की सूचना देना आवश्यक नही है।	विनिमय बिल में अनादरण की सूचना देना आवश्यक है।
9.	चैक लिखने वाले की मृत्यु हो जाने पर अथवा दिवालिया हो जाने पर या पागल होने पर तथा चैक का भुगतान न करने की आज्ञा देने पर चैक का भुगतान नहीं होता।	विनिमय बिल का न तो भुगतान रोका जा सकता है और लेखक के दिवालियेपन या मृत्यु का भी इस पर कोई प्रभाव नही पड़ता।
10.	चैक देश की करेन्सी में ही लिखा जाता है।	विदेशी बिल विदेशी करेंसी में भी लिखा जा सकता है।

चैक का प्रारूप
(Form of a Cheque)

Jodhpur
Date..............

No.......................

THE STATE BANK OF INDIA
JODHPUR

Pay to...................... ....or bearer/
or Order Rupees....—.......................only.

Rs...................   Signiture

चैक के प्रकार

(1) **आज्ञानुसार देय चैक (Order Cheque)**—आज्ञानुसार देय चैक वह होता है जो स्पष्ट रूप से इस प्रकार देय हो अथवा जो किसी विशेष व्यक्ति को देय हो और जिसमें हस्तान्तरण पर रोक लगाने के शब्द न हों।

(2) **वाहक चैक (Marked Cheque)**—जो चैक स्पष्ट रूप से वाहक को देय हो वाहक चैक होता है।

(3) **चिन्हित चैक (Crossed Cheque)**—जब देनदार बैंक द्वारा कोई चैक इस आशय से चिन्हित अथवा प्रमाणित कर दिया जाता है कि भुगतान के लिए प्रस्तुत करने की तिथि पर इसका भुगतान कर दिया जायेगा तो वह चिन्हित चैक कहलाता है।

(4) **रेखित चैक (General Crossing)**—रेखित चैक वह है जिसके मुख पर कुछ शब्दों के साथ अथवा वैसी ही दो टेढ़ी समानान्तर रेखायें खींच दी जाती हैं तो वह रेखित चैक कहलाता है।

रेखांकन के प्रकार

(1) **साधारण रेखांकन**—जब किसी चैक के ऊपर कुछ शब्दों के साथ-साथ (किसी बैंक के नाम के साथ नहीं) दो टेढ़ी समानान्तर रेखायें खींची गयी हैं तो ऐसा रेखांकन साधारण रेखांकन होता है।   (धारा 123)

साधारण रेखांकन के नमूने

1	2	3	4	5
	& Co.	Not Negotiable	& Co. Account Payee only	Under one hundred Rupees & Co.

(2) विशेष रेखांकन (Special Crossing)—यदि किसी चैंक के मुख पर रेखांकन के अन्दर किसी बैंक का नाम दिया रहता है तो ऐसा रेखाकन विशेष रेखांकन कहलाता है।

(धारा 124)

इसका प्रभाव यह पड़ता है कि उसका भुगतान रेखांकन में दिये गये बैंक को ही दिया जाता है।

विशेष रेखांकन का नमूना

State Bank of India
Not Negotiable

(3) अविनिमय साध्य रेखांकन (Not Negotiable Crossing)—यदि किसी चैंक के मुख पर समानान्तर रेखाओं के नीचे केवल वाहक को ही देय लिखा रहे तो इसमें बैंक को यह हिदायत रहती है कि वह चैंक के हस्तान्तरण की दशा में धारक को हस्तान्तरणकर्त्ता से अच्छे अधिकार नहीं मिल सकते। अतः इस प्रकार के चैंक जान-पहचान के घनिष्ठ व्यक्तियों में ही प्रायः परस्पर हस्तान्तरित होते हैं।

(4) प्रतिबन्धी रेखांकन (Restrictive Crossing)—प्रतिबन्धी रेखांकन से विशेष या साधारण रेखांकन के साथ-साथ कुछ ऐसे शब्द जोड़ दिये जाते हैं जिनमें लेनदार के नाम का बोध होता है। इसके नमूने अग्रांकित प्रकार के हैं।

1	2	3	4
A/c Payee	A/c Payee only	State Bank of India A/c Payee only	State Bank of India A/c Govind Narain only Not Negotiable

चैक पर रेखांकन कौन कर सकता है ?

(1) चैक लिखने वाला विशेष या साधारण प्रकार का रेखांकन कर सकता है।

(2) चैक का धारक यदि चैक पर रेखांकन न किया गया हो तो उस पर साधारण या विशेष प्रकार का रेखांकन कर सकता है। (धारा 125)

(3) यदि चैक का साधारण रेखांकन हो चुका है तो चैक का धारक उस पर विशेष रेखांकन कर सकता है। (धारा 125)

(4) चैक पर यदि साधारणतया विशेष रेखांकन हो चुका है तो धारक उस पर "अविनिमय-साध्य" (Not Negotiable) लिख सकता है। (धारा 125)

(5) चैक पर यदि विशेष रेखांकन हो चुका है तो जिस बैंक पर रेखांकन किया गया है वही बैंक चैक पर फिर से विशेष रेखा कर अपने प्रतिनिधि बैंक के नाम मे संग्रहण के लिए कर सकता है। (धारा 125)

किन परिस्थितियों में बैंक चैक का भुगतान करने से इन्कार कर सकता है ?

(1) जब चैक पर आगे की तारीख पड़ी हुई है।

(2) जब चैक छः माह या उससे अधिक पुराना है।

(3) चैक लिखने वाले व्यक्ति का हस्ताक्षर बैंक के पास रखे नमूने से नहीं मिलता।

(4) चैक की रकम के सम्बन्ध में जब कोई सन्देह हो जाता है।

(5) चैक का भुगतान करने के लिए अगर एक निश्चित समय रहता है और चैक उस समय के भीतर प्रस्तुत न किया गया हो तो बैंक भुगतान करने से इन्कार कर सकता है।

(6) जब चैक फटा हुआ रहता है तब भी बैंक भुगतान करने से मना कर सकता है।

(7) चैक का जब बेचान या उसका पृष्ठांकन अपूर्ण, अनियमित या अस्पष्ट हो तो बैंक भुगतान करने से मना कर सकता है।

(8) चैक जब टाइप से लिखा गया हो तो बैंक भुगतान करने से इन्कार कर सकता है।

(9) बैंक में जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों का खाता हो और अगर चैक पर सभी संयुक्त निर्माताओं के हस्ताक्षर न हों तो बैंक उसके भुगतान से मना कर सकता है।

(10) चैक पर लिखी रकम जमा की गयी रकम से जब अधिक हो तो बैंक चैक पर "पर्याप्त फण्ड नहीं" लिखकर चैक लौटा देगा।

किन परिस्थितियों में चैक के भुगतान का तिरस्कार करना आवश्यक है

(1) ग्राहक के मना करने पर।
(2) अदालत की निषेध आज्ञा प्राप्त होने पर।
(3) ग्राहक के दिवालिया होने पर।
(4) ग्राहक की मृत्यु हो जाने पर।
(5) धारक का स्वत्व दूषित होने पर।
(6) ग्राहक द्वारा खाता बन्द कर देने पर।
(7) ग्राहक के पागल हो जाने पर।

बैंक का उत्तरदायित्व—अधिनियम की धारा 31 मे लिखा गया है कि यदि ग्राहक का पर्याप्त धन बैंक में जमा है और बैंक उसके लिखे गये चैक का भुगतान करने में कोई त्रुटि करता है तो इससे ग्राहक की क्षति की पूर्ति बैंकर को करनी चाहिए।

परक्रामण या हस्तान्तरण तथा पृष्ठांकन
(Negotiation and Endorsement)

परक्रामण का आशय

परक्रामण का आशय किसी व्यक्ति को एक प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र अथवा चैक का हस्तान्तरण इस प्रकार करने से है कि वह व्यक्ति उसका धारक हो जाए। (धारा 14)

परक्रामण मे विलेख के धारक के स्वत्वाधिकार अधिकार और हित के हस्तान्तरण की क्रिया सम्मिलित है जिससे उस विलेख पर हस्तान्तरिती को अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाय और उस विलेख का वह धारक बन सके।

परक्रामण कौन कर सकता है ?

विलेख में यदि परक्रामण पर कोई रोक नहीं लगायी गयी है तो निम्न पक्ष उसका परक्रामण कर सकते हैं:—

(1) विलेख का लेखक (Maker)
(2) आहर्त्ता (Drawer)
(3) विलेख का प्राप्तकर्त्ता (Payee)
(4) पृष्ठांकिती (Endorse)
(5) विलेख यदि संयुक्त लेखकों द्वारा लिखा गया है तो उसके समस्त लेखक, आहर्त्ता, आदाता एवं पृष्ठांकिती।

परक्रामण की विधि

(1) सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण—वाहक को देय एक विलेख केवल उसकी

पागल, अत्यधिक बीमार या विक्षिप्त) विनिमय-साध्य विलेख को लिखने, स्वीकार करने, पृष्ठांकन करने तथा हस्तान्तरण करने के योग्य नही हो सकते है।

(3) दिवालिया—दिवालिया किसी विलेख की स्वीकृति या उसका पृष्ठांकन नही कर सकता। यदि वह किसी यथाविधिधारी को ऐसा विलेख पृष्ठांकित करता है जिसको वह प्राप्त कर्ता है तो दिवालिये के अलावा इस विलेख के दूसरे पक्ष यथाविधि धारी के)प्रति दायी होंगे। किसी विलेख के लिए एक दिवालिया वाद प्रस्तुत नही कर सकता क्योंकि उसकी समस्त सम्पत्ति सरकारी निस्तारक के पास होती है।

(4) कारपोरेशन व कम्पनी—कारपोरेशन व कम्पनियाँ कृत्रिम व्यक्ति हैं इसलिए उन्हें केवल वे ही अधिकार होते हैं जो उनके पार्षद सीमा नियम द्वारा प्रदान किये जाते हैं। विनिमय-साध्य विलेख को लिखने, स्वीकार करने व हस्तान्तरण करने का किसी भी व्यापारिक कम्पनी को गर्भित अधिकार होता है। इसलिए वह ऐसे विलेख के प्रति दायी है।

(5) एजेन्ट—प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-बिल अथवा चैक को अपनी ओर से लिखने, बनाने, पृष्ठांकित करने, स्वीकार करने अथवा हस्तान्तरण करने का अधिकार अनुबन्ध की क्षमता रखने वाला कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को दे सकता है। किसी विलेख की स्वीकृति के समय एजेण्ट को चाहिये कि वह साफ-साफ जाहिर कर दे कि एजेन्ट की तरह स्वीकार कर रहा है यदि वह ऐसा नही करता है तो व्यक्तिगत रूप से विलेख के लिए दायी होगा। (धारा 27 तथा 28)

(6) वैधानिक उत्तराधिकारी—किसी भी मृत व्यक्ति का वैधानिक उत्तराधिकारी यदि किसी विनिमय-साध्य विलेख पर अपना हस्ताक्षर करता है, तो व्यक्तिगत रूप से दायी होगा जब तक कि उसने स्पष्ट (लिखित) रूप से अपने दायित्व को इस प्रकार प्राप्त की हुई सम्पत्ति तक सीमित नही कर दिया है। (धारा 129)

पक्षकारों का दायित्व
(Liability of Parties)

(1) विलेख के लेखक का दायित्व (Liability of Drawer)—अगर किसी चैक का देनदार अथवा विनिमय-बिल का स्वीकर्ता चैक अथवा विनिमय-बिल को अप्रतिष्ठित कर देता है अर्थात् उसका भुगतान नहीं करता तब उसका लेखक धारक के प्रति क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होगा बशर्ते कि धारक ने अनादरण की यथोचित सूचना विलेख के लेखक को दे दी है। (धारा 30)

(2) प्रतिज्ञा-पत्र के लेखक का दायित्व (Liability of maker of a note)—प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक परिपक्वता की तिथि पर वाहक को भुगतान करने के लिए बाध्य है। यदि लेखक ऐसा भुगतान करने में त्रुटि करता है तो प्रतिज्ञा-पत्र के किसी पक्षकार की ऐसी त्रुटि से होने वाली क्षति की पूर्ति करने को वह बाध्य होगा।

(3) चैक के देनदार का दायित्व (Liability of Drawee of a Cheque)—चैक के देनदार अर्थात् बैंक को जिसके पास लेखक का पर्याप्त रुपया है और जिसका चैक के भुगतान के लिए प्रयोग किया जा सकता है, चैक के प्रस्तुत होने पर उसका भुगतान अवश्य

कर देना चाहिये। यदि ऐसे भुगतान में त्रुटि की जाती है तो इस त्रुटि के कारण लेखक को होने वाली क्षति की पूर्ति बैंक द्वारा करनी होगी।

(धारा 31)

(4) विनिमय-बिल के स्वीकर्ता का दायित्व (Liability of acceptory of a bill)—बिल के स्वीकर्ता का दायित्व निम्नलिखित प्रकार का होता है :

(i) बिल के स्वीकर्त्ता ने यदि बिल पर अपनी स्वीकृति परिपक्वता से पहले दी है तो बिल की परिपक्वता पर उसका दायित्व उत्पन्न होता है और उस समय वह भुगतान करने के लिए बाध्य होता है।

(ii) बिल के स्वीकर्ता ने यदि बिल पर अपनी स्वीकृति परिपक्वता के बाद दी है तो ऐसी स्थिति में धारक द्वारा भुगतान मांगने पर वह भुगतान करने के लिए बाध्य होता है।

(iii) स्वीकर्ता यदि ऐसे भुगतान करने में त्रुटि करता है तो बिल के किसी भी पक्षकार को हुई क्षति की पूर्ति के लिए वह बाध्य है जो ऐसी त्रुटि के कारण हुई है।

(5) पृष्ठांकन-कर्त्ता का दायित्व (Liability of endorser)—यदि कोई व्यक्ति विनिमय-साध्य विलेख का पृष्ठांकन परिपक्वता के पूर्व करता है और सुपुर्द करता है तो विलेख के अनादरण की स्थिति में प्रत्येक अगले धारक को वह ऐसे अनादरण से हुई क्षति की पूर्ति के लिए बाध्य होता है। बशर्ते कि अप्रतिष्ठित होने की सूचना उसे दे दी गयी हो अथवा मिल गयी हो।

प्रस्तुति
(Presentment)

प्रस्तुति के आशय

किसी विनिमय-साध्य विलेख की प्रस्तुति का अर्थ विलेख को उसके लेखक या स्वीकर्त्ता या देनदार के सम्मुख उपस्थित करना होता है जिससे कि वह उसको देख सके तथा यह निर्णय कर सके कि वह उसको स्वीकार करेगा या नहीं, भुगतान करेगा या नहीं।

प्रस्तुति दो उद्देश्यों के लिए होती है—

(1) स्वीकृति के लिए प्रस्तुति।

(2) भुगतान के लिए प्रस्तुति।

(1) स्वीकृति के लिए प्रस्तुति (Presentment for acceptance)—बिल जो मांग पर किसी निश्चित दिन के बाद देय हो, वह अगर प्रस्तुत नहीं भी किया जाय तो कुछ हर्ज नहीं होता। परन्तु दर्शनी बिल को स्वीकार करना अनिवार्य-सा होता है।

यदि किसी बिल में यदि कोई स्थान या समय निर्धारित नहीं किया गया है तो देनदार के सम्मुख स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना चाहिये। यदि वह लेखक या धारी को, विपत्र के लिए जाने के बाद उचित समय के अन्दर किसी भी व्यापार के दिन तथा वह व्यापार के घंटो में उचित तलाश के बाद मिल जाता है तो ऐसी प्रस्तुति मे त्रुटि करने पर

उस पर, ऐसी त्रुटि करने वाले व्यक्ति के प्रति दायी नहीं होगा । यदि देनदार बहुत तलाश करने पर भी नहीं मिलता है तो विलेख अप्रतिष्ठित समझा जाता है ।

स्वीकृति के लिए प्रस्तुति कौन करे

अधिनियम की धारा 61 के अनुसार जो व्यक्ति बिल पर स्वीकृति प्राप्त करने का अधिकारी है, स्वीकृति के लिए प्रस्तुति वही व्यक्ति कर सकता है । यह वह स्वयं प्रस्तुत कर सकता है अथवा वह अपने अधिकृत एजेन्ट द्वारा प्रस्तुत करवा सकता है ।

प्रस्तुति किसको की जाय ?

अधिनियम की धारा 75 के अनुसार स्वीकृति के लिए निम्नलिखित को प्रस्तुत किया जाना चाहिये—

(1) देनदार या उसके अधिकृत एजेन्ट को,

(2) एक से अधिक यदि देनदार है तो समस्त देनदारों को,

(3) यदि देनदार की मृत्यु हो गई है तो उसके वैधानिक प्रतिनिधि को,

(4) देनदार के दिवालिया हो जाने पर उसके राजकीय प्रापक को ।

प्रस्तुति का समय

निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं :—

(i) यदि किसी विपत्र की स्वीकृति की प्रस्तुति के लिए समय निश्चित किया गया है तो उसी निश्चित समय में प्रस्तुति होनी चाहिये ।

(ii) समस्त बिलों को उनकी परिपक्वता के पूर्व ही स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करना चाहिये ।

(iii) प्रस्तुति यदि अनिवार्य हो तो बिल को उचित समय के भीतर ही प्रस्तुत करना चाहिये ।

(iv) यदि विपत्र दर्शनानन्तर देय है और प्रस्तुति के लिए कोई अवधि निश्चित नही है तो विपत्र के लिखे जाने के उचित समय के भीतर प्रस्तुत किया जाना चाहिये ।

(v) प्रस्तुति व्यापार के दिवस को होनी चाहिये ।

(vi) व्यापार के घंटों मे प्रस्तुति होनी चाहिये ।

प्रस्तुति का स्थान

यदि विपत्र की प्रस्तुति के लिए स्थान निश्चित है तो प्रस्तुति उस निश्चित स्थान पर होनी चाहिये । स्थान निश्चित न होने की दशा में स्वीकृति के लिए प्रस्तुति देनदार के निवास या उसके व्यापार के स्थान पर की जानी चाहिये ।

स्वीकृति के लिए समय

अधिनियम की धारा 63 के अनुसार देनदार स्वीकृति प्रदान करने से पूर्व अपने सोचने के लिए 48 घण्टे (सार्वजनिक छुट्टियाँ छोड़कर) का समय ले सकता है । जब तक ये 48 घंटे व्यतीत नही हो जाते, बिल को अनादृत नही समझा जा सकता है ।

विनिमय-पत्र जिन्हें स्वीकृति के लिए प्रस्तुति की आवश्यकता नहीं

बिल को निम्नलिखित परिस्थितियों में स्वीकृति के लिए प्रस्तुति की कोई आवश्यकता नहीं जबकि— :

(i) यदि देनदार एक कल्पित व्यक्ति हो अथवा

(ii) उचित तलाश करने के बाद भी यदि देनदार नहीं मिलता हो अथवा

(iii) यदि देनदार अनुबन्ध करने के अयोग्य हो अथवा

(iv) देनदार यदि दिवालिया हो गया हो, या मर गया हो।

बिल की स्वीकृति (Acceptance)

स्वीकृति से आशय

बिल की स्वीकृति से आशय देनदार द्वारा लेखक के भुगतान सम्बन्धी आदेश के प्रति अपनी सहमति प्रकट करना है।

वैद्य स्वीकृति के लिए आवश्यक है कि—

(i) स्वीकृति लिखित ही होनी चाहिये।

(ii) बिल पर देनदार या उसके अधिकृत एजेन्ट के हस्ताक्षर होने चाहिये।

(iii) स्वीकृति बिल पर ही होनी चाहिये।

(iv) उस समय तक स्वीकृति पूर्ण नहीं मानी जाती जब तक कि इस प्रकार स्वीकृत बिल की सुपुर्दगी धारक या उसके अधिकृत एजेण्ट को न दे दी जाय।

स्वीकृति के प्रकार

(1) साधारण स्वीकृति—जब देनदार बिना किसी शर्त अथवा मर्यादा के बिल के लेखक की लिखी हुई समस्त बातें स्वीकार करके अपने हस्ताक्षर कर देता है तो इस तरह की स्वीकृति को साधारण स्वीकृति कहते हैं।

(2) मर्यादित स्वीकृति—जब देनदार बिल की स्वीकृति करते समय उसमें कुछ शर्त लगा देता है तो ऐसी स्वीकृति को मर्यादित स्वीकृति कहते हैं। अधिनियम की धारा 86 के अनुसार मर्यादित स्वीकृति निम्न प्रकार की हो सकती है :—

(i) **सप्रतिबन्ध स्वीकृति**—जब किसी विपत्र को स्वीकार करते समय उसके भुगतान को किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर कर दिया जाता है तो इस प्रकार की स्वीकृति सप्रतिबन्ध स्वीकृति कहलाती है।

(ii) **स्थान की शर्त**—इसमें स्वीकर्त्ता उस स्थान का नाम लिख देता है और यह लिख दिया जाता है कि स्वीकृति केवल उसी नियत स्थान पर होगी।

(iii) **रकम की शर्त**—आंशिक या, अधूरी रकम की स्वीकृति जैसे केवल पाँच सौ रुपया देने के लिए इसका अर्थ देनदार केवल पाँच सौ रुपये ही देगा चाहे बिल में कितनी ही रकम क्यों न लिखी हो।

(iv) **समय सम्बन्धी**—जब स्वीकर्त्ता बिल की दी हुई अवधि में कोई परिवर्तन करके उसे स्वीकार करता है तो ऐसी स्वीकृति समय सम्बन्धी स्वीकृति होगी।

(v) देनदारों में से केवल कुछ के द्वारा स्वीकृति—जब कोई विपत्र के अनेक देनदारों में से केवल कुछ ही देनदार स्वीकृति प्रदान करते हैं जैसे चार व्यक्तियों पर लिखा गया विपत्र केवल तीन द्वारा ही स्वीकृत किया जाय।

(2) भुगतान के लिए प्रस्तुति-समस्त प्रतिज्ञा-पत्र या विनिमय-पत्र तथा चैक भुगतान धारक द्वारा अथवा उसकी ओर से क्रमशः उसके लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा देनदार के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने चाहिये। यदि ऐसी प्रस्तुति में त्रुटि की जाती है तो विलेख के अन्य पक्षकार ऐसे धारक के प्रति दायी नहीं होते हैं। ऐसी प्रस्तुति लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा देनदार के अधिकृत एजेन्ट को या उनकी मृत्यु पर उनके कानूनी उत्तराधिकारी को या उनके दिवालिया हो जाने पर उनके राजकीय प्रापक को करनी चाहिये।

भुगतान के लिए प्रस्तुति सम्बन्धी नियम

(1) डाक द्वारा प्रस्तुति—भुगतान के लिए प्रस्तुति डाक द्वारा भी की जा सकती है यदि प्रस्तुत करने वाले पक्ष को ऐसा अधिकार किसी व्यापार की प्रथा के अनुसार या किसी करार द्वारा प्राप्त हो। परन्तु प्रस्तुति सदैव रजिस्टर्ड डाक द्वारा ही की जानी चाहिये। सामान्य पत्र द्वारा प्रस्तुति अमान्य है। (धारा 64)

(2) प्रस्तुति के लिए समय तथा दिन—जब एक प्रतिज्ञा-पत्र अथवा विनिमय-पत्र जो किसी निश्चित दिन अथवा देखने के बाद किसी निश्चित समय में देय हो तो परिपक्व होने पर भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिये। व्यापार के दिन तथा व्यापार के साधारण घण्टों में यह प्रस्तुति करनी चाहिये। (धारा 65, 66)

(3) चैक की प्रस्तुति—चैक के लेखक को उत्तरदायी ठहराने के लिए चैक की प्रस्तुति उस बैंक को की जानी चाहिये जिस पर वह लिखा गया है।

(4) प्रस्तुति के लिए स्थान—निम्न व्यवस्थाएं हैं :—

(i) कोई विलेख जब एक निश्चित स्थान पर ही देय हो तब उसके किसी भी पक्षकार को दायी ठहराने के लिए भुगतान के लिए उसी स्थान पर प्रस्तुत करना चाहिये। (धारा 68)

(ii) किसी प्रतिज्ञा-पत्र अथवा विनिमय-बिल के भुगतान के लिये यदि कोई स्थान नियुक्त नहीं किया गया है तो उसे भुगतान के लिए प्रस्तुति भुगतानकर्त्ता के सामान्य निवास स्थान या व्यवसाय के स्थान पर की जानी चाहिये। (धारा 70)

(iii) प्रतिज्ञा-पत्र या विनिमय-बिल के भुगतान का कोई स्थान निश्चित नहीं है तथा भुगतानकर्त्ता का कोई व्यापारिक स्थान या निवास स्थान का कोई निश्चित स्थान न हो अथवा ज्ञात न हो सके तो भुगतान के लिए प्रस्तुति जहाँ पर भी भुगतानकर्त्ता मिले, व्यक्तिगत रूप से की जानी चाहिये।

(5) प्रस्तुति में देरी के लिए छूट—यदि प्रस्तुति में देरी प्रस्तुतकर्त्ता की शक्ति के बाहर के कारणों से हुई है तथा स्वयं के दोष, दुराचरण अथवा उपेक्षा के कारण नहीं हुई है तो प्रस्तुति में देरी होने पर भी भुगतानकर्ता अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा। (धारा 74)

मुगतान के लिए प्रस्तुति कब आवश्यक है ? (धारा 76)

निम्नलिखित परिस्थितियों में भुगतान के लिए प्रस्तुति अनावश्यक समझी जाती है—

(1) जब लेखक स्वीकर्त्ता अथवा देनदार स्वेच्छापूर्वक विलेख की प्रस्तुति को रोकने के लिए कोई कार्य करता है।

(2) *विलेख यदि उसके व्यवसाय के स्थान पर देय हो और वह ऐसे स्थान को* व्यवसाय के दिन और व्यवसाय के साधारण समय-समय में जानबूझकर बन्द कर देता है।

(3) यदि विलेख किसी विशेष या निश्चित जगह पर देय है और विलेख का लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा देनदार या उसका एजेन्ट उस स्थान पर व्यवसाय के साधारण घण्टों में उपस्थित न हो।

(4) यदि विलेख किसी निश्चित स्थान पर देय न हो और उचित तलाश के बाद भी लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा देनदार का पता न लगे।

(5) जब प्रस्तुति माँगने का अधिकारी पक्ष प्रस्तुति न होने पर भी विलेख का भुगतान देना स्वीकार कर लेता है।

(6) जब लेखक, स्वीकर्त्ता अथवा देनदार यह जानते हुए कि विलेख देय तिथि पर भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया, विलेख का आंशिक भुगतान कर देता है अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से भुगतान करने का वचन दे देता है या किसी अन्य रीति से प्रस्तुति मांगने के अपने अधिकार का परित्याग कर देता है।

(7) *प्रस्तुत न करने से यदि लेखक को कोई क्षति न पहुँचती हो।*

(8) जब देनदार और लेनदार एक ही व्यक्ति हो।

(9) जब देनदार कोई कल्पित व्यक्ति हो अथवा अनुबन्ध करने में असमर्थ हो।

(10) बिल जब अस्वीकृति द्वारा अनादृत हो चुका हो।

(11) प्रस्तुति जब असम्भव हो जाये जैसे धारक और लेखक के देशों के बीच युद्ध छिड़ने के कारण।

पक्षकारों की दायित्व से मुक्ति
(Discharge of Parties from Liabilities)

दायित्व से मुक्त होने की रीतियाँ

किसी विलेख का लेखक, स्वीकर्त्ता तथा पृष्ठांकक अपने दायित्व से निम्नलिखित दशाओं में मुक्त हो जाते हैं—

(1) भुगतान द्वारा (By payment)—जब किसी विलेख का लेखक स्वीकर्त्ता अथवा देनदार उसके धारक को भुगतान कर देता है तब विलेख के समस्त पक्षकार दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। यदि विलेख वाहक को देय है तो उसके रखने वाले को (चाहे वह धारक न हो) साधारण प्रगति में भुगतान करने से मुक्त हो जाता है। (धारा 82)

(2) मुक्ति द्वारा (By release)—जब किसी विलेख का धारक विलोपन के अतिरिक्त अन्य रीति से लेखक,स्वीकर्त्ता अथवा पृष्ठांकक को दायित्व से मुक्त कर देता है

तब इस प्रकार मुक्त पक्षकार धारक के प्रति तथा उसके अधीन ऐसी मुक्ति की सूचना के बाद अधिकार पाने वाले पक्षकारों के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(3) **विलोपन द्वारा (By Cancellation)**—जब कोई धारक विलेख के स्वीकर्ता अथवा उसके पृष्ठांकनकर्ता का नाम उसको मुक्त करने के उद्देश्य से काट देता है तो ऐसा पक्षकार धारक तथा ऐसे धारक के अधीन अधिकार प्राप्त करने वाले पक्षकार के प्रति दायित्व से मुक्त हो जाता है। [धारा 83 (अ)]

(4) **राजनियम की क्रियाशीलता द्वारा**—कभी-कभी किसी राजनियम के क्रियाशील हो जाने के कारण भी विलेख के पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। जैसे ऋणी के दिवालिया घोषित हो जाने पर वह विलेख के अन्तर्गत अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(5) **देनदार को 48 घण्टे से अधिक समय देकर**—किसी बिल का धारक यदि स्वीकृति के लिए 48 घण्टे से अधिक समय (सार्वजनिक छुट्टियों के अलावा) देता है, तो सभी पूर्व-पक्ष जो भी ऐसी छूट से सहमत नहीं होते, ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

(6) **सशर्त स्वीकृति को स्वीकार कर लेने पर**—यदि किसी विपत्र का धारक मर्यादित स्वीकृति पर सहमत हो जाय तो वे सब पूर्व पक्षकार जो ऐसी स्वीकृति से असहमत हैं उस धारक तथा उसके अधीन पाने वाले व्यक्तियों के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। [धारा 86]

(7) **चैक के प्रस्तुत करने में विलम्ब**-यदि कोई चैक निर्गमन के बाद यथोचित समय के भीतर धारक द्वारा भुगतान के लिए बैंक के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया जाता जो उसके परिणामस्वरूप होने वाली क्षति की सीमा तक चैक का लेखक दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(8) **मूलभूत परिवर्तन द्वारा (By material Altertion)**—यदि किसी विनिमय-साध्य विलेख में कोई मूलभूत परिवर्तन किया जाता है तो ऐसे परिवर्तन के समय विलेख पर दायी वे समस्त पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जायेंगे, जो उस परिवर्तन से सहमत नहीं हैं।

महत्त्वपूर्ण परिवर्तन (Material Alteration)

मूलभूत परिवर्तन से आशय ऐसे परिवर्तन से है जो विनिमय-साध्य विलेख के किसी महत्त्वपूर्ण भाग को बदल देता है या पक्षकारों के दायित्व को बदल देता है। विनिमय-साध्य में निम्नलिखित परिवर्तन मूलभूत परिवर्तन कहलाते हैं:—

(1) विलेख की तिथि में परिवर्तन करना।
(2) विलेख की देय राशि में परिवर्तन करना।
(3) विलेख की अवधि में परिवर्तन करना।
(4) विलेख के भुगतान के स्थान में परिवर्तन करना।
(5) भुगतान के माध्यम में परिवर्तन करना।
(6) ब्याज की दर में परिवर्तन करना।
(7) किसी नये पक्षकार का विलेख में और जोड़ना।
(8) किसी महत्त्वपूर्ण विलेख के भाग को फाड़ देना।

किन्तु कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी विलेख के पक्षकारों को उनके दायित्व से मुक्त नहीं करते ये परिवर्तन निम्नलिखित हैं:—

(1) किसी महत्त्वपूर्ण गलती को सुधारने के लिए हुआ परिवर्तन ।

(2) कोरे पृष्ठांकन को पूर्ण पृष्ठांकन में परिवर्तित करना ।

(3) यथाविधिधारी द्वारा अपूर्ण विलेख को पूर्ण करना ।

(4) पक्षकारों की सहमति से किया गया परिवर्तन ।

(5) किसी चैक के निर्गमित होने के बाद रेखांकित करना ।

(6) किसी स्वीकृति को मर्यादित करना ।

(7) विलेख के पूर्ण होने अथवा सुपर्दगी के पहले किया हुआ परिवर्तन ।

महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का प्रभाव

(1) महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का प्रभाव विलेख के केवल उन व्यक्तियों पर होता है जो परिवर्तन करने की तिथि पर विलेख के पक्षकार बन चुके थे ।

(2) कोई पक्षकार यदि परिवर्तित विलेख को प्राप्त कर स्वीकार करता है तो बाद मे वह परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नही उठा सकता ।

विलेख का अनादरण या अप्रतिष्ठा
(Dishonour of Instrument)

विलेख के अनादरण से आशय

जब किसी विलेख का देनदार उसको स्वीकार करने या उसका भुगतान करने मे इन्कार कर देता है तो वह विलेख अनादृत हुआ कहा जाता है ।

एक विनिमय-साध्य विलेख का अनादरण दो प्रकार से हो सकता है :—

(1) अस्वीकृति द्वारा अनादरण— (धारा 91) विनिमय पत्र का निम्नलिखित अवस्थाओं मे अस्वीकृति द्वारा अनादरण समझा जाता है :—

(i) जब धारक द्वारा स्वीकृति के लिए देनदार के पास विपत्र दिया गया और देनदार 48 घण्टे के भीतर बिल पर स्वीकृति न दे अथवा उसको अस्वीकृत कर देता है ।

(ii) यदि लेनदार या स्वीकर्त्ता अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता ।

(iii) यदि स्वीकर्त्ता "मर्यादित स्वीकृति" प्रदान करता है तो ऐसे बिल को अनादृत माना जा सकता है ।

(iv) जब देनदार कोई काल्पनिक व्यक्ति हो ।

(v) जब दो या दो से अधिक देनदार में से किसी एक देनदार ने स्वीकृति देने में त्रुटि की हो अथवा स्वीकृति देने से मना किया हो ।

(vi) स्वीकृति के लिए जब बिल को प्रस्तुत करना आवश्यक न हो और बिल को देनदार ने अस्वीकार कर दिया हो ।

(2) भुगतान न करने पर अनादरण—कोई भी प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय बिल अथवा चैक भुगतान न करने पर उस समय अनादृत कहा जाता है जबकि प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक, विनिमय बिल का स्वीकर्त्ता अथवा चैक का देनदार उचित रूप से उसके भुगतान की माँग करने वाले को भुगतान करने में त्रुटि करता है । (धारा 92)

अनादरण की सूचना

सूचना कौन किसको दे ?

जब कोई विलेख अस्वीकृति द्वारा अथवा भुगतान न करके अप्रतिष्ठित कर दिया है तो अनादरण की सूचना धारक द्वारा अथवा उस पर दायी अन्य व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह उन समस्त पक्षकारों को वह जिन्हें उत्तरदायी ठहराना चाहता है, अनादरण सूचना दे दे । (धारा 93)

अनादरण की सूचना पाने वाले पक्षकार का कर्तव्य है कि अपने प्रति पूर्व पक्षकारो को दायी ठहराने के लिए उन्हें भी उचित समय के भीतर ऐसे अनादरण की सूचना दे दे । (धारा 95)

अनादरण की सूचना उस व्यक्ति के, जिसे वह दी जाती है उसके अधिकृत ऐजेन्ट को भी दी जा सकती है अथवा यदि वह मर गया हो तो उसके उत्तराधिकारी को अथवा यदि वह दिवालिया हो गया है तो उसके राजकीय प्रापक को दी जानी चाहिए ।

सूचना देने का ढंग

(1) अनादरण की सूचना मौखिक या लिखित हो सकती है ।

(2) यदि सूचना लिखित हो तो डाक द्वारा भी भेजी जा सकती है ।

(3) यह आवश्यक नहीं कि यह सूचना किसी विशेष रूप में हो यह सूचना किसी भी प्रारूप में हो सकती है ।

(4) सूचना मे यह सूचित करना आवश्यक है कि विलेख किस प्रकार अनादृत हुआ है ।

(5) सूचना अनादरण के बाद उचित समय के भीतर हो जानी चाहिये ।

(6) यह सूचना जिस पक्षकार को दी जा रही है वह उसके साधारण व्यापार के स्थान पर या निवास स्थान पर दी जानी चाहिये ।

(7) यदि वह पक्षकार जिसको सूचना दी गयी है मर चुका है । और सूचना भेजने वाले पक्षकार को उसकी मृत्यु का ज्ञान नहीं हो पाता तो सूचना पर्याप्त मानी जाती है । (धारा 98)

अनादरण की सूचना कब अनावश्यक होती है ?

विलेख के अनादरण की सूचना देना निम्नलिखित दशाओं मे आवश्यक नहीं है :—

(1) जब सूचना पाने का अधिकारी-पक्ष इसका परित्याग कर दे ।

(2) जब लेखक ने ही भुगतान रोकने का आदेश दिया हो ।

(3) जब अनादरण की सूचना न देने के कारण दायी पक्षकार को हानि नहीं पहुँचती है ।

(4) जब प्रतिज्ञा-पत्र बेचान साध्य न हो ।

(5) जब सूचना पाने का अधिकारी-पक्ष उचित तलाश के बाद भी पता न लगे ।

(6) जब सूचना देने के लिए बाध्य पक्षकार अपनी त्रुटि के अतिरिक्त किसी ऐसी परिस्थिति में पड़ कर सूचना नहीं देता जिसके प्रति उसका निजी दोष नहीं है—जैसे भयंकर बीमारी में फँस गया है।

(7) जब लेखक ही स्वीकर्त्ता हो, जैसे साझेदार अपनी फर्म पर विपत्र लिखे या फर्म किसी साझेदार पर।

नोटिंग तथा प्रोटेस्ट
(Noting and Protest)

नोटिंग से आशय

जब कोई प्रतिज्ञा-पत्र या विनिमय-पत्र अस्वीकृति अथवा भुगतान न करने के कारण अप्रतिष्ठित हो जाय तो धारक विलेख पर अथवा उसके साथ संलग्न कागज अथवा दोनों पर नोटेरी पब्लिक द्वारा ऐसी अप्रतिष्ठा की टिप्पणी करवा सकता है। अनादरण के उचित समय के बाद ही नोटिंग करवा लेना चाहिये। इस प्रकार के नोटिंग में निम्नलिखित बातों का समावेश होना अनिवार्य है—

(i) अनादरण की तिथि

(ii) अनादरण का कारण यदि कोई है।

(iii) नोटेरी पब्लिक के शुल्क

(iv) यदि विलेख स्पष्ट रूप से अनादृत नहीं किया हुआ है तो धारक द्वारा उसे अनादृत मानने का कारण।

(v) नोटेरी के हस्ताक्षर एवं

(vi) नोटेरी के रजिस्टर की संदर्भ संख्या दी होनी चाहिये। (धारा 99)

प्रोटेस्ट (Protest) – धारा 100 के अनुसार, "जब कोई प्रतिज्ञा-पत्र या विनिमय-पत्र अस्वीकृति या भुगतान न करने के कारण अनादृत हो जाता है तो उसका धारक उचित समय के भीतर ऐसे अनादरण को नोटेरी पब्लिक द्वारा नोट करा कर उससे एक प्रमाण पत्र ले सकता है, ऐसे प्रमाण-पत्र को प्रोटेस्ट कहते है।"

श्रेष्ठ प्रतिभूति के लिए प्रोटेस्ट (Protest for better Security)—जब विपत्र की परिपक्वता के पहले ही विपत्र का स्वीकर्त्ता दिवालिया हो गया हो अथवा उसकी साख जनता की निगाह में गिर गयी हो तो उसका धारक किसी नोटेरी पब्लिक के द्वारा उचित समय के अन्दर स्वीकर्त्ता से अच्छी जमानत मांग सकता है और उसके इन्कार करने पर इस बात को नोटेरी पब्लिक द्वारा नोट व प्रमाणित करा सकता है, ऐसे प्रमाण पत्र को श्रेष्ठ प्रतिभूति के लिए प्रोटेस्ट कहते हैं। (धारा 100)

प्रोटेस्ट की विषय सूची (Contents of a Protest)—अधिनियम की धारा 101 के अनुसार प्रोटेस्ट मे निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

(1) मूल विलेख या उसकी शाब्दिक प्रतिलिपि।

(2) जिस व्यक्ति के लिए तथा जिसके विरुद्ध विलेख को प्रोटेस्ट किया गया है उसका नाम।

(3) यह विवरण कि नोटेरी पब्लिक द्वारा उस विलेख की पक्षकार से स्वीकृति देनदार से मांगी तथा देनदार ने इस पर क्या उत्तर दिया तथा देनदार को बुलाया या नही ।
(4) अनादरण का स्थान तथा दिनाक
(5) नोटेरी पब्लिक का पारिश्रमिक
(6) यदि विलेख प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृत किया गया हो या प्रतिष्ठा के लिए भुगतान किया गया हो तो उसका सम्पूर्ण आवश्यक विवरण ।

हुण्डियाँ (Hundies)

हुण्डी भी विनिमय-साध्य विलेख के समान भारत मे प्रचलित है पर विनिमय-साध्य सन्नियम इस पर लागू नही होते हैं बल्कि यह देश की रीति-रिवाज से शासित होती है । हुण्डी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के हुण्ड से हुई है जिसका मतलब एकत्रित करना है । हुण्डी को विनिमय-पत्र की भाँति मुद्रांकित किया जाता है इसका बेचान होता है और इसकी स्वीकृति होती है ।

हुण्डियों के प्रकार

हुण्डियाँ निम्नलिखित प्रकार की होती है :—

(1) **दर्शनी हुण्डी**—दर्शनी हुण्डी वह है जो दर्शाने पर देय हो । इस प्रकार की हुण्डी पर कोई टिकट आदि लगाने की आवश्यकता नही है । यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजने के काम मे लायी जाती है ।

(2) **मुद्दती या मियादी हुण्डी**—वह हुण्डी जो एक निश्चित समय के बाद देय होती है मुद्दती हुण्डी कहलाती है । यह प्रतिज्ञा-पत्र के समान होती है । इस पर मूल्यानुसार टिकट लगाया जाता है ।

(3) **धनीजोग हुण्डी**—यह वह हुण्डी होती है जिसका भुगतान केवल पाने वाले धनी को ही होता है ।

(4) **नाम जोग अथवा फरमान—जोग हुण्डी**—यह आर्डर चेक की भाँति होती है । इसका भुगतान उसमें लिखित व्यक्ति को या उसके फरमान (आदेशानुसार) के अनुसार किया जाता है । इसमे बेचान की आवश्यकता पड़ती है ।

(5) **शाह जोग हुण्डी**—यह वह हुण्डी है जिसका भुगतान केवल किसी शाह को ही हो सकता है । शाह का आशय उस व्यक्ति से है जिसकी बाजार में साख व प्रतिष्ठा बहुत अच्छी है । इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसका भुगतान किसी शाह को ही किया जा सकता है ।

(6) **जोखिम हुण्डी**—आजकल तो व्यापार का ढंग बदल जाने के कारण यह नहीं चलती किन्तु इसका पहले बड़ा प्रचार था । इस हुण्डी के द्वारा माल का विक्रेता क्रेता को यह आदेश देता है कि माल का मूल्य हुण्डी के धारक को चुका दें । माल का क्रेता माल की प्राप्ति से पूर्व ही हुण्डी को स्वीकार कर लेता है । परन्तु हुण्डी में यह शर्त होती है कि उसका भुगतान तभी किया जायेगा जबकि माल प्राप्त हो जायेगा । जोखिम हुण्डी को विनिमय-साध्य पत्रों मे सम्मिलित नहीं कर सकते क्योंकि यह बिना शर्त के नही होती ।

(7) **जवाबी हुण्डी**—यह ऐसी हुण्डी है जिसका उपयोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपये भेजने के लिए किया जाता है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "विनिमय-साध्य विलेख" की परिभाषा दीजिये और उन आधारभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिये, जो एक परक्राम्य प्रलेख को साधारण माल से अलग करती हैं।

   Define a Negotiable Instrument ? State those basic characteristics which distinguish a negotiable Instrument from ordinary goods.

2. "यथाविधिधारी" से आप क्या समझते हैं ? धारी से यह किस प्रकार भिन्न है। इस अधिनियम के अन्तर्गत यथाविधिधारी को क्या विशेष अधिकार प्राप्त है ?

   What do you mean by 'Holder in due course ? How does it differ from 'Holder ?' What previledges have been granted under this at to a 'Holder in due course' ?

3. विनिमय-साध्य विलेख पर किया गया भुगतान "यथाविधि भुगतान" कब कहा जाता है ?

   When is payment made on a negotiable Instrument said to be 'payment in due course' ?

4. विनिमय-साध्य विलेख अधिनियम के अन्तर्गत कौन-कौन से विलेख विनिमय-साध्य होते हैं ?

   (अ) चैक एवं विनिमय-बिल तथा

   (ब) प्रतिज्ञा-पत्र एवं विनिमय बिल में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

   Which Instruments are negotiable under the negotiable Instrument act ? Distinguish between.

   (a) cheque and a bill.

   (b) promissory-note and Bill of exchange.

5. विनिमय-पत्र के सन्दर्भ में निम्नलिखित शब्दों को समझाइए और उनका अन्तर स्पष्ट कीजिये—

   (अ) धारी

   (ब) यथाविधि धारी

   (स) मूल्य के लिए धारी

   Explain the following terms with reference to a bill of exchange and distinguish between them.

   (a) Holder,

   (b) Holder in due course and,

   (c) Holder for value.

6. एक विनिमय-साध्य विलेख के लेखक, स्वीकर्ता तथा पृष्ठांकक के क्रमशः क्या दायित्व हैं ?

   What are the respective liabilities of the drawer, acceptor and endorser of a bill of exchange ?

7. (अ) विनिमय-साध्य विलेख की परिपक्वता से क्या आशय है ? परिपक्वता की गणना करने से सम्बन्धित नियम बताइए।
(ब) संदिग्ध एवं अपूर्ण विलेखों में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
(a) What do you mean by the maturity of a negotiable Instrument ? State the rules for calculating the maturity.
(b) Differentiate between 'Ambiguous' and inchoate instrument.
8. पृष्ठांकन को परिभाषित कीजिये। पृष्ठांकन के विभिन्न प्रकारों को समझाइये और उदाहरण दीजिये।
Define endorsement. Discuss the various types of endorsement and give illustrations. (सुखाड़िया वि. वि 1985)
9. परक्राम्य विलेख के सम्बन्ध में वैधानिक मान्यताओं का वर्णन कीजिये।
Mention the legal presumptions made in respect of negotiable instrument.
10. चैक रेखांकित कब कहलाता है ? सामान्य एवं विशिष्ट रेखांकन में अन्तर बतलाइये।
When a cheque is to be crossed ? Distinguish between general and special crossing.
11. विनिमय—साध्य विलेख—प्रस्तुति को समझाइये। उन दशाओं का वर्णन कीजिये जिनमें भुगतान के लिए प्रस्तुति—
(अ) आवश्यक है।
(ब) आवश्यक नहीं है।
Explain what do you mean by 'presentation' of a bill of exchange ? Explain these circumstances when presentment for payment.
(a) is necessary.
(b) is not necessary ?
12. एक विनिमय बिल कब अप्रतिष्ठित माना जाता है ? अप्रतिष्ठित बिल के पक्षकारों के क्या अधिकार हैं ? क्या अप्रतिष्ठा की सूचना देना अनिवार्य है ?
When is a bill of exchange said to be dishonoured ? What are the rights of the parties to a will which has been dishonoured ? Is a notice of dishonour necessary ?

□□□